ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

कारण-कार्यनियम

(नियमसार प्रवचन, भाग-५)

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री नियमसार पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
गाथा ११८ से १४० और कलश १८९ से २३५ पर
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक : **देशना कम्प्यूटर्स,** जयपुर

प्रकाशकीय

परम पूज्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसारजी नामक शास्त्र अध्यात्म प्रधान द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सत्शास्त्रों में से एक सर्वोत्कृष्ट तथा चारित्र प्रधान श्रेष्ठतम शास्त्र है।

परम भट्टारक शासननायक श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अन्य केवली तथा श्रुतकेवली कथित आगम और अध्यात्म विद्या का संकलन चार अनुयोग के असंख्य शास्त्रों में अनेक आचार्यों–मुनिभगवन्तों द्वारा सम्पन्न हुआ है। सनातन दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्थान अजोड़ है। लगभग चौरासी पाहुड़ शास्त्रों की भेंट आपश्री ने प्रदान की है, तथापि अभी मात्र १२–१५ ही उपलब्ध हो सके हैं।

उन उपलब्ध सत्शास्त्रों में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसे उत्तमोत्तम परमागमों में हजारों शास्त्रों का सार समाहित हो जाता है। जैसे समयसार में शुद्धनय से नौ तत्त्वों का निरूपण किया है, वैसे नियमसार में शुद्धनय से ही जीव–अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

वर्तमान में उपलब्ध भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के उत्कृष्ट परमागमों में अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये रचित सर्वोत्कृष्ट श्री समयसारजी में दृष्टिप्रधान कथन से शुद्धात्मा का स्वरूप समझाया है। दिव्यध्वनि के सार श्री प्रवचनसारजी में ज्ञानप्रधान कथन से वही स्वरूप वर्णन किया है। श्री नियमसारजी में चारित्र अधिकार की मुख्यता से उसी स्वरूप का वर्णन है। वीतरागता प्रगट करने के प्रयोजन से दृष्टि–ज्ञान–चारित्र के आश्रयभूत शुद्धात्मा का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है।

श्री नियमसारजी की तो आचार्यदेव ने स्वयं के जीवन की सन्ध्याकाल में निज भावना के निमित्त से रचना की होने से कारणपरमात्मा का बहुत ही घोलन किया है।

इस असाधारण परमागम की टीका भावी तीर्थाधिनाथ अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक भावलिंगी मुनिराज श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। जिनके मुख में से परमागमरूपी मकरन्द झरता है, ऐसे मुनिराज कहते हैं कि गुण के धारक गणधरों से रचित तथा श्रुतधरों की परम्परा से भली प्रकार से व्यक्त किये गये इस परमागम के सार की पुष्टरुचि से यह टीका सहज रची गयी है। टीकाकार ने श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए आध्यात्मिक भावों को स्वानुभूति से प्रमाण करके, परमपारिणामिकभाव में रहे हुए अन्तर रहस्यों को खोला है।

श्री नियमसार भरतक्षेत्र के उत्तमोत्तम शास्त्रों में से एक होने पर भी प्राभृतत्रय की समानता में इसकी प्रसिद्ध बहुत कम है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विक्रम संवत् १९७२ में नियमसार की भूमिका में सत्य ही लिखते हैं कि '**आज तक श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय संग्रह, प्रवचनसार, और समयसार, ये तीन रत्न ही बहुत प्रसिद्ध हैं। खेद की बात है कि उनके जैसा,**

तथापि कितने ही अंशों में उनसे भी अधिक ऐसा नियमसार रत्न है, उसकी प्रसिद्धि इतनी कम है कि कोई कोई तो उसका नाम भी नहीं जानते।'

नियमसार अर्थात् भागवत् शास्त्र (गाथा १८७)। श्रुतपरम्परा में शास्त्रों का प्रणयन शिष्यों को सम्बोधन के लिए अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य से किया जाता है परन्तु इस ग्रन्थाधिराज की रचना आचार्यश्री ने अपने दैनिक पाठ के लिए की होनी चाहिए, क्योंकि आचार्यश्री की ग्रन्थ की अन्तिम उक्ति द्वारा स्पष्ट होता है कि 'णियभावणाणिमित्तं' अर्थात् निजभावना के अर्थ / निमित्त से पूर्वापर दोषों से रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने नियमसार नाम का शास्त्र रचा है।

नियमसार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षारहित शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप। इस ग्रन्थ में पर्याय की मुख्यता से कथन होने पर भी भावलिंगी सन्तों की दृष्टि तो उसके कारण पर ही रहा करती है।

भव्य जीवों को भाग्योदय से इस नियमसार कृति पर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखनेवाले महासमर्थ मुनिराजश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, जो वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। इस शास्त्रजी में १८७ गाथाओं में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्न अनुसार बारह विभागों में प्रस्तुत किया गया है।

१. जीव अधिकार	७. परम आलोचना अधिकार
२ अजीव अधिकार	८. शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार
३. शुद्धभाव अधिकार	९. परम समाधि अधिकार
४. व्यवहारचारित्र अधिकार	१०. परमभक्ति अधिकार
५. परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार	११. परम आवश्यक अधिकार
६. निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार	१२. शुद्धोपयोग अधिकार

परम समाधि अधिकार और परमभक्ति अधिकार का संक्षिप्त परिचय

श्री नियमसार अर्थात् मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरुपचार निरुपण का अनुभव ग्रन्थ 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह रत्नत्रय। नियमसार अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्धरत्नत्रय। इस शुद्धरत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सर्व सिद्धत्वरूप सिद्ध अवस्था तक की सर्व अवस्थाओं में अशुभ, शुभ और शुद्ध विशेषों में रहा हुआ जो नित्य निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्ध द्रव्य सामान्य, वह परम तत्त्व है, वही शुद्ध अन्त:तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व का आश्रय ही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यक्चारित्र है, वही सत्यार्थ परमार्थ प्रतिक्रमण, परम आलोचना, निश्चय प्रत्याख्यान और शुद्ध निश्चयप्रायश्चित्त है। परम समाधि और परम भक्ति है, वही परम आवश्यक कर्तव्य है।

परम समाधि अधिकार

इस अधिकार की प्रथम गाथा में ही समस्त मोह-राग-द्वेषादि परभावों के विध्वंस के हेतुभूत परम समाधि अधिकार कहने की प्रतिज्ञा करते हुए आचार्य कुन्दकुन्ददेव फरमाते हैं कि वचनोच्चार की क्रिया परित्याग कर वीतरागभाव से जो आत्मा को ध्याता है, उसे परम समाधि है। मूल गाथा का हरिगीत इस प्रकार है।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया, वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे॥

तत्पश्चात् संयम नियम और और तप से तथा धर्मध्यान-शुक्लध्यान से जो आत्मा को ध्याता है, उसे परम समाधि होती है। ऐसा निरूपण करते हुए वनवास, कायक्लेश, उपवास और अध्ययन, मौन इत्यादि कार्य करनेवाला भी यदि समतारहित है तो श्रमणाभास है। उसे कोई भी क्रिया जरा भी मोक्ष का साधन नहीं है, ऐसा कहा है।

तत्पश्चात् गाथा १२५ से १३५ तक की गाथाओं में केवली शासन की सनातन सत्य शाश्वत् परम्परा और प्रणालिका की साक्षी देते हुए स्थायी सामायिकरूप समाधि की अपूर्व व्याख्या विगतवार समझाते हुए आचार्य मानो कि सामायिक की गहरी गुफा में ही लीन हो जाते हैं और कहते जाते हैं कि 'जो सदा विरक्त है, त्रिगुप्त है, इन्द्रियों का निरोध किया है, जो त्रस, स्थावर प्राणी मात्र के प्रति माध्यस्थभाव धरता है ऐसे उस परम मुमुक्षु को स्थायी सामायिक होती है। यम-नियम-संयम इत्यादि क्रियाओं में भी जिसे नित्य आत्मा समीप वर्तता है, उसे ही परम समाधिरूप सामायिक होती है।' ऐसा निरूपण करते हुए कहते हैं कि—

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥

इस अधिकार की अन्तिम गाथाओं में भी राग-द्वेषरहित, आर्त-रौद्र दोनों ध्यान से रहित, पुण्य-पाप से विरहित, हास्यादि नौ कषाय परिणामों से रहित और धर्म शुक्लध्यान को जो नित्य ध्याता है, उसे स्थायी सामायिक होती है ऐसा निरूपण किया है।

इस प्रकार नौवें परम समाधि अधिकार में कुल 12 गाथाएँ तथा टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव के 20 कलश काव्य हैं।

परम भक्ति अधिकार

दसवाँ परम भक्ति अधिकार है। गाथा 134 से 140 तक की कुल सात गाथाओं में संक्षिप्त में भी सातिशय भावभक्ति की उछलती ऊर्मियों के मनोरम दर्शन की छटा पाठकों को इस प्रकरण

में प्राप्त होती है। इस अधिकार की पहली ही गाथा में निज परमतत्त्व में सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूप शुद्धरत्नत्रय परिणामों का जो भजन, वह भक्ति है, जिसका अर्थ आराधना होता है। परमोत्कृष्ट भक्ति की ऐसी व्याख्या की गयी है। व्यवहारनय प्रधान सिद्धभक्ति के स्वरूप का कथन करते हुए ग्रन्थकर्ता फरमाते हैं कि—

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥

मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार से स्थापित करके निवृत्ति की अर्थात् निर्वाण की भक्ति करता है, इसलिए जीव, जिसे किसी की सहायता नहीं है ऐसा गुणवाला होने से स्वत: सिद्ध सहज स्वतन्त्र असहाय गुणवाले निजात्मा को प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् कितनी ही गाथाओं में शुद्धोपयोगरूप योगभक्ति का स्वरूप, उसकी सूक्ष्म छनावट के साथ उसकी महिमा वर्णन करते हुए वृषभादि जिनवरेन्द्र इस प्रकार योग की उत्तम भक्ति करके निवृत्ति सुख को प्राप्त हुए, इसलिए योग की उत्तम भक्ति को तू धारण कर, ऐसी पावन प्रेरणा दी है।

इस प्रकरण में पद्मप्रभमलधारिदेव एक काव्य द्वारा प्रवचन वात्सल्य की भावना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'अपुनर्भव सुख की सिद्धि के लिये मैं शुद्धयोग की उत्तम भक्ति करता हूँ, संसार की घोर भीति से सर्व जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो।' आचार्य कुन्दकुन्ददेव की भक्ति परख दूसरी सर्वश्रेष्ठ और सर्व प्रथम रचना दशभक्ति प्राकृत का सम्पूर्ण प्रभाव इस परम भक्ति अधिकार पर दृष्टिगोचर होता है। वह प्राकृत दशभक्ति से अनुप्राणीत होकर आचार्य पूज्यपाद ने संस्कृत में दस भक्तियों की रचना की है।

इस प्रकार प्रस्तुत परम भक्ति अधिकार में केवल सात गाथाएँ होने पर भी टीका करता ने 17 कलशरूप काव्य द्वारा अपनी आत्मभक्ति की भावपूर्ण ऊर्मियों को अन्त:तत्त्व के सप्त स्वरों से पूरा पाड़कर भक्ति की अप्रतिहत गंगा प्रवाहित की है।

इस शास्त्र के भावों का विवेचन करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री भावविभोर होकर कहते हैं – **टीकाकार मुनिराज ने कार्य के साथ ही त्रैकालिक कारण (कारणशुद्धपर्याय) की बात करके टीका में अलौकिक रहस्य खोले हैं। अहो! जंगल में बसनेवाले और आत्मानन्द में लीन रहनेवाले सन्तों के श्रीमुख से परमागमरूपी अमृत की वर्षा हुई, उसमें आया है कि हे भाई! तेरे धर्म का ध्रुव कारण तो तुझमें सदा विद्यमान है, परन्तु तू उसे कारण नहीं बनाता, इसलिए दु:खी है। अहो! अन्तर का कारण मुनियों के आत्मा में से ही अमृत झरे हैं, उसकी यह अचिन्त्य और अपूर्व बात है। भारतवर्ष के लिए अभी यह बात एकदम नयी है। जिसके महाभाग्य होंगे, उसे यह बात सुनने को मिलती है और जिसे अन्दर में यह बात बैठ गयी, उसका तो कहना ही क्या ? उसका तो बेड़ा पार हो गया।**

सन्तों के अन्तरआत्मा में रहे हुए रहस्यों को खोलनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये भावों को ग्रहण करके हम भी उन्हें स्वानुभव से प्रमाण करें, यही भावना है।

इस नियमसार शास्त्र पर धारावाही अक्षरश: प्रवचन २१४ हैं। जिन्हें सात भागों में प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्तुत पाँचवें भाग में ग्रन्थ के परम समाधि अधिकार तथा परम भक्ति अधिकार पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अतीन्द्रिय आनन्दरस से सराबोर कुल २४ प्रवचन अक्षरश: प्रकाशित किये गये हैं।

प्रवचन प्रकाशन से पूर्व सम्पूर्ण प्रवचनों को सी.डी. से शब्दश: लिखा जाता है। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार वाक्य पूर्ति हेतु कोष्टक भरा जाता है और प्रकाशन से पूर्व फिर से मिलान किया जाता है। गुजराती भाषा में इस कार्य को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिसका प्रकाशन राजकोट दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट से हुआ है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है। मूल गाथाओं का बाबू युगलजी, कोटा एवं कलशों का पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली कृत पद्यानुवाद भी समाहित है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कारण नियमस्वरूप स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सभी जीव कार्यनियम अर्थात् निश्चय मोक्षमार्गरूप परिणमित हों, इसी भावना के साथ.....

यह पुस्तक www.vitragvani.com पर भी उपलब्ध है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर

दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त,

निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
१३७	२८-०५-१९८०	११८-११९, १८९-१९०	००१
१३८	२९-०५-१९८०	१२०, १९१-१९२	०२१
१३९	३०-०५-१९८०	१२१, १९३-१९४	०३७
१४०	३१-०५-१९८०	१९५-१९७	०५३
१४१	०१-०६-१९८०	१२२, १९८-२००	०७०
१४२	०२-०६-१९८०	१२४, २०२	०९०
१४३	०३-०६-१९८०	१२५-१२५, २०३-२०४	१०८
१४४	०४-०६-१९८०	२०५-२०८	१२६
१४५	०५-०६-१९८०	२०९-२१०	१४२
१४६	०६-०६-१९८०	१२३, २०१	१५८
१४७	०७-०६-१९८०	१२७, २११	१७५
१४८	०८-०६-१९८०	१२८, २१२-२१३	१९१
१४९	०९-०६-१९८०	१२९-१३०, २१४-२१५	२०८
१५०	१०-०६-१९८०	१३१-१३२, २१६-२१७	२२६
१५१	११-०६-१९८०	१३३-१३४, २१८-२१९	२४५
१५२	१२-०६-१९८०	१३४, २२०	२५८
१५३	१३-०६-१९८०	१३५, २२१-२२५	२७४
१५४	१४-०६-१९८०	१३६, २२६-२२७	२९२
१५५	१५-०६-१९८०	१३७	३०८
१५६	१६-०६-१९८०	१३८, २२८-२२९	३२१
१५७	१७-०६-१९८०	१३९	३३७
१५८	१८-०६-१९८०	१४०, २३०	३४९
१५९	१९-०६-१९८०	२३१-२३४	३६३
१६०	२०-०६-१९८०	२३४-२३५	३७८

ॐ

परमात्मने नमः।

कारण-कार्यनियम

(नियमसार-प्रवचन)

(भाग-५)

प्रवचन-१३७, श्लोक-१८९-१९०, गाथा-११८-११९,
बुधवार, ज्येष्ठ शुक्ल १४, दिनांक २८-५-१९८०

नियमसार, गाथा ११८। फिर से। थोड़ा चला है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में... आहाहा! यह कारणपरमात्मा जो आत्मा, वही प्रसिद्ध है, कहते हैं। दूसरे को जानते हुए भी स्वयं ज्ञात होता है; दूसरा ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार कारणपरमात्मा प्रसिद्ध है। आहाहा! **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** उसका स्वरूप परम कारणपरमात्मा में अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन, अन्तर्मुख रहकर **जो प्रतपन...** उसे तप कहते हैं। लो, यह तप.. **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** आहाहा! **जो प्रतपन...** उसमें एकाग्रता की शुद्धता, वह तप है। आहाहा! वह प्रायश्चित है। आहाहा! क्रियाकाण्ड की सब बात निकाल डाली। एक स्वद्रव्य का आश्रय करके एकाग्र हो, वही प्रायश्चित कहा जाता है, धर्म कहा जाता है। **ऐसा कहा है।** यहाँ तक आया था।

अब, **अनादि संसार से ही उपार्जित द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों का...** द्रव्यकर्म और भावकर्म, ऐसे शुभ और अशुभकर्मों का समूह। आहाहा! **अनादि संसार से ही उपार्जित...** ऐसा कहते हैं... प्रवाहरूप से अनादि है न? कर्म तो सत्तर कोड़ाकोड़ी का है। वह अनादि का नहीं होता, परंतु कर्म की परम्परा ऐसी की ऐसी चली आती है। इसलिए **अनादि संसार से ही उपार्जित द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों का समूह—कि जो पाँच**

प्रकार के (-पाँच परावर्तनरूप) संसार का संवर्धन करने में समर्थ है... द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव—ऐसे पाँच प्रकार के परावर्तन करने में समर्थ है। आहाहा! शुभभाव, वह भी पाँच प्रकार के संसार में संवर्धन करने का कारण है। शुभभाव से कहीं आत्मा में लाभ हो, ऐसा नहीं कहा।

वह—भावशुद्धि लक्षण... भावशुद्धि अर्थात् शुभाशुभरहित। **(-भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे) परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** आहाहा! पाँच प्रकार के परिभ्रमण, वे इस शुद्धभाव से... है न? **(-भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे) परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** शुद्धभाव; शुभ-अशुभभाव रहित। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के शुभपरिणाम, वह बन्ध के कारण हैं। उनसे रहित जो शुद्धपरावर्तन... आहाहा! **परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** पाँच परावर्तन उसमें नाश को प्राप्त होते हैं। आहाहा!

इसलिए स्वात्मानुष्ठाननिष्ठ (-निज आत्मा के आचरण में लीन)... आहाहा! नियमसार में कितनी ही बात तो समयसार से भी उत्कृष्ट कर डाली है। **(-निज आत्मा के आचरण में...)** भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, अनादि-अनन्त शाश्वत्—ऐसा निज परमातमा, उसके आचरण में लीन। आहाहा! परम-तपश्चरण। उसे **परमतपश्चरण ही शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है...** आहाहा! भगवान परमानन्द परमपारिणामिकस्वभाव, त्रिकाल कारणस्वभाव में लीनता... आहाहा! वही शुभाशुभभाव के परावर्तन के नाश का कारण है। शुभ के नाश का कारण वह है। (शुभभाव) अपनी शान्ति को नाश करते हैं। यह शान्ति, शुभ को नाश करती है। आहाहा! **(-निज आत्मा के आचरण में लीन) परमतपश्चरण...** यह परम तपस्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह परमतपश्चरण है तो इससे हल्का कोई तपश्चरण होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमतपश्चरण ही यह है। हल्का तप... नाममात्र दे अनशन, ऊनोदर... वस्तु ही यह है। परम में और नीचे कोई दूसरा है, ऐसा नहीं है। यही परमतपश्चरण है। 'ही', देखो! आत्मा में आचरण की लीनता, वही परमतपश्चरण है। **शुद्धनिश्चय -प्रायश्चित्त है, ऐसा कहा गया है।** आहाहा! एक-एक श्लोक में बारह अंग का सार भर दिया है।

मुमुक्षु : जघन्य तप श्रावक को, उत्कृष्ट तप मुनि को।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा तप ही नहीं है। यह एक ही तप है। आत्मा आनन्दमूर्ति कारणपरमात्मा में लीनता, वह एक ही तप है। एक ही परम तप है।

मूमुक्षु : आत्मा में लीनता तो.... होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ...शुभपरिणाम हो, वह बन्ध का कारण है, संसार है। आहाहा! नियमसार की कितनी ही व्याख्या समयसार से भी बहुत ऊँची है। टीकाकार आचार्य ने अन्तर में से निकाल कर देखा। उसे तपस्या कहकर ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द के अनुभव में आनन्द की उग्रता वेदन करे, अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता (का वेदन करे) उसे परमतपश्चर्या कहते हैं। आहाहा! लीनता नहीं हुई... आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोग फिर एकान्त कहते हैं। आहाहा!

श्लोक-१८९

[अब इस ११८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,
प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानन्द-पीयूष-पूर्णम्।
आसन्सारा-दुपचित-महत्कर्मकान्तारवह्नि-
ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः।।१८९।।

(वीरछन्द)

कर्मों की अटवी अनादि भव-परम्परा से पुष्ट महान।
उसे जलाने हेतु अग्नि की ज्वाला-सम तप शम सुखखान॥
मुक्ति-वधू को भेंट, चिदानन्द अमृत रस से है भरपूर।
यही कर्मनाशक प्रायश्चित सन्त कहें नहिं कोई और॥१८९॥

[श्लोकार्थः] जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है और मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है, उस चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं, परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं ॥१८९ ॥

श्लोक- १८९ पर प्रवचन

[अब इस ११८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,
प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानन्द-पीयूष-पूर्णम् ।
आसन्सारा-दुपचित-महत्कर्मकान्तारवह्नि-
ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः ।।१८९।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी...** आहाहा! कर्म की महा अटवी। आहाहा! जंगल। अनादि काल से पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... पुण्य तो किसी समय होता है, बाकी तो पाप और पाप पूरे दिन। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके साथ मिथ्यात्व का पाप सेवन किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप ही सेवन किया करता है। धर्म के नाम से मिथ्यात्व का (पाप सेवन करता है) क्रियाकाण्ड करे और माने कि मुझे धर्म हुआ। आहाहा!

जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है,... आहाहा! जो संसार अशुद्ध भाव, उसके अन्तर्भेद शुभाशुभ दोनों, वह संसार की वृद्धि का कारण है। उसे नाश करने के लिये चैतन्य की अन्तरलीनता, शुद्ध परमपारिणामिकभाव की लीनता, वह उसका नाश कर डालती है। बाकी दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। (अग्नि की) **ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है...** आहाहा! कौन ? तप। वह यह तप। अन्तर आनन्दस्वरूप में मग्न-लीनता। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में लवलीन। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा...

वही कर्म की अटवी को जला डालने के लिये अग्नि की ज्वाला के समूह समान है। आहाहा!

यहाँ तो एक अपवास करे तो ऐसा हो, एक अपवास... तीन करे तो ऐसा हो।... मिथ्यात्व का पाप है। पुण्य को धर्म मानता है। हम धर्म करते हैं। मिथ्यात्व है। संसार है। यह बलुभाई ने किया है न। कहाँ नहीं किया?

मुमुक्षु : बलुभाई को खबर पड़ी न कि हमने क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कुछ पुण्य बँधेगा? ऐसा कहते हैं। पाप बँधेगा।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे स्वयं धर्म मानता है न! वास्तव में तो मिथ्यात्व बढ़ गया। शुभभाव अन्दर है, परन्तु वह तो कहीं गौण रह गया। मिथ्यात्व के पाप की वृद्धि हो गयी। आहाहा! चैतन्यमूर्ति आनन्दनाथ के ओर की सन्मुखता छोड़कर बाहर में सन्मुखता में रहनेवाला अकेला मिथ्यात्व बाँधता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

स्वरूप अन्दर भगवान आत्मा परम आनन्द का सागर, परम अतीन्द्रिय ज्ञान और शान्ति का सागर है, समुद्र है। पुण्य और पाप के झुकाव से छूटकर उसमें लीन होना, वह संसार के नाश होने का उपाय है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! **शमसुखमय है...** वह समता सुखमय है। समतावाला सुखमय है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, उसमें लीनता, वह शमसुखमय है। आहाहा! उसका नाम तपश्चर्या कहलाती है, उसका नाम प्रायश्चित्त कहलाता है। आहाहा!

शमसुखमय है... वह शमसुखमय है। समतावाला सुख है, वीतरागभाववाला सुख है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागमूर्ति... कल शाम को नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसै अरु घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझै न।' 'घट घट अन्तर जिन बसै...' जिन है। आत्मा तो जिनस्वरूप ही विराजमान है और उसका भान करनेवाला 'घट-घट अन्तर जैन बसै' वह घट में जैनपना आता है। उस 'जिन' का भान होने पर... यह भी कभी सुना नहीं होगा। आत्मा जिन है। जिन तो होगा, तब होगा। वीतराग। यह तो वीतराग तो पर्याय में होगा, तब होगा। पर्याय हुई कहाँ से? वह जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! जिनस्वरूप 'घट घट अन्तर जिन बसै...' घट-घट

अन्तर भगवान बसता है और उसकी सन्मुख की आनन्द की दशा, वह जैनदशा; वह जिन की जैनदशा। वह कोई बाड़ा नहीं, पक्ष नहीं; वह अन्तर की बातें हैं।

यहाँ कहते हैं **शमसुखमय है...** आहाहा! कौन? **कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है...** समतावाला सुख है। उससे उन कर्मों का नाश होता है। समता आत्मा के वीतराग तत्त्व को पकड़कर समता होती है वह। अकेली बाहर की क्षमा रखे, वह तो पुण्य का कारण, संसार में भटकने का कारण है। यह देश के लिये मरते हैं न? क्या कहलाता है? शहीद होते हैं। मरे हैं न? बहुत मरे हैं। सब चार गति में भटकनेवाले हैं। कठिन बात है। एक प्रभु चैतन्यमूर्ति आनन्द का सागर, उसका अवलम्बन करके जो निर्मल दशा होती है, वह धर्म और वह मुक्ति का मार्ग है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

और मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,... आहाहा! क्या? तप। कैसा तप? जो शमसुखमय शान्तिवाला है। वीतरागी पर्याय आनन्द के साथ आती है, वह **मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,...** अब मोक्षलक्ष्मी अल्प काल में है, उसकी भेंट होती है। आहाहा! भवभ्रमण का अन्त अब है और मोक्षलक्ष्मी की भेंट है। आहाहा! शब्द ऐसे प्रयोग किये हैं। **उस चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को...** अब यह तप। ऐसा तप होता है, यह कहते हैं। उस तप में ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरा हुआ होता है। कहो, बलुभाई! क्या? जिस तप में चिदानन्द ज्ञानानन्द अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति अमृत से भरपूर... आहाहा! उसे तप कहते हैं। बाकी सब लंघन है। आहाहा!

क्या कहा? **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,...** आहाहा! तीर्थंकर, गणधर और मुनिराज उस ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरपूर... आहाहा! ज्ञानरूपी आत्मा का अमृतरूपी आनन्द, उससे भरपूर तप। आहाहा! **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप...** आहाहा! ज्ञानानन्द। अन्तर ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका अवलम्बन करके **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए...** आहाहा! उसे तप कहते हैं। आहाहा! उसमें है न? वहाँ पढ़ा कब था?

चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त... तीर्थंकर, मुनि **कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,...** आहाहा! उसे कर्म का नाश करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं।

उपवास करे, वह प्रायश्चित्त है, तप है; तप है, वह निर्जरा है – ऐसा नहीं है। आहाहा! बारह प्रकार के तप करे... एक आर्यिका कहती थी। यह सब दूसरी बात परन्तु तपस्या तो यह अपवास करना यह अनशन और यह तप है। दूसरे के साथ बात हुई थी। दूसरा भले चाहे जैसे यह कहे परन्तु तपस्या और अनशन, ऊनोदर यह तपस्या है और एक अपवास करना वह तपस्या है। तपस्या है, वह निर्जरा है। आहाहा! एक अपवास करने से निर्जरा हो जाएगी ? तेरा समय चला जाएगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को...** आत्मा के आनन्द के ज्ञान से भरपूर तप, उस तप को तप कहते हैं। आहाहा! एकासन करे, इसलिए मानो तप हो गया... अठ्ठम करे, आठ दिन का निर्जल–पानी पीये बिना अपवास करे। बहुत तपस्या करे।

मुमुक्षु : ऊपर वापस पोर चढ़ावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोर चढ़ावे अधिक। ....यह तो ठीक परन्तु... करे। महीने के अपवास करे। आहाहा! अपवास करे और फिर अन्त में जरा सोंठ चोपड़े। अठ्ठम करनी पड़े, तब वर्षीतप में अन्त में, बाहर पड़े तो सब इकट्ठे होकर गाना गाये। फिर प्रभावना बाँटे। हो गया तप। आहाहा! मूर्खता से भरपूर तप है। जिसमें चिदानन्द ज्ञानानन्द का रस आया नहीं, जिसमें चिदानन्द ज्ञान के आनन्द का रस आया नहीं, वह तप नहीं है। आहाहा! बहुत स्पष्ट बात है। आहाहा!

वस्तु है न ? वस्तु है, वह स्वयं दूसरे को बतलाती है कि यह... यह... यह... वह जाननेवाला तत्त्व स्वयं ही स्वतन्त्र पर से भिन्न है। ऐसा जाननेवाला तत्त्व, उसे ज्ञायकभावरूप से जानकर आनन्द में रहना, अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता (करना), वह कर्मक्षय का कारण सन्त कहते हैं और उसे कर्मक्षय का कारण तपस्या कहते हैं। आहाहा! ...आता है न ? कषाय...

मुमुक्षु : विषयकषाया....

पूज्य गुरुदेवश्री : कषायविषयाहारो त्यागे यत्र विधियते।
उपवास सः विज्ञेयः लंघनकं बिदुः॥

आहाहा! विषयकषाया... आहाहा!

जिसमें राग के विकल्प का नाश (होता है) और जिसमें आत्मा आनन्द का नाथ

ऐसा निर्विकल्प प्रभु है, उसका जो आनन्द का रस, वह चिदानन्द रस (उत्पन्न होता है), उसे यहाँ तप कहा जाता है। चिदानन्द के रस को तप कहा जाता है। आहाहा! है? **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए...** आहाहा!

मुमुक्षु : वह अपवास तो जहर से भरा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अमृत से भरपूर है। आहाहा!

चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,... अब अस्ति-नास्ति करते हैं **परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं।** इसके अतिरिक्त किसी भी कार्य से वह कर्मक्षय हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बात।

परमानन्द का नाथ चिदानन्द प्रभु, 'घट-घट अन्तर जिन बसै अरु घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौ...' परन्तु अपने मत की शराब पीये हो, उसके कारण आगे चलता नहीं है। 'मतवाला समझे न।' मतवाला मद, पागल-पागल हो गया है। आहाहा! वह समझता नहीं कि यह आत्मा अन्दर भिन्न है, इसका ज्ञान और आनन्द करना, वह धर्म है। आहाहा! 'मतवाला समझे न।' 'मत मदिरा...' मत अर्थात् अपने पक्ष का अभिमान और अपने पक्ष को पकड़ा, पक्ष को सिद्ध करने का प्रयास करता है। आहाहा!

परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं। चिदानन्दरूपी अमृत से भरे हुए को तप कहना। इसके अतिरिक्त किसी को तप और क्रियाचारित्र कहना नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है। बेचारों को सुनने को मिलता नहीं। क्या करे? पूरे दिन संसार की मजदूरी करे। निवृत्त हो तो एक घण्टे सुनने जाए, वहाँ पाप की बातें करे। यह तपस्या करो, यह अपवास करो, यह करो... यह करो... यह करो...

यहाँ तो कहते हैं कि चिदानन्द ज्ञान भगवान नित्यानन्द प्रभु के अमृत से भरपूर भाव, चिदानन्द का अमृत से भरपूर भाव... आहाहा! वह तप है और वह तप करने की बात है। आहाहा! बारह भेद है, तब वह क्या है? अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान... क्या है? अभ्यन्तर तप वह मुनि... इसके बिना की सब बातें बिना इकाई के शून्य है। आहाहा!

गाथा - ११९

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं।।११९।।

आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु सर्वभावपरिहारम्।
शक्नोति कर्तुं जीवस्तस्माद् ध्यानं भवेत् सर्वम्।।११९।।

अत्र सकलभावानामभावं कर्तुं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मध्यानमेव समर्थमित्युक्तम्।

अखिलपरद्रव्यपरित्यागलक्षणलक्षिताक्षुण्णनित्यनिरावरणसहजपरमपारिणामिकभाव-भावनया भावान्तराणां चतुर्णामौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकानां परिहारं कर्तुमत्या-सन्नभव्यजीव: समर्थो यस्मात्, तत एव पापाटवीपावक इत्युक्तम्। अत: पञ्चमहाव्रतपञ्च-समितित्रिगुप्ति-प्रत्याख्यानप्रायश्चित्तालोचनादिकं सर्वं ध्यानमेवेति।

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अत: सर्वस्व है वह ध्यान रे॥११९॥

अन्वयार्थ : [आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु] आत्मस्वरूप जिसका आलम्बन है ऐसे भाव से [जीवः] जीव [सर्वभावपरिहारं] सर्व भावों का परिहार [कर्तुम् शक्नोति] कर सकता है, [तस्मात्] इसलिए [ध्यानम्] ध्यान वह [सर्वम् भवेत्] सर्वस्व है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है - ऐसा कहा है।

समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित अखण्ड-नित्यनिरावरण—सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना से औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा

क्षायोपशमिक इन चार भावान्तरों का *परिहार करने में अति-आसन्नभव्य जीव समर्थ है, इसीलिए उस जीव को पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि) कहा है; ऐसा होने से पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, आलोचना आदि सब ध्यान ही है (अर्थात् परमपारिणामिकभाव की भावनारूप जो ध्यान, वही महाव्रत, प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)।

गाथा - ११९ पर प्रवचन

गाथा ११९।

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं।।११९।।

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे॥११९॥

टीका -... आहाहा! **यहाँ (इस गाथा में), निज आत्मा जिसका आश्रय है...**

* यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय का भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का ही-आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का-विशेष का-आलम्बन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती। इसलिए क्षायिकभाव का भी आलम्बन त्याज्य है। यह जो क्षायिकभाव के आलम्बन का त्याग, उसे यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।

यहाँ ऐसा उपदेश दिया है कि—परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा, मोक्षार्थी को अपने औदयिकभावों का (समस्त शुभाशुभ भावादिक का), औपशमिकभावों का (जिसमें कीचड़ नीचे बैठ गया हो, ऐसे जल के समान औपशमिक सम्यक्त्वादिक का), क्षायोपशमिकभावों का (अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का) तथा क्षायिकभावों का (-क्षायिक सम्यक्त्वादि सर्वथा शुद्ध पर्यायों का) भी आलम्बन छोड़ना चाहिए; मात्र परमपारिणामिकभाव का—शुद्धात्मद्रव्यसामान्य का—आलम्बन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।(आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परमपारिणामिकभाव की भावना, 'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'—ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)

देखा ? अपना आत्मा। पर का आत्मा भगवान का भी नहीं, पंच परमेष्ठी का आत्मा नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य है। परद्रव्य का आश्रय करने जाएगा, वहाँ राग होगा। आहाहा! **निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान...** देखा ? धर्मध्यान में निश्चय-धर्मध्यान लिया। शुभराग को किसी समय व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। वह नहीं। आहाहा! **निज आत्मा जिसका आश्रय है...** आधार है, अवलम्बन है। **ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है...** संसार में भटकने के सर्व भाव, उनका अभाव करने में समर्थ है, ऐसा कहा है। ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! अलक-मलक की बात। यह तो अगम्य-गम्य की बातें! अरे रे! आहाहा! सम्प्रदाय में तो कभी सुनने को मिलता नहीं। आहाहा!

अन्दर भगवान विराजता है। जैन जिनस्वरूप तू है। 'घट-घट अन्तर जिन...' जिन अर्थात् वीतरागस्वरूप ही तू अन्दर है। पर्याय में जो रागादि हैं, वे पर हैं। पूरा द्रव्य तो वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन।' उस 'जिन' को अन्दर में स्वीकार करे - अनुभव करे, उसका नाम जैन है। जैन कोई अपवास करे, अमुक करे, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करे, इसलिए जैन—ऐसा जैन नहीं। आहाहा! भारी कठिन बातें! आहाहा!

निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही... 'ही' एकान्त किया है। कथंचित् यह और कथंचित् व्यवहार, ऐसा नहीं। इससे है और दूसरे से नहीं, यह अनेकान्त है। वे अनेकान्त ऐसा सिद्ध करते हैं कि निश्चय से भी है, व्यवहार से भी है। उपादान से भी है और निमित्त से भी है, इसका नाम अनेकान्त है। यह अनेकान्त नहीं, यह तो एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ तो निश्चय से है और व्यवहार से नहीं। यह आया न ? उसमें कहा था, परन्तु अन्य कोई कारण से नहीं। अन्य कोई कारण से नहीं, इसमें सब आ गया। बाहर के कुछ भी कार्य नहीं। आहाहा! यह वर्षीतप करे और फिर उसे उत्सव मनावे, पाँच-दस लाख खर्च करे अन्त में ढ़ोंग करे। अठ्ठम करे (तब कहे) जरा सिर दुखता है। लोग एकत्रित हों और पूछे... आहाहा! अपवास कठिन है। यह सब लंघन है। आहाहा!

परमानन्दरूपी भगवान आत्मा का स्वभाव और **निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है, ऐसा कहा है। समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण**

से लक्षित... आहाहा! समस्त परद्रव्यों का परित्याग। परित्याग अर्थात् समस्त प्रकार से त्याग। आहाहा! जिसमें देव-गुरु और शास्त्र भी त्याग। आहाहा! परद्रव्य में सब आ गया। **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से लक्ष्य में लेनेयोग्य **अखण्ड-नित्यनिरावरण**—आहाहा! **सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना...** आहाहा! **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से जाननेयोग्य। लक्षण से लक्षित अर्थात् जाननेयोग्य। **अखण्ड-नित्यनिरावरण**—आहाहा! भगवान अन्दर अखण्ड है, नित्यनिरावरण है। आत्मद्रव्य को आवरण है ही नहीं। वह तो सकल निरावरण प्रभु अन्दर है।

एक समय की पर्याय में राग को अपना माना है, उस राग और स्वभाव के बीच भी सांध है, एक नहीं। मात्र मान्यता खड़ी की है। आहाहा! भगवान आत्मा और राग—दया, दान के विकल्प के बीच सांध है। एक नहीं, परन्तु अनादि से यह एक मानकर भटक रहा है। आहाहा! कैसा अन्तर है ? पाँच मिनिट का। यहाँ चार (बजकर) पाँच हुए। अब क्या कहते हैं ?

समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित... सब परद्रव्य के त्याग में कोई परद्रव्य नहीं, राग नहीं, भगवान नहीं, परमेश्वर नहीं, सिद्ध नहीं, कोई नहीं। आहाहा! **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप...** परित्याग—समस्त प्रकार से त्याग। अकेला त्याग नहीं। आहाहा! ऐसे **लक्षण से लक्षित...** ऐसे परित्याग के लक्षण से ज्ञात होनेयोग्य, जाननेयोग्य। **अखण्ड-नित्यनिरावरण**—आहाहा! वस्तु स्वयं अखण्ड है, उसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसी अखण्ड चीज़ है। आहाहा! अखण्ड नित्यनिरावरण और त्रिकाली निरावरण है। ऐसे भगवान को अन्दर आवरण है ही नहीं। आहाहा! वह तो एक समय की पर्याय में सभी संसार की क्रीड़ा है। वस्तु में आवरण नहीं है। वस्तु में आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए। आहाहा! पर्याय में राग होवे तो राग का अभाव होकर शान्ति न रहे। त्रिकाल को आवरण होवे तो द्रव्य ही न रहे। आहाहा!

नित्यनिरावरण। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर नित्यनिरावरण है। **सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना...** स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की भावना। उसकी भावना से, उसकी एकाग्रता से **औदयिक,...** कर्म का जो उदय, कर्म का **औपशमिक,...**

कर्म का **क्षायिक तथा...** कर्म का **क्षायोपशमिक इन चार भावान्तरों का...** चार भावान्तरों आहाहा! परम पारिणामिकस्वभाव चिदानन्दस्वरूप के भाव से ये चार भाव भावान्तर हैं— अन्य भाव हैं। आहाहा! **चार भावान्तरों का परिहार करने में...** आहाहा! क्षायिकभाव का परिहार करने में समर्थ है।

मुमुक्षु : आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आश्रय आत्मा का है न। परमपारिणामिक स्वभाव का आश्रय है। चार पर्याय का आश्रय नहीं। पर्याय आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। चाहे तो क्षायिक पर्याय हो। आहाहा! पाँच परमेष्ठी तो आश्रय करने के योग्य नहीं। तेरा क्षायिकभाव, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

इन **भावान्तरों का परिहार करने में...** उन्हें छोड़ने में। नीचे स्पष्टीकरण किया है। **यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय...** क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय है, उसका **भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही...** अंशी का-त्रिकाली भगवान का... आहाहा! ध्रुव-ध्रुव प्रभु नित्य है, उसका **आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है।** आहाहा! सब बातें बहुत सूक्ष्म। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे यह तो क्या है? ऐसा धर्म? क्षायिकभाव! क्षायिकभाव छोड़ना। अर्थात् कि उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! क्षायिकभाव पर्याय है, पर्याय का आश्रय करने जाए तो राग होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : आप भी बहुत सूक्ष्म कहते हो, वह पकड़ना कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन, ऐसा है, भाई! कभी अभ्यास नहीं और अभी यह बात चलती नहीं। सम्प्रदाय में यह बात चलती नहीं। है, खबर है। २१ वर्ष सम्प्रदाय में रहे हैं। २३ वर्ष गृहस्थाश्रम में। २१ वर्ष सम्प्रदाय में। यहाँ ४५ हुए। (इस प्रकार) ९० हुए। ४५ वर्ष की उम्र में आये हैं। ४५ वर्ष यहाँ जंगल में व्यतीत किये। यह ९१वाँ लगा है। ९१वाँ चलता है। वैशाख शुक्ल दो, ९१वाँ वर्ष लगा। आहाहा!

यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय का भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का

ही-आलम्बन लेने से... अंशी अर्थात् द्रव्य वस्तु त्रिकाल। पर्याय भी नहीं। क्षायिक पर्याय भी नहीं। आहाहा! उसके बदले शुभराग से धर्म होगा और धीरे-धीरे होगा, यह तो सब मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! **शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का ही-आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का-विशेष का-आलम्बन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती।** क्षायिकभाव के आश्रय से क्षायिकभाव प्रगट ही नहीं होता। क्षायिकभाव के आश्रय से विकल्प आता है। आहाहा! बहुत कठिन काम। उदय, उपशम, क्षयोपशम तो नहीं, परन्तु क्षायिकभाव जो क्षायिक समकित हुआ... आहाहा! केवलज्ञान क्षायिकभाव से है... आहाहा! परन्तु दूसरे को। स्वयं को नहीं। क्षायिक समकित तो स्वयं को होवे, तो भी उसका आश्रय लेने जाए... आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा वीतराग का मार्ग होगा यह? सोनगढ़वालों ने कुछ नया निकाला होगा ऐसा?

मुमुक्षु : नया निकाला नहीं परन्तु दब गया था, वह खुला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : था, उसे खुला किया है। आहाहा! बाहर में गड़बड़ उठाते थे। आहाहा!

इसलिए क्षायिकभाव का भी आलम्बन त्याज्य है। क्षायिकभाव जो समकित आदि प्रगट हुआ हो, उसके आश्रय का-अवलम्बन का त्याग है। क्योंकि उसके आश्रय से राग उत्पन्न होता है। उसके आश्रय से नया क्षायिकभाव नहीं होता। **यह जो क्षायिकभाव के आलम्बन का त्याग, उसे यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।** अवलम्बन का त्याग, उसे क्षायिकभाव का त्याग कहा है। इस प्रकार क्षायिकभाव का त्याग, क्षायिकभाव तो पर्याय है। क्षायिकभाव तो सिद्ध में भी है। सिद्ध में भी क्षायिकभाव है। पारिणामिकभाव और क्षायिकभाव दो हैं। सिद्ध में नित्य है, वह पारिणामिकभाव है और निर्मल पर्याय जो प्रगट हुई, वह क्षायिकभाव है। परन्तु यहाँ कहते हैं, **क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।** वह उसके अवलम्बन का त्याग है। अवलम्बन का त्याग, उसका नाम त्याग कहा है। आहाहा! नीचे।

यहाँ ऐसा उपदेश दिया है कि—परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा,... परद्रव्य का और परभावों... का अवलम्बन तो दूर रहो। **मोक्षार्थी को अपने**

औदयिकभावों का (समस्त शुभाशुभ भावादिक का),... भी अवलम्बन नहीं लेना। आहाहा! **औपशमिकभावों का...** उपशम समकित आदि का अवलम्बन नहीं लेना। **क्षायोपशमिकभावों का (अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का)...** अवलम्बन नहीं लेना। **तथा क्षायिकभावों का (-क्षायिक सम्यक्त्वादि सर्वथा शुद्ध पर्यायों का) भी आलम्बन छोड़ना...** आहाहा! ऐसा है। **मात्र परमपारिणामिकभाव का—**अकेला त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। जिसमें खान पड़ी है, अनन्त गुणों की खान है। अनन्त चित्‌चमत्कार से भरपूर मात्र शरीरप्रमाण कद देखकर इसे उसकी महिमा नहीं आती। शरीरप्रमाण कद है, इसलिए उसकी महिमा दिखायी नहीं देती, परन्तु उसके अन्तर स्वभाव में तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त-अनन्त भरा हुआ है। अरूपी है। उसमें रूप नहीं है। आहाहा!

यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा, उसका अर्थ क्षायिकभाव के अवलम्बन का त्याग। **उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही महाव्रत, समिति, गुप्ति,...** आहाहा! **प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।** आहाहा! क्या कहा? आत्मा अनन्त गुण का धनी, आनन्दकन्द प्रभु के अवलम्बन में सब है। प्रतिक्रमण यह है... आहाहा! है? **महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।** आहाहा! **(आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय,...)** अब इसके एक के विशेषण। भगवान प्रभु निर्मलानन्द अन्दर विराजता है, उसका आश्रय, उसका अवलम्बन, **(आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...)** व्यवहार से झुकाव नहीं, व्यवहार से सम्मुखता नहीं। व्यवहार का आश्रय नहीं और व्यवहार का अवलम्बन नहीं। आहाहा!

(आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...) आत्मा के प्रति झुकाव। व्यवहार और दूसरी ओर का झुकाव छोड़ देना। आहाहा! ऐसा जैनधर्म। अभी एकेन्द्रिय की दया पालो, यह करो... आहाहा! **(आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान,...)** सब एक ही कहा जाता है और **(परमपारिणामिकभाव की भावना,...)** यह सब एक ही है। भावना और आश्रय सब एक है। **('मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'...)** मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्य सामान्य हूँ। **(ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)** यहाँ से... क्या?

क्योंकि वह आत्मस्वरूप का अवलम्बन है। अवलम्बन भी एक... उसके **(आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परमपारिणामिकभाव की भावना, 'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ' ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)** इतने सब बोलों का (एक अर्थ है)। आहाहा! उसमें व्यवहार कब आयेगा? व्यवहार... अनेकान्त कहा जाता है। निश्चय और व्यवहार दो हों, उसे अनेकान्त कहा जाता है। अनेकान्त कहा जाता है, इसका अर्थ निश्चय है और व्यवहार है, वह धर्म नहीं परन्तु व्यवहार है सही। व्यवहार होता है। होता है, तथापि वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! एकान्त हो जाएगा। अकेला आत्मद्रव्य का अवलम्बन, आत्मद्रव्य का आलम्बन, सम्मुखता।

मुमुक्षु : दो का अवलम्बन एक साथ होगा? या आत्मा का होगा और या पर का होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो का नहीं हो सकता। अन्तर्मुख झुकाव हो, उसे बाहर का झुकाव नहीं होता; बाहर का झुकाव हो, उसे अन्तर्मुख झुकाव नहीं होता। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं। जैन में ऐसी बातें! बाहर अनजाने व्यक्ति को (ऐसा लगता है) यह नया मार्ग निकाला है। अपने तो छह काय की दया पालना, व्रत पालना, सूर्यास्त से पहले भोजन करना, रात्रि में आहार नहीं करना, छह परवी ब्रह्मचर्य पालन करना, ऐसा तो कुछ आता नहीं। ऐई! यहाँ तो रात्रिभोजन का त्याग सत्रह वर्ष से है। दुकान-दुकान। रात्रि में खिंचड़ी थी। माल लेने गये थे। माल लेने बाहर गये थे। घर की दुकान। कुछ देरी हो गयी होगी और उसमें खिंचड़ी और क़ढ़ी आयी। मुझे शंका पड़ी कि इस कढ़ी में बारीक जीव पड़े, वे क्यों दिखायी नहीं देते? यह तो पाप होगा। लगभग (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में संवत् १९६५-६६ कहा - आज से मैं रात्रि में नहीं खाऊँगा। मुझे आजीवन त्याग है। एक अथाणा (अचार)। एक बार अथाणा लाये। मैंने कहा, यह अथाणा लाये कहाँ से? जहाँ वरनी में देखने गया तो गन्दा कपड़ा और ऊपर कंथवा। लेने गये हों तो अन्दर कंथवा गिरे। वह अथाणा लावे। आहाहा! वर्ष का अथाणा। वहाँ महिला पकाती हो। ....होवे फिर उस वरनी का ढक्कन होवे, ढक्कन ऐसे करके वह कपड़ा-बपड़ा ऐसे हटे तो कपड़े में कंथवा होते हैं, क्योंकि चिकने हाथ लगे हों। वे अन्दर गिरते हैं। नजरों से देखा है। तब से अचार

का आजीवन त्याग है। उसे ७० वर्ष हुए। अचार-बचार नहीं। परन्तु यह तो बाहर की बातें हैं, यह कोई अन्तर की बातें नहीं हैं। आहाहा! यह कोई धर्म नहीं है। यह तो एक शुभभाव है। आहाहा!

चार भावान्तरों का परिहार करने में... इसकी व्याख्या का स्पष्टीकरण किया। परिहार करना अर्थात् क्या? उसका आश्रय नहीं करना। **अति-आसन्नभव्य जीव...** आहाहा! अति नजदीक का (भव्य) जीव। जिसे संसार निकट है, बन्द होने का। आहाहा! अनन्त काल से जो भवभ्रमण कर रहा है, अनन्त भव किये, उस भव का अन्त आना है, उसे यह बात बैठती है। आहाहा! **आसन्नभव्य जीव समर्थ है, इसीलिए उस जीव को पापाटवीपावक...** आहाहा! **(-पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि) कहा है;...** आहाहा! भाषा में कितनी... है, देखो!

ऐसा होने से पाँच महाव्रत,... आहाहा! ध्यान, वह महाव्रत है। पर की दया करना, सत्य बोलना, वह महाव्रत नहीं है। आहाहा! महाव्रत तो अन्दर आत्मा में... **ऐसा होने से पाँच महाव्रत, पाँच समिति,...** आहाहा! शरीर के साथ और वह नहीं। यहाँ तो आत्मा के आनन्द में अन्तर एकाग्रता, वह सब महाव्रत और समिति है। आहाहा! **तीन गुप्ति,...** मन-वचन और काया। **प्रत्याख्यान,...** प्रत्याख्यान **प्रायश्चित्त, आलोचना आदि सब ध्यान ही है...** आहाहा! आत्मा के आनन्दस्वरूप का ध्यान। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द उसका त्रिकाली स्वभाव, उसका ध्यान, वह यह सब है। बाहर के विकल्प उठें, वह सब राग और बन्ध का कारण है।

वह **सब ध्यान ही है (अर्थात् परमपारिणामिक भाव की भावनारूप जो ध्यान...)** ध्यान की व्याख्या की है। परमपारिणामिक जो त्रिकाल भाव। भगवान आत्मा नित्यानन्द नित्यध्रुव, पर्याय से भी भिन्न—ऐसा जो द्रव्यस्वभाव... आहाहा! नित्य स्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता, वही ध्यान है और वह **(ध्यान, वही महाव्रत प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)।** आहाहा! ....अब राग में ....महाव्रत।

आज सवेरे नहीं कहा था? महाव्रत बड़े पुरुषों ने आदर किये हैं। महाव्रत किसे कहें? ....बड़े में बड़ा है, वह महाव्रत है। वह (शुभभावरूप) महाव्रत तो अभव्य ने भी आदरे हैं। अनन्त बार दूसरे... भटककर द्रव्यलिंग धारण करके सबने पंच महाव्रत पालन

किये, नौवें ग्रैवेयक गया है। वहाँ से चार गति में भटका। आहाहा! महाव्रत। यह महाव्रत ऐसा? व्यवहार महाव्रत है या नहीं? है, राग है। छोड़नेयोग्य है। आहाहा! भारी कठिन काम। **(ध्यान वही महाव्रत प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)**। आहाहा!

श्लोक-१९०

[अब इस ११९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं,
नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुञ्जमाद्यन्तशून्यम्।
ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं,
जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ।।१९०।।

(वीरछन्द)

जिसने नित्य ज्योति के द्वारा तिमिर पुंज का किया विनाश।
आदि-अन्त बिन, परम कलामय आनन्दमूर्ति ज्ञानप्रकाश॥
शुद्धातम में अविचल मन से उसे निरन्तर जो ध्याते।
निकट भव्य चारित्र पुंज वे त्वरित मुक्ति-रमणी वरते॥१९०॥

[श्लोकार्थः] जिसने नित्य ज्योति द्वारा तिमिरपुंज का नाश किया है, जो आदि-अन्त रहित है, जो परम कला सहित है तथा जो आनन्दमूर्ति है—ऐसे एक शुद्ध आत्मा को जो जीव शुद्ध आत्मा में अविचल [१]मनवाला होकर निरन्तर ध्याता है, ऐसा यह [२]आचारराशि जीव शीघ्र जीवन्मुक्त होता है॥१९०॥

१. मन=भाव। २. आचारराशि=चारित्रपुंज; चारित्रसमूहरूप।

श्लोक- १९० पर प्रवचन

[अब इस ११९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैंः]

यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं,
नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुञ्जमाद्यन्तशून्यम्।
ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं,
जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ।।१९०।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **जिसने नित्य ज्योति द्वारा तिमिरपुंज का नाश किया है,...** भगवान आनन्दमूर्ति के आश्रय से जिसने अज्ञान अन्धकार का नाश किया है। **जो आदि-अन्त रहित है,...** आत्मा है, उसे आदि-अन्त नहीं है। शुरुआत नहीं, नाश नहीं। है, वह है। अनादि-अनन्त विराजता है। **जो परम कला सहित है...** आनन्दादि सोलह कला से भरपूर है। आहाहा! **तथा जो आनन्दमूर्ति है—ऐसे एक शुद्ध आत्मा को जो जीव शुद्ध आत्मा में अविचल मनवाला होकर...** अविचल भाववाला होकर... आहाहा! **निरन्तर ध्याता है, ऐसा यह आचारराशि जीव...** आहाहा! वह आचार का पुंज है। अन्तरवस्तु में लीन हो गया, वह आचार का पुंज है। आहाहा! **आचारराशि जीव शीघ्र जीवन्मुक्त होता है।** लो, वह अल्प काल में उसके संसार का (नाश करके) मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१२०

सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा।।१२०।।

शुभाशुभवचनरचनानां रागादिभाववारणं कृत्वा।
आत्मानं यो ध्यायति तस्य तु नियमो भवेन्नियमात्।।१२०।।

शुद्धनिश्चयनियमस्वरूपाख्यानमेतत्। यः परमतत्त्वज्ञानी महातपोधनो दैनं सञ्चित-सूक्ष्मकर्मनिर्मूलनसमर्थनिश्चयप्रायश्चित्तपरायणो नियमितमनोवाक्कायत्वाद्भववल्ली-मूलकन्दात्मकशुभाशुभस्वरूपप्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवचनरचनानां निवारणं करोति, न केवल-मासां तिरस्कारं करोति किन्तु निखिलमोहरागद्वेषादिपरभावानां निवारणं च करोति, पुनर-नवरतमखण्डाद्वैतसुन्दरानन्दनिष्यन्द्यनुपमनिरञ्जननिजकारणपरमात्मतत्त्वं नित्यं शुद्धोपयोगबलेन सम्भावयति, तस्य नियमेन शुद्धनिश्चयनियमो भवतीत्यभिप्रायो भगवतां सूत्रकृतामिति।

शुभ अशुभ-रचना वचन की, परित्याग कर रागादि का।
उसको नियम से है नियम जो ध्यान करता आत्म का॥१२०॥

अन्वयार्थ : [शुभाशुभवचनरचनानाम्] शुभाशुभ वचनरचना का और [रागादिभाववारणम्] रागादिभावों का निवारण [कृत्वा] करके [यः] जो [आत्मानम्] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य तु] उसे [नियमात्] नियम से (-निश्चितरूप से) [नियमः भवेत्] नियम है।

टीका : यह, शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का कथन है।

जो परमतत्त्वज्ञानी महातपोधन सदा संचित सूक्ष्मकर्मों को मूल से उखाड़ देने में समर्थ निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ मन-वचन-काया को नियमित (संयमित) किये होने से भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है, केवल उस वचनरचना का ही

तिरस्कार नहीं करता किन्तु समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का निवारण करता है और अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड, अद्वैत, सुन्दर-आनन्दस्यन्दी (सुन्दर आनन्द-झरते), अनुपम, निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसे (उस महातपोधन को) नियम से शुद्धनिश्चयनियम है, ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।

प्रवचन-१३८, श्लोक-१९१-१९२, गाथा-१२०, गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ल १५, दिनांक २९-५-१९८०

नियमसार, गाथा १२०। १२० आयी न?

मुमुक्षु : १९० कलश बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश बाकी है? मनवाला होकर आया है न? मनवाला होकर भाव हो गया है। आ गया है। उसके ऊपर से मनवाला भाव, ऐसा कहा था न? वह आ गया है।

शुभ अशुभ-रचना वचन की, परित्याग कर रागादि का।
उसको नियम से है नियम जो ध्यान करता आत्म का॥१२०॥

यह नियमसागर के नियम। आहाहा! नियमसागर आया, लो! नियमसार। नियमसार में नियम किसे कहना? कहते हैं। नियम। आहाहा!

यह, शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का कथन है। शुद्धनिश्चयनियम। सत्य परमार्थ नियम किसे कहना? इसने नियम लिया और नियम किया, वह नियम कहना किसे? कहते हैं। आहाहा! **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** आहाहा! मुनि से शुरु किया है। **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** अकेला तत्त्व ज्ञानी, ऐसा नहीं, परमतत्त्व जो अन्दर अखण्ड आनन्द और अखण्ड ज्ञान और शान्ति आदि से भरपूर अरूपी स्वभाव परन्तु वह बड़ा सागर है। विकल्प से हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा जो यह चैतन्य सागर, चैतन्य रत्नाकर, उस शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का इसमें कथन है। है न पहला?

परमतत्त्व ज्ञानी... परमतत्त्व यह आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप का जिसे अनुभव में ज्ञान हुआ है। अनुभव में ज्ञान हुआ, धारणा में नहीं।

आहाहा! उसे नियम कहा जाता है। इसने नियम लिया है, ऐसा कहते हैं न? कि इसने नियम किया। वह नियम किया कहना किसे? कहते हैं। **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** आत्मा जो परमतत्त्व है, उसका जिसे अनुभव है, (वह परमतत्त्व ज्ञानी है)। आहाहा! **महातपोधन...** यह विशेषण प्रयोग किया। **महातपोधन...** जिसे आनन्द का रस झरता है - अतीन्द्रिय आनन्द का रस झरता है। आहाहा! स्वरूप सन्मुख होने पर अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, ऐसा महातपोधन। यह तप अर्थात् यह आनन्द। जिसे अन्दर आनन्द झरता है, ऐसा महातपोधन। आहाहा!

सदा संचित सूक्ष्मकर्मों को... सदा ही जो कर्म का संचय किया है, उसे **मूल से उखाड़ देने में समर्थ...** मूल से उखाड़ देने में समर्थ। आहाहा! **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ...** इसे नियम कहते हैं। निश्चयप्रायश्चित्त अर्थात् आनन्द के स्वरूप में प्राय: अर्थात् ज्ञान और चित्त परायण। स्थित है न? स्थित अर्थात् ज्ञान है। प्राय: बहुलता से ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान ही आत्मा, बस! आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान... आहाहा! यह बात जँचना कठिन पड़ती है। अनादि का अभ्यास नहीं। अब शरीर प्रमाण कद छोटा और रत्न का पार नहीं होता। पार नहीं होता। चैतन्य में रत्न भरे हैं, उनका पार नहीं होता। आहाहा!

यह **संचित सूक्ष्मकर्मों को मूल से उखाड़ देने में समर्थ निश्चयप्रायश्चित्त में परायण...** यह निश्चयस्वरूप की आनन्द की दशा की रमणता में परायण। आहाहा! वह **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ...** आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु (मौजूद है), उसमें नित्य परायण रहता हुआ। आहाहा! उसमें परायण रहता हुआ। इसका नाम नियम। आहाहा! नियम लिया, ऐसा कहते हैं न? हमने नियम लिया है। परन्तु किसका नियम? कौन सा नियम? आहाहा! अन्तर की वस्तु अनुभव में आकर... यह वेदन न आवे, तबतक इसे नियम है कहाँ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मन-वचन-काया को नियमित (संयमित) किये होने से... और **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ मन-वचन-काया को नियमित...** अर्थात् रोका है। आहाहा! मन-वचन-काया की ओर से झुकाव छूट गया है। आहाहा! **मन-वचन-काया को नियमित (संयमित) किये होने से...** आहाहा! **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक...** भवरूपी

बेल-बेलड़ी। बेलड़ी होती है न? ये बेल। इस **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक...** इसका मूल कन्दस्वरूप, मूलस्वरूप **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक शुभाशुभस्वरूप...** आहाहा! शुभ और अशुभस्वरूप, यह भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक है। मूल कन्द है। आहाहा! ऐसी भाषा कभी सुनी नहीं थी। आहाहा! गजब बात है! अकेला अमृत का बेल, अमृत की बेलड़ी की बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं कि मूल कन्दस्वरूप। मूल... मूल। शुभाशुभस्वरूप। संसार का मूल-बीज चौरासी के अवतार में भटकने का यह शुभाशुभभाव है। आहाहा! शुभभाव शुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह तो संसार का मूल है। आहाहा! इसमें से संसार फलता है। यह संसार का मूल कन्द है। इसमें से संसार फलता है। आहाहा! शब्द-शब्द में अन्तर है। वर्तमान चलती बात लोगों को कठिन लगती है। वस्तु है न, बापू! अन्दर वस्तु है न? सत्ता है न? और सत्ता है तो उसका स्वभाव है न? और स्वभाव है, उसके स्वभाव की हद क्या होगी? संख्या क्या होगी और हद क्या होगी? अनन्त स्वभाव और बेहद जिसका स्वभाव... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके आश्रय में रहकर मन-वचन-काया को संयमित कर डाला।

मूल-कन्दात्मक शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है,... आहाहा! प्रशस्त वचन और अप्रशस्त वचन, दोनों का निवारण करता है। प्रशस्त वचन में भी राग है। आहाहा! **केवल उस वचनरचना का ही तिरस्कार नहीं करता... प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है, केवल उस वचनरचना का ही तिरस्कार नहीं करता...** तिरस्कार शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, अरे! अनादि-अनन्त संसार में जीव का स्वरूप, वह जंगल और अरण्य में भटके। आहाहा! अपने घर में आवे नहीं। अपनी जाति में रत्न भरे हैं, उसमें आवे नहीं और जहाँ कुछ धूल भी नहीं है... आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि... आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं इसमें, उसमें धूल भी नहीं, वहाँ उलझ गया है। आहाहा!

आनन्द का नाथ, जिसकी सत्ता में अनन्त शक्तियाँ हैं और जिसकी शक्ति का भी अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है—ऐसा भगवान आत्मा, वह केवल वचनरचना को छोड़कर नहीं रहता, कहते हैं। यहाँ वचन (रचना) छोड़कर... तिरस्कार कहा है। आहाहा!

वचनरचना का तिरस्कार। आहाहा! **किन्तु समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का निवारण करता है...** अकेले वचन छोड़कर बैठा नहीं। अन्दर में उतरा है। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि...** समस्त मोहरागद्वेषादि मिथ्याभ्रान्ति के भी बहुत प्रकार हैं, उन सबको छोड़कर... आहाहा! और शुभाशुभभाव, राग और द्वेषादि परभावों का निवारण करता है। आहाहा!

और अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड, अद्वैत,... आहाहा! निश्चय प्रायश्चित्त और निश्चयनियम, सत्य नियम, सत्य स्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से सत्य नियम प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? देवीलालजी! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो धूल है और बाहर के साधन स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान। इसमें कहीं नाम आयेगा। तीन नाम आये हैं। १२१ गाथा में आयेंगे। काया को छोड़कर नहीं परन्तु **क्षेत्र, घर, कनक, रमणी आदि।** १२१ गाथा। आहाहा! काया का लक्ष्य तो छोड़ दे परन्तु परक्षेत्र, परघर, पर सोना, और स्त्री इत्यादि। लड़के-लड़की इत्यादि। आहाहा! गजब काम।

यदि आत्मा की दृष्टि करनी हो, नियम करना हो कि मुझे तो मुझमें रहना है, दूसरे में कहीं नहीं, ऐसा नियम करना हो... आहाहा! इस वचनरचना का तो तिरस्कार कर, परन्तु मोह, राग-द्वेष के परभाव का निवारण कर। आहाहा! गाथा ऐसी है। समयसार से भी कितनी ही बातें इसमें उत्कृष्ट है। ऐसी बात है। शीतलप्रसादजी ने नियमसार की प्रस्तावना में लिखा है, भाई! कि यह नियमसार है, वह समयसार से भी कितनी ही बातों में चढ़ जाता है। आहाहा! अब इसका तो श्रवण भी नहीं और वांचन भी नहीं। बाहर के साधारण शास्त्र पढ़े और... आहाहा! मूल बात रह जाए। आहाहा!

भगवान आत्मा कैसा है? मोह-राग-द्वेष आदि परभावों का निवारण करनेवाला है। वह तो टालनेवाला है। आहाहा! करनेवाला नहीं। उसका स्वरूप नहीं। वचन बोलना या मोह-राग-द्वेष करना वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! और **(-निरन्तर)...** आहाहा! **अनवरतरूप से...** अर्थात् **(-निरन्तर) अखण्ड,...** भगवान आत्मा अन्दर अखण्ड है। जिसमें भेद और खण्ड नहीं। पर्याय का भेद भी उस वस्तु में नहीं। आहाहा! करता है अनुभव पर्याय में, निर्णय और अनुभव पर्याय में (होता है) परन्तु वह पर्याय त्रिकाली द्रव्य

में नहीं है। आहाहा! इससे अखण्ड कहा। आहाहा! अखण्ड वस्तु अन्दर भगवान परमात्मा। परमात्मा। आत्मा को परमात्मा कहना, यह लोगों को कठिन पड़ता है। आत्मा परमात्मा ही है। यदि परमात्मा न हो तो परमात्मा पर्याय में होगा कहाँ से? केवली अरिहन्त हुए कहाँ से? यह आत्मा अन्दर परमात्मस्वरूप ही है। सवेरे नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं...' अपनी धारणा के मत की मदिरा के कारण 'मतवाला समझे न।' मतवाला को अपने मत का अभिमान है... आहाहा! उसके कारण वह समझता नहीं है। आहाहा!

प्रभु अन्दर अखण्ड है। **अद्वैत...** जिसमें दोपना नहीं। आहाहा! द्रव्य और गुण अथवा द्रव्य और पर्याय ऐसे दो भेद भी जिसमें नहीं है। आहाहा! अद्वैत अखण्ड प्रभु अद्वैत। पहले अखण्ड कहा, वह खण्ड-खण्ड पर्याय नहीं। पश्चात् अद्वैत कहा, वह वस्तु एकरूप है। त्रिकाल ज्ञायकभाव से भरपूर तीनों काल अद्वैत अर्थात् एकरूप है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। **सुन्दर-आनन्दस्पन्दी...** अखण्ड है। निरन्तर अखण्ड और अद्वैत और सुन्दर आनन्द स्पन्दी। ऐसा तीन जगह आता है। सुन्दर-आनन्दस्पन्दी—सुन्दर आनन्द झरता, ऐसा आता है। २१२, २८१ पृष्ठ पर। तीन जगह आता है।

क्या कहते हैं? धर्मी जीव नियम करता है, नियम। तो उस नियम में आत्मा का अखण्ड अद्वैत आनन्द सुन्दर, सुन्दर आनन्द। यह अनादि से धूल का आनन्द माना है... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय सुख के झुकाव के राग में जो सुख मानता है, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! भगवान अमृत का सागर आनन्द स्पन्दी है। सुन्दर आनन्द झरता, जिसमें से सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! क्या कहा? वह सुन्दर आनन्द का वृक्ष है। उसमें से उसकी ओर देखने पर उसमें से सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! वह सुन्दर आनन्द का वृक्ष है। आहाहा! उसके ऊपर झुकने से, उसके सामने देखने पर पर्याय में निरन्तर अखण्ड अद्वैत सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! अभी मूल बात व्यवहार में चढ़ गयी है। सब व्यवहार दिगम्बर मुनि में ऐसा क्रिया-व्यवहार। मूल चीज़ नहीं होती। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय क्या चीज़ है? आहाहा!

यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर, जिसे

अन्तर्मुख होने पर मन, वचन और काया की ममता छोड़कर... आहाहा! दूसरी चीज़ की ओर से तो छूटा परन्तु नजदीक में नजदीक जो मन, वचन और काया... आहाहा! उनसे भी निवृत्त करके। आहाहा! है न? वचनरचना का तिरस्कार करके। **समस्त वचनरचना का निवारण करता है।** और (**-निरन्तर) अखण्ड, अद्वैत,...** एकरूप। सुन्दर आनन्दस्पन्दी। सुन्दर आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द। सुन्दर अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। इसकी एकाग्रता करने से अतीन्द्रिय आनन्द झरे अर्थात् पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आता है। द्रव्य-गुण में जो पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द है, यह बाहर का सब निवारण करके इस ओर जहाँ ढलता है, वहाँ पर्याय में अखण्ड और एक और अद्वितीय आनन्द झरता है। आहाहा! ऐसा धर्म।

वह कहे सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। आहाहा! वह कहे कि भक्ति करो, शत्रुंजय, गिरनार, सम्मेदशिखर की यात्रा करो, विशाल रथ निकालो, संघ निकालो संघ, पाँच लाख खर्च करके। आहाहा! इसने उस धर्मपीठ में पाँच लाख दिये। लालचन्द हीराचन्द है न? लालचन्द हीराचन्द मुम्बई है न? दिगम्बर नहीं? वह मूँछवाला। मूँछ ऐसी की ऐसी नहीं रखते। ऐसा करके ऐसे चढ़ाते हैं। लालचन्द हीराचन्द है। ऐसी मूँछ है, उसे ऐसी ऊँची करके ऐसा करे। पाँच लाख रुपये अभी तीर्थक्षेत्र में दिये हैं। करोड़पति है। आहाहा! उसमें ऐसा माने कि अपने को धर्म होगा।

मुमुक्षु : इस बात को मनवानेवाले भी मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र मानते हैं। साधु मनावे, माने। प्रभु! क्या करे? साधु को इस श्रद्धा की दृष्टि की खबर नहीं। नग्नपना और क्रियाकाण्ड में पड़े हैं। वास्तविक वस्तु का लक्ष्य तो नहीं परन्तु उसकी प्ररूपणा चाहे (जो करते हैं)। मार्ग तो यह है। आहाहा! जन्म-मरण के अन्त की बातें तो यह है। आहाहा! उसमें किसी की सिफारिश या किसी की मदद और किसी की उपस्थिति की वहाँ आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, देह की चमड़ी से भिन्न अन्दर भगवान विराजता है। आहाहा! यह तो चमड़ी का थोथा, चमड़ी का खोल है। आहाहा! इस खोल में अन्दर दूसरा भगवान... यह पहला और वह दूसरा। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर (विराजता है)। इसलिए मुनि ने यहाँ ऐसा कहा कि इसके सामने जिसने देखा, परसन्मुख से जो विमुख

हुआ उसे अतीन्द्रिय आनन्द झरता है अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! भाषा तो सादी परन्तु अब भाव तो भई यह है। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार कर-करके, बापू! अभी यहाँ मनुष्य हुआ परन्तु चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक के नारकी के ऐसे अनन्त अवतार किये हैं। आहाहा! कसाईखाना (चलानेवाला) कसाई अनन्त बार हुआ। करोड़ों जानवरों को काट डाले। आहाहा! परन्तु इसने आत्मा अपनी चीज़ क्या है, उस पर ध्यान नहीं दिया। आहाहा! बाहर के काम में सन्तुष्ट हो गया। आहाहा!

मुनिराज ने यह शब्द प्रयोग किया है। **(सुन्दर आनन्द-झरते), अनुपम,...** आहाहा! जिसे कोई उपमा नहीं। यह भगवान, भगवान जैसा, बस! इसे किसी की उपमा नहीं। आहाहा! **अनुपम, निरंजन...** जिसमें अंजन अर्थात् कोई मैल नहीं। आहाहा! **निजकारणपरमात्मतत्त्व की...** आहाहा! निजकारणपरमात्मतत्त्व त्रिकाल की... आहाहा! **सदा शुद्धोपयोग के बल से...** आहाहा! अब अभी कहते हैं, शुद्धोपयोग होता नहीं। अरे! प्रभु! सर्वथा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, प्रभु! अभी तो शुभयोग होता है। आहाहा! श्रुतसागर (कहते हैं), अभी तो शुभयोग ही होता है।

मुमुक्षु : वह मुनि कहाँ रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कहाँ है? मुनि समकिती भी कहाँ है? मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है, हों! बापू! लोगों को कठिन लगे परन्तु वस्तु में तो इतना अन्तर है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा शुद्धोपयोग के बल से...** देखा! शुभ-अशुभ परिणाम नहीं। शुभ-अशुभ परिणाम से रहित। आहाहा! जिसे अभी बात सुहाती नहीं, उसे कहाँ जाना अन्दर से? आहाहा! चौरासी लाख के अवतार में भटक मरा है। आहाहा! एक बार देखा था। सर्प निकला, सर्प और एक वह निकला। क्या कहलाताा है? गिरगिट। मैं जंगल जाता था। गिरगिट को मुँह में लेकर टुकड़े कर डाले। जीवित टुकड़े। फिर खाया। आहाहा! यह अवतार। यह सर्प का अवतार। आहाहा! गिरगिट के अवतार। ऐसे अनन्त अवतार किये, भाई! यह वर्तमान एक अवतार देखकर दूसरे अवतार हुए थे, उन्हें भूल गया। आहाहा! किस क्षेत्र में ढाईद्वीप और ढाईद्वीप से बाहर। आहाहा! अरे! लोक के अन्त में निगोदरूप से भी अनन्त बार गया है। लोक के अन्त में। सिद्धभगवान है, वहाँ निगोद है। जहाँ सिद्धभगवान है, वहाँ निगोद है। वहाँ भी

अनन्त बार जा आया है। आहाहा! सिद्धभगवान के पेट में निगोदरूप से रहा आया था। आहाहा! तथापि उनके आत्मा को स्पर्श नहीं किया। गजब बातें हैं। आहाहा!

भगवान अनन्त आनन्द को अनुभव करते हैं और अन्दर पेट में रहे हुए निगोद अनन्त दु:ख को अनुभव करते हैं। क्षेत्र एक, भाव भिन्न है। आहाहा! एकक्षेत्रावगाह होने पर भी; क्षेत्र एक अर्थात् क्या? वस्तु में क्या अन्तर? वास्तव में तो उसका क्षेत्र भी अलग है। आहाहा! सिद्ध भगवान रहते हैं, वहाँ अन्त में-अन्त में वहाँ निगोद है। आहाहा! महा अनन्त दु:ख और एक शरीर में अनन्त आत्मा और अक्षर के अनन्तवें भाग विकास। दूसरा सब दु:खरूप भाव। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **शुद्धोपयोग के बल से...** यह कर, प्रभु! करनेयोग्य यह है। आहाहा! **शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है,...** शुद्धोपयोग के बल से सम्यक् भावना करता है, ऐसा कहते हैं। है न? जयसेनाचार्य की टीका में आता है कि सच्चा श्रावक पाँचवें गुणस्थान में होता है, वह सामायिक करता है, तब उसे शुद्धोपयोग भी आ जाता है। शुद्धोपयोग की भावना आती है, अर्थात् शुद्धोपयोग आता है। वह भावना न होवे तो यह दूसरा करे। ऐसा कि श्रावक को शुद्धोपयोग होगा? शुद्धोपयोग का निषेध किया है, वह तो मुनि को शुद्धोपयोग होता है, इसे यह उपयोग नहीं। श्रावक को शुद्धोपयोग का निषेध किया है, वह तो मुनि को ही शुद्धोपयोग है, ऐसा उपयोग इसके लिये नहीं है; इसलिए उन्होंने इन्कार किया है। उनके गृहस्थ (दशा के) प्रमाण में शुद्धात्मा के बल से (शुद्धोपयोग है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

शुद्धोपयोग के बल से... शुभाशुभ परिणाम तो निवारण किये। आहाहा! सत्य वचन और असत्य वचन तो निवारण किये, सत्य और असत्य मन को निवारण किया। काया के सत्य-असत्य निवारण किया और **शुद्धोपयोग के बल से...** आहाहा! **सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसे (उस महातपोधन को) नियम...** कहा गया है। उसे यहाँ प्रायश्चित्त कहा जाता है। यह आगे लेंगे। उसे कायोत्सर्ग भी कहने में आता है। यह आयेगा। आहाहा! यहाँ तो बोल जाए 'तत्सुत्री करणेन, प्रायश्चित्त करणेन...' कायोत्सर्ग करे। आहाहा! अरे! प्रभु! तेरे हित की बात है। इसे दु:ख लगता है। हम यह सब करते हैं वह खोटा? ऐसा करके दु:ख लगता है। भाई! तू करता है, वह सब राग है। राग है तो

संसार फलेगा, बापू! तब तुझे दुःख होगा। इस संसार के राग के परिणाम आयेंगे... आहाहा! वहाँ कोई सामने नहीं दिखेगा, प्रभु! वहाँ तुझे दुःख होगा। असंख्य द्वीप समुद्र, कहीं पृथ्वीरूप से, कहीं पानीरूप से, कहीं अग्निरूप से अवतरित होगा। आहाहा!

सदा शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसे (उस महातपोधन को)... आहाहा! देखो! यह महातपोधन। अपवास किये, यह किया और ऐसा कुछ कहा नहीं। इसने महीने के अपवास किये, इसलिए महातपोधन, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अन्तर के आनन्द में अखण्ड, अद्वैत शुद्धोपयोग के बल से आनन्द के झरने को वेदता है, उसे कायोत्सर्ग, उसे प्रायश्चित्त, उसे नियम कहा जाता है। इसने नियम लिया। आहाहा! देखो! है? **उसे (उस महातपोधन को) नियम से...** देखो! **शुद्धनिश्चयनियम...** नियम से शुद्धनिश्चयनियम। सच्चा नियम तो उसे कहना। बाकी यह नियम लिया, अमुक करना और नहीं करना, वह तो थोथा सब व्यवहार हैं। आहाहा! सुनने को नहीं मिलता। शास्त्र में सब बात पड़ी है। सब पड़ी है। नियमसार, प्रवचनसार, समयसार, अष्टपाहुड़, पंचास्तिकाय ढ़ेर पड़े हैं। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं, वह विचार कब करे और अन्दर में कब जाए? और सुनने को मिले तो कहे, यह तो निश्चय है... निश्चय है... निश्चय है। इस काल में अभी यह नहीं होता। अर..र..! प्रभु! इस काल में धर्म नहीं होता, ऐसा है न? आहाहा! इस काल में अधर्म होता है? ऐसा नहीं होता, प्रभु! तू है या नहीं?

उसमें तो अपने आया था न? प्रसिद्ध कारणपरमात्मा। इसके पहले आया था। पहले कहीं आया था। (११८ गाथा की टीका)। **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व...** आहाहा! **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** आहाहा! उसमें **अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन, वह तप...** गजब बात है। यह महिलाएँ वर्षीतप करें और पाँच-दस हजार खर्च करे, वहाँ ओहोहो...! उसने वर्षीतप किया था न? सेठानी नहीं? अहमदाबाद। जैसंगभाई के लड़के की बहू ध्रांगध्रा की नयी... किया था तो पिचहत्तर हजार खर्च किये। यहाँ से वह निकली थी। स्पेशल (ट्रेन) पालीताणा। पिहचत्तर हजार खर्च किये थे। इसलिए मानो उसमें धर्म हो गया और कहनेवाले भी सब मनावे। हो... हा...हो... दिखे अच्छा। अब यह न दिखे, उसकी बातें। दिखे उसके शून्य लगावे और न दिखे

उसकी बात (चलती है) । आहाहा ! यह शत्रुंजय की यात्रा और गिरनार की और मेरु क्या ? सम्मेदशिखर, इन सबकी यात्रा शुभभाव है, संसार है । आहाहा ! उसे रोककर... आहाहा !

यह कहा न यहाँ ? **नियम से... (उस महातपोधन को) नियम से शुद्धनिश्चयनियम है...** उसे शुद्धनिश्चयनियम है । आहाहा ! उसने शुद्धनिश्चयनियम को आदर किया है । आहाहा ! शुद्धनिश्चयनियम । प्रत्याख्यान कहो, कायोत्सर्ग कहो, प्रतिक्रमण कहो, निश्चयनियम कहो । उसने किया । आहाहा ! ऐसे को, मुनिराज वापस आधार देते हैं कि ऐसा जो कठिन कहलाता है, इससे मैं अकेला कहता हूँ, ऐसा नहीं है । आहाहा ! **भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है ।** है ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है । आहाहा ! पहले आ गया है । ८८ पृष्ठ पर । वह नहीं ? निषेध किया । यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... वहाँ ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का (आया है) अन्त में कहा । यह सब भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चय के बल से नहीं है, ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है । आहाहा ! इसलिए मुनिराज कहते हैं कि भाई ! मैं कहता हूँ, इसलिए तुम्हें ऐसा... परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य । मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो । तीसरे नम्बर में । उनका यह अभिप्राय है । आहाहा ! कठिन लगे, इसलिए आगे चले नहीं, ऐसी बात है । अन्दर वांचन, श्रवण और मनन यह सब बातें विकल्प और राग ।

यहाँ कहते हैं कि **नियम से शुद्धनिश्चयनियम है ऐसा...** मुनिराज कहते हैं । यह कुन्दकुन्दाचार्य को मुनिराज भगवानरूप से बुलाते हैं । मुनि स्वयं है, वे भगवानरूप से बुलाते हैं । आहाहा ! **ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है ।** इस गाथा के शब्द यह सूत्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के हैं । यह कुन्दकुन्दाचार्य की इस गाथा में यह अभिप्राय है, ऐसा कहते हैं । देखो न, पाठ है न । **सुहअसुहवयणरयणं** है न ? **रायादीभाववारणं किच्चा ।** आहाहा ! **अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा ।** उसे नियम होता है **णियमा ।** आहाहा ! पाठ में है । गाथा । **रयणं** शुभाशुभ वचनरूपी रचना । आहाहा ! और रागादिभाव **वारणं** । शब्दों को छोड़कर, राग को भी छोड़कर... आहाहा ! जो कोई **अप्पाणं झायदि** यह **अप्पाणं** का अर्थ परमतपोधन किया है । यह आनन्द झरता है । आहाहा !

अपने आत्मा का जो ध्यान करता है, वचनों को छोड़कर... आहाहा ! और राग को छोड़कर, निरागी भगवान अन्दर है, उसे जो सेवन करता है, उसका अनुभव करता है, उसे

निश्चय से नियम है। **ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।** आहाहा! एक गाथा में तो इसमें कितना आया! और वापस आधार कुन्दकुन्दाचार्य का (दिया)। मैं अकेला टीका करता हूँ, ऐसा नहीं; मैं कहता हूँ, ऐसा नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाला मैं तो यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। इस गाथा का अर्थ मैं करता हूँ, परन्तु इस गाथा का अर्थ यह भगवान का अभिप्राय है, कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। मेरे घर का अभिप्राय एक भी नहीं है। आहाहा! वापस नरमायी भी कितनी! आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त पंच परमेष्ठी का यह अभिप्राय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका यह अभिप्राय। अनन्त तीर्थंकरों का यह अभिप्राय है। यहाँ सूत्रकार भगवान का ही कहा है। यह सूत्रकार हैं न? ऐसा कहा न? आहाहा! यह सूत्रकार हैं न? सूत्र-गाथा तो का किया हुआ है न? इसलिए भगवान सूत्रकार का यह अभिप्राय है। आहाहा!

श्लोक-१९१

[अब इस १२०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं:]

(हरिणी)

वचनरचनां त्यक्त्वा भव्य: शुभाशुभलक्षणां,
सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।
परम-यमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं,
भवति नियम: शुद्धो मुक्त्यङ्गनासुखकारणम्।।१९१।।

(वीरछन्द)

शुभ अरु अशुभ वचन रचना का त्याग करें जो भव्य महान।
सम्यक् तथा प्रगट भाते हैं सहज तत्त्व परमात्म महान॥

उन ज्ञानात्मक परम यमी को मुक्ति-वधू सुख कारण जो।
ऐसा शुद्ध नियम होता है उन्हें नियम से शीघ्र अहो॥१९१॥

[श्लोकार्थः] जो भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है, उस ज्ञानात्मक परम यमी को मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण ऐसा यह शुद्धनियम नियम से (-अवश्य) है॥१९१॥

श्लोक- १९१ पर प्रवचन

[अब इस १२०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैंः]

वचनरचनां त्यक्त्वा भव्यः शुभाशुभलक्षणां,
सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।
परम-यमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं,
भवति नियमः शुद्धो मुक्त्यङ्गनासुखकारणम्॥१९१॥

श्लोकार्थः आहाहा! **जो भव्य...** आहाहा! **शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर...** यह शुभ और अशुभ दोनों को छोड़कर। आहाहा! और **सदा स्फुटरूप से...** सदा प्रगटरूप से **सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है,...** प्रगटरूप से। शक्तिरूप से स्वभाव तो है। भगवान परमात्मा का स्वरूप स्वयं आत्मा शक्तिस्वरूप तो है। आहाहा! परन्तु **सदा स्फुटरूप से...** आहाहा! सदा निरन्तर उसे प्रगटरूप से। आहाहा! **सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है,...** आहाहा! मन-वचन-काया की क्रिया निकाल डाली और उसकी ओर के झुकाववाला राग होता है, उसे निकाल डाला। आहाहा! यह लिखते समय का राग है, यह दोनों इन्होंने निकाल दिये। आहाहा! यह राग मेरा नहीं, मैं उसमें नहीं। आहाहा! मुझे तो यह भगवान का आनन्द झरता वह मैं हूँ और वही नियम है और उस नियम को भगवान सूत्रकार इस नियम को कहना चाहते हैं। नियमसार। नियमसार में नियम ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा!

जो भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर... आहाहा! शुभ वचन को

छोड़कर, भगवान की वाणी और यह सब... आहाहा! इस सब शुभवचन को छोड़कर। आहाहा! भगवान की वाणी भी फिराना और पर्यटन करना... आहाहा! वह सब शुभराग है।

मुमुक्षु : शास्त्र का स्वाध्याय करना, वह भी राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है। परद्रव्य में लक्ष्य जाए, वह सब राग है। लिखने में, अक्षरों में, बोलने में, वह सब राग है। आहाहा! उस राग से निवर्त कर... आहाहा! **भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर...** आहाहा! स्वाध्याय की वचनारचना, वह भी शुभभाव की है। अन्दर शुभभाव है। आहाहा! उसे छोड़कर... आहाहा! **सदा स्फुटरूप से...** प्रगटरूप से। शक्तिरूप से पड़ा है, वह भले हो परन्तु उससे प्रगटरूप से पर्याय में... आहाहा! आनन्द का सागर भगवान उसे प्रगटरूप से... आहाहा! सदा प्रगटरूप से **सहजपरमात्मा को...** स्वाभाविक जो परमात्मा स्वयं प्रभु है। आहाहा! यह सब गुजराती है। गुजराती समझ में आता है ? बहिनों को समझ में आता है ? आहाहा!

जो भव्य... अभव्य नहीं लिये। उन्हें नहीं हो सकता। **शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को...** स्वाभाविक परमात्मा अरूपी और शरीरप्रमाण और रूपी नहीं, इसलिए तुझे हाथ नहीं आता। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं और कद शरीरप्रमाण है। परन्तु अनन्त गुण का दल है, अनन्त गुण का पिण्ड है, सहजपरमात्मा है। आहाहा! वह स्वाभाविक परमात्मा है। स्वाभाविक परमात्मा ही है। आहाहा! सहजपरमात्मा है। स्वाभाविक परमात्मा है। परमात्मा होगा और... आहाहा! भगवान अन्दर सहजपरमात्मा है, उसे **सम्यक् प्रकार से भाता है,...** शुभाशुभ को छोड़कर... आहाहा! सदा स्फुटरूप से सहज परमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है। आहाहा! अनुभव में उसे भाता है। आहाहा! वीतरागभाव से आत्मा को भाता है। आहाहा! राग का कण जिसके सम्बन्ध में नहीं, राग की अपेक्षा जिसमें नहीं, उसे छोड़कर, ऐसा यहाँ तो कहा है। शुभराग व्यवहाररत्नत्रय, कथनमात्र जो शुभराग है, उसे भी छोड़कर। आहाहा!

उस ज्ञानात्मक परम यमी को... जो इस प्रकार सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से सच्ची रीति से भाता है। आहाहा! कल्पना हो जाए कि यह मुझे समझ में आता है, वह नहीं। सच्ची रीति से भाता है, कहते हैं। आहाहा! **सम्यक् प्रकार से भाता है, उस ज्ञानात्मक परम यमी को...** वह जीव ज्ञानात्मक परम यमी। आहाहा! यम अर्थात्

व्रत, निश्चय। वह परमसंयमी। आहाहा! **यमी को मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण...** मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण। **ऐसा यह शुद्ध नियम...** आहाहा! **ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से (-अवश्य) है।** ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से है। आहाहा! अकेला अमृत बरसाया है। लोगों ने सुना न हो व्यवहार में... व्यवहार में ऐसे बाहर दिखायी दे। अपवास करे, यह ले, बोले, यह सब बाहर में दिखायी दे और दिखाव में से माने कि यह ठीक है। आहाहा! उस दिखाव की क्रिया में से अन्तर का अनुमान हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो अन्तर की दशा की रागरहित... आहाहा! ज्ञानस्वरूप परम यमी।

मुनि कहते हैं कि मुनि कैसा होता है? ज्ञानस्वरूप मुनि है। आहाहा! वह **मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से (-अवश्य) है।** आहाहा! ऐसा नियम वह अवश्य नियम है। बाकी आत्मा के अनुभव और दृष्टि बिना जो कुछ नियम लेकर बैठे, वे सब नियम मिथ्या है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के ज्ञान बिना, आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना जो व्रत, तप, क्रिया लेकर बैठे, वह सब शून्य खोटे हैं। आहाहा! सम्प्रदाय के आग्रह से बैठा हो, उसे यह बात कठिन पड़ती है। मार्ग तो यह है, प्रभु! यह तो भगवान सूत्रकार यह पुकारते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। आहाहा! मुनिराज भगवान सूत्रकार का आधार देते हैं और सूत्रकार भगवान के पास गये थे। आहाहा! उन्होंने यह नियमसार बनाया है और वह भी स्वयं कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! यह नियम दूसरे में समयसार, पंचास्तिकाय (बनाये) परन्तु यह तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! १९१ (कलश पूरा) हुआ।

श्लोक-१९२

(मालिनी)

अनवरतमखण्डाद्वैतचिन्निर्विकारे,
निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किञ्चित्।
अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः,
तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि ।।१९२।।

(वीरछन्द)

निर्विकार अद्वैत निरन्तर जो अखण्ड चैतन्य स्वरूप।
जिसमें किञ्चत् प्रगट न होते हैं समस्त नय भेद समूह॥
भेदवाद सब दूर हुए जिससे मैं वह परमात्म स्वरूप।
नमन करूँ स्तवन करूँ सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥१९२॥

[श्लोकार्थः] जो अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है, उसमें (-उस परमात्मपदार्थ में) समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता। जिसमें से समस्त भेदवाद (-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं, उसे (-उस परमात्मपदार्थ को) मैं नमन करता हूँ, उसका स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥१९२॥

श्लोक- १९२ पर प्रवचन

१९२ (श्लोक)

रतमखण्डाद्वैतचिन्निर्विकारे,
निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किञ्चित्।
अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः,
तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि ।।१९२।।

श्लोकार्थ : जो परमात्मपदार्थ में **अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड...** आहाहा! **(-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है...** प्रभु तो अन्दर निर्विकार है। आहाहा! पुण्य के विकल्प का विकार भी जिसमें नहीं है। **जो अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण...** ऐसे उसके स्वरूप के कारण, ऐसा कहते हैं। जो **अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है...** निर्विकार क्यों है ?—कि निरन्तर चैतन्यपना उसमें है, इससे वह निर्विकार है। आहाहा! **उसमें (-उस परमात्मपदार्थ में) समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** आहाहा! यह ऐसा और वैसा है, ऐसा उसमें है ही नहीं, कहते हैं। **नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** आहाहा! यहाँ तो विकल्पवाले-भेदवाले निश्चय और व्यवहारनय दोनों निकाल दिये। आहाहा! **समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** भगवान चैतन्यस्वरूप विराजमान है। आहाहा!

अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार... होने से विकारवाला नय उसमें है नहीं। उस चैतन्य के कारण निर्विकार है, इसलिए जो विकारनय है, वह उसमें नहीं है। आहाहा! **जिसमें से समस्त भेदवाद (-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं...** भेद अर्थात् नयादि विकल्प। गुण-गुणी का भेद और द्रव्यपर्याय का भेद वह **(-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं, उसे (-उस परमात्मपदार्थ को)...** आहाहा! **मैं नमन करता हूँ,...** उस चीज़ को मैं नमन करता हूँ। आहाहा! उसे **स्तवन करता हूँ,...** उसका स्तवन करता हूँ और उसे **सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय मोक्ष के लिये नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१९३

(अनुष्टुप्)

इदं ध्यानमिदं ध्येयमयं ध्याता फलं च तत्।
एभिर्विकल्प-जालैर्यन्निर्मुक्तं तन्नमाम्यहम्।।१९३।।

(वीरछन्द)

यह ध्याता यह ध्यान, ध्येय है और यही इसका फल है-
इन विकल्प जालों से जो है मुक्त उसे मैं नमन करूँ॥१९३॥

[श्लोकार्थः] यह ध्यान है, यह ध्येय है, यह ध्याता है और वह फल है—ऐसे विकल्पजालों से जो मुक्त (-रहित) है, उसे (-उस परमात्मतत्त्व को) मैं नमन करता हूँ॥१९३॥

प्रवचन-१३९, श्लोक-१९३-१९४, गाथा-१२१, शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण १, दिनांक ३०-५-१९८०

नियमसार, कलश १९३

इदं ध्यानमिदं ध्येयमयं ध्याता फलं च तत्।
एभिर्विकल्प-जालैर्यन्निर्मुक्तं तन्नमाम्यहम्।।१९३।।

क्या कहते हैं? आहाहा! अन्तिम में अन्तिम सार है। यह मैं चैतन्यसत्ता का ध्यान करता हूँ और चैतन्यसत्ता ध्येय है और यह ध्याता है, वह चैतन्यस्वरूप, वह फल है। इस ध्यान का आनन्द फल है। आहाहा! **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (-रहित) है,...** चैतन्यस्वरूप वस्तु सत्ता चैतन्य जानकस्वभाव। दूसरी चीज़ को भी जानते-जानते यह प्रसिद्ध करता है न? यह ज्ञान प्रसिद्ध करता है न? यह है... यह है... ऐसा राग भी वह प्रसिद्ध करता है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप, इसमें एकाग्र होने पर ध्यान, ध्याता और ध्येय तथा उसका फल - ये चारों ही भेद के विकल्प जिसमें नहीं। आहाहा! यह तो (आजकल कहते हैं कि) शुभभाव से होता है। आहाहा!

वस्तु है न ? ज्ञानस्वभाव है न ? जिसमें यह ज्ञात होता है न ? यह ज्ञात होता है, वह जाननेवाला स्वयं स्वरूप है। और जिसका स्वरूप नित्य है तथा नित्य होने से उसमें उसका ध्यान करने से जो विकल्प उठते हैं, वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन होने पर वे विकल्प नहीं होते। (सम्यग्दर्शन) होने के काल में। बाद में हों, वह अलग बात है। आहाहा!

यह ध्यान है,... यह पर्याय है। **यह ध्येय है,...** यह द्रव्य है। **यह ध्याता है...** ध्याता ध्यान करनेवाला है और उसका फल आनन्द है। **ऐसे विकल्प जालों से...** आहाहा! **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (-रहित) है,...** मुनिराज कहते हैं कि उसे, वैसा जो यह परमस्वरूप तत्त्व, परमात्मा परमस्वरूप तत्त्व... आहाहा! जिसमें कोई विकल्प नहीं, ऐसा जो परमस्वरूप तत्त्व... आहाहा! उसे **मैं नमन करता हूँ।** उसे नमन करता हूँ - यह तो निर्मल पर्याय हुई, विकल्प नहीं। उस ओर ढल गया। चैतन्यस्वरूप है, कि जो यह जड़ आदि बाह्य चीज़ें हैं, उन्हें प्रसिद्ध करता है कि यह... यह... यह... यह... उसमें स्वयं ही प्रसिद्ध है। आहाहा! उसमें यह चैतन्य स्वयं प्रसिद्ध है। अब इस चैतन्य की प्रसिद्धि की प्रसिद्धि करने के लिये ध्यान में जाए... आहाहा! विकल्प उठते हैं, वह इसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! यहाँ तक ले जाना। वह अभी तो व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है... आहाहा! निमित्त से भी किसी समय होता है। यह वर्णीजी ऐसा कहते थे।

अरे! प्रभु! कौन सा द्रव्य—कौन सा द्रव्य पर्याय बिना का है ? किस काल में कौन सा द्रव्य पर्याय के बिना है। आहाहा! इससे वह दूसरी पर्याय को करे, यह तो प्रश्न यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो द्रव्य एकरूप है। चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप ज्ञायकस्वरूप एकरूप है। एकरूप में ध्यान-ध्याता-ध्येय और उसका फल, यह चार भेद एकरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, देवीलालजी! कहाँ के कहाँ। वह तो बाहर से यह करे, भक्ति करे, पूजा करे, गिरनार की, सम्मेदशिखर की यात्रा करे। धर्म... राग थोड़ा तो घटे। यहाँ कहते हैं जरा भी नहीं घटता।

आत्मा अभेद अखण्ड द्रव्य है। वस्तु है न ? वस्तु है, वह उसके स्वभाव से खाली नहीं होती। इसलिए जैसे वस्तु एक है, वैसे स्वभाव भी एक अभेद अखण्ड है। ऐसे अखण्ड गुण का ध्यान करना और ध्याता-ध्येय और फल का विचार करना, वह भी एक विकल्प और उपाधि है। आहाहा! इसलिए वह **ऐसे विकल्प जालों से...** आहाहा!

एभिर्विकल्प–जालै संस्कृत में है न? **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (–रहित) है, उसे (–उस परमात्मतत्त्व को) मैं नमन करता हूँ।** आहाहा! रहित है, रहित है, विकल्प जाल से रहित है। एकरूप है, उसे मैं नमन करता हूँ, यह पर्याय ली।

मुमुक्षु : सन्मुख की पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्मुख की पर्याय ली। विकल्प नहीं। नमन करता हूँ। त्रिकाल एकरूप चीज़ को, अखण्ड को, अभेद को, चैतन्यसत्तावाली चीज़ को एकरूप जानकर उसे नमन करता हूँ। आहाहा! कहो, यहाँ तक धर्म की बात। यहाँ तो अभी दया पालो, व्रत पालो तो धर्म हो जाए। लोगों को कठिन लगता है। ऐसी बात सुनकर सम्प्रदाय के लोगों को कठिन लगता है कि यह क्या? यह सब पूरा उत्थापित कर डालते हैं।

बापू! एक महाप्रभु को देखने के लिये दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है। वह महाप्रभु चैतन्य अन्दर है। जिसकी अस्ति के बिना दूसरी चीज़ है, ऐसा जानेगा कौन? आहाहा! जिसकी मौजूदगी बिना... ऊर्ध्वता स्वभाव है न, ऊर्ध्वता? समता, रमता, ऊर्ध्वता। किसी भी (चीज़ को) जानने के काल में ज्ञान की अस्तिवाला तत्त्व न हो तो जानेगा किस प्रकार? आहाहा! किसी भी चीज़ को जानने के काल में। अरे! राग को जानने के काल में... आहाहा! शरीर, वाणी, मन, इस बाह्य की चीज़ को जानने के काल में भी जाननेवाला न हो तो 'यह है' – ऐसा जानेगा कौन? आहाहा! यह जाननेवाला जानने में आता है, इससे भिन्न और यह जाननेवाला एकरूप है, उसमें अनेक विकल्प उठाना, उससे भी वह रहित है। आहाहा! यह १९३ श्लोक (पूरा) हुआ।

मुमुक्षु : पर्याय में यह सब ज्ञान वर्तता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय विकल्प बिना मुड़ गयी है। विकल्प बिना पर्याय द्रव्य में ढल गयी है। आहाहा! परन्तु मैं ध्यान करता हूँ, यह विकल्प नहीं। यह बात छूट गयी; इसलिए पर्याय, स्वभाव में ढल गयी है। एकरूप चैतन्य भगवान... आहाहा! जिसकी अखण्डता में खण्ड कभी नहीं होता। ऐसा अखण्ड तत्त्व भगवान, उसे विकल्प के ध्यान की जाल की भी जिसे आवश्यकता नहीं। आहाहा! वह तो उसकी ओर ढल गया है। नमन हो गया, आदर हो गया, स्वीकार हो गया। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसे मोक्ष का मार्ग शुरु हुआ। आहाहा! १९३ (कलश पूरा हुआ)।

श्लोक-१९४

(अनुष्टुप्)

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे ।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते ।।१९४।।

(वीरछन्द)

भेदवाद उत्पन्न कदाचित् हो जिस योग परायण में।
कौन जानता उसकी मुक्ति है या नहीं अर्हत् मत में॥१९४॥

[श्लोकार्थः] जिस योगपरायण में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होते हैं (अर्थात् जिस योगनिष्ठ योगी को कभी विकल्प उठते हैं), उसकी अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ?॥१९४॥

श्लोक- १९४ पर प्रवचन

१९४ (कलश)

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे ।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते ।।१९४।।

आहाहा! मुनिराज तो दो विभाग करते हैं। आहाहा!

श्लोकार्थ : जिस योगपरायण... है। आत्मा में जो योग अर्थात् जुड़ान है। चैतन्यसत्ता की महासत्ता में जिसका अन्दर जुड़ान है, कहते हैं। **योगपरायण में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होते हैं...** कदाचित् उसमें ध्यान में एकाग्रता का विकल्प उठे। आहाहा! अन्दर स्वरूप का ध्यान करने पर... योग अर्थात् जुड़ान। चैतन्यसत्ता की सत्व का सत्व जो त्रिकाली है। है, वह द्रव्य है। वस्तु है, वह तो अनादि है, ऐसी चीज़ पर ध्यान करते हुए योगपरायण... आहाहा! उसका जुड़ान करते-करते लक्ष्य में कहीं यदि भेद और विकल्प आवे... आहाहा! भेद और विकल्प यदि उठे। **भेदवाद उत्पन्न होते हैं (अर्थात् जिस योगनिष्ठ योगी को कभी विकल्प उठते हैं), उसकी अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं**

होगी, वह कौन जानता है ? आहाहा! अर्थात् कि विकल्प से उसे मुक्ति नहीं होगी। भेद से मुक्ति नहीं होगी। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु है, एकरूप है, पूर्ण है। उसमें भी वापस भेदवाद लक्ष्य में उठा... आहाहा! तो उसे **अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ?** अर्थात् भेदवाले को मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! ऐसी बात है। कहाँ से कहाँ जाना ? कितना करना ? अभी बाहर से निवृत्त नहीं होता। अन्दर में सुनने का भी समय नहीं लेता। एकाध -दो घण्टे दे, उसमें कुछ पकड़ में नहीं आता। आहाहा! किसी की काललब्धि पक गयी हो और आ जाए तुरन्त। वह पुरुषार्थ से जब होता है... आहाहा!

मुमुक्षु : काललब्धि... पुरुषार्थ से...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ से जब होता है, तब काललब्धि भले साथ हो। मूल पुरुषार्थ से है, क्योंकि वीर्य का झुकाव जो अनादि से परसन्मुख है और उस वीर्य का स्वरूप, स्वरूप की रचना करे, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! आत्मा का जो वीर्य-बल स्वरूप है, वह स्वरूप की रचना (करे)। शुभ की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प। पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र के पठन का विकल्प, वह तीनों नपुंसक है क्योंकि आत्मा का जो वीर्य-बल है, वह तो उसके स्वरूप की शुद्धि की रचना करे, वैसा उसका स्वरूप है। शुद्धि की रचना करे, वह उसका स्वरूप है। उसमें अशुद्धता का स्वरूप आवे, उसे नपुंसक कहा है। आहाहा! क्योंकि नपुंसक को वीर्य नहीं होता, इसलिए पुत्र नहीं होता; उसी प्रकार शुभभाव में धर्म प्रजा नहीं होती। वह शुभभाव नपुंसक है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप सूक्ष्म बात फरमाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ही ऐसी है और उसमें यह गाथाएँ मौके से आयी है। आहाहा!

सबसे छूटकर अकेला आत्मा का ध्यान करने पर भी जो विकल्प उठे... आहाहा! तो भी उसकी मुक्ति नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! चारों ओर से समेटकर... पहले योगपरायण कहा है न ? योगपरायण है। चारों ओर से ऐसे छूटा है। ऐसा लिया है। योग में परायण है। उसे कदाचित् भेदवाद उत्पन्न हो। आहाहा! गजब करते हैं। दिगम्बर

सन्त की वाणी केवली की दिव्यध्वनि है! ऐसी वाणी कहीं अन्यत्र नहीं है। आहाहा! सत्यार्थ... सत्यार्थ...

ऐसा भगवान चैतन्यकन्द है, पदार्थ है, वस्तु है, वह एकरूप चीज़ है। उसका ध्यान करते-करते यदि च्युत हो गया और विकल्प में आ गया, तो कहते हैं कि अरहन्त के मत में उसकी मुक्ति होगी या नहीं? अन्यमती भले कोई ऐसे को मुक्ति ठहरावे। आहाहा! परन्तु वीतरागमार्ग में इस विकल्पवाले की मुक्ति नहीं है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञपरमात्मा के पन्थ में योगपरायण जीव को भी यदि विकल्प उठे... आहाहा! गजब है। अन्तर में जिसकी एकाग्रता है, उसमें से हटकर यदि विकल्प उठा, उसे अरिहन्त के मत में मुक्ति नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि ऐसी कैसी बात? यह बाहर से कुछ यह करना... यह करना... यह करना... वह तो कोई बात आती नहीं। यह तो अन्दर में विकल्प करना, वह भी नुकसान होता है। आहाहा!

अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य के ध्यान में भी च्युत होकर... आहाहा! ज्ञान में से भी च्युत होकर यदि विकल्प उठा, भेद पड़ा, उसकी मुक्ति अरहन्त मत में नहीं है। कौन जाने अर्थात् कि अरहन्त के मत में मुक्ति नहीं है। आहाहा! है? **उसकी अर्हत के मत में...** ऐसा क्यों कहा? - कि दूसरे मत में तो बहुत-बहुत राग से, व्यवहार से, निमित्त से, पर्याय से, विकल्प से बहुत धर्म मनवाया है। वीतराग तीन लोक के नाथ... आहाहा! उन्होंने एक अभेद में दृष्टि करके अभेद से इसे समकित होता है और मुक्ति होती है। भेद से, विकल्प से भी नहीं होगी, यह अरहन्त के मत में कहा है। वह अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे मत में तो दुःखी हो, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे मत में कुछ की कुछ बातें हैं। जैन के वाड़ा में भी यह श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मन्दिरवासी में कुछ की कुछ बाहर की बातें, थोथा। आहाहा!

यहाँ तो भगवान वस्त्ररहित, वस्त्ररहित सब छोड़ा है, शुभभाव छोड़ा है और योगपरायण में अन्दर गया है परन्तु यदि वहाँ से हट गया... आहाहा! जरा यदि विकल्प का धक्का लग गया तो मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत ऊँचा कलश! अकेला माल-माल भरा है। आहाहा! अकेला अखण्ड प्रभु चैतन्यसत्ता है न, एकरूप सत्ता है, उसमें और दो रूप विकल्प दूसरा कहाँ से आया? यह गुणी है और यह गुण है, ऐसा भी विकल्प उसके स्वरूप में कहाँ है? और यह द्रव्य है और यह पर्याय है, ऐसे भेद का

विकल्प भी उसमें कहाँ है ? वह तो विकल्परहित पर्याय त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में ढल जाती है, तब उसे समकित होता है। कोई विकल्प पहले आया था, इसलिए उसके कारण अन्दर हुआ, (ऐसा नहीं है)। बहुत से प्रश्न पूछते हैं न ? चन्दुभाई डॉक्टर बहुत पूछते थे। राजकोट में। ऐसा कि समकित होने से पहले कौन सा विकल्प होता है ? विकल्प कौन सा होता है, इसका मेल नहीं है। विकल्परहित होना, वह वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर में...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर गया, इसलिए हो गया। आनन्द का धाम स्वयं ज्योति सुखधाम फल है, क्षेत्र है। वह असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है। आहाहा! जैन के अतिरिक्त असंख्यप्रदेशी किसी ने जाना नहीं। किसी ने जाना नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में भी असंख्यप्रदेश कहे हैं, परन्तु वह फेरफार है। ३४३ राजू में अन्तर है। अन्तर है तब ३४३ राजू प्रमाण आत्मा के प्रदेश हैं। यह मिथ्या बात है। बात समझ में आयी ? उन्होंने स्वयं उनकी पुस्तक में लिखा है। पुस्तक है यहाँ। भाई! अपने ३४३ राजू कहते हैं परन्तु वह अपने सब मेल से मिलता नहीं है। ऐसा वहाँ लिखा है, पुस्तक है। श्वेताम्बर की ओर का, हों! तब आत्मा के प्रदेश लोकप्रमाण है। तब लोक के प्रदेश का मेल नहीं, वहाँ आत्मा के प्रदेश का मेल कहाँ रहा ? बहुत अन्तर पड़ गया, प्रभु!

मुमुक्षु : अपने आप छोटा हो गया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा नहीं। वह वस्तु ही पूरी असंख्य प्रदेश जो है। क्षेत्र ही उसका इतना है। वह रूप ही है, उस स्वरूप है। उसे दूसरे प्रकार से कहना हो तो फेरफार... आहाहा! वह भी विवाद में चढ़ा है न ? विद्यानन्दजी! '**अपदेशसंतमज्झं**' अखण्ड प्रदेश लेना। अखण्ड लेना। असंख्य नहीं, एकरूप वहाँ है।

मुमुक्षु : ....उलझ जाए, वह नहीं उलझा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मूल ब्राह्मण है और असंख्यप्रदेश वेदान्त में है नहीं और सबको ठीक अच्छा लगवाना है। असंख्यप्रदेशी होवे तो एक सर्वज्ञ वीतराग और वह भी दिगम्बर जैन के अतिरिक्त असंख्यप्रदेशी आत्मा पूरा अन्यत्र कहीं नहीं है। पूरा। श्वेताम्बर ने असंख्य प्रदेश कहा है, परन्तु अधूरा। आहाहा! है न। है तो असंख्यप्रदेशी कहा है, परन्तु पूरा नहीं। वह असंख्यप्रदेशी लोक के ३४३ क्षेत्र के राजू प्रमाण चाहिए, तत्प्रमाण नहीं है।, वह मेल नहीं खाता तो आत्मा के असंख्यप्रदेश का मेल नहीं खाता। आहाहा! पुस्तक है।

श्वेताम्बर का, हों! श्वेताम्बर स्वयं लिखते हैं। परन्तु विचार कौन करता है। ऊपर से जिस वाड़े में जन्मे, जिस कुल में जन्मा और जिसका संग रहा, जिसका परिचय रहा, उसकी मान्यता में पड़े, हो गया। 'जैसे कुले... जैन...' जिसका वास रहा और जिस कुल में जन्मे, बस! यह हमारा धर्म। हो गया! इसमें सत्य है या फेरफार है (यह निर्णय नहीं करता।) क्यों, टोलियाजी! उसे कहाँ तुम्हारे दरकार थी? यह तो शान्ताबेन और आये बेचारे, तब बेमन से फिर आये हैं ये। आहाहा! यह तो संसार में बहुत प्रकार बनते हैं न। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे! अरहन्त का मत... आहाहा! सर्वज्ञ भगवान का अभिप्राय, उस वस्तु में ध्यान करते-करते यदि च्युत हो गया और भेद में, विकल्प में आ गया कि यह गुण है और गुणी है, ऐसा भी विकल्प उठा, उसकी मुक्ति अरहन्त मत में नहीं है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं। ऐसा रामजीभाई के समय नहीं था। आहाहा! ये बुद्धिवाले थे परन्तु यह बात तब नहीं थी। सामायिक, प्रोषध, प्रतिक्रमण करे, गीत गाते। गाते थे खबर है। आहाहा! यह चीज़!

मुमुक्षु : तब यह कहाँ था?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब कुछ था ही नहीं। ...माँ बैठे। सामायिक करके फिर एक ओर बैठे। गायन बोले परन्तु यह बात ही नहीं थी। आहाहा!

वाह! धन्य अवतार जिसका! आहाहा! एकरूप की दशा में भिन्न भेदभाव करना कि यह पर्याय है और यह द्रव्य है, ऐसा भी यदि विकल्प उठा तो वीतराग के मत में मुक्ति नहीं होगी। उसे बन्ध होगा। आहाहा! फिर भले भविष्य में विकल्प तोड़कर करे परन्तु विकल्प है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! इतना विकल्प जो भेद का, हों! है न? **भेदवादा:** वस्तु है, यह पर्याय है और यह गुण है और यह द्रव्य है। इस नियमसार में आवश्यक कहा न? भाई! द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार करे, वह भी परावश्यक है, पराधीन है। आहाहा! आवश्यक के अधिकार में (कहा है)। द्रव्य, यह द्रव्य है, स्वयं वस्तु अखण्ड, इसका गुण... चेतन है, वह द्रव्य है; उसका चैतन्य है, वह गुण है; उसकी वर्तमान राग को और पर को जानती है, वह पर्याय है। ऐसे तीन प्रकार के विचार में रुकता है, वह पराधीन है। उसे आवश्यक-अवश्य क्रिया जो करनी है, वह नहीं की। वह अनावश्यक है। आहाहा! ऐसा है। यह गाथा पूरी हुई।

गाथा-१२१

कायाईपरदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण।।१२१।।

कायादिपरद्रव्ये स्थिरभावं परिहृत्यात्मानम्।
तस्य भवेत्तनूत्सर्गो यो ध्यायति निर्विकल्पेन।।१२१।।

निश्चयकायोत्सर्गस्वरूपाख्यानमेतत्। सादिसनिधनमूर्तविजातीयविभावव्यञ्जन-पर्यायात्मकः स्वस्याकारः कायः। आदिशब्देन क्षेत्रवास्तुकनकरमणीप्रभृतयः। एतेषु सर्वेषु स्थिरभावं सनातनभावं परिहृत्य नित्यरमणीयनिरञ्जननिजकारणपरमात्मानं व्यवहारक्रिया-काण्डाडम्बरविविधविकल्प-कोलाहलविनिर्मुक्तसहजपरमयोगबलेन नित्यं ध्यायति यः सहज-तपश्चरणक्षीरवारांराशिनिशी-थिनीहृदयाधीश्वरः, तस्य खलु सहजवैराग्यप्रासादशिखर-शिखामणेर्निश्चयकायोत्सर्गो भवतीति।

परद्रव्य काया आदि सें परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।
ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो॥१२१॥

अन्वयार्थ : [कायादिपरद्रव्ये] कायादि परद्रव्य में [स्थिरभावम् परिहृत्य] स्थिर भाव छोड़कर [यः] जो [आत्मानम्] आत्मा को [निर्विकल्पेन] निर्विकल्परूप से [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [तनूत्सर्गः] कायोत्सर्ग [भवेत्] है।

टीका : यह, निश्चयकायोत्सर्ग के स्वरूप का कथन है।

सादि-सांत मूर्त विजातीय-विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक अपना आकार वह काय। 'आदि' शब्द से क्षेत्र, गृह, कनक, रमणी आदि। इन सबमें स्थिरभाव—सनातनभाव छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं, ऐसा भाव छोड़कर) नित्य-रमणीय निरंजन निज कारणपरमात्मा को व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल रहित सहज-परम-योग के बल से जो सहज-तपश्चरणरूपी क्षीरसागर का

चन्द्र (-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव) नित्य ध्याता है, उस सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि को (-उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को) वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।

गाथा- १२१ पर प्रवचन

१२१, ऐसा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

कायाईपरदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण।।१२१।।

परद्रव्य काया आदि सें परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।
ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो॥१२१॥

लो! यह कायोत्सर्ग आया। तुम्हारा तत्सूत्री करणेण में आता है न? तत्सूत्री में आता है...

मुमुक्षु : .... अपने.... में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता है, परन्तु वह तो व्यवहार के विकल्प की बातें हैं। व्यवहार का विकल्प है, तब ऐसा होता है, इतना बतलाया है परन्तु वह वस्तुस्थिति नहीं है। आहाहा!

कायोत्सर्ग अर्थात् आत्मा असंख्यप्रदेशी काय है, जीव शरीर / काय है। उसके अतिरिक्त का कोई भी विकल्प उसे लागू नहीं पड़ता। वह विकल्प कोई होवे तो वह कायोत्सर्ग नहीं कहलाता। उसने काया को नहीं छोड़ा। आत्मा की पूर्ण काया को पकड़कर विकल्पादि सबको छोड़ना, वह सब काया है। दो काया है। एक आत्मकाया चैतन्य, एक विकल्प से लेकर यह सब काया। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : बाहुबलीजी ने बारह महीने कायोत्सर्ग किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कायोत्सर्ग था। वे तो समकिती थे, मुनि थे परन्तु शल्य (विकल्प) रह गया। शल्य रह गया कि यह इतना। बाकी समकिती, मुनि थे, परन्तु शल्य रह गया कि इसकी जमीन पर खड़ा हूँ। इतना रह गया। वे अटके तो केवलज्ञान अटक

गया। आहाहा! मुनि थे, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे। बारह महीने तक इस प्रकार झूलते (थे) परन्तु जरा अन्दर में खटक रहती थी। इस जमीन पर खड़ा हूँ। उसमें भरत चक्रवर्ती आये और जहाँ चरणवन्दन करते हैं, वहाँ उन्हें तो... ओहोहो! इन्हें तो कुछ नहीं। कुछ नहीं, ऐसे अन्दर उतरने पर केवलज्ञान हो गया। आहाहा! तैयारी तो थी ही। छठे-सातवें में तो थे परन्तु जरा विकल्प का शल्य रह गया था, इससे केवल(ज्ञान) में आगे नहीं जा सके थे। हाथ में बेलें लिपट गयी थीं। जंगल में बारह महीने खड़े रहे। हाथ और पैर में बेलें लिपट गयी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पैर और हाथ हिलाये भी नहीं। आहाहा! क्योंकि हिलावे तो ऐसी वनस्पति रहे नहीं। बराबर हाथ में और पैर में बेल लिपटी है। हाथ को, पैर को स्थिर किया है। आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया है परन्तु स्थिर हुई है। अन्दर में फेरफार विकल्प रह गया। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे... आहाहा! एक विकल्प रह गया कि यह जमीन उनकी है। वे आकर चरणवन्दन करते हैं और (विकल्प) छूट जाता है। विकल्प छूटकर केवलज्ञान हो जाता है। आहाहा! इतना भी शल्य है। भले मिथ्यादर्शन नहीं। तीन प्रकार के शल्य हैं न? माया, मिथ्यात्व और निदान। तीन शल्य है। जरा इस प्रकार की माया रह गयी। आहाहा! विषल्इं करणेन। ऐसा कायोत्सर्ग में नहीं आता। विषल्इं करणेन। तीन शल्यरहित होवे तो कायोत्सर्ग होता है। अब इस मिथ्यात्व की शल्य की खबर नहीं होती और उसे कायोत्सर्ग होगा? उसमें आता है या नहीं? विषल्इं करणेन... विषल्इं करणेन... विषल्इं करणेण पहाड़े बोलते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि विशल्ली ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को होता है, कायोत्सर्ग होता है न?

मुमुक्षु : नि:शल्यो व्रती होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें छह आवश्यक होते हैं। छह आवश्यक का विकल्प आता है। सामायिक चौबिसंथो, उसमें छह आवश्यक आते हैं। छद्मस्थ है न! यहाँ तो कहते हैं कि वह विकल्प तो ठीक परन्तु अभेद में भेद का विकल्प करे, तो भी नहीं। छठवें गुणस्थान में आवे तो सही। बड़ा अधिकार आता है। आचार्य ने रचना की है जिस प्रतिक्रमण की, उस प्रतिक्रमण को करता हुआ साधु, उसे छोड़कर अन्दर में जाना, ऐसा आता है। आहाहा!

टीका : यह, निश्चयकायोत्सर्ग के स्वरूप का कथन है। निश्चयकायोत्सर्ग।

यह विकल्प भी जड़ की काया है। आहाहा! भगवान ज्ञान काया है। प्रभु का ज्ञान शरीर है, प्रभु का आनन्द और वीतराग शरीर है। इसके अतिरिक्त विकल्प आदि सब काय है, वह जड़ काय है। यह चैतन्य काय है। आहाहा! ऐसा है। **निश्चयकायोत्सर्ग के...** निश्चय से काया का त्याग, उसके **स्वरूप का कथन है।** आहाहा! **सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक अपना आकार वह काय।** यह पहले शरीर की बात की है। सादि-सान्त। उत्पन्न हुआ है, वह उसकी सादि है और नाश होनेवाला है।

मूर्त... है। **विजातीय**- आत्मा से विजात है। आहाहा! आत्मा चैतन्य जाति है, उसकी यह विजाति है। **विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक...** है। यह विजाति। विभाव व्यंजनपर्याय यह शरीर है। आहाहा! **अपना आकार वह काय।** उसका यह आकार, वह काया है। **'आदि' शब्द से क्षेत्र,...** आहाहा! कायोत्सर्ग में अकेली काया का विसर्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। वह मेरा घर है, वह मेरा क्षेत्र है, उसका भी त्याग। **गृह,...** क्षेत्र और घर का त्याग। आहाहा! उसे कायोत्सर्ग होता है। घर है, वह सब पर कायोत्सर्ग में आता है, काया में आता है। जैसे यह शरीर काया है, चैतन्यमय भगवान काया है। ऐसे शरीर, क्षेत्र और घर परकाया में आते हैं। वे परकाय हैं। आहाहा!

कनक,... सोना। सोना, वह परकाय में जाता है। आहाहा! **रमणी...** स्त्री परकाय में जाती है। आहाहा! स्वकाय तो चैतन्यमूर्ति इसकी स्वकाय है। रमणी और उसका पुत्र और पुत्री इत्यादि-इत्यादि। है? **आदि..** है न? **रमणी आदि।** आहाहा! पुत्र-पुत्री यह सब परकाय है। आहाहा! स्वकाय और परकाय दो ही बात। उसमें स्वकाय में अकेला आत्मा आता है। परकाय में विकल्प से लेकर पूरी दुनिया (आती है)। आहाहा! **इन सबमें स्थिरभाव—सनातनभाव छोड़कर...** आहाहा! यह क्या लिया? यह आत्मा तो काया है, वह स्थिर है, नित्य है। इस (पर) वस्तु को नित्य और स्थिर करना चाहता है, विकल्प से लेकर पर को। आहाहा! यह स्थिर भाव, सनातन भाव। राग और शरीर और स्त्री, यह सब सनातन परभाव है। पुराना, पुराना अनादि का यह परभाव है, परकाय है। आहाहा!

गृह, कनक, रमणी आदि। पुत्र-पुत्री, होशियार पुत्र हुआ हो तो ऐसे अन्दर से अभिमान चढ़ जाए कि आहाहा! महीने में लाख-लाख रुपये पैदा करे और हमारी कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत होशियार है। कहते हैं, वह सब परकाय है। तेरी काय नहीं।

आहाहा! तेरी काय में वह नहीं और उसकी काय में तू नहीं। आहाहा! ऐसा स्थिरभाव अर्थात् कि ये मेरे हैं और टिके रहेंगे। आहाहा! विकल्प भी टिका रहेगा, स्त्री टिकी रहेगी, सोना टिका रहेगा, घर टिका रहेगा। आहाहा! ऐसा जो स्थिर भाव सनातन, पुराना, अनादि का पर को अपना मानने का भाव **छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं ऐसा भाव छोड़कर)...** कायादि सब स्त्री आदि स्थिर है। जवान है तो २५-५० वर्ष तो रहेगी या नहीं? यह सब अस्थिर है। किस समय... आहाहा!

अभी एक लड़की मर गयी थी न? विवाह किया, तब उसके पिता ने तीस हजार रुपये खर्च किये थे। मुम्बई में। लड़का नहीं था, लड़की थी। तीस हजार। वह एक सेकेण्ड में गुजर गयी। आया था। नाम हम जानते नहीं। आया था। आहाहा! लाखों रुपये दान दे दहेज में। सोना रखे, सौ-दो सौ तोला सोना रखे, पंखा और पंखा क्या कहलाता है यह? बिझणा। वह सब रखे। कपड़ा और साड़ियों को पलंग के ऊपर बिछावे, फिर सगे-सम्बन्धियों को देखने बुलावे कि देखो यह। आहाहा! प्रभु! यह तो परकाय है न, कहते हैं। आहाहा! यह तो पर शरीर है न? आहाहा! विकल्प से लेकर, प्रभु! यह सब पर शरीर है, परकाल है। स्वकाल तो अन्दर आनन्द का नाथ अखण्डानन्द प्रभु ज्ञानशरीर। कहते हैं न? आता है। ज्ञानशरीर। ज्ञानविग्रहं। ज्ञानरूपी शरीर। वह अखण्ड है, अभेद है, एकरूप है। उससे जितने भेद और पर के भाव, उन सबको स्थिर करके माना है कि ये स्थिर रहेंगे... रहेंगे। आहाहा!

सनातनभाव छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं, ऐसा भाव छोड़कर) नित्य-रमणीय निरंजन... आहाहा! आया भगवान (आत्मा)। नित्य-रमणीय है। भगवान तो नित्य-रमणीय आनन्द में रमे, वह स्वरूप है। **निरंजन...** आहाहा! जिसे मैल और अंजन कुछ है नहीं—ऐसा चैतन्यदल, अखण्डानन्द चैतन्य काय... आहाहा! ज्ञानविग्रह। ज्ञान के साथ अनन्त गुण आये। ज्ञान की प्रधानता से उसे ज्ञानशरीर कहा। भगवान आत्मा को ज्ञानशरीरी कहा है। आहाहा! वह **नित्य-रमणीय निरंजन...** अंजन-वंजन—मैल भगवान आत्मा में नहीं है। आहाहा! और **कारणपरमात्मा को...** आहाहा! ऐसा जो कारण प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द, प्रभु, वह कारणपरमात्मा। जिसमें पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

ऐसे **कारणपरमात्मा को व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी...** आहाहा! व्यवहार का क्रियाकाण्ड। यह करना... यह करना... यह करना... आहाहा! **व्यवहार**

क्रियाकाण्ड आडम्बर... वह तो सब आडम्बर है। आहाहा! शुभभाव की क्रिया, वह तो सब आडम्बर है। सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, अपवास, आठ अपवास, चतुर्विध आहार त्याग कर नकोरडा किया, वर्षीतप किया और फिर उसके पारणे में धामधूम करना। आहाहा! यह सब आडम्बर है। इसमें जरा भी धर्म का अंश नहीं है। आहाहा! श्वेताम्बर में पुस्तकों का बनाते हैं। पुस्तकों की बड़ी शोभायात्रा निकालते हैं। पुस्तक। यह सब आडम्बर है। आहाहा!

इस **आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल...** आहाहा! भगवान निर्विकल्प चैतन्य के अतिरिक्त विकल्प से लेकर सब कोलाहल है, कहते हैं। उसमें कहीं शान्तपना नहीं है। आहाहा! स्वयं टीका बनाते हैं तो उसमें विकल्प है तो कहते हैं। कोलाहल है, ऐसा कहते हैं। मेरा कर्तव्य नहीं। विकल्प आ जाता है और होता है। उससे शरीर, वाणी-वाणी से पुस्तक बन जाती है। आहाहा! **व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी...** आडम्बर, देखा? आहाहा! **विविध विकल्परूप कोलाहल रहित...** बाहर के लक्ष्यवाले विकल्प के कोलाहल से भिन्न। कोई भी बाह्य का लक्ष्य, बाह्यपदार्थ पर उसके लक्ष्य में होनेवाला जो विकल्प। आहाहा! उस कोलाहलरहित।

सहज-परम-योग के बल से... स्वाभाविक परमयोग के अन्तर बल से। आहाहा! अन्तर आनन्द और शान्ति के स्वाभाविक बल से। **जो सहज-तपश्चरणरूपी...** स्वाभाविक तपस्या अर्थात् स्वरूप में लीनता। आहाहा! उस बाह्य क्रियाकाण्ड और व्यवहार क्रियाकाण्ड को आडम्बर कह दिया। यह तो सहज तपश्चरण। वस्तु में अन्दर एकाग्रता से अतीन्द्रिय आनन्द की शोभा बढ़ जाए, वृद्धि पाये, ज्वार पाये। आहाहा! ऐसा जो तपश्चरण उसका नाम तपश्चर्या। यह अपवास करना और अमुक करना, यह व्यवहार है, आडम्बर, क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा!

(स्वाभाविक) **सहज-तपश्चरणरूपी...** आहाहा! **क्षीरसागर का चन्द्र...** है? **क्षीरसागर का चन्द्र...** अर्थात् कि जैसे चन्द्र उगे और क्षीरसागर उछले... आहाहा! वैसे **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव)...** अपने अतीन्द्रिय आनन्द को उछलाने में... आहाहा! पूर्णिमा का चन्द्र हो, तब समुद्र ज्वार में होता है। पूर्णिमा के दिन ज्वार आता है। ऐसा चन्द्र और समुद्र को सम्बन्ध है। आहाहा! पूर्णिमा का ज्वार होता है।

मुमुक्षु : ज्वार आवे और उस समय भुजिया बनावे तो तेल कम चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं होता। वह शिथिल पड़े। ज्वार के समय वह तेल बहुत काम नहीं करता। सुना है। सब सुना है। सब बातें सुनी है। उसकी इतनी हवा बाहर आती है।

यहाँ **सहज-तपश्चरण...** स्वाभाविक तपश्चरण अर्थात् चैतन्यस्वरूप में रमणता, वह स्वाभाविक तपस्या। आहाहा! इसका नाम तपस्या वीतराग कहते हैं। यहाँ तो बाहर में वर्षीतप करे और दो-पाँच हजार खर्च करे। ओहोहो! तपस्या की, भाई! छोटी उम्र में। २५-३० वर्ष की उम्र हो और करे तो उसे तो... आहाहा! अब विधवा-विधवा महिला हो तो वह तो छोटी उम्र में करे। **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव)...** क्षीरसागर को उछालने में सहज तपरूपी चन्द्र। आहाहा! स्वाभाविक तपस्या। अन्दर एकाग्रता क्षीरसागर को उछालने में निमित्त है, उसी प्रकार भगवान का आत्मा अन्दर में एकाग्रतारूपी चन्द्र-तपस्या, वह आत्मा की शान्ति को उछालने में कारण है। आहाहा!

(चन्द्र समान ऐसा जो जीव)... आहाहा! **नित्य ध्याता है,...** नित्य आत्मा का ध्यान करता है। आहाहा! विकल्प की दूसरी जाल छोड़कर... आहाहा! अकेला भगवान आत्मा का जो ध्यान करता है, वह क्षीरसागर को उछालने समान जीव है। जैसे पूर्णिमा का चन्द्र हो और समुद्र उछले; वैसे भगवान स्वयं उसमें एकाग्र हो, वह जीव स्वयं शान्ति को उछालने में कारण है। विकल्प कारण नहीं है। आहाहा! अब ऐसी सूक्ष्म बातें, लो! **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव) नित्य ध्याता है,...** आहाहा! ऐसे आत्मा को नित्य—कायम ध्यान में रखता है। मुनि की उत्कृष्ट बात है न! मुनि ध्यान में अन्दर आनन्द में हमेशा रहते हैं। वे ध्यान में रहें, वही मुनिपना है। पंच महाव्रत और यह सब विकल्प कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा!

नित्य ध्याता है, उस सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि को... आहाहा! सहज वैराग्यरूपी महल। सहज। आनन्द के नाथ का जहाँ अवलम्बन किया, अन्तर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका अवलम्बन किया, वहाँ पर से सहज वैराग्य है। हठ से नहीं। सहज वैराग्य। पर से उदास है। विकल्पमात्र से और दूसरे

क्रियाकाण्डमात्र से (उदास है)। आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि...** आहाहा! वैराग्य में जम गया है, कहते हैं। अन्तर की दृष्टि करके स्थिरता में जम गया है। आहाहा! सहज वैराग्यरूपी महल, उसका वह शिखर, उसका वह शिखामणि। आहाहा! **(-उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को)...** -उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को **वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।** आहाहा! वह तो यह कायोत्सर्ग ऐसे करे और तत्सूत्री करणेन... अप्पाणं वोसरे... जाओ वह आत्मा को छोड़ देता है। आहाहा! कौन से आत्मा को छोड़ना और किसे नहीं छोड़ना... आहाहा! उसे कायोत्सर्ग कहते हैं।

वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है। आहाहा! अन्तर के अखण्डानन्द की रमणता में रमने से पर की ओर से विकल्पमात्र से भी वैराग्य, उसके शिखर का महाशिखामणि। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द में रमता है, उसे **वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।** काया अर्थात् राग और विकल्प भी काया है। उसे छोड़कर... उत्सर्ग है न? कायोत्सर्ग। आहाहा! शुभभाव, वह भी काया-परकाय है। उसे छोड़कर निश्चय उत्सर्ग अन्दर में रमे, उसे निश्चय कायोत्सर्ग होता है। व्यवहार कायोत्सर्ग हो, वह तो शुभभाव है। वह कहीं कोई मूल चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो तत्सूत्री बोले, उसका ठिकाना नहीं होता। अर्थ की खबर नहीं होती। तत्सूत्री करणेन... अर्थ पूछें तो अर्थ आवे नहीं। आहाहा!

वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है। विशिष्टता क्या की है? कि एक ओर वीतरागमूर्ति एकदम निर्विकल्प अखण्ड आत्मा। ज्ञानशरीरी, आनन्दशरीरी में एकाग्रता होकर स्थिरता; और विकल्प से लेकर सब वह परकाल है। उस परकाय से हटकर वैराग्य में, वह वैराग्य है, वह परकाय से हटे, उसका नाम वैराग्य है। स्वकाय में एकाग्र हो, उसका नाम ध्यान। आहाहा! **(परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को)...** आहाहा! उदास... उदास... दुनिया से उदास। कौन वन्दन करता है और कौन आदर करता है, उसकी भी कुछ पड़ी नहीं। उदास। आहाहा! राजा और करोड़पति आकर चरणवन्दन करे तो उसका लक्ष्य नहीं। अन्दर ध्यान में मस्त है। आहाहा! इसका नाम वास्तव में कायोत्सर्ग कहलाता है।

अब, इस शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव पाँच श्लोक कहते हैं: श्लोक अब आयेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१९५

[अब, इस शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव पाँच श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

कायोत्सर्गो भवति सततं निश्चयात्संयतानां,
कायोद्भूत-प्रबलतर-तत्कर्ममुक्तेः सकाशात् ।
वाचां जल्प-प्रकर-विरतेर्मानसानां निवृत्तेः,
स्वात्मध्यानादपि च नियतं स्वात्मनिष्ठापराणाम् ।।१९५।।

(वीरछन्द)

रहें निरन्तर निज आतम में लीन सदा संयतजन जो।
काया से उत्पन्न हुए अति प्रबल कर्म को त्यागें वो॥
अतः विरत वे वचन जल्प से निवृत रहें विकल्पों से।
आत्मध्यान के कारण कार्योत्सर्ग सदा है निश्चय से॥१९५॥

[श्लोकार्थः] जो निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण (-निज आत्मा में लीन) हैं, उन संयमियों को, काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के (-काया सम्बन्धी प्रबल क्रियाओं के) त्याग के कारण, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण, तथा निज आत्मा के ध्यान के कारण, निश्चय से सतत कायोत्सर्ग है॥१९५॥

प्रवचन-१४०, श्लोक-१९५-१९७, शनिवार, ज्येष्ठ कृष्ण २, दिनांक ३१-५-१९८०

नियमसार, श्लोक १९५ कलश। प्रायश्चित्त का अधिकार है। प्रायश्चित्त का अर्थ, स्वरूप जो आत्मा का, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा का है, उसमें एकाग्र होना और पुण्य तथा पाप के, मन-वचन-काया के शुभ-अशुभभाव को छोड़ना। हिन्दी लेना है। हिन्दी है, हों! मन-वचन-काया से जो क्रिया होती है, उसे छोड़ना और अपने आत्मा के

स्वरूप में लीन होना, इसका नाम कायोत्सर्ग, प्रायश्चित्त और ध्यान है, इसे धर्म कहते हैं। मन-वचन-काया की क्रिया, वह कोई धर्म नहीं है। वह परद्रव्य है। अपना स्वरूप अन्दर सच्चिदानन्द सत्-त्रिकाल रहनेवाला और ज्ञानानन्द जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव में मन-वचन-काया की क्रिया का अभाव है। इस कारण उस क्रिया को छोड़कर स्वरूप में एकाग्र होना, वह कायोत्सर्ग कहो, प्रायश्चित्त कहो, सम्यग्दर्शन कहो, ध्यान कहो, समाधि कहो, वह सब उसे लागू पड़ते हैं। देखो, पहला श्लोक, १९५

कायोत्सर्गो भवति सततं निश्चयात्संयतानां,
कायोद्भूत-प्रबलतर-तत्कर्ममुक्तेः सकाशात्।
वाचां जल्प-प्रकर-विरतेर्मानसानां निवृत्तेः,
स्वात्मध्यानादपि च नियतं स्वात्मनिष्ठापराणाम्।।१९५।।

श्लोकार्थः जो निरन्तर... सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! **स्वात्मनिष्ठापरायण...** जो निरन्तर स्व आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्व आत्मा, उसमें निष्ठापरायण। **स्वात्मनिष्ठा**। उसमें रहकर तत्पर रहना। आहाहा! उसमें तत्पर रहना, वह कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त है। सामायिक भी वह, प्रतिक्रमण भी वह, प्रायश्चित्त भी वह। आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति में एकाग्र होना और **निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण...** जिसे आत्मज्ञान हुआ हो, राग से भिन्न है, मन-वचन-काया की क्रिया से भी भिन्न है, ऐसे आत्मा को **स्वात्मनिष्ठापरायण (-निज आत्मा में लीन)...** अपने आत्मा में लीन है। आहाहा! गजब मार्ग है, भाई!

उन संयमियों को,... मुनि की बात ली है। सच्चे सन्त हों, भावलिंगी हों, बाह्य में तो नग्न ही हों। ऐसे सच्चे **संयमियों को, काया से उत्पन्न होनेवाले...** काया से उत्पन्न होनेवाली क्रिया। आहाहा! जड़ की क्रिया। हाथ-पैर के हलन-चलन की क्रिया, वह सब जड़ की क्रिया है। उस काया की क्रिया से भिन्न है। है? **काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के...** अर्थात् क्रिया। उस **(-काया सम्बन्धी प्रबल क्रियाओं के) त्याग के कारण,...** आहाहा! वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। उसकी कोई भी क्रिया, वह जड़ की क्रिया है। उसका त्याग करके। आहाहा! एक बात।

दूसरी बात, **वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण...** दूसरा बोल। पहले काया की क्रिया की ओर का लक्ष्य छोड़ देना, फिर वाणी का जल्प होना - बोलना, वह

विकल्प अन्दर उत्पन्न होना, उस (जल्प) समूह की विरति, -उससे निवृत्त होना। आहाहा! इसका नाम कायोत्सर्ग है। वे तो तत्सूत्री करणेन, प्रायश्चित्त करणेन, ऐसा करके अप्पाणं ओसरे, हो गया कायोत्सर्ग। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना कायोत्सर्ग कहाँ से आया? अभी आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा भान नहीं। मैं ज्ञानानन्द हूँ, तो काया की क्रिया से भी भिन्न हूँ और वाणी की क्रिया से भी भिन्न हूँ।

और तीसरे में, देखो! **और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,...** और मानसिक क्रिया अर्थात् मन से जो विकल्प उठता है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मन-वचन-काया तीनों अजीव हैं, जड़ हैं। उनकी क्रिया से रहित और अपने आत्मा में-स्व आत्मा में परायण, तत्पर। पर से विरति और स्व में तत्पर, पर से विरति और स्व में रक्त। पर से विरक्त और स्व में रक्त। आहाहा! पुण्य और पाप तथा मन, इन सब क्रियाओं से विरक्त और स्वरूप में रक्त, इसका नाम प्रायश्चित्त और कायोत्सर्ग और समकित तथा ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! है?

और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,... आहाहा! मन, वचन और काया, वह तो जड़ की क्रिया है, वह तो जड़ में है; आत्मा में वह है नहीं। मानसिक विकल्प जो उठते हैं, अन्दर मन में कल्पना उठती है, वह भी मानसिक क्रिया है, आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा! उससे हटकर—विरति करके। आहाहा! पहले में ऐसा लिया कि **काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के त्याग के कारण, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,...** तीनों के तीन शब्द भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया?

तथा निज आत्मा के ध्यान के कारण,... अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप की सत्ता, उसकी अस्ति, ज्ञानस्वरूप से अस्ति, जाननस्वरूप से उसकी अस्ति, मौजूदगी है। अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप से आत्मा की मौजूदगी है। उसमें से मन-वचन-काया की क्रिया से हटकर जो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसमें लीन रहना, लीन होना, रक्त होना, पर से विरक्त होना, इसका नाम कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त कहने में आता है। आहाहा! यह तो कितनों ने कायोत्सर्ग किया होगा। तिकखुतो आयाणं और खोटे का खोटा। वह कहाँ कायोत्सर्ग है।

कायोत्सर्ग एक न्याय से तो ऐसा कहा न पहले, कि एक ओर भगवान आत्मा

ज्ञानस्वरूप काया, ज्ञानस्वरूपी काया और एक ओर मन, वचन और काया से लेकर, दया, दान के विकल्प से लेकर सब काया। वह जड़ काया है। काया दो प्रकार की है। एक ज्ञान काया और एक जड़ काया। जड़ काया—मन-वचन-काया और पुण्य-पाप के भाव, वह जड़ काया है। आहाहा! उससे निवृत्त होकर ज्ञानस्वरूपी जो काया आत्मा में है, उसमें लीन होना, वह कायोत्सर्ग है। अपनी काया से भिन्न है, उसका त्याग और अपनी ज्ञानस्वरूप काया में लीनता होना, इसका नाम कायोत्सर्ग कहने में आता है। आहाहा! कहीं निवृत्ति नहीं मिलती और ऐसी बात। तिकखुतो वंदामि आयाणं, उसमें आता है न? ....ऐसा आता है। कायोत्सर्ग करूँ। कायोत्सर्ग का भान नहीं होता और कायोत्सर्ग करूँ!

कायोत्सर्ग तो उसे होता है कि जिसे निज ज्ञानानन्दस्वरूप काया अपना स्वरूप और राग, दया-दान के विकल्प से लेकर पूरी दुनिया, वह पर काया है। उस पर काया से विरक्त और अपने स्वभावरूपी काया से रक्त, इसका नाम सामायिक, प्रायश्चित्त और कायोत्सर्ग कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कुछ भान न हो और कहे, पाँच सामायिक की, तीन सामायिक की। धूल में भी सामायिक नहीं है। सामायिक में समता का, वीतरागता का लाभ मिले, सामायिक में समता-वीतरागपने की आय / लाभ। तो वीतरागपने का लाभ कब मिलेगा? कब मिलेगा? वीतरागपने का लाभ कब होगा? - कि वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसमें लीन होने से वीतराग का लाभ होता है। बाकी मन-वचन की सब क्रिया है, वह तो राग की क्रिया और जड़ की क्रिया है। उसमें तो कहीं आत्मा को लीन होना नहीं है। आहाहा! यह श्लोक कहा।

निवृत्ति के कारण,... है? तीनों शब्दों को बदला है। काया की क्रिया का त्याग, **त्याग के कारण, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,...** आहाहा! तीनों के तीन अर्थ किये हैं। उसके कारण, ये तीन बोल हुए। **निज आत्मा के ध्यान के (कारण,...)** आहाहा! **निज आत्मा के ध्यान के कारण,...** ज्ञानस्वरूपी, आनन्दस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी आत्मा का ध्यान होना, इसका नाम कायोत्सर्ग है, इसका नाम सम्यग्दर्शनसहित आत्मा में लीनता है। आहाहा! जो कोई अभी मन-वचन-काया की क्रिया को धर्म मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं है। आहाहा!

जैन उसे कहते हैं कि 'घट-घट अन्तर जैन बसे...' 'घट-घट अन्तर जिन बसे,

और घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न।''घट-घट अन्तर जिन बसे।' जिनस्वरूप आत्मा का घट-घट में है, उसे जैन, उसका ज्ञान करके उसमें लीन होना, वह जैन। परन्तु 'मत मदिरा के पान सौं' अपने मत के आग्रह की मदिरा पी है तो उस सत्य की ओर नहीं जाता। वह बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मनाता है और वहाँ का वहाँ मरता है। आहाहा! समझ में आया?

निज आत्मा के ध्यान के कारण, निश्चय से... आहाहा! **सतत कायोत्सर्ग है।** एक क्षण, एक समय – ऐसा नहीं। **सतत कायोत्सर्ग है।** यह संयमियों की विशेष बात है। समकिती थोड़े काल अन्दर स्थिर होता है। मुनि-सच्चे मुनि हैं, वे तो अन्दर आनन्द में बहुत लीन होते हैं, उन्हें यहाँ मुनि कहते हैं। उन संयमियों को कायोत्सर्ग है। निरन्तर कायोत्सर्ग है। सतत् है न, सतत्? आहाहा! सतत् कायोत्सर्ग है। १९५ (श्लोक) (पूरा हुआ।)

श्लोक-१९६

(मालिनी)

जयति सहजतेज:पुञ्जनिर्मग्नभास्वत्-
सहज-परम-तत्त्वं मुक्त-मोहान्धकारम्।
सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं (?)
भवभवपरितापै: कल्पनाभिश्च मुक्तम्।।१९६।।

(वीरछन्द)

परम तत्त्व जयवन्त सहज जो सहज तेज में सदा निमग्न।
सहज प्रकाश स्वरूप तत्त्व वह जिसने किया मोह तम भग्न॥
वृथा हुए जो भव-भव के परिताप, सदा है उनसे दूर।
मुक्त कल्पनाओं से है जो परम दृष्टि से है परिपूर्ण॥१९६॥

[श्लोकार्थ:] सहज तेज पुंज में निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है (अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है), जो सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है और जो वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है॥१९६॥

श्लोक- १९६ पर प्रवचन

१९६ (श्लोक)

जयति सहजतेज:पुञ्जनिर्मग्नभास्वत्–
सहज–परम–तत्त्वं मुक्त–मोहान्धकारम्।
सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं (?)
भवभवपरितापै: कल्पनाभिश्च मुक्तम्।।१९६।।

श्लोकार्थ: आहाहा! **सहज तेज पुंज में निमग्न...** तेज। अन्दर चैतन्य का तेज। भगवान आत्मा ज्ञान के तेज का पूर है। आहाहा! यह सब अन्धे हैं। शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति यह सब अन्ध हैं, जड़ हैं। प्रभु अन्दर चैतन्य तेज का पुंज है। आहाहा! चैतन्य वस्तु जो है, वह तो तेज का पुंज है। उसमें **निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज...** कहते हैं कि स्वाभाविक तेज पुंज में निमग्न ऐसा प्रकाशमान। अन्तर में जो परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव पड़ा है, उसकी एकाग्रता से उसका प्रकाश होता है। ज्ञान की पर्याय में प्रगट प्रकाश होता है। आहाहा! ऐसी बात। ज्ञान तेज से भरपूर आत्मा है, उसकी एकाग्रता होने से, उसकी पर्याय में ज्ञान का प्रकाश (प्रगट) होता है, कि जो ज्ञान स्वयं को भी जानता है और पर को भी जानता है, ऐसा प्रकाश अन्दर से होता है, उसका नाम कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त है। आहाहा!

सहज तेज पुंज में... प्रभु स्वाभाविक तेज पुंज है। कोई सत्ता, उसका—भगवान आत्मा का अस्तित्व नया नहीं है। किसी ने उत्पन्न नहीं किया, नाश नहीं किया, वह तो सत्ता है, अस्तित्व है। जगत की एक चीज़ है। आत्मतत्त्व आनन्दकन्द प्रभु (है), ऐसा जिसने... आहाहा! **सहज तेज पुंज में...** स्वाभाविक तेज पुंज। अन्तर के ज्ञान का पुंज सहज भरपूर है प्रभु। उसमें जो लीन है। आहाहा! निमग्न है, **ऐसा वह प्रकाशमान...** ऐसा वह प्रकाशमान... राग-द्वेषादि अन्धकार है। पुण्य और पाप का विकल्प राग, राग अपने को नहीं जानता, राग को जाननेवाला तो ज्ञान है, तो ज्ञानस्वरूप जो भगवान, वह तेज का पुंज है। वह प्रकाशमान है। आहाहा!

सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! मुनिराज अपनी बात भी करते हैं।

आहाहा! तेज के पुंज का प्रकाश सहज तेज जयवन्त वर्तता है। है, जयवन्त है। हमारी दृष्टि में वह आया है। आया है तो हम कहते हैं कि यह जो शाश्वत् सत्ता अनादि की है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! भाषा... **प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—** आहाहा!

यह सब तो नाशवान है—शरीर, वाणी, मन की क्रिया हलन-चलन, वह तो जड़ की क्रिया है। वह कहीं आत्मा की नहीं है। आत्मा कर नहीं सकता। हाथ-बाथ हिलावे, भाषा (होवे), उसे आत्मा कर नहीं सकता। जड़ की क्रिया में आत्मा का अस्तित्व नहीं है तो जिसमें अपना अस्तित्व नहीं, उसका कुछ नहीं कर सकता। अपना अस्तित्व अपने आनन्द और ज्ञान में है तो वहाँ आगे राग को निवृत्त करके उसमें लीन हो सकता है। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश है? कभी वाड़ा में तो सुनने को मिला न हो। आहाहा! सब करते। हम भी तब पहले कहते थे न, १९ वर्ष। यह करो... यह करो... गुरु ने बताया हुआ है, ऐसा करते। फिर अन्दर से आया कि यह वस्तु तो खोटी है। बाहर की क्रिया वह धर्म, यह खोटी बात है। धर्म तो आत्मा का आनन्द और ज्ञान है, वह धर्म है। अन्तर सहजस्वरूप की दृष्टि करने पर पर्याय-अवस्था में चैतन्य का प्रकाश आवे कि जो प्रकाश स्व को जाने और रागादि को जाने, ऐसा प्रकाश, उसमें लीन होना, (वह धर्म है)। आहाहा!

प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! ज्ञान के तेज से भरपूर प्रभु, जैसे शक्कर मिठास से भरी है, शक्कर मिठास से भरी है; उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान से भरपूर है। आहाहा! ऐसी बातें। ज्ञान और आनन्द। आत्मा में सर्वांग-सर्वांग आनन्द है, आत्मा में सर्वांग ज्ञान है, आत्मा में सर्वांग वीतरागता है परन्तु उसकी दृष्टि उस पर नहीं है और अनादि से पर के ऊपर दृष्टि है। मन की, वचन की, विकल्प की, दया की, दान की, व्रत की, भक्ति की, काम-क्रोध की, भोग की, धन्धे की, स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने की और धन्धा करने की (रुचि है)। पाप और पुण्य दोनों अधर्म हैं। दोनों अधर्म हैं। आहाहा!

ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! कहते हैं कि उस चैतन्यतत्त्व का हमें भान हुआ है, इसलिए हम कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तता है। सत्ता है, चैतन्य की सत्ता है, वह अन-उत्पत्ति अर्थात् जिसकी उत्पत्ति नहीं है, जिसका विनाश अर्थात् भविष्य में जिसका नाश नहीं है और जो वर्तमान में चैतन्य के प्रकाश से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! वह तत्त्व जयवन्त वर्तता है। आहाहा! दया, दान के परिणाम जयवन्त वर्तते

हैं, ऐसा नहीं कहा। उन्हें तो राग कहा। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश से भरपूर प्रभु जयवन्त वर्तता है। सत्ता-जिसकी मौजूदगी, जिसका होनापना अनादि-अनन्त मौजूद है। भगवान अनादि-अनन्त अन्दर मौजूद है। आहाहा! मौजूद है। आहाहा!

जिसने मोहान्धकार को दूर किया है... आहाहा! भगवान चैतन्य प्रकाश जयवन्त वर्तता है। उसका ध्यान और आलम्बन लेकर **जिसने मोहान्धकार को दूर किया है...** राग और द्वेष मेरे, पुण्य और पाप मेरे, मैंने दया की, मैंने पर की दया पालन की। दया पालने का भाव तो राग है, वह राग मोह है। आहाहा! उस **मोहान्धकार को दूर किया है...** दो बातें ली हैं न? पहले प्रकाशमान लिया था न? चैतन्य का प्रकाश लिया था और मोह का अन्धकार लिया। आहाहा! चैतन्य प्रकाश से भरपूर है और मोह, राग-द्वेष, वह अन्धकार है। आहाहा! अन्दर है या नहीं?

सहज तुज पुंज में निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है— कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है (अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है),... शब्द ऐसा है—मोहान्धकार को दूर किया है। वास्तव में मोह अन्धकार उसमें है ही नहीं। समझ में आया? प्रायश्चित्त के श्लोक आये हैं। प्रायश्चित्त के अन्तिम श्लोक। क्या कहा, समझ में आया? **कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है...** इसका अर्थ क्या? कि जो वस्तु है, उसमें मोह है ही नहीं। मोहान्धकार को दूर किया है, यह तो पर्याय की बात हुई। समझ में आया? परन्तु जिसमें मोहान्धकार, राग-द्वेष, दया, दान सब भाव, मोह है। अन्दर वस्तु में वह मोह है ही नहीं। वह मोह नहीं है, उस अन्धकार का नाश किया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोह अन्धकार को दूर करने की शक्तिवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। मोह है ही नहीं परन्तु नाश करनेवाला कहा, इसका अर्थ यह कि उसमें नाश ही है। चैतन्य तत्त्व में मोह का नाश ही है। मोह है ही नहीं। द्रव्य को मोह नाश करना, ऐसा कहाँ होता है? उसका अर्थ यह... किया था। भाई ने अर्थ किया था न? जो मोहान्धकाररहित है। नाश का यह अर्थ है। द्रव्यस्वभाव जो चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु भगवान, अरिहन्त केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने आत्मा देखा। जैन प्रकाशमय आत्मा चैतन्यप्रकाशमय। वह मोहान्धकार का नाश करनेवाले का अर्थ कि उसमें मोहान्धकार है

ही नहीं। जैन प्रकाश का चैतन्य का पुंज है, उसमें मोह है ही नहीं। आहाहा! है न? **(अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है),...** अर्थ किया है। ऐसा आता है, ऐसी शैली आती है।

मुमुक्षु : दूसरा अर्थ ऐसा लिया जाता है न कि नाश करने की शक्ति रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह नहीं। उसमें है ही नहीं। फिर नाश किसका? उसमें है नहीं। उसमें है, उसका नाश करने की शक्ति होती है। उसे नाश करने की और उसे प्रगट करने की। परन्तु उसमें है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! दुनिया में तो अभी सब चलता है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ का जैनतत्त्व, वह अलौकिक तत्त्व है। ऐसा तत्त्व सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त कहीं नहीं है, किसी जगह कहीं बात भी नहीं है। आहाहा! सब देखा है न। २१ वर्ष तो उसमें रहे हैं - दीक्षा में। पिताजी स्थानकवासी थे न, उसमें दीक्षा ली थी। दीक्षा के पहले भी मैं तो दुकान में शास्त्र पढ़ता था। पालेज में घर की दुकान है। भरुच और बड़ोदरा के बीच। स्थानकवासी के शास्त्र पढ़ता था। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग... छोटी उम्र से। १९ वर्ष की उम्र थी। अभी ९१ हुए। अभी तो शरीर को ९१ हुए। ९० और १। १९ वर्ष की उम्र से दुकान में अभ्यास करता था। पूर्व के संस्कार थे इसलिए। आहाहा! भागीदार दुकान में बैठा हो तो मैं अन्दर पढ़ूँ। वह न हो, तब मुझे दुकान पर बैठना पड़े। अभी दुकान है न! वह दुकान अभी है। बड़ी दुकान है, चालीस लाख रुपये हैं। अभी चार लाख की आमदनी है। वह तब थी, वह दुकान। पाँच वर्ष मैंने चलायी थी। पाप, पाप चलाया था। दुकान का धन्धा अर्थात् पाप। पूरे दिन पाप, पाप और पाप। आहाहा! धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य और पाप और मन-वचन-काया की क्रिया, वह अन्धकार है। अन्धकार उसमें है नहीं। प्रकाश में अन्धकार नहीं है और अन्धकार में प्रकाश नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आचार्य को यह कहना है। भगवान चैतन्यप्रकाश का पिण्ड अन्दर है परन्तु कभी नजर नहीं की, कभी विचार नहीं किया, कभी मनन नहीं किया, कभी सुना नहीं। आहाहा! अन्दर में चैतन्यप्रकाश का पूर-नूर प्रकाशमान है और मोह, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, यह सब अन्धकार है तो दोनों एक नहीं होते। नाश किया ऐसा कहा, उसका अर्थ कि वह उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा कभी सुनने को मिले। वह तुम्हारा भुक्का (चूरा)। किसका चूरा? प्लास्टिक।

प्लास्टिक न ? मुम्बई, प्लास्टिक का बड़ा धन्धा चलता है। आहाहा! यह (समझने की) फुरसत कहाँ मिले ?

मैं तो हमारे दुकानदार को कहता था। दो दुकानें, हिस्सेदार थे। दो दुकानें थीं। हम दो भाई और दो भाई वे। तब मैं उन्हें कहता, यह पूरे दिन क्या करते हो ? कुछ श्रवण, मनन, विचार (कोई नहीं)। यह तो १९ वर्ष की उम्र की बात है। अभी तो ९१ वर्ष हुए। आहाहा! परन्तु क्या हो ? दुनिया तो पूरी पड़ी है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, कमाना, धन्धा, बस। आहाहा! धर्म सुनने जाए तो एक घण्टे ऐसा सुनावे कि कुगुरु इसका घण्टा लूट ले। ऐसा श्रीमद् कहते हैं क्योंकि वे पुण्य में, दया-दान में, व्रत में धर्म मनावे तो इसका एक घण्टा लूट लिया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! मोहान्धकाररहित है। भगवान आत्मा प्रकाश की मूर्ति है और रागादि अन्धकार का उसमें अभाव है। आहाहा! उस अन्धकार में प्रकाश नहीं और प्रकाशस्वरूप भगवान आत्मा में अन्धकार नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** आहाहा! यदि सम्यग्दर्शन से आत्मा को देखो, सहज निर्मल निर्विकारी निश्चय सम्यग्दर्शन से देखो तो वह परिपूर्ण है। भगवान आत्मा परिपूर्ण है। वस्तु है, वह परिपूर्ण है। वस्तु है, वह अपूर्ण और विकारी नहीं होती। वह तो अज्ञानभाव से अनादिकाल से लक्ष्य में नहीं लिया, इसलिए भटकता है। वस्तु है, वह परिपूर्ण है। यह दृष्टि कही, हों! कही न ? **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** उसमें दृष्टि लिये बिना परिपूर्ण है, इसका ख्याल कहाँ से आया ? आहाहा! यह परिपूर्ण है, वह ख्याल में आये बिना परिपूर्ण है, यह आया कहाँ से ? जिस चीज़ का ज्ञान में ख्याल (नहीं) आयी, उसकी प्रतीति कैसी ? जिस ज्ञान में यह चीज़ ऐसी है, ऐसा ख्याल आये बिना उसकी प्रतीति कैसी ? अन्धश्रद्धा है ? अन्ध मान्यता (करनी है) ? आहाहा! है तो (बात) लॉजिक से परन्तु बहुत कठिन बातें। आहाहा!

कहते हैं कि **सहज परम दृष्टि से...** अर्थात् समकित। स्वाभाविक समकित। शुद्ध परमात्मा-आत्मा की प्रतीति और अनुभव। अनुभवसहित प्रतीति। इस दृष्टि से प्रभु परिपूर्ण है। आहाहा! पर्याय में अपूर्णता है, परन्तु वस्तुरूप से परिपूर्ण है। आहाहा! समझ में आया ? **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** स्वाभाविक परम दृष्टि, कृत्रिम नहीं। अन्तर में से जागृत हुआ, चैतन्य को झिंझोड़ कर जागृत हुआ और अन्धकार का जहाँ नाश हुआ। भले थोड़ा

रहा, परन्तु अन्दर मेरी चीज़ में वह नहीं, ऐसी चीज़ में जहाँ दृष्टि हुई तो उस दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा! भगवान आत्मा दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा!

ऐसा उपदेश और ऐसी बातें। इसमें एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, दया पालना, छह काय की दया पालना, छह काय का पीर और यह सब कहाँ आया? वह सब अज्ञान है। छह काय की दया पालूँ, यह माननेवाला मिथ्यादृष्टि है; जैन नहीं, क्योंकि एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कुछ कर नहीं सकता। स्पर्श नहीं करता। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता-स्पर्शता नहीं है और अज्ञानी मानता है कि मैं इसकी दया पालता हूँ, वह तो मिथ्यात्व है परन्तु दया पालने का भाव जो है, वह भी राग और मोह है। आहाहा! क्योंकि पर के ऊपर लक्ष्य है, इसलिए राग है, हिंसा है। उससे रहित भगवान का चैतन्यप्रकाश, उस अन्धकार से रहित है। आहाहा! दया का भाव, वह अन्धकार है। गजब बात है न! यह तो सब दया पालने चल निकले बहुत। मण्डली के नायक हो, दो-पाँच लाख इकट्ठे करके अपने गौशाला बनाओ, बकरों को सम्हालो और अमुक... वह सब क्रियाएँ जड़ की हैं, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू तो प्रकाश का पुंज है। यह जो होता है, उसे पररूप से जाने। परन्तु होता है उसे स्व-रूप से माने, ऐसा नहीं है। आहाहा!

स्वाभाविक **परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** दृष्टि में परिपूर्ण लिया। देखा? आहाहा! जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें आत्मा परिपूर्ण मानने में आता है। सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण तत्त्व है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन नहीं है, क्योंकि वह तो पर्याय है। उस सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण तत्त्व है। आहाहा! **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** स्वाभाविक सम्यग्दर्शन... आहाहा! उससे तो भगवान परिपूर्ण है।

और जो वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से... आहाहा! भगवान है तो परिपूर्ण ऐसा। **वृथा-उत्पन्न भवभव के...** भव-भव के कारण जो विकारभाव... आहाहा! चाहे तो दया, दान, भक्ति का भाव भी भव का कारण है। भव मिलेगा, संसार मिलेगा। आहाहा! अरे रे! खबर नहीं, प्रभु! चैतन्यप्रकाश में दया का भाव राग है, वह तो हिंसा है। आहाहा! स्वरूप की हिंसा है, उसे धर्म मानता है। इसे कहाँ जाना? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि स्वाभाविक परमदृष्टि जो है, उससे वस्तु परिपूर्ण है। आहाहा!

दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा! **और जो वृथा**-व्यर्थ का, कहते हैं। **उत्पन्न भवभव के परितापों से...** आहाहा! भव-भव के ताप का दु:ख। राग और द्वेष, दया और दान, भक्ति और पूजा, काम और क्रोध, भोग और धन्धा, वह सब अकेला पाप तथा पुण्य दोनों भव-भव का परिताप है। उसका फल भव-भव के परिताप में भटकने का है। आहाहा! कठिन बात, प्रभु! नयों ने तो अभी कान से सुनी न हो। है ऐसी बात है।

यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। पैंतालीस वर्ष तो यहाँ सोनगढ़ में हुए। पैंतालीस वर्ष में आये थे। आहाहा! यह तो पहले छोटी १९ वर्ष की उम्र से यह सब है। दस वर्ष की उम्र से तो सामायिक, प्रौषध सब किया था। दस वर्ष की उम्र से, आहाहा! और रात्रि भोजन का त्याग भी आजीवन का (संवत्) १९६५ के वर्ष। १९६५ के वर्ष से आजीवन रात्रि में पानी की बूँद नहीं, आहार नहीं और १९६५ के वर्ष से अथाणां नहीं। अथाणां समझे। अचार कहते हैं न अचार? उसमें जीव गिरते हैं। बरनी में रहता है न? बरनी में अचार रहता है। उसमें जो ऊपर कपड़ा रहे और ढक्कन हो, तो कपड़ा मैला होता है। हाथ छुए, इसलिए बहुत मैला होवे तो उसमें कंथवा होते हैं। यह सब नजरों से देखा है। हमारी दुकान है, वहाँ हमने नजरों से देखा था। अरे! यह अचार! अपने नहीं खाया जाएगा। जैन को ऐसा कंथवा गिरा हुआ (अचार नहीं खाया जाता)। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से...** व्यर्थ के भव-भव के परिताप के परिणाम को करता है। आहाहा! परिपूर्ण भगवान आत्मा की दृष्टि नहीं करता और यह वृथा... आहाहा! व्यर्थ का। यह वस्तु अन्दर पड़ी है। भगवान मूर्ति अकेला प्रकाश का पुंज पड़ा है। तू उसके सन्मुख नहीं देखता, इसलिए तुझे दिखायी नहीं देता। अकेला चैतन्य का पुंज है। जैसे शक्कर की डली पूरी मिठास से भरी होती है, वैसे यह भगवान ज्ञान और आनन्द से भरपूर डली है। यह बड़ी गाँठ है। शरीर से भिन्न है। यह (शरीर) तो मिट्टी-धूल है। मन से भिन्न, वाणी से भिन्न, काया से भिन्न। है। आहाहा!

वृथा... अरे! प्रभु! तू परिपूर्ण है। यदि दृष्टि दे तो तुझे परिपूर्ण दिखायी देगा परन्तु व्यर्थ का पुण्य और पाप, राग-द्वेष करके भव-भव के परिताप को सहन करता है। भव-भव में दु:ख है। किसी भी भव में सुख नहीं है। देव को भी दु:ख है। यह करोड़पति, अरबोंपति मनुष्य है, वह सब बेचारे दु:खी हैं, क्योंकि यह पैसे मेरे - ऐसी मान्यता वह

महामिथ्यात्व का महादु:ख है। आहाहा! अभी अफ्रीका गये थे न? अफ्रीका में छब्बीस दिन रहे, नैरोबी। पैसेवाले, बहुत पैसा। एक गाँव में साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ करोड़पति और पन्द्रह अरबपति हैं। तुम्हारे महाजन। वह बेचारा आया था। वह अरबपति श्वेताम्बर आया था। महाराज! यह सब फेरफार... हमारे और इन्हें... मैंने कहा तत्त्व की दृष्टि करो, फिर समझ में आयेगा। तत्त्व की दृष्टि समझे बिना तुम्हारे अरब-बरब धूल में कुछ नहीं हैं। ऐसे अरबपति तो वहाँ नैरोबी में पन्द्रह पड़े हैं। आहाहा! छब्बीस दिन वहाँ रहे। लोगों को प्रेम बहुत। सब महाजन आते थे। बड़ी सभा। अपनी गुजराती भाषा। सवेरे-दोपहर सब सुनते। रात्रि को वहाँ चर्चा रहती थी। पौन घण्टे रहती थी। आहाहा!

क्या कहते हैं? आहाहा! अरे! दृष्टि में परिपूर्ण विषय परमात्मा अन्दर पड़ा है, उसके सन्मुख देखता नहीं। वृथा-व्यर्थ का। **भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है।** और तू करता है व्यर्थ का। है? **वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है।** प्रभु! आहाहा! कब? मुक्त होगा तब? नहीं, नहीं अभी मुक्त है। आहाहा! है? **वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है।** क्योंकि परिपूर्ण वस्तु है। परिपूर्ण वस्तु है, उसमें परवस्तु, आताप और ताप और दया, दान, यह सब विकल्प उसमें नहीं है। आहाहा! दो श्लोक हुए।

श्लोक-१९७

(मालिनी)

भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं,
तदखिलमपि नित्यं सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या।
सहज-परम-सौख्यं चिच्चमत्कार-मात्रं,
स्फुटित-निज-विलासं सर्वदा चेतयेऽहम्।।१९७।।

(वीरछन्द)

तुच्छ और जो मात्र कल्पना में ही लगता है रमणीय।
भव-भव का सुख मैं सब सम्यक् तजता आत्मशक्ति से नित्य॥

प्रगट हुआ है निज विलास जिसका जो परम सौख्य वाला।
चेतन-चमत्कारमय उसका सदा अनुभवन मैं करता॥१९७॥

[श्लोकार्थः] अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला) ऐसा जो भवभव का सुख, वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ; (और) जिसका निज विलास प्रगट हुआ है, जो सहज परम सौख्यवाला है तथा जो चैतन्यचमत्कारमात्र है, उसका (-उस आत्मतत्त्व का) मैं सर्वदा अनुभवन करता हूँ॥१९७॥

श्लोक- १९७ पर प्रवचन

१९७। १९७ है न?

भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं,
तदखिलमपि नित्यं सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या।
सहज-परम-सौख्यं चिच्चमत्कार-मात्रं,
स्फुटित-निज-विलासं सर्वदा चेतयेऽहम्॥१९७॥

आहाहा! १९७ आया न?

श्लोकार्थः अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्र... आहाहा! यह भव-भव का सुख, तेरे अरबोंपति का, देव का, राजा का... आहाहा! एक **अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला)...** वस्तु रमणीय नहीं है। मन-वचन-काया में, भोग में कहीं रमणीय नहीं है। मन की कल्पना से रमणीय मानकर दुःखी होता है। आहाहा! यह तो भाई! संसार छोड़े तब हो, परन्तु पहले अभी अन्दर निर्णय तो कर। छोड़े बाद में। समझे बिना क्या छोड़े। यह बुद्धि बिना के बाबा हो गये। सम्यग्दर्शन नहीं और बाबा-साधु हो गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला) ऐसा जो भवभव का सुख...** आहाहा! उसमें मनुष्य, राजा, देव सब आ गये। सब दुःखी हैं। आहाहा! चारों गति (के) दुःखी। चार गति है। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति। चारों गति दुःखी है। आहाहा! नरक के अन्दर अनन्त

बार गया, वहाँ संयोग के लक्ष्य से दुःखी, दुःखी और दुःखी। स्वभाव का लक्ष्य नहीं। वहाँ संयोग यह मिला... यह मिला, मुझे अग्नि पड़ी। दुःखी। मनुष्य ऐसे खड़ा है और गाय-भैंस ऐसे आड़े हैं क्योंकि बहुत वक्रता की है। मनुष्य ऐसा है और वे आड़े हैं। भगवान कहते हैं कि बहुत वक्रता की है। क्रोध, मान, माया, लोभ और वक्रता इतनी की है कि शरीर आड़ा हो गया। आत्मा तो उल्टा है ही वह। आहाहा! मनुष्य हुआ तो इस भोग में, विषय में, इज्जत में, कीर्ति में घुस गया। देव में गया, वहाँ सुख की कल्पना में घुस गया। आहाहा! चारों गति में दुःख है। आहाहा! यहाँ तो मानो पाँच-पच्चीस लाख करोड़, दो करोड़ हो, वहाँ तो हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। लड़की का वर होशियार है। पाँच करोड़ रुपये हैं और सुखी है। धूल में भी नहीं है। अब सुन न! आहाहा! ऐसी वृथा कल्पनाएँ हैं, उनसे तो मुक्तस्वरूप है। ऐसी कल्पना-फल्पना आत्मा में है नहीं। आहाहा! अरे रे! यह कौन माने।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माने कौन? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। सम्प्रदाय में बात चलती है, उससे बात एकदम दूसरी है। यह तो छोड़ा है, तब खबर है न; इसलिए छोड़ा न! पैंतालीस वर्ष यहाँ हुए। वहाँ सब किया था। अनेक क्रियाकाण्ड सब किया था। जितना था (सब)। उसमें धर्म माना था। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का पूर और नूर, वृथा भव-भव के ताप में पड़ा है, परन्तु उससे तो मुक्त है, प्रभु! आहाहा! चौरासी के भव-भव के ताप से तो मुक्त है, प्रभु! आहाहा! आचार्य महाराज जीवों को प्रभु कहकर बुलाते हैं। भगवान कहकर बुलाते हैं। प्रभु! तू भगवान है, तू भगवान है। भगवान है तो पर्याय में भगवान होगा। आहाहा! सब आत्मा को भगवानरूप से तो बुलाते हैं। छोटा-बड़ा अन्दर अन्तर भगवान तेरा स्वरूप है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **भवभव का सुख वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;...** मुनिराज कहते हैं कि भव-भव के दुःख का कारण जो विकार, उसे मैं छोड़ता हूँ। और प्रभु को मैं ग्रहण करता हूँ। आहाहा! गजब बातें, भाई! है? आहाहा! **ऐसा जो भवभव का सुख...** रमणीय लगनेवाला मात्र कल्पनारम्य। **वह सब मैं आत्मशक्ति**

से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... देखो! आत्मशक्ति से। आत्मा की सामर्थ्य द्वारा, मैं आनन्द और ज्ञान हूँ, इसकी सामर्थ्य द्वारा उस भव-भव के सुख का कारण जो विकार, उसे छोड़ता हूँ। आहाहा! उसे मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! हिन्दी भाई आये हैं न, जरा हिन्दी... परन्तु अपने गुजराती मूल हो, इसलिए आ जाती है। आहाहा!

आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... आहाहा! छोड़ता हूँ और छोड़नेयोग्य, ऐसा धार रखा है, ऐसा नहीं। आहाहा! प्रभु अन्दर आनन्द का नाथ, आनन्द और ज्ञान और शान्ति के सागर से परिपूर्ण भरपूर प्रभु, वह जो दृष्टि का विषय है, उस परिपूर्ण दृष्टि के कारण से भव के कारण जो परिताप, पुण्य-पाप की कल्पनाएँ, उन्हें मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं। टोलिया! नये लोगों को यह... इसमें सम्प्रदाय की बात की एक भी बात नहीं आती। उसमें तो कहे, एकेन्द्रिय की दया पालो, छह काय की दया पालो, छह परबी ब्रह्मचर्य पालो, रात्रिभोजन त्याग करो, अपवास करो, यह तो सब राग की क्रिया की बातें हैं। आहाहा! यह कहीं आत्मा-बात्मा नहीं और वहाँ इसमें धर्म-बर्म नहीं। यहाँ यह कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म न हो तो कुछ नहीं, अधर्म तो नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म है। धर्म नहीं, वह अधर्म है। यहाँ तो कड़क हो या यह हो। पर की दया पालने का भाव अधर्म है। पुकार करके कहते हैं। यह बात कहाँ गुप्त रखी है? क्योंकि परपदार्थ को आत्मा स्पर्श नहीं कर सकता। कोई भी परपदार्थ स्व-रूप से है और पर-रूप से नहीं। पररूप से नहीं वह भी पदार्थ उसके रूप से है और पररूप से नहीं, इसलिए कोई पदार्थ पर को स्पर्श करे और पर का रक्षण करे या मारे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात तो कभी सुनने को मिलती नहीं। जाना कहाँ बेचारे को? आहाहा! ऐसी बात है।

भवभव का सुख वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... आहाहा! यह छूटा वह छूटा, अब मुझे राग होनेवाला नहीं है, ऐसा कहते हैं। मेरा नाथ भगवान वीतरागदेव ने जो आत्मा कहा, तीन लोक के नाथ अरिहन्त ने जो आत्मा कहा, उसमें कोई राग-द्वेष मोह है नहीं। नवतत्त्व में पुण्य-पाप, आस्रव-बन्धतत्त्व भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। नव तत्त्व में ज्ञायक जाननहार भिन्न है। पुण्य-पाप, राग-द्वेष, वह भिन्न

तत्त्व है। भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा मैं मानता हूँ और अनुभव करता हूँ तो मैं राग-द्वेष को छोड़ता हूँ। आहाहा! ऐसी बात आयी। है?

मैं आत्मशक्ति से नित्य... वापस ऐसे। अशुभ को छोड़ना और शुभ को करूँ, ऐसा नहीं। शुभ और अशुभ दोनों विकार हैं। आहाहा! दोनों को छोड़ता हूँ। आहाहा! है? **(और) जिसका निज विलास प्रगट हुआ है,...** भगवान आत्मा वस्तु है, सत्ता है, मौजूदगी चीज़ है तो उसका स्वभाव भी सत्ता त्रिकाल है। वह त्रिकाल वस्तु है तो स्वभाव भी त्रिकाल है। उस त्रिकाल वस्तु के विलास में... आहाहा! **निज विलास प्रगट हुआ है,...** यह जो राग में मैं सुख मानता था, पुण्य में सुख मानता था, वह सब नाश होकर निज विलास प्रगट हुआ। अपने आनन्द का स्वरूप भगवान, उस पर नजर करने से आनन्द का विलास पर्याय में-दशा में प्रगट हुआ। आहाहा! अति संक्षिप्त में बहुत भरा है।

जो सहज परम सौख्यवाला है... प्रभु कौन है? स्वाभाविक आनन्दस्वरूप आत्मा है। यह तो तुम्हारे भोग, स्त्री, पुत्र, पैसा। तुम कल्पना करके भोग में सुख माने, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! जहर का प्याला पीवे और माने कि हम सुखी हैं। दुःखी है, जहर है। अमृत का सागर तो भगवान आत्मा है। आहाहा! है? देखो न! **जो सहज परम सौख्यवाला है...** आत्मा। स्वाभाविक परम सुख... स्वाभाविक परम सुख। आहाहा! यहाँ तो जरा जहाँ चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूरपाक मिला और उसमें पतरवेलिया मिले, अरबी के पान आते हैं न? तेल में ऐसे टुकड़े करके तले और लड्डू... आहाहा! अन्दर से उत्साह आ जाए। मानो अन्दर क्या खाता हूँ? धूल खायी है। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव। **परम सौख्यवाला है...** अन्दर है? आत्मा का स्वभाव परम सौख्यवाला है। **तथा जो चैतन्यचमत्कारमात्र है,...** आहाहा! और वह चैतन्यचमत्कारमात्र है। चमत्कार है। अपने क्षेत्र में रहकर सर्व को जाने, पर की अपेक्षा बिना सर्व को जाने, ऐसा चैतन्यचमत्कार है। आहाहा! **चैतन्यचमत्कारमात्र है, उसका (-उस आत्मतत्त्व का) मैं सर्वदा अनुभवन करता हूँ।** आहाहा! राग का अनुभव नहीं। विकार के अनुभव में भवताप मिलेगा। जिसमें दुःख मिलेगा। आहाहा! इसलिए उसे छोड़कर **मैं सर्वदा...** सर्वदा **अनुभवन करता हूँ।** आत्मा आनन्द है, सुख है, उसका मैं अनुभव करता हूँ। यह धर्म और यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१९८

(पृथ्वी)

निजात्मगुणसम्पदं मम हृदि स्फुरन्तीमिमां,
समाधि-विषया-महो क्षण-महं न जाने पुरा।
जगत्त्रितय-वैभव-प्रलयहेतु-दुःकर्मणां,
प्रभुत्वगुणशक्तितः खलु हतोऽस्मि हा सन्सृतौ।।१९८।।

(वीरछन्द)

मम उर में स्फुरित अहो निज आत्म गुणों का यह वैभव।
मैंने नहिं जाना अनादि से जो समाधि का परम विषय॥
रे! त्रिभुवन के वैभव के क्षयकारक ये दुष्कर्म महान।
इनकी ही प्रभुत्व शक्ति से हुआ जगत में मैं हैरान॥१९८॥

श्लोकार्थ : अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुणसम्पदा को-कि जो समाधि का विषय है उसे – मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना। वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुणशक्ति से (–दुष्ट कर्मों के प्रभुत्वगुण की शक्ति से), अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ (–हैरान हो गया हूँ)।।१९८।।

प्रवचन-१४१, श्लोक-१९८-२००, गाथा-१२२, रविवार, ज्येष्ठ कृष्ण ३, दिनांक ०१-०६-१९८०

निश्चयप्रायश्चित्त अधिकार। शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार। १९८ कलश।

निजात्मगुणसम्पदं मम हृदि स्फुरन्तीमिमां,
समाधि-विषया-महो क्षण-महं न जाने पुरा।
जगत्त्रितय-वैभव-प्रलयहेतु-दुःकर्मणां,
प्रभुत्वगुणशक्तितः खलु हतोऽस्मि हा सन्सृतौ।।१९८।।

श्लोकार्थ : अहो! मुनिराज स्वयं कहते हैं **मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुणसम्पदा को-कि जो समाधि का विषय है...** आहाहा! अन्तर का विषय है।

अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान... प्रगट **इस निज आत्मगुणसम्पदा को—कि जो...** आहाहा! **समाधि का विषय है...** आहाहा! अन्तर समाधि। मन-वचन-काया के विकल्परहित निर्विकल्प समाधि का विषय यह आत्मा है। यह आत्मा राग, पुण्य और व्यवहार का विषय नहीं है। आहाहा! निर्विकल्प / रागरहित ऐसा आत्मा, उसका विषय है। उसे **मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना।** अरेरे! अनन्त काल हुआ। एक क्षण में मैंने यह नहीं जाना। महा सम्पदावन्त प्रभु अन्दर पड़ा है, वह निर्विकल्प समाधि का विषय है, उस विषय को मैंने अनन्त काल में कभी किया नहीं। आहाहा! दूसरे क्रियाकाण्ड के कुटारा में यह पड़ा रहा। आहाहा!

मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना। वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! निमित्त से कथन करते हैं। **तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुणशक्ति से (—दुष्ट कर्मों के प्रभुत्वगुण की शक्ति से),...** दुष्टकर्मों के प्रभुत्वगुण शक्ति से, **अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ...** अभी तक अनन्त काल.. कर्म का लक्ष्य करके, मूल तो ऐसा (कहना है)। कर्म का लक्ष्य करके कुकुर्म के जोर से इस कर्म की प्रभुता अर्थात् उसकी ओर का जो, उस प्रभुता से मैं मारा गया हूँ। अनन्त काल में मेरा जीवन चैतन्य आनन्द, वह उसके कारण हाथ नहीं आया। आहाहा! है?

(—दुष्ट कर्मों के प्रभुत्वगुण की शक्ति से), अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ (—हैरान हो गया हूँ)। कर्म का तो निमित्त से कथन है। परन्तु मेरा जो विषय है, उस पर दृष्टि नहीं देकर, पर के ऊपर दृष्टि दी, ऐसा कहना है। जो आत्मा आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप है, उसका विषय जो निर्विकल्प का विषय दृष्टि का जो विषय है, वह अनादि से नहीं किया और कर्म के अन्दर के लक्ष्य के जोर से हैरान.. हैरान होकर चौरासी लाख के अवसर में मैं मर गया। आहाहा! बड़ा अरबोंपति सेठ भी मरते हुए राग की एकता में मरकर दुर्गति में जाता है। आहाहा! यहाँ लाखों रुपये का पलंग हो, उसमें सोता हो, अरबों रुपये हों और लड़के सब... अच्छे.. आत्मा का विषय जिसने किया नहीं, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा को विषय बनाया नहीं, जिसने अन्तर्मुख होने का (कार्य) किया नहीं, वह बहिर्मुख कर्म के लक्ष्य से मर गया है, मर गया है। अनादि से हैरान हो गया है। आहाहा!

मैं संसार में मारा गया हूँ (—हैरान हो गया हूँ)। आहाहा! देखो, यह भूतकाल याद किया। गत काल में कहाँ-कहाँ भटका.. ओहोहो! वहाँ तो कुछ था नहीं। आत्मा का तत्त्व

था नहीं और बाहर में उसका कुछ नहीं... राग और द्वेष के फलरूप से संयोग (प्राप्त किये)। नारकी में संयोग का दुःख नहीं है क्योंकि संयोग उसे स्पर्श नहीं करते परन्तु संयोग पर लक्ष्य होने के कारण दुःखी है। उसका झुकाव ऐसा झुकाव है। संयोग तो स्पर्श भी नहीं करते। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तो स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तो वह जीव भी अपने स्वभाव को भूलकर जो प्रतिकूल शीत और उष्ण संयोगों के लक्ष्य में मर गया है। आहाहा! उसके लक्ष्य से हैरान हो गया है। यहाँ यही कहा। कुकर्म ने हैरान किया, इसका अर्थ उस कुकर्म के लक्ष्य से मैं हैरान हो गया। मेरे अपराध से हैरान हो गया हूँ, ऐसा कहा।

श्लोक-१९९

(आर्या)

भवसम्भवविषभूरुहफलमखिलं दुःखकारणं बुद्ध्वा।
आत्मनि चैतन्यात्मनि सञ्जातविशुद्धसौख्यमनुभुञ्जे।।१९९।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारि-देवविरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्ताधिकारः अष्टमः श्रुतस्कन्धः।

(वीरछन्द)

भवोत्पन्न विषतरु के फल सब ही हैं दुख के कारण जान।
चेतन में उत्पन्न विशुद्ध सौख्य का अनुभव करूँ महान॥१९९॥

श्लोकार्थ : भवोत्पन्न (-संसार में उत्पन्न होनेवाले) विषवृक्ष के समस्त फल को दुःख का कारण जानकर मैं चैतन्यात्मक आत्मा में उत्पन्न विशुद्धसौख्य का अनुभवन करता हूँ।।१९९।।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार नाम का आठवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-१९९ पर प्रवचन

१९९ (श्लोक)

भवसम्भवविषभूरुहफलमखिलं दु:खकारणं बुद्ध्वा।
आत्मनि चैतन्यात्मनि सञ्जातविशुद्धसौख्यमनुभुञ्जे।।१९९।।

श्लोकार्थ : क्या कहते हैं? **भवोत्पन्न (–संसार में उत्पन्न होनेवाले)**... चाहे तो नारकी हो, चाहे तो देव हो परन्तु संसार में उत्पन्न होनेवाले। क्या? **विषवृक्ष के समस्त फल को**... जहर के फल को भोगा। आहाहा! चाहे तो अरबोंपति सेठ में उत्पन्न हुआ, चाहे तो देव में उत्पन्न हुआ या चाहे तो नरक में उत्पन्न हुआ या निगोद में उत्पन्न हुआ... आहाहा! परन्तु वहाँ तो **विषवृक्ष के समस्त फल को दु:ख का कारण जानकर**... आहाहा! उस जहर का दु:ख जहर समान है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, जो पर की ओर के झुकाववाला भाव जहर है। उसे छोड़कर अब **विषवृक्ष के समस्त फल को दु:ख का कारण जानकर**... परन्तु उन्हें दु:ख का कारण जानकर। जाने बिना नहीं। आहाहा! यह तो परवस्तु जहाँ अनुकूल हुई हो, वहाँ सुखी मानता है। शरीर ठीक होवे तो सुख माने, स्त्री ठीक होवे, पैसा ठीक होवे, दुकान चलती हो, धन्धा चलता हो, पाँच-दस हजार के वेतन की नौकरी अच्छी मिली हो तो हम सुखी हैं। जहर का फल है। आहाहा!

मुमुक्षु : लौकिक मान्यता में अन्तर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पूरा अन्तर, पूरा अन्तर है। दुनिया माने पैसेवाले को..

यहाँ तो प्रभु कहते हैं तू, आत्मा के अन्तर विषय के अतिरिक्त बाहर के किसी भी विषय में अटकना और देखने में अटकना, वह जहर का वृक्ष है। उसे मैं छोड़कर.. आहाहा! उसे मैं छोड़कर, कहा न? आहाहा! **विषवृक्ष के समस्त फल को दु:ख का कारण जानकर मैं चैतन्यात्मक आत्मा में उत्पन्न**.. आहाहा! चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, जाननस्वभाव आत्मा। उसे मैं... आहाहा! **उत्पन्न विशुद्धसौख्य का अनुभवन करता हूँ।** आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। वह परसन्मुख के जहर का लक्ष्य छोड़कर मैं तो आत्मा का अनुभव करता हूँ। उसमें सुख और शान्ति है, अन्यत्र कहीं सुख और शान्ति नहीं है। आहाहा! यह अधिकार पूरा हो गया।

— ९ —
परम समाध्यधिकारः

गाथा - १२२

अथ अखिलमोहरागद्वेषादिपरभावविध्वन्सहेतुभूतपरमसमाध्यधिकार उच्यते।

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स।।१२२।।

वचनोच्चारणक्रियां परित्यक्त्वा वीतरागभावेन।
यो ध्यायत्यात्मानं परम-समाधिर्भवेत्तस्स।।१२२।।

परमसमाधिस्वरूपाख्यानमेतत्। क्वचिदशुभवञ्चनार्थं वचनप्रपञ्चाञ्चितपरमवीतराग-सर्वज्ञस्तवनादिकं कर्तव्यं परमजिनयोगीश्वरेणापि। परमार्थतः प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवाग्विषय-व्यापारो न कर्तव्यः। अत एव वचनरचनां परित्यज्य सकलकर्मकलङ्कपङ्कविनिर्मुक्तप्रध्वस्तभाव-कर्मात्मकपरमवीतरागभावेन त्रिकालनिरावरणनित्यशुद्धकारणपरमात्मानं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्म-ध्यानेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वरूपनिरतपरमशुक्लध्यानेन च यः परमवीतरागतपश्चरणनिरतः निरुपरागसंयतः ध्यायति, तस्य खलु द्रव्यभावकर्मवरूथिनीलुण्टाकस्य परम-समाधिर्भवतीति।

अब समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों के विध्वंस के हेतुभूत परम-समाधि अधिकार कहा जाता है।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे॥१२२॥

अन्वयार्थ : [वचनोच्चारणक्रियां] वचनोच्चारण की क्रिया [परित्यक्त्वा] परित्याग कर [वीतरागभावेन] वीतरागभाव से [यः] जो [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [परमसमाधिः] परम समाधि [भवेत्] है।

टीका : यह, परम समाधि के स्वरूप का कथन है।

कभी *अशुभवंचनार्थ वचनविस्तार से शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का स्तवनादि

---

* अशुभवंचनार्थ=अशुभ से छूटने के लिए; अशुभ से बचने के लिए; अशुभ के त्याग के लिए।

परम जिनयोगीश्वर को भी करनेयोग्य है। परमार्थ से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। ऐसा होने से ही, वचनरचना परित्याग कर जो समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं, ऐसे भाव से—परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन, निरुपराग (निर्विकार) संयमी ध्याता है, उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है।

गाथा-१२२ पर प्रवचन

अब नौवाँ समाधि अधिकार। परम समाधि अधिकार

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स।।१२२।।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे॥१२२॥

आहाहा! ऐसे समाधि शब्द तो लोगस्स में भी आता है। श्वेताम्बर में '**लोगस्स उज्जोअगरे**' उसमें आता है। '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु अर्थ की किसे खबर है। मुखाग्र हो वह हाँके जाते हैं। '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहिंय पयासयरा:**' लोगस्स में आता है। तिखतो और पाठ... करे न? आहाहा! उसमें यह आता है। नमोत्थुणं यहाँ कहते हैं। **वचनोच्चारण की क्रिया...** आहाहा! वचन की उच्चारण की क्रिया वह जड़ है। टीका, टीका ही लेते हैं।

टीका : यह, परम समाधि के स्वरूप का कथन है। कभी अशुभवंचनार्थ... क्या कहते हैं? किसी समय, कभी अशुभवंचनार्थ-अशुभ को टालने के लिए शुभभाव आता है। पुण्य का बन्धन है, वह शुभभाव आता है। समकिती को और आत्मज्ञानी को भी अशुभवंचनार्थ-अशुभ को छोड़ने के लिए शुभभाव आता है परन्तु शुभभाव बन्धन है, धर्म नहीं। आहाहा! **कभी अशुभवंचनार्थ वचनविस्तार से शोभित...** आहाहा! **परमवीतराग**

सर्वज्ञ का स्तवनादि... तीर्थंकरदेव का स्तवन, स्तुति, गुणगान वचन द्वारा आता है। वह अशुभ टालने के लिए आता है, वह धर्म के लिए आता है – ऐसा नहीं है। आहाहा! वह शुभभाव धर्म है, ऐसा नहीं है। ***अशुभवंचनार्थ=अशुभ से छूटने के लिए; अशुभ से बचने के लिए; अशुभ के त्याग के लिए।*** आहाहा! **शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का स्तवनादि परम जिनयोगीश्वर को भी...** परम जिनयोगीश्वर को भी अशुभ वंचनार्थ शुभभाव आता है परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! भगवान की स्तुति, स्तवन, गुणग्राम...

मुमुक्षु : वह करनेयोग्य है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करनेयोग्य व्यवहार से है। निश्चय से छोड़नेयोग्य है। निश्चय दृष्टि सहित अशुभ को टालने के लिए यह भाव आता है परन्तु भाव है, वह बन्धन का कारण कहा है। वह पुण्य का भाव बन्धन का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! है ?

परम जिनयोगीश्वर को भी... समकिती को तो आवे, पाँचवें (गुणस्थानवर्ती) को आवे। भगवान का स्तवन, गुणग्राम, वीतराग आदि का स्तवन... आहाहा! **भी करनेयोग्य है।** इस अपेक्षा से करनेयोग्य है। अशुभ टालने के लिए करने योग्य है। व्यवहार डाला है। **परमार्थ से...** अब आया। **परमार्थ से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** वास्तव में तो शुभभाव... प्रशस्त अर्थात् शुभभाव, अप्रशस्त अर्थात् अशुभभाव, वह **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** पहले व्यवहार से करनेयोग्य कहा था, परन्तु निश्चय से वह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! पहले तो कहा, परमजिनयोगीश्वर को भी अशुभ टालने के लिए शुभ आता है। शुभ होता है। शुभ तो सब मुनियों को होता है परन्तु **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** आहाहा! एक ओर करनेयोग्य कहा और दूसरी ओर करनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहा। व्यवहार से करनेयोग्य है, निश्चय से करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। वह तो राग है।

वे बेचारे सबेरे आये थे, वे कहते थे कि राग से तो भिन्न आत्मा है। ऐसा करके बताया था। शास्त्र सब पढ़े हैं। समयसार, प्रवचनसार, दूसरे सब शास्त्र पढ़े हैं। बहिनश्री के वचनामृत सब पढ़ा है। परन्तु उसमें यह अन्तिम सार है। राग से आत्मा भिन्न है। नरम व्यक्ति था। साढ़े तीन, साढ़े चार... आ सके नहीं। बाहर का प्रतिबन्ध...

अशुभ को टालने के लिए, कुस्थान से बचने के लिए देव, गुरु, शास्त्र की स्तुति का शुभभाव आता है। स्तुति और गुण का (शुभभाव) आता है परन्तु परमार्थ से...

आहाहा! भला और बुरा दोनों भाव **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** यह वचनसम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! क्योंकि वचनसम्बन्धी व्यापार में शुभराग है। शुभराग। स्तुति करे, श्रवण करे, गुणग्राम करे, भक्ति करे, उसमें तो शुभराग है। वह शुभराग अशुभ टालने के लिए करनेयोग्य है, ऐसा कहा। अशुभ टालने के लिए करनेयोग्य है परन्तु निश्चय से तो दोनों छोड़ने योग्य हैं।

दो सिद्धान्त कहे। अशुभ से वंचनार्थ करनेयोग्य है। आहाहा! अशुभभाव में न जाए, इससे उसे शुभभाव आता है परन्तु वचन सम्बन्धी समस्त व्यापार वह बन्ध का कारण जानकर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! भगवान की बड़ी स्तुतियाँ करते हैं न? श्वेताम्बर में तो बहुत करते हैं। स्तुति... क्या कहलाता है वह? आहाहा!

कहते हैं कि कदाचित्... कदाचित् है, हों! पाठ देखा, **कभी...** है न? सदा नहीं। **कभी अशुभवंचनार्थ...** भगवान की स्तुति आदि का भाव तो योगीश्वर को भी आता है। वह तो एक ज्ञान कराया है। आहाहा! परन्तु **प्रशस्त-अप्रशस्त...** शुभराग और अशुभराग। **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। ऐसा होने से ही, वचनरचना परित्याग कर...** आहाहा! वचन रचना को छोड़कर। आहाहा! **जो समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है...** भगवान तो वचन रचना को परित्यागकर **समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से...** यह शुभ-अशुभ तो सब कर्म है। भगवान तो इससे-कादव से रहित है। यह शुभ-अशुभ तो कादव है। आहाहा! यह शुभ-अशुभ कादव, **कीचड़ से विमुक्त है...** प्रभु चैतन्य जिनस्वरूप अन्दर है। वह तो इनसे भिन्न है। आहाहा! विमुक्त है। अन्दर कीचड़ से विमुक्त है।

और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं... जिसमें से पुण्य और पाप के परिणाम, इसका नाम भावकर्म, वह भावकर्म जिसका नाश हुआ है। **ऐसे भाव से—परम वीतरागभाव से...** ऐसे भाव से अर्थात् परम वीतरागभाव से। आहाहा! वचन का व्यापार, वह रागभाव है; जबकि आत्मा की ओर जाने के लिए वीतरागभाव है। आहाहा! वह भी **परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा को...** आहाहा! **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध...** प्रभु। वह तो अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यद्रव्य अन्दर पड़ा है। वह तो पर्याय-अवस्था में विकार दिखता है। वस्तु में तो कुछ है नहीं। वस्तु तो त्रिकाल निरावरण है, परन्तु उस ओर दृष्टि नहीं की और क्रियाकाण्ड में रुक गया। क्रियाकाण्ड को विषय बनाया, भगवान को (विषय) नहीं बनाया। आहाहा! सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण

करो, परन्तु सम्यक्त्व के बिना सामायिक, प्रोषध आये कहाँ से ? वस्तु की तो खबर नहीं और वस्तु की खबर बिना समता आवे कहाँ से ? सामायिक में तो समता का लाभ चाहिए। समता का लाभ तो तब आवे कि वीतरागमूर्ति, वचन और काया की क्रिया से भिन्न है, उसका ध्यान में, ज्ञान में प्रतीति हो, पश्चात् उसमें स्थिरता हो तो सामायिक हो। आहाहा!

यह जामनगर में हुआ था (संवत्) १९८१ के वर्ष। पहले गये थे जामनगर। लोकाशा के उपाश्रय में उतरे थे। बहुत लोग आते थे... उसमें वारिया, वीरजीभाई के पिता ताराचन्दभाई, यह बात सुनी। कहा, शुभ और अशुभभाव बन्ध का कारण है। १९८२ के वर्ष की बात है। कितने हुए ? लोकाशा का उपाश्रय है, वहाँ उतरे थे और वे आवे जल्दी। प्रोषध करना हो तो सवेरे आवे। रात्रि में एक घण्टे पहले। फिर यह बात सुनते ही... क्योंकि वह तो यही बात मानी हुई और यह कही हुई। वे सूत्र पढ़ते। सूत्र साधू को पढ़ाते। ताराचन्द वारिया, वीरजीभाई के पिता। वे कहे, परन्तु यह तुम (कहते हो), मन, वचन, काया की क्रिया धर्म नहीं है ? यह क्या ? कहा, पढ़ो। तुम्हारा ज्ञानसागर 'पूनातर ' की ओर से प्रकाशित हुआ है। ज्ञानसागर है, वह पूनातर की ओर से प्रकाशित हुआ है, तब का है। ज्ञानसागर। उसमें क्या लिखा है ? कि मन, वचन, काया के भाव से पुण्य नामकर्म बँधता है, धर्म नहीं; इसलिए फिर मौन रह गये। फिर तो वहाँ सुना। 'चेला' गये थे। साथ में 'चेला' है न ? वहाँ भी आये थे। परन्तु यह बात यह प्ररूपणा सब करते हैं। मन, वचन, काया की शुभ की क्रिया करो। कहा, पाठ देखो। नामकर्म के चार कारण से पुण्य नामकर्म बँधता है। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता और किसी के साथ झगड़ा नहीं। इन चार बोल से नामकर्म बँधता है। पाठ है, कहा। ज्ञानसागर में, पूनातर की ओर से प्रकाशित हुआ है तुम्हारे गाँव से। पढ़ो। मौन रह गये। यही चला है। लोगों को निवृत्ति कहाँ है। आहाहा! अनन्त काल से पुण्य और क्रिया, बहुत तो पाप छोड़कर पुण्य की क्रिया (करे), वह धर्म। जिन्दगी निष्फल, जाओ नरक और निगोद। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! त्रिकाल निरावरण भगवान अन्दर है। वह नित्य है, वह शुद्ध है। आहाहा! **कारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित...** आहाहा! वह कारणपरमात्मा है। कौन ? यह सब आत्मा, हों! आहाहा! सब आत्मा अन्दर में कारणपरमात्मा हैं क्योंकि उसके आश्रय से कार्यपरमात्मा / अरिहन्त परमात्मा उस कारणपरमात्मा के आश्रय से होते हैं। अन्दर कारणपरमात्मस्वरूप है, उसकी एकाग्रता करने से कार्यपरमात्मा केवली होते हैं। आहाहा! है ?

त्रिकाल-निरावरण... वापस यह कैसी चीज़ है ? आत्मद्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। त्रिकाल निरावरण है। वस्तु में आवरण नहीं है। वह तो एक समय की हालत है, उसमें राग का सम्बन्ध है। कर्म का-निमित्त का सम्बन्ध उसमें है। वस्तु तो त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! **परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध...** त्रिकाल शुद्ध। त्रिकाल निरावरण, ऐसा त्रिकाल शुद्ध प्रभु है। आत्मा जो है, वह तो अन्दर त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! कारणपरमात्मा, वह कारणपरमात्मा है। आहाहा! सबके आत्मा की बात है, हों! सब आत्मा अन्दर भगवान हैं, कारणपरमात्मा हैं। कैसे जँचे ? कार्यपरमात्मा केवलज्ञान होता है। भगवान को, अरिहन्त को तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान, अनन्त आनन्द (प्रगट होता है) वह सब आया कहाँ से ? बाहर कुछ लटकता है तो आवे ? अन्दर में भरा है, पूर्ण भरा है। पूर्ण परमात्मा स्वयं है, कारणपरमात्मा है। आहाहा!

यह प्रश्न वारिया ने किया था। वीरजीभाई का त्रिभुवन है न ? वीरजी वकील का त्रिभुवन। उसने कहा, महाराज! यह कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारण होवे तो कार्य तो आना चाहिए। यदि कारणपरमात्मा कहते हो तो कार्य तो आना चाहिए। कहा, परन्तु कारणपरमात्मा जिसे माने उसे या न माने उसे ? जिसने, कारणपरमात्मा है-ऐसा माना, उसे कार्य सम्यक्त्व हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! है, परन्तु माना कब है ? सुनने में कठिनाई पड़ी है। आहा! तलाटी! यह अलग प्रकार की बात है। आहाहा! वह त्रिभुवनभाई है न ? उसने प्रश्न किया था। वीरजीभाई का लड़का है। तुम कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारणपरमात्मा में कारण है तो कार्य आना चाहिए। परन्तु कार्य किसे आवे ? कारणपरमात्मा है, अस्ति है, सत्ता है-ऐसा स्वीकार हो, उसे कार्य आता है। कारणपरमात्मा पर नजर भी न हो, श्रद्धा न हो, राग पर और पर्याय पर श्रद्धा और कारणपरमात्मा का कार्य आवे, वह किस प्रकार आवे ? न्याय-लॉजिक से बात को समझोगे या नहीं ? आहाहा!

अन्तर कारणपरमात्मा वस्तु आत्मा है, परन्तु वह है, यह स्वीकार करे, माने, विश्वास में ले, प्रतीति में ले, अनुभव में ले, तब इसे समकित हुए बिना रहता ही नहीं। उसका-कारण का कार्य आये बिना रहता ही नहीं परन्तु कारण को स्वीकार करे तब न ? कारण का स्वीकार कहाँ है ? स्वीकार सब बाहर का है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, बाहर की धूल में रुक गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब धन्धा छोड़ दे तो निभे कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में सब है ही नहीं। आहाहा! स्वयं तो करे। दूसरे का क्या काम है? एक बार नहीं कहा था (संवत्) १९७८ के वर्ष, चूड़ा में व्याख्यान होता था। पहले से १९७४ के वर्ष से व्याख्यान चलता है न, हजारों लोग, गाँव-गाँव में लोग बहुत आते हैं। बाजार में दरवाजा है। वहाँ एक पुलिसवाला बैठा था। पुलिस सुनता है, सुनते हुए उसने फिर प्रश्न किया, महाराज! यह सब तुम त्यागी-त्यागी हो जाओ, फिर तुम्हें रोटी देनेवाला कौन रहेगा? १९७८ के वर्ष की बात है। आहाहा! २२ और ३६ कितने वर्ष हुए? - ५८ वर्ष हुए। व्याख्यान तो १९७४ के वर्ष से चलता है न, ठेठ से। आहाहा!

मैंने कहा, भाई! करोड़पति होना चाहे, वह ऐसा विचार करे कि मैं करोड़पति होऊँ तो फिर बर्तन साफ करनेवाला मजदूर कैसे रहेगा? सब करोड़पति होवें तो। ऐसा कोई विचार करता है? मैं करोड़पति होऊँ तो दूसरे भिखारी नहीं रहें, बर्तन साफ करनेवाले नहीं रहें, ऐसा विचार कभी किया है? यह तो भ्रम है। स्वयं भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका भान होने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है, आनन्द का स्वाद आता है और जन्म-मरण मिट जाते हैं। सबको मिट जाते हैं, ऐसा है? आहाहा!

वचनसम्बन्धी **भावकर्म नष्ट हुए हैं ऐसे...** भाव से, परमवीतरागभाव से, वापस ऐसा। वह यह कारणपरमात्मा ज्ञात कैसे हो? कहते हैं कि भावकर्म नष्ट (करने से)। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव को नष्ट करने से... आहाहा! और परमवीतरागभाव को उत्पन्न करने से। आहाहा! परमवीतरागभाव को उत्पन्न करने से **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध...** तीनों काल निरावरण भगवान आत्मा अन्दर है और नित्य है और शुद्ध है। उस **कारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित...** उसका आश्रय करे, उसे निश्चय धर्मध्यान होता है। आहाहा! वह परमात्मा जो त्रिकाल निरावरण, अखण्ड, नित्य, वीतरागभाव से ही वह ज्ञात हो, ऐसा है। रागभाव से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक-एक गाथा में... **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** पर के आश्रय से हो, वह निश्चयधर्मध्यान है ही नहीं। वह पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान आत्मा स्व आत्मा के आश्रय से-अवलम्बन से-आधार से-जो परिणाम प्रगट होते हैं, वह धर्मध्यान है। आहाहा! इसलिए बात में बहुत अन्तर लगता है।

वस्तु तो यह है। अनन्त काल गया परन्तु इसने इस चीज़ को ध्यान में, ज्ञान पर बात ली नहीं। ज्ञान पर यह बात ही नहीं ली। आहाहा! जिस ज्ञान पर बात नहीं ली, वह ज्ञान

अन्तर में कैसे झुक सकेगा ? क्या कहा, समझ में आया ? जिसने वर्तमान ज्ञान पर भी, यह बात ऐसी है-ऐसा ध्यान पर नहीं लिया... आहाहा ! वह ज्ञान आत्मा की ओर कैसे झुक सकेगा ? वह तो राग की ओर झुककर संसार में भटकेगा। आहाहा ! देवीलालजी ! श्वाँस चढ़ जाये ऐसा है। थकान उतर जाये ऐसा है। आहाहा ! भाषा कैसी की है !

शुभ-अशुभभाव को नष्ट करके, परम वीतरागभाव से त्रिकाल निरावरण नित्य शुद्ध कारणपरमात्मा का स्वाश्रय लेकर... आहाहा ! स्व-आश्रय लेकर आया न ? **निश्चयधर्मध्यान से...** आहाहा ! इस निश्चयधर्मध्यान से **तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से...** यह दूसरी बात। पहले धर्मध्यान कहा, दूसरा शुक्लध्यान। आहाहा ! **शुद्धकारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान...** अभी यह शुक्लध्यान नहीं है। **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक...** टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत्। ज्ञायक प्रभु अन्दर जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. आहाहा !

एक स्वरूप में... ज्ञायकस्वभाव एक स्वरूप है, उसमें द्विविधा नहीं है। उसमें द्विविधा अर्थात् द्रव्य और पर्याय दो भेद भी नहीं हैं। आहाहा ! अकेला ज्ञायक चैतन्य बिम्ब प्रभु ! आहाहा ! ऐसी बात ! जैन में जन्मे उन्हें भी कान में नहीं पड़ती तो अन्य को तो बेचारे को कहाँ सत्य बात (कान में पड़े) ? सब फेरफार बहुत, भाई ! यह तो बहुत वर्ष से तो कहते आये हैं न ! आहाहा ! कितनों को निश्चय लगता है-यह तो निश्चय है, यह तो एकान्त निश्चय है। व्यवहार आता नहीं। व्यवहार आता नहीं कहा नहीं ? अशुभ वंचनार्थ किसी समय व्यवहार आता है और वह करनेयोग्य है, ऐसा भी कहा। किसी समय (अर्थात्) सदा नहीं। सदा करनेयोग्य होवे तो इन शुभाशुभ विकल्पों से छूटकर वचन का सम्बन्ध छोड़कर अन्तर में स्व-आश्रित जाना, कारणपरमात्मा नित्य शुद्ध जो भगवान, उसका आश्रय लेकर अन्दर जाना। आहाहा ! वह पुण्य के वचन के विकल्प का आश्रय न लेना। आहाहा ! ऐसा मार्ग।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से... शाश्वत् ज्ञायकस्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान। लीन-एकाकार। धर्मध्यान में थोड़ा लीन है। शुक्लध्यान में विशेष (लीन है)। **जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन,...** उस परमवीतरागभाव में लीन। वह परमवीतरागभाव, वह तपश्चर्या। आहाहा ! रागभाव, वह अतपस्या और राग से आत्मा भिन्न पड़कर वीतरागभाव से लीन हो, वह

तपश्चरण, वह आत्मा की तपस्या है। बाकी आत्मा के वीतराग की ओर झुकाव बिना जो तपस्या (करे), वह सब लंघन है। आहाहा! **परमवीतराग तपश्चरण में...** भाषा कैसी ली है। **परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण...** आहाहा! यह शुक्लध्यान, वह परम तपस्या है। आहाहा! तपस्या का अर्थ स्वरूप की शुद्धि की वृद्धि होना और अशुद्धि का नाश होना, इसका नाम तपस्या है। यह तो अभी आत्मा की तो खबर नहीं होता कि आत्मा कौन है ? तपस्या करने लग पड़े। वर्षीतप और... आहाहा! **परमवीतराग तपश्चरण...** भाषा कैसी है! परमवीतरागभाव, वह तपस्या है। आहाहा! राग, वह अतपस्या है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग (होवे)। अपवास करके अपवास करता हूँ, ऐसा राग वह तपस्या नहीं है। आहाहा! मैंने छठ किया, मैंने अट्ठम किया, मैंने आठ दिन अपवास किये। वह तो विकल्प / राग है। राग, वह तपस्या नहीं है। उसमें स्वात्मा का आश्रय नहीं है। आहाहा! जिसमें स्वात्मा का आश्रय नहीं, उसे धर्मध्यान नहीं है। उग्ररूप से स्वात्मा का आश्रय ले, उसे शुक्लध्यान है। आहाहा! ऐसी बात है। यह समाधि अधिकार है।

लोगस्स में आता है, लोगस्स में नहीं ? मुखाग्र किया हो तो। **'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'** लोगस्स में आता है। यह तो दस वर्ष की उम्र से किया हुआ है, यह तो (अभी तो) ९१ वर्ष हुए। ८१ वर्ष से नवकार किया। नवकार तिक्खुत्तो यह सब। हमारे उमराला में पाठशाला चलती थी। एक अन्ध सोमचन्द भगत थे। वे पढ़ाते थे। तब, हों! उस दिन से यह सब परीक्षा देते थे। सामायिक, प्रतिक्रमण सब। आहाहा! प्रतिक्रमण वहाँ दुकान पर मैं पालेज में कराता था। पर्यूषण में आठ दिन, हों! फिर कुछ नाम-बाम नहीं। आठ दिन पर्यूषण होवे तो शाम को सब इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करे और मानो हो गया धर्म। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्यात्व बड़ा पाप है, यह गया नहीं। राग करते हुए धर्म होता है, यह मिथ्यात्व है, महापाप। यह नरक और निगोद का मूल है। मिथ्यात्व ही संसार है। आता है न ? मिथ्यात्व, यह भटकने का संसार है। बहुत जगह अर्थ आता है। आहाहा! मिथ्यात्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। यह राग की क्रिया, वचन की, वाणी की..

मुमुक्षु : अपने धर्म में न हो वे सब मिथ्यादृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब मिथ्यादृष्टि परन्तु जैनधर्म में रहे हुए हों, बाड़ा में पड़े हों, वे तुम मिथ्यादृष्टि हो। आहाहा!

अन्तर में राग से रहित स्वाश्रय करे, उसे जघन्य श्रेणी का निश्चयधर्मध्यान होता है और उत्कृष्टरूप से वीतरागभाव से स्वाश्रय करे, उसे शुक्लध्यान होता है। आहाहा! ऐसा तो तुम्हारे पिता रामजीभाई ने वहाँ सुना नहीं था। जाते थे, सामायिक करते और गाते। जज थे। नहीं ? कहाँ ?

मुमुक्षु : हिम्मतनगर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात थी ही नहीं। क्या करे ? वह बेचारा होशियार था। बहुत मस्तिष्कवाला था, इसका पिता रामजीभाई। परन्तु यह बात नहीं थी, क्या करे ? आहाहा! अभी भी सुनकर कितनों को तो ऐसा होता है कि ऐसा! ऐसा कब हो तब ? परन्तु ऐसा हुए बिना जन्म-मरण मिटे ऐसा नहीं है। मर जा तेरा क्रियाकाण्ड करके। अपवास और रात्रिभोजनत्याग, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, वह धर्म नहीं; वह तो शुभभाव है। आहाहा! ब्रह्मचर्य तो उसे कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द निरावरण, उसमें चरना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! प्रत्येक की व्याख्या अलग है, प्रभु! आहाहा!

पद्मनन्दि का नहीं कहा था ? पद्मनन्दि शास्त्र है। उसमें ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऐसी वर्णन की है। बहुत वर्णन की है कि तुम्हारी काया से ब्रह्मचर्य पालो, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। मन, वाणी और काया से ब्रह्मचर्य पालन करो कि हम आजीवन बालब्रह्मचारी हैं। बालब्रह्मचारी, वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह तो राग, शुभराग है। अन्तर चैतन्य आनन्दमूर्ति में रमणता करने से जो आनन्द आवे, उसे निश्चय ब्रह्मचर्य कहने में आता है। आहाहा! पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ / शास्त्र है। उसमें बहुत वर्णन किया है। (वर्णन) करके फिर ब्रह्मचर्य का बहुत वर्णन करते हुए साधारण युवक मनुष्य और जवान अवस्था, जवान स्त्री हो, जवानी में पैसा-वैसा ठीक हो, उसे ऐसी बात (ठीक न लगे) तो मुनिराज कहते हैं कि मैंने यह ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है, वह तुम्हें न रुचे तो माफ करना। मैं मुनि हूँ, मुझसे क्या लोगे ? मेरे पास है, वह आयेगा। पद्मनन्दि पंचविंशतिका में ऐसा कहा है।

हजारों शास्त्र देखे हैं। आहाहा! अन्तिम २६ वाँ अधिकार है। नाम पद्मनन्दि पंचविंशति है परन्तु २६वाँ ब्रह्मचर्य का अधिकार है, गाथाएँ थोड़ी हैं, परन्तु वर्णन बहुत है। मन-वचन-काया से ब्रह्मचर्य (पालन करे), वह ब्रह्मचर्य नहीं। आत्मा के आश्रय से जो अन्दर रमणता होती है और राग छूटता है तथा अन्दर में लीनता होती है, वह ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चर्य अर्थात् रमणता, इसका नाम ब्रह्मचर्य है; बाकी सब अब्रह्मचर्य है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। (ऐसा) वे कहते हैं न, 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक बातैं तो न मले... एक लाखे न मले, एक त्राम्बा ना तेर। बातें बातें फेर।' इस प्रकार यह बात-बात में अन्तर है। दुनिया की मान्यता और वीतराग की मान्यता में बात-बात में अन्तर है। आहाहा!

एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन,... भाषा देखो। **परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन, निरुपराग (निर्विकार) संयमी ध्याता है,...** अन्दर वस्तु को ध्यान में लिया है और ध्यान करता है। **उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले...** आहाहा! वह तो द्रव्यकर्म का-जड़ का भी नाश हो जाता है और पुण्य-पाप भावकर्म है, उसका भी स्वाश्रय-ध्यान करने से नाश हो जाता है। इसलिए वास्तविक ध्यान उस स्व का आश्रय लेना वह है। चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है। पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाल निरावरण है, अखण्डानन्द है। उसका ध्यान करने से द्रव्यकर्म और भावकर्म का नाश होता है, द्रव्यकर्म अर्थात् ज्ञानावरणी आदि जड़। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म लगे। पूरे दिन संसार का करना। संसार का करना, संसार में स्त्री-पुत्र का करना, छह-सात घण्टे सोना, वह इसमें कब निवृत्त कब हो? निर्णय करने को निवृत्त कर हो? घण्टे भर समय मिले तो जिसका जिस सम्प्रदाय में हो, वहाँ सुनने जाये तो कुगुरु उसका घण्टा भर लूट ले, उसे ऐसा कहे कि तू व्रत कर, उपवास कर और यह कर तथा वह कर। आहाहा! (निर्विकार) संयमी ध्याता है। वह ध्यान करनेवाला तो यह संयमी होता है। आहाहा!

उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है। आहाहा! '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' लोगस्स में आता है। समाधि (अर्थात्) उन बाबा की समाधि नहीं। यहाँ तो उपाधि, यह संयोग। संयोग से रहित निरुपाधि—उपाधि से रहित। अन्तर की राग की उपाधि, वह भी उपाधि। उससे रहित, मन की उपाधि से रहित, काया की उपाधि से रहित, अन्दर आत्मा और स्वभाव में एकाकार होना, वह उपाधिरहित है। आहाहा! उसके बिना तो सब उपाधि है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि **द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना...** आहाहा! पुण्य और पाप के

ढ़ेर उत्पन्न हों और कर्म के ढ़ेर बँधें। आहाहा! ऐसी **सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है।** आहाहा! आधि-व्याधि और उपाधि से रहित, वह समाधि है। आधि, व्याधि, व्याधि अर्थात् शरीर का रोग आदि। आधि अर्थात् मन में विकल्प और पुण्य-पाप के विकल्प हों वह। उपाधि, आधि, व्याधि तीन से रहित। आहाहा! उपाधि बाहर की; व्याधि शरीर की; आधि मन-विकल्प की। उपाधि, व्याधि और यह अन्तर.. क्या कहा? आधि, आधि, व्याधि, उपाधि से रहित वह समाधि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भगवान अन्दर निरावरण में जिसे उपाधि संयोगी चीज़ है स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, वह तो सब पर पर, वह उपाधि है। उससे रहित। पश्चात् व्याधि (अर्थात्) शरीर में कुछ फेरफार रहा करे तो उसका ध्यान रखा करता है। उसे ऐसे सम्हालना, उसे ऐसे सम्हालना, उसमें ऐसा सम्हालना, वह व्याधि है। आधि—अन्दर में संकल्प और विकल्प पुण्य और पाप हों, वह आधि। वह आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित, वह समाधि है। आहाहा! बातों-बातों में अन्तर है। निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती। जिन्दगी चली जाती है, मरण के नजदीक जाता है। आहाहा! देह छूटने को समय नजदीक जाता है, जो टाईम बीतता है, वह देह छूटने का टाईम निश्चित है। केवली भगवान देखते हैं और इसके आयुष्य का निश्चित है। जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से, जिस संयोग से देह छूटनेवाली है, वह छूटेगी ही। उसके छूटने का काल मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! तथापि इसे मृत्यु से पहले क्या करना है, इसकी दरकार और गरज नहीं करता। आहाहा!

श्लोक-२००

अब, इस १२२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :

(वंशस्थ)

समाधिना केनचि-दुत्तमात्मनां,
हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम्।
यावन्न विद्मः सहजात्म-सम्पदं,
न मादृशां या विषया विदामहि।।२००।।

(वीरछन्द)

उत्तम आत्माओं के उर में प्रगटरूप यह कोई परम।
अकथनीय इस परम समाधि द्वारा अनुभव करें न हम॥
जब तक समता की अनुगामी अनुपम आत्मसम्पदा का।
तब तक हम जैसों का है जो विषय न अनुभव में आता॥२००॥

श्लोकार्थ : किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के हृदय में स्फुरित होनेवाली, समता की [१]अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते, तब तक हमारे हमारे जैसों का जो [२]विषय है, उसका हम अनुभवन नहीं करते॥२००॥

श्लोक-२०० पर प्रवचन

अब, इस १२२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :

समाधिना केनचि-दुत्तमात्मनां,
हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम्।
यावन्न विद्मः सहजात्म-सम्पदं,
न मादृशां या विषया विदामहि।।२००।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा...** आहाहा! उत्तम जब तक हम अनुभव नहीं करते। मुनिराज ऐसा कहते हैं.. आहाहा! पुरुषार्थ का जोर उठाते हैं। **किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि...** वर्णन में न आवे, ऐसी समाधि। वर्णन जड़ है और समाधि चैतन्य है। शान्त और वीतराग है। आहाहा! **ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के...** उत्तम आत्मा के **हृदय में स्फुरित होनेवाली,...** प्रगट होनेवाली **समता की अनुयायिनी...** आहाहा! समता के साथ रहनेवाली **सहज आत्मसम्पदा का...** स्वाभाविक आत्मसम्पदा। आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि वह हमारा

---

१. अनुयायिनी=अनुगामिनी; साथ-साथ रहनेवाली; पीछे-पीछे आनेवाली।(सहज आत्मसम्पदा समाधि की अनुयायिनी है।)
२. सहज आत्मसम्पदा मुनियों का विषय है।

विषय है। मुनिराज कहते हैं कि हमारा विषय तो वह है। कौन?

ऐसी (–अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के हृदय में स्फुरित होनेवाली, समता की अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते, तब तक हमारे जैसों का जो विषय है,... आहाहा! मुनि कहते हैं कि मेरा विषय तो अन्दर त्रिकाली को विषय करना, वह हमारा विषय है। पुण्य और पाप तथा व्यवहार वह हमारा विषय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? धर्मात्मा का विषय अर्थात् ध्येय। परमात्मा, कारणपरमात्मा रागरहित निरावरण परमात्मा, वह धर्मी का ध्येय है। आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि अरे! हमारा विषय तो वह है। आहाहा!

समता की अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते,... छठे (गुणस्थान में) जरा विकल्प उठता है न? इसलिए कहते हैं। आत्मा में आकर उसका अनुभव जब तक नहीं करते... आहाहा! **तब तक हमारे हमारे जैसों का जो विषय है,...** तब तक हमारे हमारे जैसों का जो विषय है,... आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि मुनि का विषय क्या है? पंच महाव्रत, दया और दान, यह उनका विषय नहीं है। आहाहा! विषय अर्थात् ध्येय। अन्दर त्रिकाल निरावरण परमात्मस्वरूप, वह धर्मी का ध्येय और विषय है। धर्मी का वह ध्येय और वह विषय है। उस विषय में जाना है। विषय अर्थात् वह विषयाविष नहीं–पाँच इन्द्रिय के विषय, वह नहीं परन्तु विषय अर्थात् वह ध्येय करनेयोग्य। आहाहा! हमें तो ध्येय करनेयोग्य तो आत्मा है। अरे रे! उसे हम पूर्ण अनुभव नहीं करते। आहाहा! है?

विषय है, उसका हम अनुभवन नहीं करते। सातवाँ आवे तब अनुभव होता है न? छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है, उसका निषेध करते हैं। आहाहा! हमारा विषय तो अन्दर पूर्ण अनुभव करना, वह है परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकते और विकल्प आता है, परन्तु हमारा विषय वह नहीं है। हमारा विषय तो अन्दर ध्यान में जाना, वह विषय है। आहाहा! विशेष कहा जायेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२४

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयण-मोण-पहुदी समदा-रहियस्स समणस्स।।१२४।।

किं करिष्यति वनवास: कायक्लेशो विचित्रोपवास:।
अध्ययन-मौन-प्रभृतय: समता-रहितस्य श्रमणस्य।।१२४।।

अत्र समतामन्तरेण द्रव्यलिङ्गधारिण: श्रमणाभासिन: किमपि परलोककारणं नास्ती-त्युक्तम्। सकलकर्मकलङ्कपङ्कविनिर्मुक्तमहानन्दहेतुभूतपरमसमताभावेन विना कान्तारवासा-वासेन प्रावृषि वृक्षमूले स्थित्या च ग्रीष्मेऽतितीव्रकरकरसन्तप्तपर्वताग्रग्रावनिषण्णतया वा हेमन्ते च रात्रिमध्ये ह्याशाम्बरदशाफलेन च, त्वगस्थिभूतसर्वाङ्गक्लेशदायिना महोपवासेन वा, सदाध्ययनपटुतया च, वाग्विषयव्यापारनिवृत्तिलक्षणेन सन्ततमौनव्रतेन वा किमप्युपादेयं फल-मस्ति केवलद्रव्यलिंगधारिण: श्रमणाभासस्येति।

तथा चोक्तं अमृताशीतौ ह्न

(मालिनी)

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धि:,
मृगय तदपरं त्वं भो: प्रकारं गुरुभ्य:।।

तथाहि ह्न

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

अन्वयार्थ : [वनवास:] वनवास, [कायक्लेश: विचित्रोपवास:] कायक्लेशरूप अनेक प्रकार के उपवास, [अध्ययनमौनप्रभृतय:] अध्ययन, मौन

आदि (कार्य) [समतारहितस्य श्रमणस्य] समतारहित श्रमण को [किं करिष्यति] क्या करते हैं (-क्या लाभ करते हैं ?)

टीका : यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को किंचित् परलोक का कारण नहीं है (अर्थात् किंचित् मोक्ष का साधन नहीं है) ऐसा कहा है।

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से, ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला पर बैठने से और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से, (२) त्वचा और अस्थिरूप (मात्र हाड़-चामरूप) हो गये सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से, (३) सदा अध्ययनपटुता से (अर्थात् सदा शास्त्रपठन करने से), अथवा (४) वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्तिस्वरूप सतत मौनव्रत से क्या किंचित् भी *उपादेय फल है ? (अर्थात् मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।)

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:-

(वीरछन्द)

गिरि की गहन गुफा में अथवा वन के शून्य प्रदेशों में।
रहने से, इन्द्रिय निरोध से, अथवा ध्यान लगाने में॥
तीर्थवास-जप-पठन-होम भी ब्रह्म सिद्धि के नहीं उपाय।
इसीलिए गुरुओं द्वारा तुम खोजो इससे भिन्न उपाय॥

'श्लोकार्थ : पर्वत की गहन गुफा आदि में अथवा वन के शून्य प्रदेश में रहने से, इन्द्रियनिरोध से, ध्यान से, तीर्थ सेवा से (तीर्थस्थान में वास करने से), पठन से, जप से तथा होम से ब्रह्म की (आत्मा की) सिद्धि नहीं है; इसलिए, हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।'

---

* उपादेय=चाहनेयोग्य; प्रशंसायोग्य।

प्रवचन-१४२, श्लोक-२०२, गाथा-१२४, सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण ४, दिनांक ०२-६-१९८०

गाथा १२४, फिर से।

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... अर्थात् कि बाह्य की क्रिया करे, स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़े और नग्नपना धारण करे, बाईस परीषह सहन करे, पाँच महाव्रत पालन करे, तथापि वह द्रव्यलिंगी है। जिसे अन्तर भगवान आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई... आहाहा! कहा है न यह ? अन्दर वस्तु जो चैतन्यस्वरूप, ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु, उसकी प्राप्ति नहीं, उसे इससे कुछ भी फल नहीं। है इसका फल संसार में भटकना। भटकने का फल है। आहाहा! **केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत...** ऐसी **परमसमताभाव बिना,...** ऐसी समता चाहिए। समता की व्याख्या की है कि **कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त...** पर से नास्ति ली। अब अस्ति।

महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव... आहाहा! उसे समताभाव कहा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, वह समताभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का स्वाद आना, उसका अनुभव होना, इसका नाम समता कहते हैं। यह समता की व्याख्या है। इसे सामायिक कहते हैं। इस **परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर...** भले वन में-जंगल में बसे। **वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे स्थिति करने से,...** आत्मा के अनुभव बिना, आत्मा के आनन्द के स्वाद बिना वन में रहे या चातुर्मास में वृक्ष के नीचे रहे या **ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला...** धकधकती। उस पर **ऊपर बैठने से...** यह क्या है ? यह क्रियाकाण्ड है। आहाहा! **और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...** हेमन्त अर्थात् सर्दी। सर्दी में रात्रि में दिगम्बरदशा से रहे।

(२) त्वचा और अस्थिरूप (मात्र हाड़-चामरूप) हो गये... ऐसी तपस्या (की) कि मुश्किल से चमड़ी और हड्डियाँ दो रहे। ऐसी तपस्या भी निरर्थक है। आहाहा! स्व-आश्रय बिना... प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दमय यह आत्मा, इसकी सन्मुखता, इसका आश्रय, इसका अवलम्बन वर्तमान में आनन्द के अनुभव बिना ये सब क्रियाएँ निष्फल है।

उससे कोई आत्मा का कल्याण नहीं है। आहाहा! **सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** उपवास करे। कैसे? – कि क्लेशदायक उपवास वापस। आनन्द तो नहीं। आत्मा का आनन्द तो नहीं, इसलिए क्लेश है, कहते हैं। आहाहा! समकित बिना के उपवास क्लेश है। आहाहा! **क्लेशदायक महा उपवास से,...** महा अर्थात् बहुत उपवास। आहाहा! **(३) सदा अध्ययनपटुता से...** शास्त्र वाचन में भी पटु अर्थात् चतुर। शास्त्र पढ़े, बहुत अध्ययन करे – उससे क्या? आहाहा! कहा, शास्त्र अध्ययन में पटुता। शास्त्र अध्ययन सदा पठन-पाठन। शास्त्र पठन करे रात-दिन। आहाहा! यहाँ अपने आता है न? पहले पहर में मुनि स्वाध्याय करे, फिर ध्यान करे, फिर पिछली पहर में सहज शयन करे। रात्रि के पिछले भाग में। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है। पिछली रात्रि में। इससे क्या? कहते हैं। आत्मज्ञान बिना यह सब क्रिया निष्फल है, फलवाली है परन्तु संसार के। आहाहा! यह वस्तु लोगों को कठिन लगती है।

(अर्थात् सदा शास्त्रपठन करने से),... आहाहा! एक ओर कहा कि शास्त्र का अध्ययन करना, शास्त्र का अभ्यास करना। प्रवचनसार में आया न? परन्तु यह तो स्वलक्ष्य से। अपने आत्मा के ज्ञान के लक्ष्य से स्वाध्याय (करना)। यह तो अकेली आत्मा के ज्ञान बिना अकेली स्वाध्याय किया करे और माने कि इसमें से कुछ हो जाएगा। शास्त्र, वापस महा शास्त्र। **सदा शास्त्रपठन...** सदा करे। रात और दिन शास्त्र... शास्त्र। आहाहा!

(४) वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति... मौन धारण करे। बोलना बन्द करे। **सतत मौनव्रत से...** निरन्तर मौनव्रत धारण करे। **क्या किंचित् भी उपादेय फल है?** उससे क्या किंचित् भी फल उपादेय है? है नहीं। आहाहा! श्लोक कठिन आया। इतने अपवास करे, मौन रहे, शास्त्र पठन करे, रात-दिन शास्त्र वाँचन करे परन्तु वह तो सब परलक्ष्यी है। आहाहा! अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय शान्तस्वरूप, वह दृष्टि में, अनुभव में आये बिना यह सब क्रियाएँ संसार खाते हैं। इन क्रियाओं से आत्मा को कुछ लाभ हो, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! यहाँ तो ऐसी स्पष्ट बात है। दुनिया को कठिन लगता है।

मुमुक्षु : संसारी की अपेक्षा अच्छे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल जरा भी अच्छे नहीं। यहाँ तो कहते हैं जैसे अनादि संसारी प्राणी है, वैसा यह है। आहाहा!

क्या किंचित् भी उपादेय फल है ? (अर्थात् मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।) जरा भी-किंचित् कहा न ? किंचित् कहा है न ? जरा भी आत्मा में लाभ नहीं है। यह कहीं अच्छे हैं ही नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना वह सब क्रिया संसार खाते भटकने की है। आत्मा के लिये कुछ फल नहीं है। आहाहा! **(मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।)** साधनरूप किंचित् साधन नहीं है। जिसे लोग साधन कहते हैं। व्रत करना, तप करना, तपस्या करना, भगवान की भक्ति करना, यह साधन और सम्यग्दर्शन साध्य। यहाँ कहते हैं, तेरे साधन का किंचित् फल नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो पर की अपेक्षा बिना निरपेक्ष भगवान आत्मा का अवलम्बन करने पर अनुभव हो, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन है। पर के कारण कुछ नहीं कि पर की क्रिया इतनी की तो कुछ मदद मिली। बहुत तपस्या की, शास्त्र अध्ययन बहुत किया तो समकित प्राप्त होने में मदद मिली, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया की।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया करे तो भी सम्यग्दर्शन नहीं है। वह तो राग है। राग है, वह सम्यग्दर्शन-वीतरागता का हेतु होगा ? कठिन बात है, बापू! सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है। क्या हो ? किसे कहना ? अभी सब फेरफार हो गया। आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्दरस सागर को कोई इस क्रियाकाण्ड के कारण से कुछ भी लाभ नहीं है। यह क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य क्रिया करते-करते भाव आवे, ऐसा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया करते-करते भटकेगा। पुण्य बाँधेगा। मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधेगा। चार गति में भटकेगा। आहाहा! इसमें 'छहढाला' में नहीं आया ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण (करके) दिगम्बर मुनि (हुआ), हों! यह 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले परन्तु वह सब दुःख है, राग है, दुःख है। 'आतमज्ञान बिना सुख (लेश) न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वह आस्रव और दुःख है। दुःख से आत्मा की मुक्ति होगी ? सम्यक्त्व होगा ? सम्यग्दर्शन तो आनन्दस्वरूप है। आहाहा! बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : करते-करते होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : करते-करते जहर होगा। यह करते-करते राग का जहर होगा। उससे अमृत सागर भगवान (प्राप्त नहीं होगा)। आहाहा! बहुत कठिन बात, भाई! मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका फल भी अपूर्व है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व फल है, यह अलौकिक है। इससे रहित होकर अन्तर चैतन्यस्वरूप को (अवलम्ब कर)... आहाहा! विकल्प को भी छोड़ देना। मैं आत्मा हूँ, ऐसा जो विकल्प है, उसे भी छोड़ देना और स्वरूप में रहना, तब उसे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना... कहा न? ऐसी-ऐसी क्रिया करे। चमड़ी रहे और दूसरे हड्डियाँ रहे, इतनी तपस्या और अपवास करे तो भी उसका फल संसार है। एक भी भव घटे या इस क्रियाकाण्ड के कारण सम्यक्त्व के सन्मुख हो, (ऐसा तीन काल में नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन बात है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा ।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः,
मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्यः ।।

आहाहा! दिगम्बर मुनि योगीन्द्रदेव, जिन्होंने दोहा बनाये हैं। योगीन्द्रदेव ने, उसमें ऐसा कहा कि 'पाप को पाप तो सब कहे...' हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना। परन्तु 'अनुभवी जन तो पुण्य को पाप कहे।' धर्मी जीव तो पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति को पाप कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। अभी तो पोलमपोल यह सब चला है। कोई ठिकाना नहीं होता। पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं होता। उनके लिये आहार बनाकर ले, पानी (प्रासुक) करके ले, उनके लिये वस्त्र बिकते हुए ले, वह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। धर्म तो है ही कहाँ? आहाहा! कठिन बात है, भाई!

पर्वत की गहन गुफा आदि में... कहते हैं, भले कोई पर्वत की गुफा में रहे। आहाहा! **वन के शून्य प्रदेश में रहने से,...** वन के किसी शून्य प्रदेश में अकेला रहे! **इन्द्रियनिरोध...** करे। आहाहा! पाँच इन्द्रिय का निरोध करे, वह तो शुभभाव है। धर्म नहीं, भाई! आहाहा! **ध्यान से,...** यहाँ तो ध्यान भी कहा। वह राग का शुभध्यान। मैं ध्यान करता हूँ... ध्यान करता हूँ... ऐसा विकल्प। विकल्प है। उस ध्यान से भी मुक्ति नहीं है। वह विकल्परूपी ध्यान, हों! और **तीर्थ सेवा...** तीर्थ की सेवा करना। शत्रुंजय की, गिरनार की, सम्मेदशिखर की यात्रा करना और सेवा करना, उससे कहीं मुक्ति-बुक्ति है नहीं, धर्म है नहीं। आहाहा! उससे कुछ धर्म नहीं होता।

ज्ञानी को भी अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आते हैं, परन्तु धर्म नहीं मानते; बन्ध मानते हैं, हेय मानते हैं। आहाहा! धर्मी को भी शुभभाव तो आता है परन्तु उसे हेय जानकर उसका फल नहीं चाहते। मैं तो आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ। राग तो बन्ध का कारण जहर है। शुभराग ज्ञानी को होता है तो भी ज्ञानी तो ऐसा मानते हैं कि यह तो काला नाग है। आया है न? आहाहा!

मुमुक्षु : वचनामृत में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काला नाग। जैसे काला नाग ऐसे जहर दिखता है, वैसे धर्मी को शुभभाव आवे, वह काला नाग जैसा दिखता है। आहाहा! बहुत कठिन बातें। यहाँ तो अभी धन्धा-पानी के कारण शुभ का ठिकाना नहीं होता। नौकरी करना या जजपना करना, वहाँ रुकना। अब उसमें निर्णय करने को निवृत्त कब हो? ऐसा आत्मा... ऐसा आत्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सब... रामजीभाई के पास सलाह लेने आते थे। सब सलाह लेने आते थे। सलाह देते थे। एक महीने कैद में गये थे। लौकिक में भी एक जाति की विरुद्धता है। सलाह देना, संसार की सलाह, वह तो पाप है। किसकी सलाह देना। आहाहा! ढेबरभाई और आवे न? ढेबरभाई रामजीभाई के पास सलाह लेने जाते थे। सलाह लेने जाते थे। सलाह देते, उसके फल में एक महीने जेल में जाना पड़ा। आहाहा! यह संसार ऐसा है, भाई!

यहाँ तो निर्विकल्प आनन्द का नाथ, प्रभु! जिसमें शुभराग की गन्ध नहीं, ऐसे

अखण्डानन्द की ओर दृष्टि दिये बिना, उसके अनुभव बिना जितना क्रियाकाण्ड है, वह सब संसार है। चार गति में भटकने की बात है। आहाहा! **तीर्थ सेवा...** आहाहा! **(तीर्थस्थान में वास करने से),...** कोई कहे कि अपने बस! शत्रुंजय बड़ा तीर्थ कहलाता है, सम्मेदशिखर महातीर्थ कहलाता है, वहाँ अपन रहें तो वहाँ से मुक्ति होगी। यह लोग कहते हैं न ?—कि सम्मेदशिखर में तो जो वनस्पति उगी है, वह तो मोक्षगामी है, ऐसा कहते हैं। यहाँ एक महावीरकीर्ति थे न ? दिगम्बर के (साधु) यहाँ आये थे। महावीरकीर्ति, उनके साथ बात हुई। जैसे श्वेताम्बर में यह शत्रुंजय तीर्थ है न उनका ?

मुमुक्षु : माहात्म्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : माहात्म्य। शत्रुंजय माहात्म्य एक (पुस्तक) है। है, सब पुस्तकें देखी है। ऐसा एक सम्मेदशिखर के माहात्म्य का पुस्तक है। तो उन्होंने कहा। यहाँ आये थे। यहाँ कमरा था, वहाँ उतरे थे। सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो अढ़तालीस भव में मोक्ष में जाए। कहा, यह वचन वीतराग का नहीं है, अज्ञानी का है। क्योंकि पर के आश्रय से भव का अभाव हो, यह तीन काल, तीन लोक में नहीं है। अढ़तालीस भव में मोक्ष जाए। फिर बदल गये। कहा फिर वह बिल्कुल झूठी बात है। यह माहात्म्य किया होगा, यह माहात्म्य झूठा है। सम्मेदशिखर का ऐसा माहात्म्य, वह तो पत्थर है। पत्थर के पास ऐसे अनन्त समवसरण में जा आया। भगवान महाविदेह में तीर्थ का विरह तो कभी नहीं। शाश्वत् तीर्थंकर होते हैं। सवमसरण में अनन्त बार गया है, शास्त्र पढ़ा है परन्तु आत्मज्ञान नहीं किया और सम्यग्दर्शन क्या, उसकी कीमत ही नहीं की। चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहाहा! ध्यान करने लगे तो बाहर के ध्यान करने लगे। यह करना... यह करना... अपवास करना, वाँचन करना, ध्यान करना, णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... यह ध्यान किया। ध्यान कहा है न ? ध्यान। पाँच नवकार का ध्यान, वह राग है। वह धर्म का कारण नहीं। ऐसी बात! अपने तो यहाँ यह पैंतालीस वर्ष से चलता है। यह कहीं गुप्त नहीं है। आहाहा!

(तीर्थस्थान में वास करने से)... अरे! **पठन से,...** शास्त्र पढ़ा करे, पढ़ा करे, रटा करे, वह सब विकल्प-राग है। आहाहा! **पठन से, जप से...** जप किया करे। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... आनुपूर्वी गिने। आनुपूर्वी—णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं... णमो उवज्झायाणं... णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं, णमो उवज्झायाणं... आनुपूर्वी आता है न ? आडा-सीधा।

मुमुक्षु : अशुभ में से शुभ में तो आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभ भी संसार भटकने का। भटकने का संसार। अज्ञानी को अशुभ में से शुभ, वह संसार का भटकने का (भाव है)। ज्ञानी को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है, सम्यग्दृष्टि को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है। अज्ञानी को, मिथ्यादृष्टि को वह शुभ, शुभ नहीं है। वह अशुभ ही है। आहाहा! आत्मा का जरा भी लाभ नहीं है। सम्यग्दृष्टि को हेयबुद्धि है। इसलिए अशुभ से बचने के लिये शुभ आवे, तो भी वह पुण्य बाँधता है, उसे भी धर्म नहीं होता, निर्जरा नहीं होती, संवर नहीं होता। समकिती को भी भगवान की सेवा और तीर्थसेवा, पूजा और यात्रा (करने से) धर्म नहीं होता। आहाहा! कठिन काम है।

मुमुक्षु : शत्रुंजय तो नजदीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रुंजय नजदीक है। बहुत आते हैं न! शत्रुंजय के माहात्म्य में लिखा है। शत्रुंजय की यात्रा करे, फिर चाहे जिस साधु को जिमावें, तो भी उसे धर्म लाभ हो, यह सब खोटा, सब मिथ्या बात है। यहाँ तो यह भगवान तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति और चैतन्य के अनन्त रत्नाकर से भरपूर प्रभु की अन्तर्दृष्टि, अनुभव बिना सब व्यर्थ है। इसके बिना संसार का एक भी भव नहीं घटता। आहाहा! यह बात है। लोगों को कहाँ निवृत्ति है? आहाहा!

पठन से, जप से... चौबीस घण्टे णमो अरिहन्ताणं के जप किया करे, माला गिना करे, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह संसार है, मिथ्यात्वसहित शुभराग है। उससे धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : नौ लाख नवकार मन्त्र गिने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ लाख गिने, वह मिथ्यात्व है। लाख, करोड़ गिने नहीं। करोड़पूर्व का आयुष्य हो, तो प्रतिदिन गिने तो अरबों बार हो जाए। आहाहा! एक दिन में एक बार नवकार गिने तो कितने अरबों (हों)। उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा अन्दर विकल्परहित, रागरहित पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है। उसके स्पर्श बिना, उसके अनुभव बिना सब बिना इकाई के शून्य हैं। यहाँ तो स्पष्ट बात है। यह कहाँ गुप्त है? पुस्तकें भी तीस लाख बाहर प्रकाशित हुई है और अभी पुस्तकें मुम्बई से प्रकाशित होती है न?

सात लाख की प्रकाशित करनेवाले हैं। तीस लाख तो प्रसिद्ध हो गयी है। बाईस लाख यहाँ से, आठ लाख जयपुर से और सात लाख अब मुम्बई से नयी बाहर प्रकाशित होनेवाली है। पहला एक आ गया है। दूसरे सात लाख बाहर प्रसिद्ध होनेवाले हैं। लोग तो बहुत पैसे का ढ़ेर करते हैं, जहाँ हो वहाँ। अपने आप बिना कहे और बिना बोले। आहाहा!

यह देखो न! अफ्रीका में गये, वहाँ छब्बीस दिन में तीन लाख। तीन लाख दिये। एक लाख ज्ञान खाते, और दो लाख चरण किये उसके। सोनगढ़ को तीन लाख दिये। और ९१वाँ वर्ष लगा और उसमें मुम्बई से दो लाख आये। डेढ़ महीने में पाँच लाख आये। शास्त्र की कीमत घटाने के लिये। दूसरा कुछ नहीं। दस रुपये की लागत हो तो आठ रुपये में देना, सात में देना। यह शास्त्र की कीमत घटाने के लिये सब लक्ष्मी आती है क्योंकि शास्त्र का प्रचार कैसे हो ? ईसाई लोग तो एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। ऐसा तो सब देखा है न ? ईसाई के जो लोग आवे न, वे एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। किसी प्रकार से प्रकार होवे न! हिन्दुस्तान में कितनों को ईसाई कर दिया है। खबर है न ? आहाहा! यह शास्त्र का प्रचार करे, सुने-पढ़े तो उसे खबर तो पड़े कि सत्य क्या है ?

यहाँ यह कहते हैं। **जप से तथा होम से...** भगवान को होम करे। स्वाहा.. स्वाहा.. भगवान की भक्ति करते हुए स्वाहा (करे) वह शुभभाव है। धर्म किंचित् नहीं है। उससे किंचित् धर्म नहीं होता। ऐसी स्वाहा अनन्त बार की है। आहाहा! **ब्रह्म की (आत्मा की) सिद्धि नहीं है;...** ब्रह्म की उपासना सिद्धि नहीं है। यह सब करने से ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी उपासना, फल नहीं है। आहाहा!

इसलिए, हे भाई!... आहाहा! मुनिराज करुणा करके कहते हैं। **हे भाई! तू गुरुओं द्वारा...** जो गुरु राग से धर्म न मनावे, क्रियाकाण्ड से धर्म न मनावे, ऐसे गुरु के पास तू जा और मार्ग ग्रहण कर। यह तो सब गुरु बहुत घूमते हैं। **तू गुरुओं द्वारा...** देखो! भाषा है न ? **उससे अन्य प्रकार को...** जो यह सब क्रियाएँ हैं, उनसे अन्य प्रकार से गुरु कहेंगे। वे गुरु कहलाते हैं। जो इनसे धर्म मनावे, माने, वे गुरु नहीं हैं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जैनधर्म का शत्रु है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा! नये हों, उन्हें कठोर लगेगा।

मुमुक्षु : भगवान होना, वह कहीं खेल की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बापू! स्वयं भगवान ही है परन्तु उसकी इसे प्रतीति कहाँ

है ? प्रतीति तो उसके सन्मुख होती है, इस क्रियाकाण्ड में धर्म कहीं नहीं है, ऐसा वहाँ से निवृत्त हो, तब आत्मा में जा सकेगा। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति में कुछ नहीं है। यह तीर्थ की शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर की यात्रा लाख बार करे (तो भी धर्म नहीं होता)। आहाहा!

मुमुक्षु : सोनगढ़ की करे, तब तो होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सोनगढ़ की यात्रा कहाँ है ? यहाँ सुनकर अन्दर समझे तो होता है। यहाँ आवे और पठन करे तथा सुने तो भी क्या हो गया ? सोनगढ़ आवे, इसलिए उसे समकित हो जाए, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! कहा नहीं था ? निमित्त से कुछ नहीं होता। पर में निमित्त से कुछ नहीं होता। केशवलाल। वढवाण में केशवभाई हैं। उनसे एक व्यक्ति ने कहा कि निमित्त से कुछ नहीं होता, तो तुम सोनगढ़ किसलिए जाते हो ? सोनगढ़, वह निमित्त है। प्रश्न उठे न! तब उसने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता, इसकी विशेष दृढ़ता के लिये हम जाते हैं। हमारी दृढ़ता करने के लिये जाते हैं। निमित्त से नहीं होता। आहाहा! निमित्त से पर में कुछ नहीं होता, क्योंकि निमित्त की पर्याय और उपादान की पर्याय के बीच अन्योन्य अभाव है। आहाहा!

यह समयसार की तीसरी गाथा में कहा है। प्रत्येक द्रव्य—परमाणु हो या आत्मा या धर्मास्तिकाय, उसमें रहे हुए गुण और पर्यायरूपी धर्म; धर्म अर्थात् धारण कर रखा हुआ। धारण कर रखे हुए गुण और पर्याय, उसे वह द्रव्य स्पर्श करता है - चुम्बन करता है, परन्तु परद्रव्य की पर्याय को वह कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! आत्मा भी कर्म को कभी स्पर्शा ही नहीं और कर्म आत्मा को कभी स्पर्शे नहीं। भिन्न-भिन्न द्रव्य है। आहाहा! यह गले उतरना... बहुत फेरफार। अभी तो पूरब-पश्चिम का फेरफार हो गया है। आहाहा!

सम्प्रदाय में अब यह गड़बड़ उठी न! सब कहे, व्यवहार व्रत करने से होता है। कहा, व्रत करने से बिल्कुल नहीं होता। सम्प्रदाय में गुरु कहते थे। कहा, अनुभव समझते हो तुम ? तब वे कहें कि फिर अनुभव क्या ? अर्थात् उसकी खबर नहीं होती। यह शाम को प्रतिक्रमण करना, सामायिक करना - हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। आहाहा! आत्मा का अनुभव क्या चीज़ है... आहाहा! उस राग के किसी भी प्रकार के क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित ऐसा जो भगवान अन्दर विराजमान है, उसकी अन्दर में भेंट होना, उसका वेदन होना, उसका स्वाद आना, उसकी दशा निर्मल परिणति से जानने में आवे,

तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें हैं।

यहाँ आचार्य ने कहा न? गुरु के पास अन्य प्रकार से शोध। इन सब प्रकारों के बिना। जो ऊपर यह सब प्रकार कहे, उनके बिना **अन्य प्रकार को ढूँढ़।** दो बातें की है। गुरु ऐसे होते हैं कि इस क्रिया से धर्म मनाते नहीं। ऐसे गुरु के पास जा तो वे तुझे कहेंगे कि इस क्रिया से रहित आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि कर। ऐसी भाषा की है, देखा? आहाहा! **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।**' ऐसी जो क्रिया कही ध्यान की, तीर्थ सेवा की, पठन की, इन्द्रिय निरोध की, उनसे भिन्न प्रकार का गुरु तुझे कहेंगे और भिन्न प्रकार का न कहे तो वह गुरु ही नहीं है। वह तो कुगुरु है। अनादि काल के जो हैं, वे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म न मनावे परन्तु धर्म का कारण मनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी कारण नहीं। राग-दुःख; दुःख, आनन्द का कारण? राग तो दुःख है और आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह सुख है। राग कारण, दुःख कारण और सुख, वह कार्य - एकदम मिथ्या बात है। यह तो हमारे तो बहुत वर्षों से चलता है। पुस्तकें भी प्रकाशित हो गयीं। व्यवहार अर्थात् राग। राग अर्थात् दुःख। यह कहा न अभी 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ। 'ग्रीवक उपजायो...' चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दे तो क्रोध न करे। परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना अकेली क्रिया। 'आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसे पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह दुःख है, आस्रव है, दुःख है। इसलिए कहा कि 'आतम ज्ञान बिन...' आतम ज्ञान के बिना लेश सुख न पायो। तब वह दुःख है। दुःख से सुख मिलेगा? शुभ करते-करते शुद्ध होगा? आहाहा! शुभ तो मैल है, जहर है। शुभ तो काला नाग जहर है। भगवान आत्मा अमृत जीवन है तो शुभराग तो जहर का जीवन है। समयसार के मोक्ष अधिकार में लिया है कि शुभभाव विषकुम्भ है, जहर का घड़ा। आहाहा! ऐसी बात।

मुमुक्षु : लोभियों के लोभ का मूल है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : विष का घड़ा कहा है न? विष का घड़ा कहा है न? आहाहा! शुभभाव-दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव, वह जहर का घड़ा है। कठिन बात है, भाई! यह तो वाड़ा में नहीं मिलती। वाड़ा में होवे तो कठिनाई पड़ जाए। आहाहा!

मुमुक्षु : ..... उसे आप जहर का घड़ा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर का घड़ा ही है। आत्मा अमृत का पिण्ड है। आत्मा / जीव का जीवन, अमृत का जीवन, वह जीव का जीवन है। राग का जीवन, वह जहर का जीवन है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! सब आ गया है। पुस्तक में प्रकाशित हो गया है। बहुत ठेठ से – पहले से...

मुमुक्षु : कठोर रेच (विरेचन) की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर रेच यह है। कठोर यह रेच है। परन्तु लोगों को बाहर से रुचि हटती नहीं और इस प्रकार का पोषण ही पूरे दिन दिया हो और उस प्रकार का पोषण देकर... तुम दीक्षा लो, तुम्हारा कल्याण होगा। दीक्षा में पंच महाव्रत है। पंच महाव्रत से ऐसा होगा। आहाहा! वापस उसके लिये बनाया हुआ आहार ले या उसके लिये पानी (प्रासुक) किया हो, वह ले तो एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। वह पानी ले, उसे व्यवहार व्रत भी कहाँ है? आहाहा! धर्म तो कहाँ है? परन्तु व्यवहार जो अज्ञान का व्यवहार (भी नहीं है)। उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी ले। दिगम्बर साधु भी उनके लिये बनाया हुआ चौका करके ले।

मुमुक्षु : मन्दिर में जाकर चौका करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है या नहीं? दिगम्बर साधु को भी उसके लिये चौका, उसके लिये सब बनावे। यहाँ किसी की दरकार नहीं है। यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है। तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी का फरमान है, वह यह फरमान है। उसमें दुनिया को ठीक लगे, न लगे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। संख्या के साथ सम्बन्ध नहीं कि इसमें संख्या अधिक होगी या कम होगी। आहाहा!

यहाँ बहुत सरस कहा है कि ऐसा जो करे, उससे तुझे आत्मा का कुछ फल नहीं है। **(आत्मा की) सिद्धि नहीं है; इसलिए, हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।'** जो गुरु यह न कहे और इससे अन्य कहे, उसके पास जा। जो गुरु तुझे व्रत और नियम और तप से कल्याण मनावे, उनके पास मत जा। आहाहा! है इसमें? **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य...** ऊपर जितने क्रियाकाण्ड कहे, उससे अन्य प्रकार से खोज। गुरु तुझे अन्य प्रकार की बात करेंगे। वे गुरु।

आत्मावलोकन पुस्तक है, उसमें तो यहाँ तक कहा है कि मुनि है, वह वीतरागता का ही उपदेश करे। मुहु.. मुहु.. ऐसा शब्द है। बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग... राग से बिल्कुल लाभ नहीं। वीतराग आत्मा वीतराग है, उसके आश्रय से वीतरागताा होगी और वीतरागता के आश्रय से वीतरागता प्राप्त होगी। जैनधर्म वीतरागभाव है। जैनधर्म कोई पक्ष / पन्थ नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन लगे। मूल यह प्रथा ही पूरी छूट गयी है।

यह बात तो कही नहीं थी? १९६९ के वर्ष में संवत् १९६९ दीक्षा लेने से पहले। हमने अभी दुकान छोड़ी और मैं तो दीक्षा लेने आया। मुझे कोई बहुत लम्बी खबर नहीं। थोड़ा अभ्यास किया। यह दशवैकालिक के आठ अध्ययन मुखाग्र किये। फिर एक दूसरे गुरु मिले गुलाबचन्दजी गाँधी। बोटाद में। उन्होंने ऐसा कहा कि साधु के लिये उपाश्रय बनावे तो उसे प्रयोग करे तो साधु नहीं। अरे! यह क्या? ऐसी बात तो हमने कभी सुनी नहीं। साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, मकान (बनाया हो उसे) प्रयोग करे, वह साधु नहीं। यह प्रश्न मैंने मेरे गुरु को किया। सम्प्रदाय के गुरु को। दीक्षा से पहले, हों! अभी।

प्रश्न किया कि महाराज! मकान साधु के लिये प्रयोग करे तो वह साधु है? या साधु को दोष लगता है? तब उन्होंने (जवाब) जरा ढीला दिया। तुम्हारा भाई खुशालभाई है। उन्होंने तुम्हारे लिये मकान बनाया और तुम प्रयोग करो तो उसमें क्या? परन्तु वह प्रयोग करे, वहाँ अनुमोदन है। नौकोटि में करना, कराना, अनुमोदन, मन, वचन और काया। नौ कोटि में यह एक कोटि टूटी तो नौ टूट गयी। एक भी कोटि का प्रत्याख्यान नहीं रहा। यह तो १९६९ के वर्ष। दीक्षा लेने से पहले प्रश्न किया था। ऐसा का ऐसा कहा, दीक्षा ले ले। क्या है यह? ऐसा जवाब दिया। वे मानो कि मैं ऐसा कहूँगा तो फिर दीक्षा नहीं लेगा। और मैंने कहा, यह भद्रिक है। अभी तो इसमें अब दीक्षा लो। फिर और बात। छोड़ देने की बात बाद में। आहाहा! उपाश्रय-मकान उनके लिये बनाया हो और प्रयोग करे तो भी हिंसा का भागी हिंसा करनेवाला वह है। वह साधु हिंसक है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **तू गुरुओं द्वारा...** आहाहा! यह जो क्रियाकाण्डा कहा, **उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** ऐसा कहने में (ऐसा कहना है) कि जो गुरु इससे अन्य कहते हों, उनके पास सुन। ऐसा कहा न? **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** आहाहा! वे गुरु ऐसे चाहिए कि जो राग से, क्रिया से धर्म नहीं मनावे। राग से, क्रिया से, धर्म मनावे

तो मिथ्यादृष्टि कुगुरु है। इसलिए राग से धर्म न मनावे, ऐसी चीज़ जिनके पास है, उनके पास जा, तुझे अन्य प्रकार से बतायेंगे। अन्य प्रकार आया न? जो क्रियाकाण्ड है, उससे अन्य प्रकार से बतायेंगे। इसलिए अन्य प्रकार से उन सच्चे गुरु (के पास से) तुझे सत्य मिलेगा। आहाहा! अब ऐसे पुराने लोगों ने कुछ निवृत्ति भी न की हो। निर्णय नहीं। जिस वाड़ा में जन्मे, उसी और उसी में रहे तथा वह कुछ थोड़ा-बहुत जाना हो। यात्रा, भगवान की पूजा करने जाए, एकाध सामायिक करे, माला गिने। हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो सब बन्धन है, संसार है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! मार्ग बहुत अलग प्रकार का, बापू! आहाहा!

'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी'। यह हमारी पाठशाला में आता था। ७५ वर्ष पहले की बात है। 'दलपतराय कदढा' 'कवि दलपतराय डाह्याभाई' उन्होंने गायन बनाया कि 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग ले हरि।' संसार का रोग हर ले तो तेरी प्रभुता खरी है। दलपतराय डाह्याभाई की कविता पहले पाठशाला में चलती थी। ७५ वर्ष पहले की बात है। मूल तो उसमें से सार-सार खोज लेते थे। वह तो कहते प्रभु अर्थात् कोई ईश्वर। मैं कहूँ, प्रभु अर्थात् यह (आत्मा) 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग — अज्ञान ले हरि...।' कठिन लगे।

तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य... इसमें दो-तीन सिद्धान्त (लिये हैं)। एक तो गुरु उसे कहते हैं कि जो ऊपर कहा, उससे अन्य कहने की बात हो और अन्य कहता हो, वह गुरु। ऊपर कहा तद्नुसार कहे तो वह गुरु नहीं। आहाहा! यह ऐसे सिद्धान्त इसमें से निकलते हैं। न्याय-लॉजिक से कुछ विचार करेगा या नहीं? आहाहा! **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** ऐसा कहकर तो यह बात की है कि गुरु उसे कहते हैं कि जो क्रियाकाण्ड से धर्म नहीं मनावे। आत्मा का अनुभव करे, उससे धर्म मनावे, उसे गुरु कहते हैं और वह गुरु ऐसी क्रियाकाण्ड की बात नहीं करे। वह आत्मा की करेगा। ऐसे गुरु के पास जा और वह तुझे धर्म बतायेगा। आहाहा! शास्त्र के अर्थ भी कठिन है, बापू! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

(संवत्) १९६९ में बड़ी चर्चा चली थी। साधु के लिये बनाया हो और ले, तो कौन सी कोटि टूटेगी? कहा। हमारे गुरु के पास जाते, वह तो बहुत कषायवाले। ऐई! ऐसा किसने कहा? इसे ऐसा किसने कहा? गुलाबचन्दजी निन्दा की। गुलाबचन्दजी ने कहा,

गुलाबचन्द गाँधी। भाई! चाहे जिसने कहा यह क्या है, इस बात का न्याय करो न! साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, रहने का मकान बनाया हो और उसे साधु प्रयोग करे। इसी तरह साधु के लिये आहार बनाया, पानी बनाया, एक पानी की बूँद में असंख्य जीव, वह दस सेर पानी बनाया (गर्म किया) और उसे साधु ले, वह साधु कहलायेगा? आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! पालीताणा धर्मशाला एक बनायी है। पहले जाते थे। साधु के लिये आहार-पानी बने। पहले जाते थे, इस ओर है। पूरी धर्मशाला ही साधु के लिये। अर..र..र..! ऐसी स्थिति! प्रभु! प्रभु! क्या करे? भाई! कोई शरण नहीं है। ऐसे समय दूसरे तुझे माननेवाले कोई लाखोंपति-करोड़पति मिले, वे मरते हुए तुझे मिथ्यात्व से मार डालेंगे। आहाहा! मरते हुए मिथ्याश्रद्धा से दुर्गति होगी। आहाहा! असाध्य हो जाएगा, प्रभु! तुझे आत्मा का साध्य नहीं रहेगा कि मैं चैतन्य हूँ। क्योंकि विपरीत श्रद्धा सेवन की है। इसलिए तेरा साध्य नहीं रहेगा। अभी असाध्य है। मिथ्यात्व की दृष्टि सेवन करता है, वह वस्तु से असाध्य है। उस समय शरीर से असाध्य हो जाएगा। आहाहा! इस भाषा में बात की है न!

हे भाई! इससे कुछ लाभ नहीं। इसलिए **हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य की दो हजार वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह श्लोक बनाया है। फिर टीका मुनि ने बनायी। हजार वर्ष हुए, पद्मप्रभमलधारिदेव, यह मुनि। समयसार की टीका अमृतचन्द्राचार्य और इसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। महामुनि हैं। आहाहा! आनन्द में झूलते। छठवें-सातवें गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द में (झूलते थे)। मुनि तो उसे कहते हैं, सातवाँ गुणस्थान पहले आता है। मुनि को सातवाँ पहले आता है। चौथे से, पाँचवें से दीक्षा ले, तब पहले ध्यान में सातवाँ आता है। फिर वहाँ से विकल्प उठे तो छठवाँ आता है। आहाहा! फिर छठे-सातवें में, छठे-सातवें में हजारों बार जिन्दगी में रहते हैं। उनका नाम मुनि है। बाकी सब कोई मुनि-बुनि है नहीं। आहाहा! परन्तु यह खबर न हो और मुनि को माने, क्या करे? आहाहा! वेश धारण किया हो। जय महाराज! ऐसे के ऐसे अनादि से अज्ञान किये हैं। आहाहा! इस शब्द में बहुत भरा है।

तू गुरुओं द्वारा... आहाहा! अर्थात् कि गुरु यह बात नहीं करे। ऐसा इसका अर्थ

हुआ न ? यह व्रत, तप, क्रिया, पठन, जप से कल्याण होगा, यह बात नहीं करते। **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** यह गुरु अन्य प्रकार से कहेंगे और तू भी अन्य प्रकार से अन्दर खोज। आत्मा को राग से भिन्न अन्य प्रकार से खोज। आहाहा!

श्लोक-२०२

और (इस १२४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणैः फलं समतया रहितस्य यतेर्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं भज मुने समताकुलमन्दिरम् ।।२०२।।

(वीरछन्द)

अनशनादि तप से नहिं कुछ भी, समताहीन यति को फल।
अतः मुनि! निज तत्त्व निराकुल समता कुल मन्दिर को भज॥२०२॥

श्लोकार्थ : वास्तव में समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है; इसलिए, हे मुनि! समता का *कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल निज तत्त्व उसे भज॥२०२॥

श्लोक- २०२ पर प्रवचन

और (इस १२४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

अनशनादितपश्चरणैः फलं समतया रहितस्य यतेर्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं भज मुने समताकुलमन्दिरम् ।।२०२।।

---

* कुलमन्दिर=(१) उत्तम घर; (२) वंशपरम्परा का घर।

आहाहा! गाथा तो अमृत समान है।

श्लोकार्थ : वास्तव में समता रहित... समता अर्थात् आनन्द का सागर आत्मा, उसका अनुभव, वह समता है। बाकी सब असमता। महाव्रतादि सब असमता है। आहाहा! **वास्तव में समता रहित...** सम्यग्दर्शन की और सम्यग्ज्ञान की जो समता। आत्मा में वीतरागता और समता भरी है, उससे प्रगट की हुई समता। उस **समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है;...** उसे तपश्चरण आदि से धर्म का फल नहीं है। आहाहा! संसार का फल है। भटकने का फल मिलेगा। अरे! प्रभु! कोई शरण नहीं, कोई सहायक नहीं। आहाहा! देह में रोग आया हो, फिर अकेला तड़फता है। आहाहा! स्वयं आत्मकल्याण तो किया नहीं। फिर अकेला तड़फे। तड़फकर मरकर चला जाए। कोई अकस्मात् मर जाए। कोई तड़फे नहीं और फिर फूँ... होकर मर जाए। आहाहा! अरे! ऐसा समय मिला। अनन्त काल में मनुष्य और जैन परमेश्वर की वाणी मिली। उसमें यदि इस प्रकार से नहीं समझे (और) दूसरे प्रकार से समझेगा तो मर जाएगा, भाई! वीतरागमार्ग में किसी की कुछ सिफारिश नहीं चलती। आहाहा! तीन लोक का नाथ विराजता है, वहाँ यह बात चलती है। बीस तीर्थंकर विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। यही बात वहाँ चलती है। आहाहा! तीन काल में दूसरा मार्ग नहीं। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वास्तव में समता...** अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान **रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन और सभी तपस्यायें करे। रस छोड़े, अमुक करे... आहाहा! बारह प्रकार की तपस्या करे, अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग... कायक्लेश... अभ्यन्तर जो तप हैं, वे भी बाह्य हैं। विनय, वैयावृत्त्य... यह भी बाहर की बात है। विनय करना, वह शुभभाव है। वैयावृत्त्य करना, वह शुभभाव है। आहाहा! अभ्यन्तर कहा है, वह तो क्या कि अन्दर का भाव है इसलिए (कहा है)। बाकी है तो बारह ही तप शुभभाव। आहाहा! अन्दर ध्यान भी आ गया न? ध्यान आ गया। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर सब क्रियाकाण्ड के क्लेश से भिन्न विराजता है। यह क्रियाकाण्ड तो क्लेश है, दुःख है। उसे किसके साथ दुःख को मिलान करना? आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी तो खबर नहीं तो यह राग दुःख है, उसे किसके साथ मिलान करे? एक ज्वार

अच्छी हो तो दूसरे ज्वार के साथ तुलना करे कि इसकी अपेक्षा यह है। इसी प्रकार दु:ख को मिलावे किसके साथ ? आनन्द की तो खबर नहीं होती। जो करता है, वह ठीक करता है ऐसे अन्ध-अन्ध चला जाता है। आहाहा!

समता रहित यति को... समता अर्थात् यह, हों! वापस समस्त अर्थात् राग मन्द करके समता (करे), वह नहीं। वीतरागी परिणति, वह समता। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वे तीनों वीतराग परिणति हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों वीतराग परिणति हैं। उस वीतराग परिणति की यहाँ बात कहते हैं। आहाहा! समतारहित—उस वीतराग परिणतिरहित यति को, साधु नाम धरावे। **अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन आदि तपस्या करे, देखो! अनशनादि सब कहा, हों! अनशन, ऊनोदरी, रस छोड़े, एक रस खाये, दो रस न ले, अमुक न ले, अमुक न ले, यह सब बाह्य क्रिया है। उन **तपश्चरणों से फल नहीं है;...** धर्म का फल नहीं है। आहाहा!

इसलिए, हे मुनि! समता का कुलमन्दिर... आहाहा! समता का कुलमन्दिर **(१) उत्तम घर; (२) वंशपरम्परा का घर।** आहाहा! है न ? **हे मुनि! समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल...** अनाकुल अर्थात् आनन्द निजतत्त्व। **अनाकुल निज तत्त्व...** आहाहा! **उसे भज।** आहाहा! भगवान अनाकुल तत्त्व है। क्रियाकाण्ड का जितना विकल्प उठे, वह सब आकुलता और दु:ख है। आहाहा! अनाकुल ऐसा जो आत्मतत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर जो भगवान, उसे भज। आहाहा! उसकी सेवा कर तो तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा और उस अतीन्द्रिय आनन्द का धर्म, वह मुक्ति देगा। आहाहा!

समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल निज तत्त्व... अनाकुल निज तत्त्व। क्रियाकाण्ड वह सब निज तत्त्व नहीं है। आहाहा! निज तत्त्व... **अनाकुल निज तत्त्व...** आनन्दस्वरूप ऐसा निज तत्त्व। उसका अर्थ कि जितना क्रियाकाण्ड किया, वह सब दु:खरूप है। पंच महाव्रत से लेकर अभव्य अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। अनन्त बार ऐसा क्रियाकाण्ड करके शुक्ललेश्या (की है)। शुक्ललेश्या... नौवें ग्रैवेयक गया, शुक्ललेश्या से जाता है। वह भी दु:ख है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **अनाकुल निज तत्त्व, उसे भज।** भगवान को भज। अन्दर आनन्द के नाथ को भज। इस आकुलता को छोड़ दे। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१२५

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२५।।

विरतः सर्वसावद्ये त्रिगुप्तः पिहितेन्द्रियः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने।।१२५।।

इह हि सकलसावद्यव्यापाररहितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सकलेन्द्रियव्यापारविमुखस्य तस्य च मुनेः सामायिकं व्रतं स्थायीत्युक्तम्।

अथात्रैकेन्द्रियादिप्राणिनिकुरम्बक्लेशहेतुभूतसमस्तसावद्यव्यासङ्गविनिर्मुक्तः, प्रशस्ता-प्रशस्तसमस्तकायवाङ्मनसां व्यापाराभावात् त्रिगुप्तः, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राभिधान-पञ्चेन्द्रियाणां मुखैस्तत्तद्योग्यविषयग्रहणाभावात् पिहितेन्द्रियः, तस्य खलु महामुमुक्षोः परमवीतरागसंयमिनः सामायिकं व्रतं शश्वत् स्थायि भवतीति।

सावद्य-विरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२५॥

अन्वयार्थ : [सर्वसावद्ये विरतः] जो सर्व सावद्य में विरत है, [त्रिगुप्तः] जो तीन गुप्तिवाला है और [पिहितेन्द्रियः] जिसने इन्द्रियों को बन्द (निरुद्ध) किया है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) जो सर्व सावद्य व्यापार से रहित है, जो त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त है तथा जो समस्त इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है, उस मुनि को सामायिकव्रत स्थायी है, ऐसा कहा है।

यहाँ (इस लोक में) जो एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को क्लेश के हेतुभूत समस्त

सावद्य के *व्यासंग से विमुक्त है, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण त्रिगुप्त (तीन गुप्तिवाला) है और स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र नामक पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है, उस महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है।

प्रवचन-१४३, श्लोक-२०३-२०४, गाथा-१२५-१२६,
मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण ५, दिनांक ०३-६-१९८०

नियमसार गाथा १२५

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ।।१२५।।

सावद्य-विरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२५॥

सामायिक किसे कहते हैं? यह तो सामायिक कहो, प्रायश्चित्त कहो, कायोत्सर्ग कहो, धर्मध्यान कहो, समकित दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, वह सब एक ही बात है। नाम भिन्न-भिन्न पाड़कर विस्तार किया। सामायिक।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) जो सर्व सावद्य व्यापार से रहित है,... आहाहा! बाहर के पाँच इन्द्रियों के विषयों के सावद्य व्यापार ने घेरा डाला है। उसमें से निवृत्त नहीं होता। आहाहा! पाँच इन्द्रियों के विषयों से, सावद्य से अर्थात् व्यापार से रहित है। **जो त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त है...** आहाहा! इस ओर से निवृत्ति और ऐसे अन्तर में मन-वचन-काया से आत्मा में गुप्त करना। मन-वचन-काया से आत्मा में गुप्त होना। मन-वचन-काया की क्रिया, वह भी कोई सामायिक की नहीं है। आहाहा! **तथा जो समस्त इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है,...** पाँचों इन्द्रियों का जो व्यापार... आहाहा! बोलना, सुनना, देखना, सूँघना, स्पर्श करना - ऐसे पाँचों इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है। **उस मुनि को...** ऐसे मुनि को

---

* **व्यासंग=गाढ संग; संग; आसक्ति।**

सामायिकव्रत स्थायी है,... स्थायी अर्थात् सच्चा है। उसका सामायिक सच्चा है। **ऐसा कहा है।**

यहाँ (इस लोक में) जो एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को क्लेश के हेतुभूत समस्त सावद्य के व्यासंग से विमुक्त है,... जो प्राणी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसे प्राणियों का समूह जो ढ़ेर... आहाहा! उसके **क्लेश के हेतुभूत...** उन जीवों को क्लेश का कारण, ऐसा **समस्त सावद्य के व्यासंग...** सावद्य का संग, गाढ़ संग, आशक्ति से **विमुक्त है,...** आहाहा! एकेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रिय। अपनी पाँचों ही इन्द्रियों से निवृत्त, अनीन्द्रिय में जा। तब सामायिक होती है। इन्द्रियों की ओर के झुकाव में सामायिक नहीं होती। आहाहा! एक तो सावद्य की ओर के झुकाव में सामायिक नहीं होती। दूसरा, इन्द्रियों के विषयों के झुकाव में सामायिक नहीं होती। आहाहा! सावद्य से भी निवृत्ति होना और पाँच इन्द्रिय के विषय के घेरा के.... चारों ओर विषय का घेरा। यह रूप, यह वर्ण, यह गन्ध, यह खाना, रस, और स्पर्श। आहाहा! इन पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होना। है ? आहाहा!

समस्त इन्द्रियों के व्यापार से मुक्त है। जिसे इन्द्रियों का व्यापार ही नहीं है। जिन्हें इन्द्रियों का व्यापार है ही नहीं, उन मुनि को सामायिक व्रत है। आहाहा! ऐसे मुनि को सामायिक व्रत है। सामायिक नाम धरावे, यहाँ तो आठ वर्ष की लड़की सामायिक करके बैठे, दो सामायिक, पाँच सामायिक करे और लोग फिर कुछ रुपया-दो रुपया दे। हो गयी सामायिक। देनेवाले को धर्म का अनुमोदन आया। आहाहा! एक-एक बात मिथ्या है। आत्मा अन्दर प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसकी सन्मुखता में गये बिना स्थिरता नहीं होती और सामायिक नहीं होती। आहाहा!

एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को क्लेश के हेतुभूत समस्त सावद्य के व्यासंग से विमुक्त है,... गाढ संग;... व्यासंग का अर्थ किया है। अकेला संग नहीं लिया। व्यासंग। व्यासंग अर्थात् **गाढ संग; संग; आसक्ति।** आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण...** आहाहा! सावद्ययोग से निवृत्ति। पाँच इन्द्रियों के झुकाव से निवृत्ति और मन-वचन-काया के झुकाव से भी निवृत्ति। आहाहा! इस ओर अन्दर ढले। सावद्य से निवृत्ति करके, इन्द्रियों की ओर के झुकाव को छोड़कर

ढले; और मन-वचन-काया के व्यापार को छोड़कर आत्मा में ढले। आहाहा! **उस मुनि के सामायिक व्रत स्थायी है।** उस मुनि को सामायिक सच्ची है। स्थायी अर्थात् सत्य है। बाकी तो सब कहनेमात्र सामायिक की है। ये गृहस्थ लोग सामायिक करते हैं न? सवेरे उठकर दो घड़ी सामायिक की। णमो अरिहंताणं करके कुछ गिनकर, न गिनकर दो घड़ी निकाले तो हो गयी सामायिक। आसन बिछाकर। सामायिक तो... बापू! कठिन बात है।

सावद्यपने से निवृत्ति, इन्द्रियों के विषयों से निवृत्ति और मन-वचन-काया के योग से निवृत्ति। आहाहा! गाथा एक में (प्रत्येक में) कहते हैं, उसे सामायिक स्थायी कही गयी है। आहाहा! यह सब बाह्य वस्तु है और बाह्य वस्तु को अपनी मानना, वह तो बहिरात्मा है। सावद्य को पाँच इन्द्रियों को, उनके विषयों को, मन-वचन-काया को 'मेरा' मानना, वह बहिर्वस्तु है; इसलिए बहिरात्मा है। बहिर्वस्तु को अपनी मानना अर्थात् बहिर्आत्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे सामायिक नहीं होती। सावद्ययोग से, इन्द्रियों के विषयों से, मन-वचन-काया इन तीनों से अत्यन्त निवृत्ति होकर अन्दर में अकेला यह आत्मा। अकेला ध्यान में आत्मा... आहाहा! जहाँ अकेली आत्मा की समता, आनन्द का-समता का वेदन; जिसमें सावद्य आदि कुछ असर नहीं। ऐसी दशा को सामायिक व्रत कहा जाता है। आहाहा!

यह सामायिक तो बहुतों ने की होगी। वाड़ा के नाम से सामायिक करे। हम तो १० वर्ष की उम्र से करते थे। १० वर्ष की उम्र से। यह तो ९१ हुए। ८० वर्ष पहले से करते थे। जैनशाला पढ़कर सामायिक करो। आहाहा! वह सामायिक नहीं। आहाहा! जिसमें समता अर्थात् वीतरागभाव का लाभ हो; सावद्ययोग, मन-वचन-काया और इन्द्रियों का व्यापार, वह तो विकारी भाव क्लेश है। आहाहा! वह चाहे तो शुभभाव हो तो भी क्लेश है। शुभभाव, वह क्लेश है। उससे निवृत्त होकर अपने आत्मा में लीन होना, इसका नाम सामायिक कहा जाता है। आहाहा! अभी सामायिक किसे कहना, यह सब सुना न हो, निर्णय न किया हो। जाकर आसन बिछाकर बैठे।

मुमुक्षु : सुनानेवाले ही नहीं, कहाँ जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब फेरफार बहुत हो गया। बहुत फेरफार। आहाहा! हीराजी महाराज बेचारे हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। बस, वे मानते कि यह हमारे पंच महाव्रत हैं। हम

तो निर्दोष आहार लेते हैं, विहार करते हैं, शास्त्र-प्ररूपणा करते हैं। हम मुनि नहीं होंगे तो मुनि कौन होगा ?—ऐसा कहते थे। मूलचन्दजी... मूलचन्दजी के साथ में थे, ऐसा कहते कि हम मुनि नहीं होंगे तो अभी मुनि कौन है ? अपने ऐसा कि सावद्य लेते नहीं, निर्दोष आहार लेते हैं। आहाहा! बाहर की क्रिया में मान बैठे, बस।

यहाँ तो कहते हैं, **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार...** शुभभाव भी मन का व्यापार। आहाहा! शुभ, मैं सामायिक करूँ - ऐसा जो शुभराग, वह भी सामायिक नहीं। आहाहा! शुभराग से हटकर अन्तर में वीतरागभाव की ओर उन्मुखता जाए, तब वीतरागी समता पर्याय प्रगट हो, तब उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण त्रिगुप्त...** मन-वचन-काया, तीन से गुप्ति **और स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र नामक पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव...** सुनने का भी अभाव, बोलने का भी अभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तर में जाने में सद्भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में जाने के लिये तैयारी। भगवान विराजता है, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति है, वहाँ जाना। यहाँ से सब से निवृत्त होना, उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! वह न हो तो ऐसी सामायिक भी साधन करते-करते होगी न ? इस सामायिक का साधन करेगा तो किसी दिन सच्ची होगी, ऐसा है नहीं। ऐसी बाहर की सामायिक अनन्त बार की है। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव... पाँच इन्द्रिय के विषय का-स्पर्श का ग्रहण करना, स्पर्श का ग्रहण करना, रूप का ग्रहण करना, गन्ध का, रस का और स्पर्श के ग्रहण करने का अभाव। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों के विषय रुक जाएँ, तब अपने स्वरूप में अन्दर लीन हो, उसे यहाँ सामायिक कहते हैं। आहाहा! **विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** इन्द्रियों का व्यापार तो बन्द कर दिया। इन्द्रिय-व्यापार ही बन्द किया। आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया, सावद्य से तो निवृत्ति, यह तो ठीक, परन्तु इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया तीन से निवृत्ति। इन आठों से निवृत्ति। **बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** उनका व्यापार अन्दर सुनने

का, देखने का, कहने का सब बन्द किया। आहाहा! **बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** पाँचों इन्द्रियों के **विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** आहाहा! **उस महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को...** उस महा मुमुक्षु मोक्ष का अभिलाषी **परमवीतरागसंयमी को वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है।** उसे सामायिक सच्ची है। सत्य सामायिक है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि के योग्य सामायिक की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को सामायिक और गृहस्थ को सामायिक होती है। यह तो विशेष परमवीतराग है। ऐसा है न? देखो न! कहा न, परमवीतरागसंयमी। परन्तु नीचे है, वह परमवीतरागसंयमी नहीं परन्तु अल्प वीतरागसंयमी है। चौथे में भी हो। मुनि की बात मुख्यता से करते हैं। परमवीतराग ऐसा लिया और महामुमुक्षु लिया। साधारण मुमुक्षु नहीं।

महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है। आहाहा! इस सामायिक का अर्थ, जिसे सम्यग्दर्शन होता है, स्वरूप की ओर के झुकाव से पर पूरा जगत, विकल्प से पूरा जगत उससे भिन्न अपनी चीज़ का अनुभव हो, तब उसे समकितरूपी सामायिक होती है। समकित सामायिक, ज्ञान सामायिक और चारित्र। यह समकित सामायिक है। आहाहा! उसमें ज्ञान करके स्थिर हो, वह ज्ञान सामायिक है और रागरहित होकर स्थिर होना वह चारित्र सामायिक है। आहाहा! अनजाने लोगों को ऐसा कठिन लगता है। नये लोगों को (ऐसा हो) तो फिर हम यह सब करते हैं... सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, (वह कुछ नहीं?) सब धूल है।

मुमुक्षु : वह भी सामायिक कहाँ है? प्रौषध कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : थी कब सामायिक? प्रौषध-प्रतिक्रमण थे कब? अभी सम्यक् चीज़ क्या है? अन्तर चीज़ क्या है? उस अन्तर चीज़ में अन्तर में जाना, अन्तर चीज़ में अन्तर में जाना, उसमें स्थिर रहना, इसका नाम सामायिक है। आहाहा!

श्लोक-२०३

[अब इस १२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

इत्थं मुक्त्वा भव-भयकरं सर्व-सावद्यराशिं,
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम्।
अन्त:शुद्ध्या परम-कलया साक-मात्मान-मेकं,
बुद्ध्वा जन्तु: स्थिर-शम-मयं शुद्धशीलं प्रयाति।।२०३।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार भव-भव उत्पादक सब सावद्य राशि को त्याग।
मन-वच-तन की विकृति को भी प्राप्त करावे सतत विनाश॥
अन्तरंग शुद्धि से परम कलामय निज आतम को जान।
स्थिर शममय शुद्ध शील को प्राप्त करे यह जीव महान॥२०३॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार भवभय के करनेवाले समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर, काय-वचन-मन की विकृति को निरन्तर नाश प्राप्त कराके, अन्तरंग शुद्धि से परम कला सहित (परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर जीव स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है (अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)॥२०३॥

श्लोक- २०३ पर प्रवचन

[अब इस १२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

इत्थं मुक्त्वा भव-भयकरं सर्व-सावद्यराशिं,
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम्।

अन्त:शुद्ध्या परम-कलया साक-मात्मान-मेकं,
बुद्ध्वा जन्तुः स्थिर-शम-मयं शुद्धशीलं प्रयाति ।।२०३।।

श्लोकार्थ : आहाहा ! **इस प्रकार भवभय के करनेवाले...** आहाहा ! जो सावद्यपना है, इन्द्रियों का विषय और हिंसा तथा पाँच इन्द्रियों का विषय और मन-वचन-काया का प्रवर्तन, वह भवभय का कारण है। वह भव का कारण है। आहाहा ! **इस प्रकार भवभय के करनेवाले समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर,...** आहाहा ! एकेन्द्रिय को भी मारना, वह सावद्यपना भवभय का कारण है। आहाहा ! उससे भव होगा। कहाँ जाएगा ? आहाहा ! देह छूट जाएगी। आत्मसत्ता तो शाश्वत् है, तो दूसरे भव में चला जाएगा। फिर यह भव कब मिलेगा ? जिसने सावद्य और इन्द्रिय के विषयों में लीनता की है और मन-वचन-काया की प्रवृत्ति में अपनापन माना है, वह आत्मा तो भवभ्रमण में भटकेगा। आहाहा ! भवभयकरण। भव का जिसे अन्दर भय होता है। अरे ! देह छूटकर कहाँ जाऊँगा ? देह की स्थिति पूरी होने को आयी। ५०-६०-७० होवे, उसे तो इतने निकलने के नहीं होते। ५०-६० हुए हों, उसे ५०-६० निकलने होंगे ? आहाहा ! यह तो ९१ हुए। ९१ तो क्या अब १० भी निकलनेवाले नहीं हैं। आहाहा !

कहते हैं **भवभय के करनेवाले...** भविष्य में कहाँ भव होगा ? आत्मा का यदि धर्म नहीं किया, आत्मा का ज्ञान नहीं किया, आत्मा जैसी चीज़ है, उसके सन्मुख नहीं हुआ तो कहाँ भव होगा। आहाहा ! उस भव के भय के करनेवाले **समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर,...** आहाहा ! दुनिया के दिखाव के लिये नहीं। भवभय के डर के लिये सावद्य का त्याग, ऐसा कहते हैं। दुनिया माने कि मैंने ऐसी सामायिक करके बैठते हैं और प्रौषध किये हैं। दुनिया माने, वह नहीं। उसके अन्तर में भव के भय का त्रास (होता है) । आहाहा ! देह की स्थिति पूरी हो जाएगी। आत्मा तो अनादि-अनन्त है, तो कहाँ जाएगा ? आहाहा ! यहाँ से छूटा, ऐसा दूसरे भव में तुरन्त... आहाहा !

भव के भय करनेवाले जीव को कहाँ भव होगा ? ऐसा भय है। वह आत्मा में आता है। आहाहा ! आत्मा में भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आत्मा में भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। भगवान आत्मा में भव भी नहीं, पुण्य-पाप भी नहीं, भव भी नहीं। भव का कारण पुण्य-पाप, वह भी नहीं। वह तो

ज्ञायकमूर्ति, चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहा! उसमें पर की ओर का विषय और सावद्ययोग तथा मन-वचन-काया तीनों से हटकर... आहाहा! **काय-वचन-मन की विकृति को निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** देखो! यहाँ तो शुभभाव को विकृति कही। काया का शुभभाव, वचन और मन से शुभभाव, वह विकृति है। आहाहा! उसे **निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** निरन्तर अर्थात् क्षणिक शुभभाव आया, इसलिए मानो कायम रहेगा। शुभभाव नाश (पायेगा)। मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। आहाहा! कठिन बात है।

निरन्तर नाश प्राप्त कराके, अन्तरंग शुद्धि से परम कला सहित... आहाहा! अन्तर शुद्धि से परम ज्ञानकला। आहाहा! 'ज्ञानकला सब जागी'। आहाहा! मन-वचन-काया की क्रिया, सावद्यक्रिया और इन्द्रियों के विषय यह तो सब अज्ञान क्रिया है। अज्ञान अर्थात् उसमें कुछ ज्ञान नहीं है। वह तो जड़ है। आहाहा! यह ज्ञानकला अन्दर है। **परम कला सहित (परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर...** गुण-गुणी का भेद भी नहीं। एक आत्मा। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ एक स्वरूप आत्मा। सावद्य, इन्द्रियों के विषय। वह अणीन्द्रिय, सावद्य से निर्दोष, मन-वचन-काया के योग से रहित ऐसी जो आत्मा की ज्ञानकला। आहाहा! ज्ञानकला द्वारा **एक आत्मा को जानकर...** क्या कहा?

(परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर... राग से नहीं ज्ञात होता, भेद से नहीं ज्ञात होता। ज्ञानकला (सहित) **एक आत्मा को...** एक आत्मा को। आहाहा! अभेद आत्मा को जानकर। आहाहा! ज्ञानकला द्वारा एक अभेद आत्मा को जानकर... आहाहा! जो स्थिर समभाव। **स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है...** स्थिरशममय शुद्ध। शीलस्वभाव, शुद्धस्वभाव **प्राप्त करता है...** आहाहा! शुद्धस्वभाव प्राप्त करता है, वह सामायिक है। आहाहा! यहाँ तो प्रतिमा लेकर बहुत बैठे हों। सात-आठ प्रतिमा, आठ प्रतिमा और ग्यारह प्रतिमा। आहाहा!

बहुत वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिमाधारी आया था। कहे, आठ प्रतिमा है परन्तु अभी लोग आदर नहीं करते। ग्यारह प्रतिमा लेनी पड़ेगी, तब लोग आदर करेंगे। ऐसा कहता था। स्पष्ट कहता था। यहाँ जाना था न भाई को। चुन्नीभाई के यहाँ। किसने कहा? चुन्नीभाई के यहाँ जाना है। चुन्नीभाई का घर यहाँ है न? मूलशंकर का भाई। वहाँ आहार करने जाना है। मैं भी वहाँ जानेवाला हूँ। वह ऐसा कहता था कि आठ प्रतिमा ली है, परन्तु लोग आदर

नहीं करते। ग्यारह प्रतिमा लूँगा, तब आदर करेंगे। आहाहा! अरे रे! आदर कौन करे? किसका आदर? भाई! तुझे दूसरे से आदर करवाना है? वह तो बहिरात्मबुद्धि हुई। आहाहा! आत्मा को बाहर प्रसिद्ध होना है, इसका अर्थ बहिरात्मा है। अन्दर में समाना नहीं है परन्तु बाहर में प्रसिद्ध होना है... कुछ बाहर में प्रसिद्ध होना है। आहाहा! बाहर प्रसिद्ध होना है, वह बहिरात्मा है। आहाहा!

एक आत्मा को जानकर... देखा? आत्मा भी एक, भेद नहीं। गुण-गुणी भेद नहीं। ऐसा एक **जीव स्थिरशममय शुद्ध शील...** शुद्ध स्वभाव को **प्राप्त करता है...** अन्दर शुद्ध पवित्र जो स्वभाव है, उसे वह पर्याय में प्राप्त करता है। इसका नाम सामायिक है। आहाहा! यह सामायिक अप्रचलित है। चारों ओर सब... सामायिक-वामायिक की होगी या नहीं? की है। आहाहा!

(अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)। आहाहा! शाश्वत जो समतामय प्रभु, आहाहा! उस शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है। उसमें रमणता प्राप्त करता है। शाश्वत शुद्धस्वरूप भगवान में रमणता करता है, इसका नाम सामायिक है। आहाहा! अभी सामायिक की व्याख्या तो साधारण है। यह सामायिक की। आसन बिछाया, णमो अरिहंताणं... .... सात पाठ बोले इसलिए सामायिक हो गयी। फिर पढ़े कुछ या विकथा करे और या पढ़े। हो गयी सामायिक। आहाहा!

ताराचन्दभाई थे न? वारिया, जामनगर। वे आर्यिका को, साधु को सूत्र पढ़ाते थे। पहले-पहले मैं (संवत्) १९८२ के वर्ष में गया था। मैंने पहले-पहले जाकर पहले-पहले कहा कि मन-वचन-काया की क्रिया, वह शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है। वह सामायिक और प्रतिक्रमण नहीं है। वे भड़क गये। ताराचन्दभाई भड़क गये। कोई नहीं था तब अकेले आये। महाराज! ऐसा होगा? परन्तु देखो न! तुम्हारे पुनातर का बनाया हुआ ज्ञानसागर में क्या लिखा है?—कि मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता और झगड़े रहित इन चार से शुभनामकर्म बँधता है। धर्म नहीं। १९८२ के वर्ष की बात है। उन ताराचन्दभाई ने बहुत पढ़ा हुआ था। साधु को पढ़ाता थे और यह बात जहाँ आयी, वहाँ भड़क गये परन्तु व्यक्ति नरम। झगडालु या प्रकृति ऐसी नहीं। एकान्त में आये अकेले। महाराज! इसमें ऐसा आया परन्तु यह... देखो न तुम्हारे शास्त्र में। यहाँ की पुस्तक में। चार

कारण से तो शुभ, पुण्य नामकर्म बँधता है। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, झगड़ारहित। किसी के साथ झगड़ा नहीं। ऐसी अन्दर निवृत्ति, उसे तो शुभभाव कहते हैं। उसे शुभभाव कहते हैं, धर्म नहीं, कहा। परन्तु नरम व्यक्ति। स्वीकार किया था।

मुमुक्षु : वहाँ शुभयोग को सामायिक कही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभयोग, वह सामायिक। कल यह साधु ने नहीं कहा था? कि यह शुभयोग कहलाये न? परन्तु शुभयोग अर्थात् क्या? राग, जहर। अमृत का जीवन भगवान का। आहाहा! अमृत से भरपूर भगवान, उससे विरुद्ध का शुभभाव, वह तो जहर है। आहाहा! अरे! कभी सुना नहीं। प्रभु अमृत से भरपूर है, पूर्णानन्द का नाथ अमृत से भरपूर, उससे विरुद्ध का शुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रत्याख्यान आदि, वह सब जहर है। आहाहा! उस जहर से छूटकर अमृत जीवन में जाए, तब सामायिक होती है। आहाहा! समझ में आया?

स्थिरशममय शुद्ध शील... ऐसा कहा न? शुभ नहीं कहा। शुद्ध कहा है। **शुद्ध शील को प्राप्त करता है...** अर्थात् अकेला शरीर का ब्रह्मचर्य, वह नहीं। शुद्ध शील स्वभाव। शुद्ध अन्दर स्वभाव भगवान शुद्ध स्वभाव है, उसे **प्राप्त करता है (अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)।** आहाहा! भगवान वीतरागमूर्ति समतामय वस्तु है, उसमें चारित्र का घेरा डालकर स्थिर होता है। आहाहा! चरना, स्वरूप में चरना चारित्र अर्थात् चरना। स्वरूप की दृष्टि होकर... आहाहा! चारित्र अर्थात् स्वरूपदृष्टि में आया, ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसमें चरना, उसमें रमना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! यह तो समकित की ओर मिथ्यात्व की कोई खबर भी नहीं होती। हो गया चारित्र और हो गये साधु। भाई! कठिन बात है, बापू! आहाहा!

गाथा - १२६

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

य: सम: सर्व-भूतेषु स्थावरेषु त्रसेषु वा।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने।।१२६।।

परममाध्यस्थ्यभावाद्यारूढस्थितस्य परममुमुक्षो: स्वरूपमत्रोक्तम्। य: सहजवैराग्यप्रासाद-शिखरशिखामणि: विकारकारणनिखिलमोहरागद्वेषाभावाद् भेदकल्पनापोढपरमसमरसी-भावसनाथत्वात्त्रसस्थावरजीवनिकायेषु सम:, तस्य च परमजिनयोगीश्वरस्य सामायिकाभि-धानव्रतं सनातनमिति वीतरागसर्वज्ञमार्गे सिद्धमिति।

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायि सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१२६॥

अन्वयार्थ : [य:] जो [स्थावरेषु] स्थावर [वा] अथवा [त्रसेषु] त्रस [सर्वभूतेषु] सर्व जीवों के प्रति [सम:] समभाववाला है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ, परम माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर स्थित परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (अर्थात् परम सहजवैराग्यवन्त मुनि) विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त परम समरसीभाव सहित होने से त्रस-स्थावर (समस्त) जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है, उस परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है, ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।

गाथा - १२६ पर प्रवचन

१२६ गाथा, यह चलता...

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

यह तो सामायिक में आता है।

मुमुक्षु : अपने प्रतिक्रमण में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण में आता है। **जो समो सव्वभूदेसु** बहुत ऊँची गाथा है। इसका अर्थ तो करेंगे, परन्तु इसके आठ तो कलश लिखेंगे। एक गाथा के आठ कलश। क्योंकि यह तो प्रचलित गाथा है।

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

नीचे (हरिगीत)

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायि सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१२६॥

केवली शासन वीतरागमार्ग में इसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा!

टीका : यहाँ, परम माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर... मध्यस्थ—पुण्य-पाप से रहित मध्यस्थ। अकेला वीतरागी भाव अन्दर भरा है, उसमें आरूढ़ होना। आहाहा! **माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर...** इत्यादि अर्थात् वीतराग आदि भाव। अन्दर त्रिकाली वीतरागी भाव शुद्धभाव, पवित्र भाव, निरावरण भाव, निरालम्बन भाव, ऐसी जो त्रिकाली चीज़, उसमें आरूढ़ होकर। आहाहा! यह तो शत्रुंजय आरूढ़ किया, ऊपर जरा चढ़े तो हो गयी यात्रा। साधु को देना। ऐसा शत्रुंजय माहात्म्य में लिखा है। यात्रा करके उतरकर साधु को दे तो बहुत लाभ होता है। चाहे जैसा साधु हो। आहाहा! साधु था कब?

मुमुक्षु : साधु को लाभ देने के लिये होकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु था कब साधु? शत्रुंजय लाख बार जा न। ऊपर चढ़ और

नीचे उतर। कदाचित् शुभभाव होगा। नीचे मुनि हो, वह मुनि भी सच्चा है कब? आहाहा! बहुत कठिन काम है। आहाहा!

मुनि तो अन्दर और बाह्य नग्न होते हैं। बाह्य में नग्न और अन्दर में विकल्प से रहित, निर्विकल्प आनन्दकन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आरूढ़ हुए हैं, आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। कोई पंच महाव्रत या क्रिया करे या नग्न हो जाए, इसलिए मुनिपना है, ऐसा नहीं है। बहुत कठिन काम, भाई! यहाँ **परम माध्यस्थभाव...** देखा? मध्यस्थ। अकेला वीतरागभाव। भगवान आत्मा अकेला अनाकुल आनन्दमय भाव। प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के पूर्ण रूप भाव, उसमें **आरूढ़ होकर...** आहाहा! **स्थित परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।** उस परममुमुक्षु का स्वरूप इस गाथा में कहा है। जघन्य मुमुक्षु हो, वह नहीं। परममुमुक्षु की बात (करते हैं)। मुनि है न, तो मुनि की बात करते हैं। आहाहा!

यहाँ परम मध्यस्थभाव इत्यादि में। शुद्धभाव शुद्धउपयोगरूप होकर। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह अशुद्ध उपयोग है। उस अशुद्ध भाव को छोड़कर शुद्धस्वरूप में आरूढ़ होकर। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध पवित्र पिण्ड है, पवित्र मूर्ति है। पवित्र में आरूढ़ होकर... आहाहा! **स्थित...** आरूढ़ होकर उसमें स्थित **परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।** उसमें परममुमुक्षु का स्वरूप कहा गया है। इसलिए एक गाथा के आठ तो कलश हैं। आहाहा!

जो सहज वैराग्यरूपी... क्या कहते हैं? आत्मा के अतिरिक्त बाहर की चीज़ में तो उदास है। आत्मा के अतिरिक्त विकल्प से लेकर सब चीज़ में जिसे उदासभाव है... आहाहा! क्योंकि वह मेरी चीज़ नहीं है। मेरी चीज़ नहीं, उसमें उदासभाव है। आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का...** सहज वैराग्य। आत्मा के अतिरिक्त किसी चीज़ के प्रति प्रेम नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वैराग्य महल कहलाये कुछ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को वैराग्य कहलाता है।

मुमुक्षु : राजा का महल कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महल अन्दर। क्या कहा?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि... ऐसे वैराग्य का... आहाहा! वैराग्य में झूलता-झूलता आत्मा। परसन्मुख से बिल्कुल उदास है। आत्मा के अतिरिक्त परसन्मुख से बिल्कुल उदास है और अन्तर में वैराग्य में आरूढ़ है। आहाहा! **शिखर का शिखामणि...** आहाहा! एक तो स्वाभाविक वैराग्य। स्वाभाविक वैराग्य उसे कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव से विरक्त, इसका नाम वैराग्य कहते हैं। दया, दान के भाव में रक्त, उसे अवैराग्य कहते हैं। वह राग है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में उदास है, उसे वैराग्य कहते हैं। उसमें प्रेम है, उसे अवैराग्य कहते हैं। वैराग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

स्वाभाविक वैराग्य। अन्तर आत्मा में अन्दर बैठक करने से... आहाहा! उदासीन। पर से आसन छोड़कर जिसने आत्मा के आनन्द में आसन लगाया। उदासीन। आहाहा! उदासीन। ऐसा वैराग्य सहज स्वाभाविक। हठ से नहीं। सहज वैराग्य। आहाहा! दुनिया की चीज़ के अनित्यता के भाव को देखकर, सहज वैराग्य आवे, उसे यहाँ वैराग्य का महल कहा। उसका शिखर अर्थात् विशेष वैराग्य। उसका शिखामणि। आहाहा! वैराग्य की धुन लगी है, कहते हैं। आहाहा!

(अर्थात् परम सहजवैराग्यवन्त मुनि) विकार के कारणभूत... आहाहा! **समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण...** विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष। शुभ-अशुभभाव, मोह-राग और शुभ-अशुभभाव के **अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त...** भेद की कल्पना से भी मुक्त। आहाहा! आत्मा आनन्द है, ऐसा भी भेद, यह भेद की कल्पना भी राग है। आहाहा! भगवान गुणी है और गुणवाला है, ऐसा विचार भी राग है। आहाहा! है? **भेदकल्पना विमुक्त... मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त...** उसे भेदकल्पना है ही नहीं। आहाहा! यह सामायिक। **परम समरसीभाव सहित...** परम वीतरागभाव सहित। अस्ति ली है और वैराग्य वहाँ पर से उदास था। यहाँ **परम समरसीभाव सहित...** शुद्धोपयोग में परम समरसीभाव आया। परम समताभाव, वीतरागभाव, अनाकुल भाव, आनन्द भाव, समता भाव आया। आहाहा! **सहित होने से...** ऐसे परमसमरसीभाव सहित होने से। **त्रस-स्थावर (समस्त) जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** आहाहा! एकेन्द्रिय का, निगोद के जीव के प्रति भी उसे मारने का

झुकाव नहीं। उदास.. उदास.. आहाहा! **जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** अर्थात् उस ओर का लक्ष्य ही नहीं है। आत्मा के वीतरागस्वभाव सन्मुख है, पर से तो समभाव है। आहाहा!

उस परम जिनयोगीश्वर को... यहाँ तो उत्कृष्ट से बात ली है न? **उस परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है,...** उसे स्थायी सामायिक है। **जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** आहाहा! कोई दुश्मन नहीं, कोई बैरी नहीं। सब जीवों के प्रति एकरूप भाव है। एकरूप भाव है। यह माता-पिता या पुत्र अनुकूल है और यह प्रतिकूल है, ऐसे सब विकल्प छूट गये हैं। आहाहा! अनुकूल और प्रतिकूल का विकल्प छूटकर परम वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में स्थित है। वह व्रत सनातन है। **ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।** ऐसी सामायिक सर्वज्ञ वीतराग के मार्ग में है। अन्यत्र ऐसी सामायिक नहीं होती। अन्य मार्ग में कहीं भी सामायिक-फामायिक नहीं होती। आहाहा! कबीर वैराग्य की बहुत बातें करे, जनकविदेही की बातें करे।

मुमुक्षु : आत्मा के बिना का वैराग्य आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्या। यह तो अन्तर का वैराग्य है। वह तो जनकविदेही की बातें करता है। परन्तु स्वयं को अन्दर सम्यग्दर्शन कहाँ है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

अन्तर में चैतन्य चमत्कार वस्तु पड़ी है। चैतन्य चमत्कार जो एक समय में तीन काल, तीन लोक को देखे, ऐसी चीज़ पड़ी है। उस चीज़ का माहात्म्य करके परचीज़ में से माहात्म्य उठाकर... आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, उनमें से भी माहात्म्य उठाकर अन्दर स्वभाव के माहात्म्य में स्थिर होता है। आहाहा!

परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है,... आहाहा! अनादि जो वीतराग ने कहा, वह सामायिक है। **ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।** ऐसी सामायिक सर्वज्ञ वीतरागमार्ग में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी मार्ग में वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा!

अब इस १२६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैं:

श्लोक-२०४

[अब इस १२६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैंः]

(मालिनी)

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा,
परम-जिन-मुनीनां चित्त-मुच्चै-रजस्रम्।
अपि चरम-गतं यन्निर्मलं कर्म-मुक्त्यै,
तदह-मभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि।।२०४।।

(वीरछन्द)

त्रस जीवों के घात और स्थावर के भी वध से मुक्त।
परम संयमी जिन मुनियों का रहे निरन्तर ऐसा चित्त॥
चरम अवस्था प्राप्त चित्त का स्तवन करूँ जो अति निर्मल।
कर्म मुक्ति के लिए नमूँ, सम्यक् भाता, करता वन्दन॥२०४॥

श्लोकार्थ : परम जिनमुनियों का जो चित्त (चैतन्यपरिणमन) निरन्तर त्रस जीवों के घात से तथा स्थावर जीवों के वध से अत्यन्त विमुक्त है, और जो (चित्त) अन्तिम अवस्था को प्राप्त तथा निर्मल है, उसे मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु नमन करता हूँ, स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥२०४॥

श्लोक- २०४ पर प्रवचन

आहाहा! है पश्चात्, हों! गाथाएँ हैं।

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा,
परम-जिन-मुनीनां चित्त-मुच्चै-रजस्रम्।
अपि चरम-गतं यन्निर्मलं कर्म-मुक्त्यै,
तदह-मभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि।।२०४।।

आहाहा! अब मुनिराज स्वयं कहते हैं।

श्लोकार्थ : परम जिनमुनियों का जो चित्त... आहाहा! जिन्हें आत्म-अनुभव होकर आत्मा में जमावट जम गयी है। चारित्र की जमावट जम गयी है। आहाहा! ऐसे मुनि को चारित्र होता है। **परम जिनमुनियों का जो चित्त (चैतन्यपरिणमन) निरन्तर त्रस जीवों के घात से तथा स्थावर जीवों के वध से अत्यन्त विमुक्त है,...** आहाहा! त्रस और स्थावर जीव हैं। उनके घात से वह विमुक्त है, उनकी ओर के झुकाव से विमुक्त है। आहाहा! **और जो (चित्त) अन्तिम अवस्था को प्राप्त...** ज्ञान। चित्त अर्थात् ज्ञान। वह ज्ञान **अन्तिम अवस्था को प्राप्त तथा निर्मल है,...** आहाहा! **उसे...** मुनिराज स्वयं कहते हैं, जिसका ज्ञान उत्कृष्ट निर्मल हुआ और पर से हट गया, **उसे मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु...** मैं कर्म से मुक्त होने के अर्थ **नमन करता हूँ,...** लो!

मुमुक्षु : ..... नमन करे तो कर्म से मुक्त हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ कोई कहे कि उसके कर्म से मुक्त होने का हेतु नमन करना, यह है। नमन करना, वह तो शुभभाव है। परन्तु मेरी भावना अन्तर में नमन करने की है। अन्तर में झुकाव की भावना है। विकल्प आवे, उसका मुझे आदर नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन बातें! अभी जैनधर्म को अजैनरूप से कर डाला है। राग, पुण्य, विकल्प सब में अजैनपना और वह अजैन, जैन है। नाम धराता है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु मुनि कहते हैं, **मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु...** अर्थात् कोई भी पुण्यबन्ध मुझे हो और स्वर्ग मिले, ऐसा नहीं है। ऐसा लेना है। **मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु नमन करता हूँ,...** मैं तो अन्दर में नमन करता हूँ। सर्व कर्म से मुक्त होने के हेतु। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप में नमन करता हूँ। आहाहा! **स्तवन करता हूँ,...** उसका मैं स्तवन-स्तुति करता हूँ और **सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** लो! भावना करता हूँ। सम्यक् प्रकार से शुद्ध चिदानन्द प्रभु, पुण्य-पाप के भाव की क्रिया से रहित ऐसा चैतन्य प्रभु, उसे दृष्टि में-ज्ञान में लेकर मैं उसकी भावना करता हूँ। उसमें एकाग्र रहने की भावना करता हूँ। शुद्ध स्वरूप चैतन्य में एकाग्र रहने की भावना करता हूँ। आहाहा! शुद्ध क्या और शुभ क्या? यह तो शुभ आवे, वह सब धर्म। आहाहा! यहाँ सब समयसार में पढ़ा है। ....सब... बहुत होते हैं। यहाँ की पुस्तकें। उसे दूसरा छोटा है न भावसार? उसका जो फूफा है, वह यहाँ का प्रेमी है।

यहाँ बहुत बार आता है। भावसार है। कच्छ में जाता है। यहाँ की सब पुस्तकें देता है। पढ़ी है सब परन्तु एक शुभभाव... दस वर्ष की उम्र नहीं होवे और दीक्षा ली। कुछ भान नहीं होता की कि आत्मा क्या?

मुमुक्षु : दीक्षा देनेवाले को कहाँ भान है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भान (नहीं) परन्तु वह तो छोटा है। कौन है? खबर नहीं कि महाव्रत किसे कहना, समकित किसे कहना। बनिया ऐसा... है न? उसे जयनारायण करे। ऐसे बाह्य क्रियाकाण्डवाले को वन्दन करे, चरणस्पर्श करे तो अपना निभे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं तो सम्यक् प्रकार से मेरे आत्मा को भाता हूँ। मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी मैं भावना करता हूँ। दूसरे की भावना मुझे नहीं है, इसका नाम सामायिक है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२०५

(अनुष्टुप्)

केचिदद्वैतमार्गस्थाः केचिद् द्वैतपथे स्थिताः।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमार्गे वर्तामहे वयम्।।२०५।।

(वीरछन्द)

कोई अद्वैत मार्ग में स्थित द्वैत मार्ग में कोई रमें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त मार्ग में अहो निरन्तर हम वर्तें॥२०५॥

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं और कोई जीव द्वैतमार्ग में स्थित हैं; द्वैत और अद्वैत से विमुक्त मार्ग में (अर्थात् जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में) हम वर्तते हैं॥२०५॥

प्रवचन-१४४, श्लोक-२०५-२०८, बुधवार, ज्येष्ठ कृष्ण ६, दिनांक ०४-६-१९८०

नियमसार, २०५ कलश है। २०४ हो गये हैं।

केचिदद्वैतमार्गस्था: केचिद् द्वैतपथे स्थिता:।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमार्गे वर्तामहे वयम्।।२०५।।

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं... (अर्थात् कि) विकल्प। वेदान्त अद्वैतमार्ग है। परन्तु यहाँ तो अद्वैत अर्थात् विकल्प। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ आदि ऐसे अद्वैत के विकल्प में कोई रहता है, वह भी बन्ध का कारण है। अद्वैत। **कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं और कोई जीव द्वैतमार्ग में स्थित हैं;...** कोई गुण-गुणी के भेद इत्यादि में रहते हैं। आहाहा! **द्वैत और अद्वैत से विमुक्त मार्ग में...** मैं तो द्वैत और अद्वैत के विकल्प से मुक्त हूँ। आहाहा! अखण्ड आनन्द पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अभेद अखण्ड है, उसमें विकल्प का अवकाश नहीं है। मैं ऐसा हूँ या वैसा हूँ, ऐसे विकल्प को जहाँ अवकाश नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप है, ऐसे स्वरूप को मैं तो भजता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अद्वैत से विमुक्त मार्ग में (अर्थात् जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में) हम वर्तते हैं। आहाहा! कहाँ साधुपद (और) कहाँ साधुपद मानते हैं। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य अखण्ड स्वरूप नित्यानन्द प्रभु, मैं एकरूप हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं और मैं गुण-गुणी भेदरूप हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं। ऐसे विकल्प से रहित मैं हूँ। वह आत्मा। आहाहा! **हम वर्तते हैं।** उसमें हम वर्तते हैं। ऐसा कहा। है न? आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर का विवाद। व्यवहार करना, यह करो... यह करो... यह करो... यहाँ तो कहते हैं कि द्वैत और अद्वैत के दो विकल्प उठें, वह भी मैं नहीं। आहाहा! वह राग है।

समयसार में वहाँ कहा न? कि मैं ज्ञायक हूँ, अभेद हूँ—ऐसा जो विकल्प (वहाँ तक आया), उससे क्या हुआ? वहाँ तक आया, उससे क्या? तुझे क्या लाभ है? आहाहा! विकल्प से रहित चैतन्यमूर्ति नित्यानन्द अखण्ड आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप, अभेदस्वरूप, एकस्वरूप, सामान्यस्वरूप, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय में उस सामान्य का अनुभव करना, वह धर्म है। सामान्य का अनुभव तो न हो, परन्तु सामान्य की ओर का लक्ष्य जाने पर निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसका वेदन हो, उसका नाम धर्म है।

आहाहा! बहुत कठिन काम। कहाँ बाहर में माने और कहाँ (मार्ग है)। यहाँ तो कहते हैं द्वैत-अद्वैत में भी मैं नहीं हूँ। ऐसे विकल्प से भी मैं तो रहित हूँ। आहाहा!

(जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में) हम वर्तते हैं। आहाहा! ऐसे मार्ग में हम वर्तते हैं। लिखते समय विकल्प है, परन्तु हम तो विकल्परहित (वस्तु हैं), उसमें वर्तते हैं, ऐसा कहते हैं। कलश / टीका लिखते समय विकल्प तो हो। उसके बिना, विकल्प के बिना पर के ऊपर लक्ष्य नहीं जाता परन्तु कहते हैं कि विकल्प हो परन्तु मैं उसमें नहीं वर्तता। मैं तो विकल्परहित निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य आनन्दघन में मैं तो वर्तता हूँ। यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। एकान्त लगे। द्वैत-अद्वैत का विकल्प भी नहीं। आहाहा! वस्तु है न? वस्तु है, वह पर की कोई अपेक्षा नहीं रखती। उसे राग के विकल्प की अपेक्षा नहीं है, वह तो निर्विकल्प चीज़ है। अखण्ड परमानन्द मूर्ति एकरूप विराजमान आत्मा है। आहाहा! उसका अनुभव करना, इसका नाम धर्म है, इसका नाम धर्म है। लो! आहाहा! २०५ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२०६

(अनुष्टुप्)

काङ्क्षन्त्यद्वैतमन्येऽपि द्वैतं काङ्क्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्तमात्मान-मभिनौम्यहम् ।।२०६।।

(वीरछन्द)

इच्छा करते है अद्वैत की कोई द्वैत को ही चाहें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त निजातम को मैं नित प्रति करूँ नमन॥२०६॥

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं; मैं द्वैत और अद्वैत से विमुक्त आत्मा को नमन करता हूँ॥२०६॥

श्लोक- २०६ पर प्रवचन

२०६।

काङ्‌क्षन्त्यद्वैतमन्येऽपि द्वैतं काङ्‌क्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्तमात्मान-मभिनौम्यहम् ।।२०६।।

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं... मैं एक ही हूँ, बस; दूसरा कुछ नहीं, ऐसे अद्वैत की इच्छा करते हैं। **और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं;...** दो— गुण और गुणी भेद या द्रव्य और पर्याय दो; द्रव्य त्रिकाली और पर्याय वर्तमान, इन दो में लक्ष्य करना, वह भी द्वैत है। आहाहा! अब ऐसी धर्म की पद्धति। आहाहा! **कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं;...** द्रव्य और पर्याय की इच्छा करते हैं, कोई अद्वैत अकेले द्रव्य की इच्छा करते हैं परन्तु इच्छा करते हैं, वह वस्तु बराबर नहीं है। आहाहा! ज्ञानी को राग आता है। यह कहा न? द्वैत-अद्वैत का राग आता है तो भी उसमें मेरा वर्तन नहीं है। मेरा वर्तन तो अन्तरस्वरूप में है। वह मेरी चीज़ है। आहाहा!

आत्मधर्म पढ़कर आज किसी का पत्र आया है। दिल्ली से कोई अम्बाशंकर या ऐसा कुछ है। आत्मधर्म पढ़कर बहुत प्रसन्नता बतायी है। बहुत प्रसन्नता। ओहोहो! यह वस्तु! वस्तु जो विचार में चढ़े और जो पढ़कर तुलना करे तो उसे खबर पड़े, परन्तु पढ़कर कुछ हो गया, ऐसा का ऐसा पढ़कर रख दे (तो कुछ नहीं होता)। तुलना करे कि यह वेदान्त कहता है, ऐसा यह नहीं है। अद्वैत को यहाँ कहे, वह वेदान्त का अद्वैत नहीं है। वेदान्त का अद्वैत तो सर्वव्यापक एक आत्मा है। ऐसा नहीं है। यहाँ अद्वैत अर्थात् आत्मा एकरूप मैं हूँ, यह अद्वैत; और द्रव्य तथा पर्याय दो रूप मैं, यह द्वैत। दो से रहित मैं तो आत्मा का ध्यान करता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसका नाम सामायिक है, इसका नाम समाधि है।

समाधि अधिकार चलता है न? आहाहा! जितना विकल्प उठे, वृत्ति उठे। मैं शुद्ध हूँ, चैतन्य हूँ—यह वृत्ति, वह असमाधि अर्थात् दुःख है। ऐसे तो श्वेताम्बर में लोगस्स में आता है '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु अर्थ किसे करना है? पहाड़ा पढ़कर पूरा करके चले

जाएँ। वापस काम में लग जाएँ **'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'** ऐसा लोगस्स में शब्द है। लोगस्स में है। **'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'** समाधि परन्तु वर अर्थात् उत्तम और ऊँची दो। वह यह समाधि। आहाहा! नित्यानन्द एक वस्तु है न? और उस नित्य वस्तु को कोई अपेक्षा है नहीं। वह तो अनादि का सहज स्वभाव है। उसमें पर्याय और द्रव्य दो मिले तो मिल जाए, ऐसा भी नहीं है। उसमें से तो पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, द्रव्य का अद्वैत का भी विकल्प छोड़कर अन्तर में जाए, तब स्वरूप की प्राप्ति होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। २०६ (श्लोक पूरा हुआ।)

श्लोक-२०७

(अनुष्टुप्)

अहमात्मा सुखाकाङ्क्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः ।।२०७।।

(वीरछन्द)

अहो अजन्मा अविनाशी निज आतम को आतम द्वारा।
आतम में स्थित रहकर मैं सुख वाञ्छक पुनि-पुनि भाता॥२०७॥

श्लोकार्थ : मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—अजन्म और अविनाशी ऐसे निज आत्मा को आत्मा द्वारा ही आत्मा में स्थित रहकर बारम्बार भाता हूँ॥२०७॥

श्लोक- २०७ पर प्रवचन

२०७।

अहमात्मा सुखाकाङ्क्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः ।।२०७।।

श्लोकार्थ : मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—मैं अतीन्द्रिय आनन्द की

इच्छा करनेवाला। आहाहा! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण भरा है। उस अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप **मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला...** उस अतीन्द्रिय आनन्द की अभिलाषा करनेवाला। **आत्मा—अजन्म और अविनाशी...** उसे कोई जन्म नहीं और जन्म नहीं तो मृत्यु और विनाश भी नहीं। आहाहा! मक्खन है। अकेली मक्खन की बात है। क्योंकि यह गाथा सम्प्रदाय में बहुत चलती है। **जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा। तस्स सामाइगं ठाइ..** यह शब्द चलता है। स्थानकवासी में भी चलता है, मन्दिरमार्गी में भी यह गाथा चलती है। परन्तु इस गाथा का अर्थ क्या है, उसे नहीं समझते। सामायिक करते हैं, उसे सामायिक कहते हैं। **तस्स सामाइगं ठाइ** अखण्डानन्द प्रभु, नित्य अविनाशी, सहज स्वरूप अन-उत्पत्ति और विनाशरहित तत्त्व की मैं भावना करता हूँ। आहाहा! उसमें मैं रहना चाहता हूँ।

विकल्प और अविकल्प दोनों दुःख और राग हैं। उससे छूटकर... आहाहा! मैं तो ऐसे **निज आत्मा को...** वापस (विकल्प) छोड़कर पर आत्मा और वीतराग, वह नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं। कितने ही जैन में जन्मे हो तो सुना भी न हो। ऐसी की ऐसी रूढ़ियाँ करके जिन्दगी निकाली। आहाहा! अन्दर भगवान चैतन्यमूर्ति अरूपी परन्तु वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्ति / सत्ता है न? मौजूदगी पदार्थ चीज़ है। वह महा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। उसकी मैं भावना रखता हूँ।

मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—अजन्म और अविनाशी ऐसे निज आत्मा को आत्मा द्वारा... वह तो अजन्म है। आत्मा को जन्म नहीं। आत्मा में मृत्यु-नाशपना नहीं। वह तो जन्म-मृत्युरहित प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह आत्मा तो त्रिकाल निरावरण अखण्डानन्द है। जिसमें पर्याय का भी जहाँ स्पर्श नहीं। आहाहा! ऐसी जो चीज़ है, उसे मैं **निज आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** भाषा है। 'ही' शब्द है। दया, दान और राग के विकल्प से यह वस्तु मिलेगी, ऐसा नहीं है। **आत्मा द्वारा ही...** एकान्त किया। आत्मा में जो आनन्द और ज्ञान भरे हैं, उस आनन्द के ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है। उसमें जो स्वभाव है, उस स्वभाव से प्राप्त होता है। उसमें पुण्य-पाप आदि परवस्तु नहीं है। उससे प्राप्त नहीं होती, भगवान से भी (वह चीज़) नहीं प्राप्त होती। आहाहा! तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी, उससे भी प्राप्त होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु ऐसी है। अखण्ड आत्मा...

मुमुक्षु : दो बात में एक तरफ पक्ष से निषेध आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध आता है। आ जाता है। उसका यह अर्थात् वह नहीं। स्वभाव की ओर झुकना तो विभाव की ओर से विमुख होना, यह आ जाता है। अरे! प्रभु! मार्ग कोई अलग रह गया। और लोगों के झुकाव में पूरा सम्प्रदाय का झुकाव दूसरा हो गया।

चैतन्यस्वभाव अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त-अनन्त अविकारी अनन्त गुणों का समुदाय प्रभु आत्मा, वह अनादि का सहज एक ही रूप रहा है। अनादि का द्रव्यस्वभाव एक ही रूप रहा है। आहाहा! उसे... आहाहा! **आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** व्यवहार द्वारा, राग द्वारा, विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा! कठिन लगे, बापू! वीतरागमार्ग... वीतरागमार्ग वीतरागस्वरूप आत्मा है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। वह वीतरागस्वभाव से प्राप्त होता है। राग से वह प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

इस **आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** स्वभाव द्वारा ही। आहाहा! आत्मा को स्वभाव द्वारा ही। शुद्धस्वभाव, पुण्य और पाप के भाव से रहित ऐसा जो शुद्धस्वभाव, उसके द्वारा ही **आत्मा में स्थित रहकर...** आत्मा में स्थित रहकर, ऐसे आत्मा में स्थित रहकर; अस्थित जो विकल्प है, उसे छोड़कर... आहाहा! **बारम्बार भाता हूँ।** ऐसे आत्मा को बारम्बार भाता हूँ। विकल्प आता है, छठवें-सातवें (गुणस्थान) में मुनि हैं। परन्तु मैं बारम्बार पूर्णानन्द के नाथ को भाता हूँ। छठवें गुणस्थान में विकल्प उठे, उसका भी मुझे आदर नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें, लो! यह तो बाहर से कुछ समझे बिना सामायिक करे, प्रोषध करे, प्रतिक्रमण, चौविहार-रात्रि में आहार नहीं लेना, छह परबी कन्दमूल न खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करना। अरे! यह सब क्रियाएँ, बापू! यह सब राग की क्रिया है, आत्मा की यह नहीं। आहाहा! आत्मा की अलौकिक क्रिया यह है।

आत्मा द्वारा ही... निमित्त द्वारा, राग द्वारा भी नहीं। ऐसा आया न? निमित्त द्वारा भी नहीं। वीतराग और वीतराग की वाणी द्वारा भी नहीं। आहाहा! **आत्मा में स्थित रहकर...** आत्मा में आत्मा से स्थित रहकर... आहाहा! **बारम्बार...** शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान की मैं भावना करता हूँ। उसकी मैं भावना करता हूँ। आहाहा! यह पंचम काल के मुनि! यह कहीं चौथा काल नहीं है। यह तो पंचम काल के मुनि हैं, एक हजार वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी पंचम काल के मुनि हैं। दो हजार वर्ष (पहले हुए)। यह दोनों मुनियों

का एक ही पुकार है। पंचम काल हो या चौथा काल हो, यह कहीं काल-फाल उसमें है नहीं।

अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, अरूपी परन्तु अनन्त गुण का घन पिण्ड, यह उसके स्वभाव द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा है। उसके स्वभाव द्वारा प्राप्त होनेवाला है। उससे विरुद्ध विभाव आदि निमित्त से प्राप्त होनेवाला नहीं। आहाहा! तब यह सब पढ़ना और पाठशालाएँ खोलना और पढ़ाना, शिक्षण शिविर लगाना, उसके लिये तो सब करते हैं न मकान-बकान? शिक्षण शिविर में अधिक लोग आते हैं, समाते नहीं तो उनके लिये बनाते हैं। आहाहा! पहले सुन तो सही कि क्या चीज़ है। उसे सुने, लोग लक्ष्य में तो ले। तेरे ज्ञान पर तो बात को धार! आहाहा! ज्ञान में भी धारता नहीं तो अन्तर में किस प्रकार ले जाएगा? आहाहा! जिसके ज्ञान में दाद मिलती नहीं, ऐसे अभेद की, विकल्परहित आत्मतत्त्व की, ज्ञान के ज्ञानपने में भी जिसका नाद नहीं आता, दाद नहीं मिलती, वह निर्विकल्प होकर अन्दर कैसे जा सकेगा? आहाहा! बात ऐसी है।

बारम्बार भाता हूँ। भाषा है न? मैं तो बारम्बार आत्मा में जाता हूँ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है, वहाँ मैं बारम्बार जाता हूँ। आहाहा! पर्याय को वहाँ ले जाता हूँ, ऐसा (कहना है)। वह पर्याय जो बहिर्मुख है, उसे अन्तर्मुख में ले जाता हूँ। आहाहा! उसका नाम आत्मा का ध्यान, उसका नाम आत्मा की सामायिक, उसका नाम आत्मा का प्रायश्चित्त और प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण... आहाहा! सब यह दशा है, उसके सब नाम लिये हैं। यह २०७ (श्लोक पूरा हुआ।)

श्लोक-२०८

(शिखरिणी)

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः,
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्,
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्।।२०८।।

(वीरछन्द)

भव-उत्पादक भेद कथन से बस होओ अब बस हो रे!
अहो अखण्डानन्द आत्मा नयसमूह का अविषय है॥
इसीलिए यह आतम द्वैत-अद्वैत विकल्पों से है दूर।
अल्पकाल में भवभय क्षय के लिए उसे मैं नमन करूँ॥२०८॥

श्लोकार्थ : भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। जो अखण्डानन्दस्वरूप है वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है; इसलिए यह कोई (अवर्णनीय) आत्मा द्वैत या अद्वैतरूप नहीं है (अर्थात् द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से पर है)। उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये सतत वन्दन करता हूँ॥२०८॥

श्लोक - २०८ पर प्रवचन

२०८

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः,
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्,
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्।।२०८।।

श्लोकार्थ : भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ,...

आहाहा! यह शुभविकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति वह भी शुभ है, वह विकल्प है। वह भवभय **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-..** आहाहा! इस शुभभाव से तो संसार भटकने का भव मिलेगा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, कुछ शुभक्रिया करे वह धर्म, बस! दुकान का धन्धा छोड़कर घण्टे-दो घण्टे बैठे। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं.. (करे इसलिए) हो गया उसे धर्म। भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। अभी धर्म सुनने को भी नहीं मिला।

यहाँ कहते हैं कि **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-..** यह सब विकल्प भव के करनेवाले हैं। आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प भव के करनेवाले हैं। आहाहा! उनके **कथनों से बस होओ, बस होओ।** अलम्-ऐसा दो बार पाठ है। दो बार पाठ है न अलम्! अलम्-अलम्। अलम् क्या कहते हैं? अनादि काल से शुभ-अशुभ विकल्प तो किये, उसमें से तो भव मिले। अब अलम्, **बस होओ, बस होओ।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अलम् अलम्।** अब यह बस होओ। इस विकल्प से संसार और भव मिलते थे। भले शुभभाव हो परन्तु वह जहर है, जहर। आहाहा! उससे प्रकृति बँधती है, वह भी विष का वृक्ष कहा है - जहर का वृक्ष कहा है।

मुमुक्षु : काला नाग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और शुभ को काला नाग कहा। वह तो इससे जो प्रकृति बँधी, प्रकृति जो बँधी, उसे विष का वृक्ष कहा है। विषकुम्भ नहीं, विषवृक्ष। १४८ प्रकृति। १४८ प्रकृति को विषवृक्ष कहा है। शुभभाव को विषकुम्भ कहा है परन्तु शुभभाव का फल प्रकृति बँधती है, वह चाहे तो तीर्थंकरप्रकृति बँधे तो भी विषवृक्ष-जहर का वृक्ष है, ऐसा कहा है। आहाहा! कर्म की १४८ प्रकृति है। आठ कर्म हैं, आठ कर्म के अन्तर्भेद १४८। १४८ प्रकृति को... आहाहा! जहर का वृक्ष कहा है। अमृत का सागर तो भगवान है, तब उससे विरुद्ध भाव और उसका फल सब जहर है। आहाहा! १४८ प्रकृति को विषवृक्ष कहा न? विषवृक्ष कहा। भाव को विषकुम्भ कहा, परन्तु शुभ-अशुभभाव जो है, उसे जहर कहा है। परन्तु निमित्त होकर उससे जो प्रकृति बँधे, वह निमित्त है, प्रकृति के काल में प्रकृति बँधती है। वह प्रकृति स्वयं विष का वृक्ष है। वह जहर का वृक्ष है। उसमें से जहर पकेगा। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। सम्प्रदाय के साथ तो बड़ा विवाद उठा है। विवाद

उठावे बेचारे। पहले शुरुआत में विरोध बहुत किया था। छूटे थे तब। स्थानकवासी ने विरोध किया, श्वेताम्बरों ने भी विरोध किया, दिगम्बरों ने भी विरोध किया। तीनों ने विरोध किया। अब रुका है।

मुमुक्षु : विरोध विरोध में रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब क्या विरोध करें। होगा, कोई न आवे, भले वह कुछ नहीं। आवे कोई बोले, विरोध करे, लिखे। 'करुणादीप' एक पुस्तक (पत्रिका) आती है न? मासिक। उसमें बहुत विरोध लिखते हैं। शुभ से धर्म नहीं मानते, ऐसा है, एकान्त है, अमुक है, अमुक है। अरे! प्रभु! तेरे हित की बात है न, नाथ! तू कैसे प्रगट हो और तू कैसे प्रसिद्ध हो, उसकी बात है। उसकी अनादि से अप्रसिद्धि है। आहाहा! अनादि से पुण्य और पाप की प्रसिद्धि है और उनके फल प्रकृति की प्रसिद्धि और उसके फल के संयोग की प्रसिद्धि है। यह संयोग बाहर के धूल पाँच-पच्चीस लाख मिलना या... शुभभाव वह जहर है। प्रकृति विषवृक्ष है और यह संयोग मिलते हैं, वह तो बाहर की चीज़ है। आहाहा! उनमें तीनों में आत्मा कहाँ आया कहीं? आहाहा!

भव के करनेवाले... आहाहा! विकल्प से भव के करनेवाले हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण शुभभाव है, वे सब भव के कारण हैं। आहाहा! यह सुना था वहाँ स्थानकवासी में? आहाहा! भाई! मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! विकल्प से हटकर निर्विकल्प में जाने की बात ही कोई अलग है और इसके बिना भव का अभाव तीन काल में नहीं होता। तीन काल में भव का अभाव नहीं होता। आहाहा! इसलिए कहा न? **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प...** आहाहा! चाहे तो शुभ विकल्प हो—दया, दान, व्रत, भक्ति, वह भव का कारण है। उसमें से भव मिलेगा और भव है, वह दुर्गति है। आत्मा के हिसाब से चार गति, वह दुर्गति है। आहाहा!

पंचास्तिकाय के दूसरे श्लोक में नहीं आया? चारों ही गतियाँ दु:खरूप हैं। चारों ही गति संसार भटकने की हैं। पंचास्तिकाय में आता है। आहाहा! मनुष्यगति मिले, इसलिए मुझे कल्याण होगा, मनुष्यगति में ही केवलज्ञान होता है, इसलिए मनुष्यगति मिले, तो यह कहते हैं, नहीं। मनुष्यगति से तो नहीं, परन्तु विकल्प आवे कि मुझे यह मनुष्यगति है, इसलिए (कल्याण होगा), इस विकल्प से भी नहीं। आहाहा!

भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। पंच महाव्रत पालो, यह करो, व्रत पालो, यह बात अब बस रखो। आहाहा! यह सब भव के करनेवाले हैं। आहाहा! अरे रे! सत्य बात सुनने को मिले नहीं, यह प्रथा ही टूट गयी थी, इसलिए कठिन लगता है। प्रथा नयी आयी इसलिए। आहाहा! शुभविकल्प है, जिस भाव से तीर्थंकर (प्रकृति) बँधती है, वह भाव भी भव का कारण है। आहाहा! क्योंकि वह प्रकृति बँधती है, तब उसका फल भव मिलेगा, भव मिलेगा। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं कि **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प...** आहाहा! फिर चाहे तो स्वर्ग का भव हो या तीर्थंकरप्रकृति का भव हो, परन्तु प्रकृति पड़ी है, उसका फल तो भव है। आहाहा!

यह पालीताणा (में) पाँच पाण्डव ध्यान में थे। पाँच पाण्डव महायोद्धा। भीम, अर्जुन, धर्मराजा, सहदेव और नकुल, पाँच। ध्यान में सुना कि नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। ऐसा सुना और दर्शन करने जाते थे। सुना कि भगवान मोक्ष पधारे, इसलिए ऊपर चढ़ गये। शत्रुंजय। ध्यान में-आनन्द में अन्दर मस्त! उसमें दुर्योधन का भानेज ने आकर लोहे के धधकते गहने बनाये। आहाहा! वे धधकते गहने हाथ में पहनाये, पैर में पहनाये, सिर पर मुकुट पहनाया। लो, यह तुम्हारे राज्य चाहिए था, हमारे दुर्योधन के सामने। लो यह राज। आहाहा! उन पाँचों पाण्डवों के गले में, सिर में, हाथ में और पैर में, लोहे के धधकते (गहने पहनाये)। सहदेव और नकुल, दो भाईयों को जरा विकल्प आया, अरे! ये भाई हैं और स्वयं को भी धधकते लोहे के गहने पहनाये हैं। भाई को कैसे होगा? इतना एक शुभ विकल्प आया, वहाँ आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का भव। तैंतीस सागर का आयुष्य बँध गया। विकल्प में तो भव है। आहाहा! तीन तो वहाँ मोक्ष पधारे। धर्मराजा, भीम और अर्जुन ये तो ध्यान में आनन्द में केवल (ज्ञान) प्राप्त करके मोक्ष पधारे। दो जनों को, छोटे भाईयों को ऐसा विकल्प आया। स्वयं को लोहे के पहनाये थे, परन्तु बड़े भाई हैं, उन्हें ऐसी अग्नि में कैसे होता होगा? आहाहा! वे तो ध्यान में, आनन्द में थे, यह परीषह है या नहीं, इसकी भी खबर नहीं थी। आहाहा! यह तो विकल्प उठे तो जानने में आवे। बाकी निर्विकल्प आनन्द में तो वह परीषह स्पर्श भी नहीं करता। तीन तो मोक्ष पधारे, दो जनों को एक इतना विकल्प आ गया, वहाँ तैंतीस सागर का सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। तैंतीस सागर किसे कहते हैं! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। आहाहा!

पाँचों ही भाई साधु थे। उसका एक विकल्प आया कि अरे! उन्हें कैसा होता होगा? अग्नि का सिर पर पहनाया, लोहे का धकधकते गहने पहनाये। आहाहा! अभी तो देव में हैं। वे तीन मोक्ष पधारे। तैंतीस सागर वहाँ रहेगें। वहाँ से वापस मनुष्यभव होगा, वहाँ भी कितना ही काल रहने के बाद मोक्ष जाएँगे। आहाहा! एक विकल्प इतना आया, उसमें इतना हुआ। वह भव का कारण विकल्प है। आहाहा!

भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। उस विकल्प से अब लाभ होगा और विकल्प आवे ठीक, यह बस होओ। विकल्प है, वह बन्ध का कारण, भव का कारण है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़ जाता है। बाहर से अभी चौबीस घण्टे में दो घण्टे निवृत्ति में निकालना हो, वह भी निकाल नहीं सकता। उसमें ऐसी एकदम विकल्परहित की पूरी वस्तु। आहाहा! जिसमें मैं धर्म का धर्मी हूँ और धर्म का यह विकल्प है, वह भी जिसमें नहीं। आहाहा! **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से...** अलम् अलम्। अब **बस होओ, बस होओ।** कहते हैं। हमारे अब विकल्प से काम नहीं है। आहाहा! वह चाहे तो शुभराग हो, भगवान की भक्ति का, स्मरण का भाव बस होओ अब, उसका हमारे काम नहीं। आहाहा! पक्षवाले को तो कठिन पड़ जाए ऐसा है। सम्प्रदाय के पक्ष का आग्रह बँध गया हो, वह क्रियाकाण्ड में धर्म होता है। यहाँ कहे क्रियाकाण्ड और वह सब तेरा जहर है। आहाहा! अब बस होओ। उससे पूरा पड़ो, अब पूरा पड़ो। बस हो जाओ। मेरा नाथ अन्दर विकल्परहित है, उसकी अन्दर में स्थिरता, वही मुझे शान्ति का कारण है। आहाहा!

विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। जो अखण्डानन्दस्वरूप है... और जो अखण्डानन्दस्वरूप है। आहाहा! आनन्द तो है परन्तु द्रव्य में आनन्द अखण्ड है। एकरूप अखण्ड आनन्द अन्दर है। चैतन्य में अखण्ड आनन्द एकरूप आनन्द है। सर्वांग आनन्द है। असंख्य प्रदेश में सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द भरा पड़ा है। आहाहा! ऐसा अखण्डानन्द प्रभु! **वह (यह आत्मा)...** विकल्प वह आत्मा नहीं। शुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह सब राग, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

समस्त नयराशि का अविषय है;... ठीक। विकल्प तो भव का कारण है, परन्तु नय, जो ज्ञान के प्रकार, उससे जो नय-निश्चय और व्यवहार, उसका जो विकल्प, उसका

वह विषय नहीं है। नय के विकल्प का विषय वह आत्मा नहीं है। ध्येय नहीं है। उससे वह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! निश्चयनय स्वभाव के आश्रय से पकड़ में आता है, ऐसा है। परन्तु निश्चयनय का जो विकल्प, जो राग है, उससे वह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो कहाँ की बात चलती है?

प्रभु! तू कितना है? तेरी महत्ता का पार नहीं, प्रभु! तुझे हीन बताना, वह कलंक है। आहाहा! उसे हीन बतलाना, अल्प बतलाना, कम बतलाना, वह सब कलंक है। वह अखण्डानन्द प्रभु अन्दर वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्तिवाला तत्त्व अरूपी चैतन्य भगवान है न? वह अखण्डानन्द आनन्द से भरपूर भगवान पूर्ण है। आहाहा! वह विपरीत तो नहीं, परन्तु उसमें अपूर्णता नहीं। आहाहा! अखण्डानन्द का नाथ भगवान आत्मा है, उसमें दया, दान की विपरीतता तो नहीं परन्तु उसमें अखण्डानन्द में... आहाहा! भेद भी नहीं। एकरूप है।

वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है;... समस्त नयराशि। यहाँ तो विकल्पवाला लिया है। नय दो प्रकार के हैं न? विकल्पवाले और निर्विकल्प। प्रमाण भी विकल्पवाला और निर्विकल्प। आहाहा! **समस्त नयराशि...** ज्ञान के अंशों से जितने नय हैं, व्यवहार और निश्चय के विकल्प, उन सबका अविषय है। उनसे वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। उसका वह विषय नहीं है। लोग नहीं कहते? कि भाई! यह तेरा विषय नहीं है। कुम्हार को ऐसा कहते हैं कि जवाहरात का तेरा विषय नहीं है, बापू! जवाहरात का विषय तेरा नहीं है, भाई! तू सुनने बैठा परन्तु यह विषय दूसरे प्रकार का है। तू घड़ा गढ़। कुम्हार तो घड़ा गढ़े या तो वह टीपडा-टीपडा किया करे। उसका कहीं जवाहरात का विषय है? आहाहा! इसी प्रकार अनादि का नयराशि का विषय नहीं है। आहाहा! वह तो नय से पार-विकल्प के नय से पार है। ऐसा भगवान अविषय है। अविषय समझ में आया? उसके ध्येय में, विषय में वह आ नहीं सकता। नय के विकल्प में वह आ नहीं सकता। भगवान आत्मा निश्चयनय के और व्यवहारनय के विकल्प में विषय उसका नहीं हो सकता। उससे वह ज्ञात नहीं हो सकता। उससे उसका अनुभव नहीं हो सकता, उसकी सत्ता का पता नय के विकल्प से नहीं मिलता। आहाहा! व्यवहार—निश्चय आदि नय बहुत प्रकार से हैं, परन्तु उन सबसे भगवान का पता मिले, ऐसा नहीं है। क्योंकि वे नय के विकल्प वस्तु

में नहीं हैं। जिसमें नहीं, उससे मिले, वह वस्तु नहीं हो सकती। आहाहा! भारी कठिन काम। सम्प्रदाय में बात सुनी हो और यह बात सुने, उसे पूरब-पश्चिम लगेगा। यह किस प्रकार की बात! आहाहा! क्या है यह तो? यह तो कोई अध्धर से लाये होंगे?

यह तो भगवान की वाणी है, प्रभु! भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव की यह वाणी है। यह कोई पक्ष और सम्प्रदाय की वाणी नहीं है। आहाहा! कहते हैं कि **वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है; इसलिए यह कोई (अवर्णनीय)...** है। इसलिए वह कोई अवर्णनीय है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्णन करने जाए तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। आहाहा! अखण्डानन्द ऐसा है, परन्तु वह तो विकल्प आया। उसका वर्णन किया वह विकल्प से वर्णन (हुआ)। आहाहा! वह अवर्णनीय है।

आत्मा द्वैत या अद्वैतरूप नहीं है... आहाहा! श्लोक बहुत उत्कृष्ट किये हैं। यह द्वैत का विकल्प द्रव्य और पर्याय। आत्मा द्रव्य भी है और पर्याय भी है। ऐसे दो का विकल्प भी उसका विषय नहीं है। तथा अद्वैत द्रव्य एक है, उसका भी विकल्प का विषय नहीं है। आहाहा! **(अर्थात् द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से पर है)। उसे एक को मैं...** उस एक को-त्रिकाली भगवान एक को... आहाहा! एक स्वरूप विराजमान अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव वह तो है। नित्यानन्द प्रभु ध्रुव। सबका भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव है। प्रसिद्धि नहीं आयी और पामर की प्रसिद्धि से प्रभु को वहाँ रोक लिया। आहाहा! इज्जत, पैसा, कीर्ति, विकल्प, दया, दान, व्रत, ने घेरा डाला। आहाहा! जिससे वहाँ से हटकर अन्दर जाने का अवकाश नहीं लिया। इसलिए इसका भवभ्रमण मिटा नहीं। आहाहा!

उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये... एक स्वरूपी प्रभु। अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप। गुणवाला भी नहीं। गुणवाला, यह भेद पड़ गया। गुणी भगवान और गुणवाला, यह भेद। वह तो गुणमय है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अखण्डानन्द, वह सब गुणमय भगवान है। **उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये...** अल्प काल में भव के भय का नाश करने के लिये **सतत वन्दन करता हूँ।** आहाहा! निरन्तर उसे वन्दन करता हूँ, आदर करता हूँ। आहाहा! यह वाणी सुनने को मिलती नहीं। सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, यह करो और वह करो। हम (संवत्) १९८२ के वर्ष में जामनगर रहे थे न, उस लोकाशा के उपाश्रय में;

(वहाँ) अष्टमी और पूर्णिमा को प्रौषध करे। २५-३०-४० लोग आवे। प्रौषध करे तो बस मानो कि ओहोहो! अपने को मानो धर्म हो गया।

मुमुक्षु : पूरे दिन दुकान में नहीं गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुकान में नहीं गये, उसमें क्या भला हुआ? यह अन्दर दुकान है, उसमें तो गया नहीं। इसलिए ताराचन्दभाई को यह प्रश्न उठा था। कहा नहीं? अकेले आये। मैं कहूँ जितना यह शुभाशुभ का क्रियाकाण्ड जो है, वह धर्म नहीं। शुभभाव की आचरण क्रिया, वह धर्म नहीं। तब वे एकान्त में अकेले आये। महाराज! तब यह सब क्या है? यह सब वह होता है। चाहे जैसे हो। देखो! तुम्हारा ज्ञानसागर। मन, वचन, काया की शुभक्रिया से पुण्य बँधता है। शुभक्रिया से पुण्य बँधता है। नामकर्म (बँधता है), उससे धर्म नहीं होता। देखो, तुम्हारे पुनातर ने बनाया है। 'ज्ञानसागर' प्रकाशित किया है न? वह पढ़ा तब पूरा पढ़ा। १९६८ में उसमें से बहुत पढ़कर कण्ठस्थ किया था। १९६८ के वर्ष में। उसमें भेद-प्रभेद भी सब है। आहाहा! वह भेद-प्रभेद रह गया।

अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! निर्विकल्प, भव के कारणरूप विकल्प से रहित... आहाहा! ऐसे आत्मा को **एक को मैं अल्प काल में...** एक को ही वन्दन करता हूँ। क्यों?—कि **अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये...** अल्प काल में भवभय का नाश। आहाहा! पंचम काल की बात... परन्तु टीका है न? 'अध्यात्मतरंगिणी' में लिखा तीन भव। टीका है। अधिक होवे तो तीन भव होते हैं। ऐसा टीका में है। बताया था न? अध्यात्मतरंगिणी पाठ में संस्कृत टीका में है। ऐसा काल, केवली नहीं, मनःपर्यय नहीं, अवधि नहीं, कोई लब्धि विशेष चमत्कारिक कुछ नहीं। उसमें जो कुछ धर्म पावे, वह तो अल्प काल में ही अब मोक्ष जाएगा। उसे दो-तीन भव के अतिरिक्त नहीं होते, ऐसा लिखा है। (परम) अध्यात्मतरंगिणी, यह (समयसार) कलश के अर्थ किये हैं। यह कलश के ढ़ेर है। एक इस कलश के। वे दूसरे। उस कलश का अर्थ... है इसमें? यह है? यह नहीं? पीछे है। तीन भव लिखे हैं। टीका में है।

जो आत्मा का आराधन करेगा, विकल्प से रहित निर्विकल्प से (आराधन) करेगा, वह यहाँ कहते हैं, उसे अल्प काल में भवभय का नाश होगा। आहाहा! उसे **सतत वन्दन करता हूँ।** निरन्तर उसका आदर करता हूँ। त्रिकाली चीज़ आनन्दकन्द प्रभु का ही मैं

आदर (करता हूँ)। आहाहा! तीन भवनुं संस्कृत में है। लिखा होगा, कहीं दिया नहीं, दिया नहीं होगा। उसमें लिखा है? वह तो इस ओर है। बाहर बताया। यहाँ तो यह काल है, ऐसा कहा न?

एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये... एक भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका ही मैं भजन करूँ। भक्ति, उसकी भक्ति, वह भक्ति। भगवान की भक्ति, वह शुभराग। आहाहा! होता है। अशुभ से बचने को शुभराग आता है। वहाँ है न? '**अचिरात् शीघ्रम तद्भव तृतीय हवादो अवश्यम**'—पाठ है, देखो! 'अचिरात्' का अर्थ किया है। यह ४८वाँ श्लोक है। '**एको मोक्षपंथा**' उसका अर्थ किया है। 'अचिरात्' अर्थात् क्या? 'अचिरात्', शीघ्रम... अचिरात् का अर्थ किया है ४८ श्लोक है। उसमें अर्थ किया है 'अचिरात्' अल्प काल में जाएगा अर्थात् क्या? 'शीघ्रम...' उसमें है। यहाँ कहते हैं कि अवश्य भवभय का नाश करने के लिये... एक को ही वन्दन करता हूँ। आहाहा! विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२०९

(शिखरिणी)

सुखं दु:खं योनौ सुकृत-दुरित-व्रात-जनितं,
शुभाभावो भूयोऽशुभपरिणतिर्वा न च न च।
यदेकस्याप्युच्चैर्भव-परिचयो बाढ-मिह नो,
य एवं सन्न्यस्तो भवगुणगणै: स्तौमि तमहम्।।२०९।।

(वीरछन्द)

सुख-दुख होते हैं सुकृत दुष्कृत समूह से भव-भव में।
और शुभाशुभ परिणति का है लेशमात्र नहिं चेतन में॥
एकरूप चेतन को किञ्चित् भव का परिचय हुआ नहीं।
इस प्रकार भवगुणसमूह से भिन्न आत्म को नमन करूँ॥२०९॥

श्लोकार्थ : योनि में सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है (अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है)। और दूसरे प्रकार से (-निश्चयनय से), आत्मा को शुभ का भी अभाव है तथा अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है, क्योंकि इस लोक में एक आत्मा को (अर्थात् आत्मा सदा एकरूप होने से उसे) निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है (अर्थात् जो शुभ-अशुभ, राग-द्वेष आदि भव के गुणों से—विभावों से रहित है) उसका (-नित्य शुद्ध आत्मा का) मैं स्तवन करता हूँ॥२०९॥

प्रवचन-१४५, श्लोक-२०९-२१०, गुरुवार, ज्येष्ठ कृष्ण ७, दिनांक ०५-०६-१९८०

---

२०९ वाँ कलश।

सुखं दु:खं योनौ सुकृत–दुरित–व्रात–जनितं,
शुभाभावो भूयोऽशुभपरिणतिर्वा न च न च।
यदेकस्याप्युच्चैर्भव–परिचयो बाढ–मिह नो,
य एवं सन्न्यस्तो भवगुणगणै: स्तौमि तमहम्।।२०९।।

श्लोकार्थ :... अरे! यह उत्पत्ति! **योनि में सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** आहाहा! चौरासी लाख योनि में अनन्त बार अवतरित होना, यह शुभ-अशुभभाव से होता है। आहाहा! निगोद की बात देखो न! वह अशुभभाव से गया न? एक निगोद लहसुन और प्याज, उसमें एक श्वास लें, उसमें अठारह भव होते हैं। आहाहा! भगवान की वाणी में भगवान ने कहा है। एक श्वास में अठारह भव, उसका एक अन्तर्मुहूर्त अड़तालीस मिनिट। अन्तर्मुहूर्त अड़तालीस मिनिट। मुहूर्त तो दो घड़ी। यह तो अड़तालीस मिनिट के अन्दर। अन्तर्मुहूर्त में निगोद के भव। अशुभ से आया है न यहाँ? अशुभ से। आहाहा! ६६३३६ भव करता है। आहाहा! बहुत काल तो निगोद में गया। आहाहा! निगोद में तो अकेला अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़, बाकी सब दुःख। आहाहा! अन्दर भाव में दुःख, हों! संयोग का नहीं। नारकी को कहीं संयोग का दुःख नहीं है। संयोग के लक्ष्य का दुःख है। उस पर लक्ष्य करता है, वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते हैं। आहाहा! संयोग को तो स्पर्श भी नहीं करता।

कहते हैं, उस निगोद में... **योनि में सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत...** शुभभाव और अशुभभाव, इनका समूह। अनन्त बार असंख्य शुभभाव हुए और अनन्त बार अशुभभाव हुए। इसलिए उनके **समूह से होता है...** आहाहा! देखो? **सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** सुकृत और दुष्कृत, शुभभाव और अशुभभाव अनन्त बार किये हैं। वह कोई धर्म नहीं है, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! ब्रजलालजी! ऐसा वहाँ कभी सुना नहीं। आहाहा! ऐसी बात, भगवान! ऐसी कठिन बात है। अभी वस्तु बदल गयी है। आहाहा!

सवेरे पढ़ते हुए ख्याल आया कि ओहो! एक अन्तर्मुहूर्त में, ४८ मिनिट में, ४८ मिनिट के अन्दर। अन्तर्मुहूर्त तो ४८ मिनिट होवे, तब अन्तर्मुहूर्त होता है। उसके भी अन्दर... आहाहा! निगोद का एक श्वास ले, उसमें १८ भव; ऐसे एक अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव! गजब बात, बापू! प्रभु ने देखा है, केवली ने देखा है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आदिरहित काल। कहीं आदि कहां है? यह अनादि-अनन्त, ऐसे एक अन्तर्मुहूर्त में इतने भव ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! और यहाँ जरा आवे, वहाँ सुविधा में रुक जाए, प्रसन्न हो जाए। आहाहा!

कहते हैं कि योनि में, इन उपजने के स्थानों में निगोद आदि में या चौरासी लाख की योनि में **सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** यह योनि में सुख और दुःख होते हैं, वे शुभ और अशुभभाव के समूह से होते हैं। आहाहा! **(अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है)**। कोष्टक में है न? **(चार गति के जन्मों में...)** आहाहा! **(सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है।)** यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति शुभभाव हैं, वे अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और अनन्त बार उस शुभभाव का फल मनुष्य या स्वर्ग इसे प्राप्त हुआ है। अशुभभाव का फल यह निगोद और एकेन्द्रियादि प्राप्त हुए हैं। आहाहा! अनादि काल—आदिरहित काल। यह भव है, इसके पहले भव... इसके पहले भव। ...फिर कहीं भव का अन्त है कि यह अन्तिम भव अनादि में? आहाहा! ऐसे अनन्त अनादि भव में योनि में उत्पन्न हुआ, वह सुकृत और दुष्कृत के कारण से। उसके कारण से सुख और दुःख होते हैं। आहाहा!

अन्तर्मुहूर्त में 66 हजार निगोद के भव करे, वह दुःख कितना होगा? जिसे अक्षर के अनन्तवें भाग का ही उघाड़ है। आहाहा! अभी यह बाहर जानपने का उघाड़ दिखता

है न ? उसका (निगोदिया का) उघाड़ उसे तो अक्षर के अनन्तवें भाग एक जरा-सा है। आहाहा ! द्रव्य है, वह परिपूर्ण भगवान अन्दर है, परिपूर्ण प्रभु है, परन्तु पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग विकास जो यह बाहर से उघाड़ दिखता है, ऐसा उसे कम उघाड़ है। उसमें अनन्त बार जा आया है। आहाहा !

(अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है)। और दूसरे प्रकार से... देखें तो **आत्मा को शुभ का भी अभाव है।** वस्तु में तो अभाव है। आहाहा ! भगवान आत्मा ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र प्रभु, उसमें तो शुभ और अशुभ है नहीं। वस्तु में शुभ-अशुभ है नहीं। वह पर्याय में नये उत्पन्न करता है और सुख-दुःख को भोगता है। आहाहा ! **(-निश्चयनय से), आत्मा को शुभ का भी अभाव है...** '**भी**' क्यों कहा ?—कि उन्हें अशुभ कहना है। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव वस्तु में नहीं है। वह तो विकार अवस्था ऊपर की है। आहाहा ! पर्याय में है और पर्याय में अब अनन्त सुख-दुःख भोगनेवाला है। आहाहा ! द्रव्य में वह शुभ-अशुभभाव भी नहीं है, इसलिए उसे द्रव्य में सुख-दुःख का भोगना भी नहीं है। आहाहा ! द्रव्य तो सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का नाथ... आहाहा ! अखण्डानन्द अनादि-अनन्त द्रव्य वस्तु पड़ी है। यह सब पर्याय—अवस्था की बातें हैं। आहाहा ! इस अवस्था में अवतार, अवस्था में संसार और अवस्था में मोक्षमार्ग तथा अवस्था में मोक्ष। यह सब अवस्था में-पर्याय में है। है ?

आत्मा को शुभ का भी अभाव है... दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के शुभभाव, भगवान का स्मरण करना आदि, परन्तु इस शुभभाव का द्रव्य में तो अभाव है। वह पर्याय में है; वस्तु में नहीं। आहाहा ! **तथा अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है,...** यहाँ दो बार डाला है। आहाहा ! द्रव्यस्वभाव में **अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है,...** अशुभ अवस्था। वस्तु सच्चिदानन्द द्रव्य तत्त्व वस्तु है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक अविनाशी परम शुद्धपारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य है। आहाहा ! उसे तो शुभ और अशुभ का भाव वस्तु में नहीं है। पर्याय में है; इसकी अवस्था में है, हालत में, पलटती दशा में वह है। उसमें वह शुभ-अशुभभाव होता है, उसके सुकृत और दुष्कृत दुःख भोगता है। आहाहा !

कभी ऊँचा सिर किया नहीं। कि मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? श्रीमद् ने नहीं कहा ? श्रीमद् ने १६ वर्ष में कहा है।

मैं कौन हूँ ? आया कहाँ है ? और मेरा रूप क्या ?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए;
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये॥

आहाहा ! १६ वर्ष में कहते हैं। शरीर की अवस्था सोलह है। आत्मा को कहाँ अवस्था है ? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा ! ऐसे में मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया ? इसने कभी विचार किया ? मैं आत्मा हूँ। कहाँ से हुआ ?—कि अनादि का हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है ? वास्तविक स्वरूप तो शुद्ध आनन्दकन्द, वही स्वरूप है। पुण्य और पाप के भाव, वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। वह सब तो विकृत अवस्था है। उसके कारण दुःखी है और चार गति में भटकता है। आहाहा !

क्योंकि... अशुभ की परिणति और शुभ का भाव दोनों, भगवान शुद्ध चैतन्यतत्त्व जो तत्त्व है, द्रव्य है, वस्तु है, उसमें शुभाशुभभाव का अभाव है। यह तो पर्याय में शुभाशुभ है। आहाहा ! **क्योंकि इस लोक में एक आत्मा को...** आहाहा ! **(अर्थात् आत्मा सदा एकरूप होने से उसे) निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा ! भगवान द्रव्यस्वभाव-चैतन्यस्वभाव त्रिकाल, उसे तो भव का परिचय नहीं। उसे भव नहीं और भव का परिचय नहीं। आहा ! पर्याय में भव हुए, परन्तु द्रव्य तो उस पर्याय को स्पर्श भी नहीं करता, कहते हैं। आहाहा ! ऐसा अन्तर्तत्त्व पड़ा है भगवान। उसकी दृष्टि करने से जन्म-मरण मिटें - ऐसा है।

निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। आहाहा ! भगवान द्रव्यस्वरूप जो वस्तु है, त्रिकाली सनातन। सनातन सत्य, पर्याय-अवस्था के अतिरिक्त सत् वस्तु जो है, वह एकरूप है, इसलिए निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। आहाहा ! ऐसे अनन्त-अनन्त लहसुन और प्याज और काई... काई—यह पानी में आती है न ? सेवाल। उस सेवाल के एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। अरे ! कौन माने यह बात ? वीतराग परमात्मा केवली परमेश्वर ने प्रत्यक्ष देखा है और ऐसी

वस्तु है। आहाहा! कहते हैं कि ये भव हुए। परन्तु वे तो पर्याय-अवस्था में हुए। वस्तु को तो उनका परिचय बिलकुल नहीं। आहाहा! उस चीज़ को देख न! आहाहा! जिसमें भव का बिलकुल परिचय नहीं। प्रभु! ऐसी चीज़ को तू देख न! भव का अभाव करने में यह एक ही पद्धति है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड यह करूँ और वह करूँ, यह सब करके भटक मरनेवाला है। आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं। यह तो ऊपर आ गया—सुकृत और दुष्कृत। शुभ और अशुभ के फल, सुख और दुःख संसार के, वह पर्याय-अवस्था में भोगे। भगवान जो द्रव्य / वस्तु है, वह तो सनातन है, उसे भव का बिल्कुल परिचय (नहीं है)। आहाहा! कहो, पर्याय में भव है, द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य नहीं, इसलिए तो अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तू द्रव्यदृष्टि कर। यदि भवरहित होना हो, प्रभु! तो वस्तु जो अनादि-अनन्त सनातन सत्य है। वह यह पर्याय बदलती है, उसमें सब संसार और भव है। भव का अभाव करना हो तो प्रभु! उस द्रव्य की दृष्टि कर। आहाहा! कि जो द्रव्य अर्थात् वस्तु भव के बिल्कुल परिचय में नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। एक तो पकड़ना कठिन, पहले तो सुनने को मिलती नहीं। क्या हो? यह तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं, उनकी बात है। यह वहाँ से आयी हुई बात है। आहाहा!

कोई कहे कि यह सुख-दुःख जो तूने अनन्त बार और अनन्त काल भोगे, उसका कारण तो तेरे शुभाशुभभाव हैं। आहाहा! उनका कारण द्रव्य नहीं। आहाहा! वह यह क्या है? द्रव्य और पर्याय और... आहाहा! भगवान! तेरा स्वरूप द्रव्यरूप है, पर्यायरूप भी है। प्रमाण का विषय द्रव्य और पर्याय दोनों हैं। निश्चय का-शुद्धनिश्चय का विषय अकेला द्रव्य, उसमें शुभाशुभ पर्याय का विषय ही नहीं। पर्याय का विषय देखे, तब शुभाशुभ भाव होते हैं। आहाहा! विषय क्या? और नय क्या? आहाहा!

पहले बात की। सुख-दुःख को भोगने के लिये अनन्त बार जीव ने शुभ और अशुभ किये, परन्तु वापस कहा, प्रभु! तुझे शुभ-अशुभरहित होना हो तो द्रव्य है, उसमें शुभ-अशुभ है नहीं। आहाहा! वस्तु पड़ी है भगवान सनातन सत् अस्तिवाली सत्ता चीज़ आत्मा है, उसका ज्ञान और आनन्द आदि स्वभाव त्रिकाल है। वह द्रव्य और गुण तो... आहाहा! भव की पर्याय के शुभाशुभ कारण, उन्हें वह स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! ऐसा

कहने का आशय ऐसा है कि ऐसे भव तूने किये, वह यदि अब न करना हो तो द्रव्य पर दृष्टि दे कि जिसमें भव नहीं है। आहाहा! समझ में आया, भाई? यह ऐसा अलग प्रकार है। वहाँ अहमदाबाद में कभी सुना नहीं। बहुत फेरफार हो गया है। हमको तो खबर है, यहाँ ९१ वर्ष हुए। ७० वर्ष से तो यह लगायी है। आहाहा! अरे रे! यह (मूल) वस्तु कहाँ रह गयी? सत्य भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरों ने मूल तत्त्व कहा, उसे छोड़कर (दूसरी सब) बात। यहाँ नहीं कहा?

शुभाशुभभाव से, सुकृत-दुष्कृत से सुख-दुःख होगा। अब इसका अर्थ क्या हुआ? जो कुछ तेरे शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह भगवान के दर्शन, चाहे जो यात्रा (करे), उस शुभ का फल शुभ आयेगा। आहाहा! सांसारिक अनुकूल सुख मिलेगा। वहाँ भटकने का रहेगा। आहाहा! अब उसमें तुझे भटकना मिटाना हो, प्रभु! तो तेरा आत्मा जो अन्दर है, उसमें शुभाशुभ का अभाव है। आहाहा!

इस लोक में... आहाहा! **एक आत्मा को...** एक स्वरूप भगवान अन्दर चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्द प्रभु अन्दर है, उसे **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! ऐसी बात भी कान में पड़ना मुश्किल पड़ती है। अन्यत्र कहाँ है? दया पालो, ऐसा करो, वैसा करो, व्रत पालो, पंच महाव्रत (पालन करो) और ऐसी सब बातें। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है। चार गति में भटकने का फलता है। कठिन बात पड़ती है, प्रभु! आहाहा! **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! प्रभु! यदि तुझे भवरहित होना हो, ऐसे भव किये... आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में कितने श्वास होंगे? यह कहीं लिखा होगा। मस्तिष्क में नहीं आया।

मुमुक्षु : ३६८५

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वास? कहाँ है?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई ने हिसाब करके निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेमन्तभाई ने क्या?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई ने हिसाब करके निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक निकाली?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई हिसाब करके निकालते हैं, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ? कौन से हेमन्तभाई ?

मुमुक्षु : अपना हेमन्त गाँधी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना हेमन्त ! हाँ, वह है अवश्य। वह मस्तिष्कवाला है। विचार बहुत करता है, वाँचन बहुत करता है, हों ! उसने कब निकाला था ? अभी ? हाँ, होगा। उसे वाँचन है। हेमन्तभाई की २६-२७ वर्ष की उम्र है। मासिक ७०० का वेतन है। मुम्बई बैंक में था। छोड़ दिया। ८०० वेतन होनेवाला था। दो वर्ष में एक हजार होनेवाला था। छोड़ दिया। उसे आजीवन बालब्रह्मचारी रहना है। छोड़ दिया। अच्छा विचार किया। आहाहा !

एक श्वास में अठारह भव... आहाहा ! यह श्वास, उसमें अठारह भव करे। लहसुन, प्याज और काई। पानी के ऊपर काई होती है न ? उसमें एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं। लहसुन का एक राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें तो असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं, इतनी संख्या जो सिद्ध अभी तक हुई, उससे अनन्त गुणे एक शरीर में जीव हैं। आहाहा ! यह कौन माने ? लहसुन का राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य शरीर और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्त गुणे जीव हैं। आहाहा ! वीतराग की बातें केवली तीन काल-तीन लोक देखते हैं। सीमन्धर भगवान तो तीर्थंकर हैं। केवली तीर्थंकर हैं। दूसरे सामान्य तीर्थंकर... लाखों केवली, महाविदेह में विराजते हैं। सब भगवानों का यह कथन है। आहाहा ! अनन्त तीर्थंकर हुए, होते हैं और होंगे, उन सबका यह कथन है। आहाहा !

निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। तुझे भवरहित होना हो, प्रभु ! तो यह वस्तु है, उसमें भव नहीं है। निश्चित कहते हैं। निश्चित बिल्कुल। आहाहा ! ज्ञायकस्वरूप जो अन्दर चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसे भव कैसे ? वह तो पर्याय—अवस्था—दशा—पलटन में भव है। वह पर्याय उसमें नहीं है। आहाहा ! **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।**

इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है... आहाहा ! भव के गुणों से जिसे त्याग है, **उसका (-नित्य शुद्ध आत्मा का)...** ऐसा जो आत्मा। आहाहा ! क्या कहा ? जिसे भव में भटकने के गुण... आहाहा ! उसका असंख्य समूह। शुभ असंख्य और अशुभ

असंख्य, उनका ढ़ेर। वह सब अनन्त बार किया। उसका **संन्यस्त है...** इस वस्तु में उनका त्याग है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव; यह तो शुभाशुभभाव वे तो भव के गुण हैं। बापू! आहाहा! उन भव के गुणों के समूह से त्यागी है। आहाहा! यह तो बाहर के स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे तो त्यागी साधु हो गया। परन्तु यह अन्दर भव के भाव रहित तत्त्व है, उसकी दृष्टि बिना भव का अभाव तीन काल में नहीं होता। जिसमें भव नहीं, जिसे भव का बिल्कुल परिचय नहीं, ऐसा जो द्रव्य है, उसकी दृष्टि और अनुभव बिना भव मिटेंगे नहीं, बापू! आहाहा! ऐसी बात है। यह दुनिया का उत्साह और हर्ष में जिन्दगी चली जाती है। पूरी होगी। कहाँ जाएगा? चौरासी लाख के बड़े अवतार पड़े हैं। आहाहा!

इस भव के गुणरहित होवे तो भगवान! तू अकेला है। भव के गुण आत्मा में नहीं हैं। भव के गुण पर्याय में है। आहाहा! सूक्ष्म है परन्तु परम सत्य है, प्रभु! आहाहा! अरे! इसने कभी सुना नहीं। सुनकर इसने विचार-निर्णय किया नहीं। अरे! मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? आहाहा! भाषा कैसी की है? उन **भवगुणों के समूह से संन्यस्त है...** भव के गुण अर्थात् शुभ और अशुभभाव। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधादि परिणाम भव के गुण हैं। आहाहा! वे भव के गुण हैं। उन भव के गुणों का समूह, उनमें संन्यस्त है। भगवान अन्दर द्रव्य तो उनसे रहित है। वस्तु जो द्रव्यतत्त्व है, जो आत्मतत्त्व है, वह पर्याय से रहित है, इसलिए पर्याय में गुण है, वे अन्दर में नहीं है। आहाहा! अरे! इसके घर की बात सुनने को मिलती नहीं। सुनने को मिले तो ऊपर से निकाल डाले। हो गया। आहाहा! श्लोक कितना सरस है। नौवाँ श्लोक है। २०९। ओहोहो!

इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है (अर्थात् जो शुभ-अशुभ, राग-द्वेष आदि भव के गुणों से—विभावों से रहित है)... प्रभु अन्दर। भगवान आत्मा त्रिकाली सनातन सत्य है, वह तो भव के गुण से रहित है। भव के भटकने के गुण वे तो पर्याय में-अवस्था में है। पलटती, बदलती दशा में है। नहीं पलटता ध्रुव जो त्रिकाल है, उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! एक बार तो सुनकर स्थिर हो जाए, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो अपने तो व्याख्यान में बहुत बार वाँचन हो गया है।

(जो शुभ-अशुभ, राग-द्वेष आदि भव के गुणों से—विभावों से रहित है) उसका... ऐसा जो भगवान नित्य द्रव्य उसे, जिसमें भव के गुण का अभाव है उसे, जिसे भव का परिचय नहीं है उसे... आहाहा! द्रव्य को **(-नित्य शुद्ध आत्मा का)... उसका...**

अर्थात् कौन ? **(-नित्य शुद्ध आत्मा का)...** आहाहा ! उसे अर्थात् नित्य शुद्ध आत्मा। उसे **मैं स्तवन करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं कि मैं तो उसका स्तवन करता हूँ। मैं कोई भगवान की स्तुति-विस्तुति को स्तवन नहीं करता। आहाहा ! भव के जो गुण हैं, उनको मैं स्तवन नहीं करता अर्थात् ? उनकी मैं प्रशंसा नहीं करता। आहाहा ! ऐसा जो नित्य शुद्ध आत्मा है, अस्तिरूप है, सत्तारूप है, होनेरूप अनादि-अनन्त है, ऐसी अस्तिपनेवाली चीज़ जो पलटनरहित, पलटती पर्याय में तो भव का भाव है। आहाहा ! उनसे रहित ऐसा जो नित्य शुद्ध आत्मा, उसे **मैं स्तवन करता हूँ।** उसका मैं गुणगान करता हूँ, उसका स्तवन करता हूँ। आहाहा ! गजब श्लोक आया। २०९वाँ गजब श्लोक है। आहाहा ! थोड़े में भी बहुत भरा है। यह २०९ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२१०

(मालिनी)

इदमिह-मघसेना-वैजयन्तीं हरेत्तां,
स्फुटित-सहजतेज:पुञ्जदूरीकृतांहः।
प्रबलतर-तमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं,
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कार-मात्रम्।।२१०।।

(वीरछन्द)

सहज तेज का पुंज प्रगट कर हर लेता है अघतम को।
पाप सैन्य की उच्च पताका को भी हर लेता है जो॥
यह चैतन्य चमत्कारमय सदा शुद्ध है शुद्ध अहो।
त्रिभुवन में यह परम तत्त्व जयवन्त रहो सर्वदा अहो!॥२१०॥

श्लोकार्थ : सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है—कि जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप

(मोहरूप) अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है और जो उस *अघसेना की ध्वजा को हर लेता है ॥२१० ॥

श्लोक- २१० पर प्रवचन

२१० (श्लोक)

इदमिह-मघसेना-वैजयन्तीं हरेत्तां,
स्फुटित-सहजतेज:पुञ्जदूरीकृतांह: ।
प्रबलतर-तमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं,
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कार-मात्रम् ।।२१०।।

श्लोकार्थ :.... आहाहा ! **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** जैसा यह कहा न वह ? **यह...** इसका अर्थ **(प्रत्यक्ष)** किया है। यह सदा-शुद्ध। आहाहा ! सदा त्रिकाल भगवान द्रव्यस्वभाव **शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** आहाहा ! **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व...** यह भगवान आत्मा तो चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व अल्प क्षेत्र में रहा है। शरीरप्रमाण रहा परन्तु एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी ताकत है। ऐसा चैतन्य-चमत्कार से भरपूर तत्त्व है। दुनिया बाहर के चमत्कार को चमत्कार मानती है। भगवान यह कहते हैं, प्रभु ! तेरा चैतन्यचमत्कार ऐसा है कि इस शरीरप्रमाण उसकी अवगाहना—कद-कद भले हो, तथापि उसकी ताकत तो अनन्त काल—तीन काल-तीन लोक को जानने की है। आहाहा ! है ?

सदा शुद्ध-शुद्ध... दो बार लिया है। द्रव्य से भी शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध। उसकी पर्याय शुद्ध। कारणपर्याय है, वह शुद्ध है। **ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** आहाहा ! **चैतन्य -चमत्कारमात्र तत्त्व...** चैतन्यचमत्कारमात्र अर्थात् जिसका समय एक, उसमें जाने तीन काल, तीन लोक। ऐसा चैतन्यचमत्कार भगवान है। आहाहा ! वह वस्तु अन्दर ऐसी है। चैतन्यचमत्कार इतने क्षेत्र में रही है परन्तु उसका ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानता है, वह भी उसे स्पर्श किये बिना जाने, ऐसी ताकतवाला तत्त्व है। ऐसा भगवान आत्मा तू है। आहाहा !

---

* **अघ=दोष; पाप।**

चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है— देखो! आहाहा! प्रभु! तू जगत में जयवन्त वर्तता है। तेरा कभी अभाव / नाश, हीनता, विकार, वह तुझमें नहीं है। हीनता, विकार, प्रतिकूलता (बिना) सदा अन्दर जयवन्त एकरूप वर्तता है। आहाहा! चैतन्य द्रव्यस्वरूप जो वस्तु एक समय की पर्यायरहित ऐसा सदा जगत में नित्य जयवन्त है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। गाथा भी अच्छी है। वर्तमान एक समय की जो विचार की पर्याय है, वह विचार की पर्याय बदला करती है। परन्तु वस्तु अन्दर जो है, वह ध्रुव है, वह नित्य सनातन, नित्य जयवन्त है। उसका अनित्यपना नहीं। वह तो पर्याय में अनित्यपना है। विचार आदि विचार बदलते हैं, वह पर्याय है, वह अनित्य है। वस्तु है, वह तो त्रिकाल नित्य है। आहाहा!

जगत में नित्य... वापस जगत कहा। इस जगत में वह भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव, वह नित्य जयवन्त वर्तता है। आहाहा! जगत से बाहर नहीं है। जगत के अन्दर है, यहाँ है। आहाहा! पहले सुनना ही कठिन पड़े। अरे रे! और वापस अभ्यास करने की निवृत्ति कहाँ? भव की पर्याय, उसका समूह, ६६३३६ भव एक अन्तर्मुहूर्त में करे, वह पर्याय उसमें नहीं है। आहाहा! उसका दु:ख और उसका सुख, वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा! भले निगोद के जीव ने इतने अनन्त भव किये और अभी करता है, परन्तु पर्यायरहित वस्तु तत्त्व जो है, वह चीज़ तो जगत में जयवन्त वर्तता है। सदा त्रिकाल वर्तता है। आहाहा!

नित्य जयवन्त (वर्तता) है... आहाहा! वापस ऐसी बात कैसी? उपदेश ऐसा? इसमें क्या करना, इसकी सूझ नहीं पड़ती परन्तु यह अन्दर में वस्तु है, उसमें करना यह सूझ नहीं पड़ती? अन्दर में ध्रुव प्रभु विराजता है, जिसमें भव के भाव का-गुण का अभाव है। ऐसी चीज़ को अन्दर देखने-जानने का प्रयत्न करना, वह पुरुषार्थ नहीं? परन्तु वह पुरुषार्थ सूझता नहीं, सुना नहीं। आहाहा!

जगत में नित्य जयवन्त (वर्तता) है—आहाहा! **कि जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा...** आहाहा! भगवान अन्दर कैसा है? कि **जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप...** स्वधर्मत्यागरूप। अपना जो आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा जो स्वधर्म, उसके त्यागरूप मोह। आहाहा! स्वधर्म के त्यागरूप मोह। आहाहा! स्वधर्म शुद्ध चैतन्यमूर्ति। त्रिकाल आनन्दकन्द जयवन्त—ऐसा जो भगवान आत्मा, उस प्रगट हुए

सहज तेज पुंज द्वारा व्यक्ति प्रगट की, प्रगट हुआ। वस्तु जो द्रव्य में पूर्णता थी, वह अन्दर प्रगट हुआ। अन्दर ध्यान करने से प्रगट पर्याय में प्रगट हो गया।

प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप... स्वधर्म का त्याग अर्थात् मोह; स्वधर्म का त्याग अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! स्वधर्म का त्याग... आहाहा! अनादि से स्वधर्म के त्यागरूप मिथ्यात्व। आहाहा! **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप) अति प्रबल तिमिरसमूह...** अति प्रबल अन्धकार। अज्ञान, पुण्य-पाप, शुभाशुभभाव। अति प्रबल अन्धकार है। आहाहा! यह क्या कहा ?—कि अन्तर से चैतन्य का प्रकाश प्रगट हुआ, तब अन्धकार शुभाशुभभाव वह तो अज्ञान है, अन्धकार है। शुभ-अशुभभाव में जानने की ताकत नहीं है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध आदि, विषयवासना आदि के विकल्प इनमें उसे जानने की ताकत नहीं है। ये तो अन्धे हैं अन्ध (हैं)। आहाहा!

स्वधर्मत्यागरूप... आहाहा! स्वधर्म के अभावस्वभावरूप मोह। आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** ऐसे अति प्रबल अन्धकार के समूह को चैतन्य के प्रकाश से, भगवान अन्दर चैतन्यचमत्कार से भरपूर प्रभु है, उसकी दृष्टि करने पर जो प्रकाश पर्याय में प्रगट हुआ, उस प्रकाश से... आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह...** अन्धकार। अति प्रबल-अति अन्धकार को दूर किया है। सूर्य उदित हो और अन्धकार रहे ? आहाहा! इसी प्रकार भगवान अन्दर में जागृत हुआ, मैं चैतन्यस्वरूप हूँ। ज्ञान और आनन्द जिसकी दशा में आये। प्रकाश बाहर आया। वह अन्दर में प्रकाश शक्तिरूप से है, वह दृष्टि करने पर बाहर पर्याय में प्रकाश आया। आहाहा! उस प्रकाश द्वारा... आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** आहाहा! विकारीभाव, वे मेरे, उनमें रुककर उनकी ध्वजा फिरकती थी। इसलिए उसके कारण चार गति में भटकता था। आहाहा!

यह लश्कर लड़ाई में एक ध्वजा रखते हैं। हार जाए तो वह ध्वजा फाड़ डालते हैं। जीते, वह तो ध्वजा रखता है। यहाँ कहते हैं... आहाहा! **अघसेना की ध्वजा.. अघ=दोष; पाप।** यह पुण्य और पाप दोनों। पुण्य और पाप की सेना की ध्वजा अर्थात् पुण्य और पाप का जो प्रभाव और तेज वर्तता था, उसमें ही मानो सब अनादि से आ गया था, ऐसे तिमिर को द्रव्य के स्वभाव से नाश कर दिया। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ से सुनने को मिले ? यहाँ तो पाँच-पच्चीस हजार जहाँ पैदा हो वहाँ ओहोहो! अपने को कुछ लाभ में मिले। लाभ सवाया! दिवाली में लिखते हैं न ?

मुमुक्षु : शालिभद्र की ऋद्धि होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शालिभद्र की ऋद्धि होओ। अभी कितनी ऋद्धि चाहिए होगी इसे ? अरे ! भगवान ! शालिभद्र की नहीं, आत्मा की ऋद्धि होओ, यह तो कह। आहाहा ! शालिभद्र का ऋद्धि होओ, अमुक ऋद्धि (होओ), ऐसा कुछ बहुत दो-तीन बोल आते हैं।

मुमुक्षु : आत्मा की ऋद्धि बहियों में रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ बहियाँ हैं।

मुमुक्षु : बाहुबली का बल होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहुबली का बल होओ, शालिभद्र की ऋद्धि होओ। परन्तु तुझे कहाँ जाना है ? ऐसा करके तुझे क्या करना है ? लाभ सवाया। लाभ सवाया लिखे परन्तु वह धूल का। सवाया लाभ हो, ऐसा हो। दरवाजे पर लिखते हैं। दरवाजा हो न अपना दरवाजा ? आहाहा ! वह दरवाजा तुझमें नहीं है। वह दरवाजा मेरा, ऐसा अशुभभाव भी तुझमें नहीं है। आहाहा ! भव के गुणों से प्रभु ! तू खाली है न ! और तेरे गुणों से तू भरपूर है न ? आहाहा ! भव के गुण जो शुभाशुभभाव अनन्त बार किये, ऐसे अनन्त, ऐसे शुभाशुभभाव के गुण से खाली है न, और तेरे अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दगुण से भरपूर है। आहाहा ! ऐसा तीन लोक के नाथ का कथन है। आहाहा ! परमात्मा जगत को जगाने के लिये यह वाणी है। जाग रे जाग नाथ ! तू अन्धकार में सो रहा है। उस अन्धकार का नाश करने के लिये तैयार हो। इस चैतन्य के प्रकाश के समक्ष अन्धकार नहीं टिकेगा। आहाहा ! दूसरा कोई क्रियाकाण्ड करने से नहीं टिकेगा। चैतन्य का प्रकाश, अन्दर चैतन्यऋद्धि, वह चैतन्य की ऋद्धि अन्दर पड़ी है। अनन्त-अनन्त गुणों की ऋद्धि / सम्पदा पड़ी है। उस सम्पदा के प्रकाश से, उसमें एकाग्र होने पर उसके प्रकाश से मोहतिमिर का जिसने नाश कर डाला है। अघसेना की ध्वजा को लूट लिया है। आहाहा ! वह विकार की ध्वजा सामने पड़ती है, जहाँ हो वहाँ मैं पुण्यवाला हूँ, पापवाला हूँ, मैं सेठिया हूँ, मैं राजा हूँ, मैं वकील हूँ, मैं अधिकारी हूँ, मैं जज हूँ। आहाहा ! मार डाला। अज्ञान की ध्वजा फिरकती (थी), कहते हैं। क्या कहा ?

अघसेना-पाप की सेना की ध्वजा फिरकती थी, उसे हर लिया। आहाहा ! वह चैतन्यस्वभाव अनन्त चमत्कार से भरपूर भगवान के आश्रय से इस अन्धकार को हर

लिया। आहाहा! ऐसा उपदेश। लोग बेचारे ऐसा कहें, सोनगढ़वाले तो निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. व्यवहार की तो बात ही नहीं करते। व्यवहार की बात नहीं करते? व्यवहार खोटा है, ऐसा नहीं कहते? यह शुभाशुभभाव क्या कहा? शुभाशुभभाव के गुण भव के गुण हैं। भव के गुणों का जिसमें अभाव है। आहाहा! परन्तु कभी जिन्दगी सुना न हो, कुटुम्ब परम्परा में मिला न हो। आहाहा! इसलिए उसे कठोर लगता है। बापू! प्रभु! तेरे घर की बात है। तेरा घर अलग प्रकार का है।

अब हम कबहूँ न निज घर आये।
पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये॥

'पर घर भ्रमत...' पुण्य और पाप के भाव में 'पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' सेठ और मूर्ख, देव और नारकी, मनुष्य और ढोर और तिर्यंच... आहाहा! 'अब हम कबहूँ न निज घर आये' निज घर भगवान (आत्मा) अन्दर है, उसमें तू आया नहीं और उस घर बिना बाहर के घर में खेल करके भटक मरा है। आहाहा!

अघसेना की ध्वजा को हर लेता है। आहाहा! सैनिक व्यक्ति होता है न? उसे एक बड़ी ध्वजा होती है। उसमें यदि हार जाए, उसकी ध्वजा फाड़ डाले। जीते, उसकी ध्वजा युद्ध में ऊँची रखे। युद्ध में ऐसा (करते हैं)। यह राणपुर में हुआ था न? राणपुर में हुआ था। किनारे। सेना आयी किनारे। राणा! खेलना छोड़। सेना आयी किनारे। राणा था। वह राणपुर गाँव है। सेना आयी। वह शतरंज का खेल करता था। उसमें एक बारोठ ने आकर कहा, अरे! राणा! खेल छोड़। यह सेना किनारे आयी। किनारे लड़ने आयी है। वह पहुँच गयी। अभी आ जाएगी और लूटेगी। खड़ा हुआ। रानियों को सबको कहा कि यदि मैं वहाँ हार जाऊँ तो मेरी ध्वजा गिर जाएगी परन्तु सहज ऐसा हुआ कि हारा नहीं किन्तु सहज ध्वजा गिर गयी। हारकर नहीं परन्तु सहज गिरी। इसलिए रानियाँ... वहाँ है न सामने? राणपुर में सामने नहीं? गढ़ गढ़ बड़ा। बड़ा कुआँ है, रानी कुएँ में गिरकर मर गयी। अपने राजा हार गये हैं, हमें जीकर क्या करना? वहाँ कुआँ है। मैंने देखा है। एक बार देख आये हैं। जंगल जाते हैं, जंगल जाते हुए वहाँ देखा। सब रानियाँ गिरकर मर गयीं। आहाहा! राणा! खेल छोड़।

इसी प्रकार राजा! आतमराजा! तू बाहर के खेल छोड़। अब मरण किनारे आया।

अब मरण समीप में आया। अब मरने को अधिक समय नहीं है। ५०-५० वर्ष निकाले, उसमें ५० निकलनेवाले नहीं हैं, बापू! आहाहा! वह ध्वजा सहज गिर गयी। इन लोगों को ऐसा हो गया कि अपने राजा हार गये, इसलिए रानी कुएँ में गिरकर मर गयी। आहाहा! सामने है, सामने गढ़ है न। राणपुर नदी के किनारे गढ़ है। वहाँ हमने चातुर्मास किया है।

उस अघसेना की ध्वजा को हर लेता है। आहाहा! चैतन्यचमत्कारी प्रभु आत्मा, चैतन्य हीरा जहाँ अन्दर में नजर में आया, वहाँ आगे अज्ञान की ध्वजा लुट गयी। आहाहा! वह उसकी ध्वजा गिर गयी, अब नहीं रही। उसकी महिमा नहीं रही। अब आत्मा की महिमा आयी। आहाहा! ऐसी आत्मा की महिमा संसार के अभाव का कारण होती है। आहाहा! ऐसे शब्द भी सुने नहीं होंगे। सज्जनभाई! पूरी बात ही दूसरी है, बापू! दूसरी बातें हैं, भाई! क्या करें? आहाहा! लोगों को सूक्ष्म पड़ती है, ऐसा करके नहीं सुनाते। उन्हें भी खबर नहीं होती। सुनानेवालों को भी खबर नहीं होती। आता नहीं। कुछ भी हाँकते हैं। सुननेवाले जय नारायण किया करते हैं। आहाहा!

यहाँ तीन लोक का नाथ जगत में चैतन्यमूर्ति त्रिकाली जयवन्त वर्तता है। इसलिए तू जब देखना चाहे, तब देख सकता है। उसे काल बाधक नहीं है, रोग अवरोधक नहीं है, शरीर बाधक नहीं है, पाप बाधक नहीं है, क्योंकि उसमें वह पाप आदि है नहीं। आहाहा! अरे! हम ऐसे पाप के उदय में कहाँ निवृत्ति लें? वह पाप उसमें है ही नहीं। वह तो निवृत्त-स्वरूप अन्दर पड़ा है भगवान द्रव्यस्वभाव, उसमें जा और पाप की तथा पुण्य की ध्वजा को लूट ले। उसकी सामने महिमा थी, वह लुट गयी और स्वयं सामने होता है, तब उसके भव का अभाव होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२३

संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं परम–समाही हवे तस्स।।१२३।।

संयमनियमतपसा तु धर्म–ध्यानेन शुक्ल–ध्यानेन।
यो ध्यायत्यात्मानं परम–समाधिर्भवेत्तस्य।।१२३।।

इह हि समाधिलक्षणमुक्तम्। संयमः सकलेन्द्रियव्यापारपरित्यागः। नियमेन स्वात्माराधना–तत्परता। आत्मानमात्मन्यात्मना सन्धत्त इत्यध्यात्मं तपनम्। सकलबाह्यक्रियाकाण्डाडम्बर–परित्याग–लक्षणान्तःक्रियाधिकरणमात्मानं निरवधित्रिकालनिरुपाधिस्वरूपं यो जानाति, तत्परिणतिविशेषः स्वात्माश्रय निश्चयधर्मध्यानम्। ध्यानध्येयध्यातृतत्फलादिविविधविकल्प–निर्मुक्तान्तर्मुखाकारनिखिलकरणग्रामागोचरनिरञ्जननिजपरमतत्त्वाविचलस्थितिरूपं निश्चयशुक्लध्यानम्। एभिः सामग्रीविशेषैः सार्धमखण्डाद्वैतपरमचिन्मयमात्मानं यः परमसंयमी नित्यं ध्यायति, तस्य खलु परमसमाधिर्भवतीति।

संयम नियम तप से तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यान से-
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे॥१२३॥

अन्वयार्थ : [संयमनियमतपसा] संयम, नियम और तप से तथा [धर्म–ध्यानेन शुक्लध्यानेन] धर्मध्यान और शुक्लध्यान से [यः] जो [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [परमसमाधिः] परम समाधि [भवेत्] है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) समाधि का लक्षण (अर्थात् स्वरूप) कहा है।

समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग, सो संयम है। निज आत्मा की आराधना में तत्परता, सो नियम है। जो आत्मा को आत्मा में आत्मा से धारण कर रखता है-टिका रखता है-जोड़ रखता है, वह अध्यात्म है और वह अध्यात्म, सो तप है। समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है, ऐसी अन्तःक्रिया के

***अधिकरणभूत आत्मा को—कि जिसका स्वरूप अवधि रहित तीनों काल (अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है उसे—जो जीव जानता है, उस जीव की परिणति-विशेष वह स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है। ध्यान-ध्येय-ध्याता, ध्यान का फल आदि के विविध विकल्पों से विमुक्त (अर्थात् ऐसे विकल्पों से रहित), अन्तर्मुखाकार (अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसा), समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर निरंजन-निज परमतत्त्व में अविचल स्थितिरूप (-ऐसा जो ध्यान), वह निश्चयशुक्लध्यान है। इन सामग्री-विशेषों सहित (इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित) अखण्ड अद्वैत परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है।**

प्रवचन-१४६, श्लोक-२०१, गाथा-१२३, शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८, दिनांक ०६-०६-१९८०

नियमसार १२३ गाथा।

संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स।।१२३।।

संयम नियम तप से तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यान से-
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे॥१२३॥

यहाँ समाधि का अर्थ परम अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, वह परमसमाधि है। परम अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा जो प्रभु आत्मा, ऐसा, उसमें रमना, उसका नाम समाधि है। वे बाबा समाधि लगावें, ऐसा नहीं। लोगस्स में भी आता है न? '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु उस समाधि का अर्थ आता नहीं। ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलते जाते हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) समाधि का लक्षण (अर्थात् स्वरूप) कहा है। क्या? **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग सो संयम है।** पाँचों इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द की ओर लक्ष्य करना, उसका नाम संयम है। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों का विषय जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उसका लक्ष्य छोड़कर, आश्रय छोड़कर, उसकी ओर का झुकाव छोड़कर अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें

** अधिकरण=आधार। (अन्तरंग क्रिया का आधार आत्मा है।)*

लीनता करना। आहाहा! है ? वह परित्याग। इन्द्रियों का परित्याग और स्वरूप में एकाग्रता, वह संयम है। आहाहा! इसका नाम संयम। अकेला इन्द्रियों का परित्याग नहीं। इन्द्रियों का परित्याग तो तब कहने में आता है कि अनीन्द्रिय आत्मा का अनुभव हो, शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव हो, तब इन्द्रियों का परित्याग कहने में आता है। अस्ति के भान बिना परित्याग कहने में नहीं आता। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा लिया कि **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग...** लो! ऐसे इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग करके बैठे और ऐसे... ऐसा नहीं। इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग, तब कहलाता है कि आत्मा अपने आनन्दस्वरूप है, उसमें लीनता करता है, तब इन्द्रियों का परित्याग कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ? यह ऊपर भाषा तो ऐसी ले लेवे कि इन्द्रियों का व्यापार घटा, छोड़ दिया। फिर से विशेष लेंगे।

निज आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है। यह नियमसार है न ? नियम किसे कहना ? पहले संयम आया। संयम—सं—सम्यग्दर्शनपूर्वक यम, उसका नाम संयम। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ संयम नहीं होता। इसलिए कहते हैं कि **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग...** परित्याग। अकेला त्याग नहीं लिया। समस्त परित्याग। इन्द्रियों की ओर का झुकाव छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु में संयम रहना-स्थिर रहना, वह संयम है। संयम कोई बाह्य क्रियाकाण्ड और क्रिया आडम्बर, वह कोई संयम नहीं है। **निज आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है।** आहाहा! नियम उसे कहते हैं कि निज आत्मा जो आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसमें लीन होना, उस आराधना को यहाँ नियम कहते हैं। आहाहा! व्यवहार की बातें तो... उस व्यवहार का भी अभी कहाँ ठिकाना है ? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। **आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है।**

जो आत्मा को आत्मा में आत्मा से धारण कर रखता है-टिका रखता है-जोड़ रखता है, वह अध्यात्म है... आहाहा! आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प से रहित पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर की तत्परता, उसका नाम नियम है। आहाहा! है ? **वह अध्यात्म है और वह अध्यात्म सो तप है।** बाकी अपवास आदि और वर्षीतप करे, वह तो सब लंघन है, लंघन। तप नहीं। आहाहा! तप तो उसे कहते हैं कि **आत्मा की आराधना में तत्परता...** और आत्मा को अर्थात् शुद्ध चैतन्य। उसमें **आत्मा को आत्मा में...** आधार... और **आत्मा**

से... अपादान। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान (और अधिकरण) छह बोल आते हैं न ? छह बोल। उनमें **आत्मा को आत्मा में...** आत्मा में... आहाहा ! **आत्मा को आत्मा में आत्मा से...** राग के विकल्प से नहीं। आत्मा जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, उसके निर्विकल्प आत्मपरिणाम से आत्मा में टिकना, रहना, इसका नाम... है ? तप है। अध्यात्म है। इसका नाम तप है। आहाहा !

यहाँ तो एक अपवास करे, अठ्ठम करे, वर्षीतप करे (तो) हो गयी तपश्चर्या। पाँच-सात हजार खर्च करे और ढिढ़ोरा पीटे कि वर्षीतप किया। धूल भी नहीं। वह सब लंघन है। लंघन है, लंघन। आहाहा ! मिथ्यात्व का पोषण है। है कोई शुभभाव और मानता है तप, धर्म, निर्जरा। मिथ्यात्व का पोषण है। कठिन बात है, प्रभु ! वीतराग का मार्ग बहुत कठिन है, भाई ! अपूर्व और कठिन दो है। आहाहा ! पूर्व में एक समय भी अनन्त काल के प्रवाह में कभी किया नहीं। ऐसी चीज़ अमूल्य-जिसकी कीमत नहीं, ऐसी अपूर्व चीज़ आनन्दकन्द नाथ, नव तत्त्व में जो आत्मा है, पुण्य-पाप-आस्रव-बन्ध तो पर्याय पर है, उससे भिन्न जो आत्मा है... आहाहा ! द्रव्यस्वरूप से भगवान आत्मा है, उस आत्मा से आत्मा में तत्पर (रहना), उसका नाम अध्यात्म है और यह अध्यात्म, वह तप है। आहाहा !

समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है... आहाहा ! दूसरी बात करते हैं। जरा लम्बी बात है। **समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड...** मन-वचन से कुछ करना, कराना, अनुमोदन करना, इन सब क्रियाकाण्ड से रहित। आहाहा ! **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर...** वह तो सब आडम्बर है। दुनिया में देखे कि ओहो ! यह त्यागी है। वस्त्र छोड़े, स्त्री-पुत्र छोड़े हैं परन्तु अन्दर मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, वह तो छोड़ा नहीं। त्याग तो उसका पहले होना चाहिए, उसकी तो खबर नहीं। मिथ्यात्व किसे कहते हैं, उसकी तो खबर ही नहीं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि उस **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है...** जिसका लक्षण है। आहाहा ! **ऐसी अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत आत्मा को**—अन्तर की निर्मल वीतरागी क्रिया जिसका आधार आत्मा है। आत्मा के आधार से, आश्रय से, अवलम्बन से जो वीतरागी आनन्द प्रगट हुआ, वह क्रिया धर्म है। आहाहा ! लोगों को बहुत कठिन लगता है। **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग...** परित्याग

है न ? परि अर्थात् समस्त प्रकार से। आंशिक भी बाह्य क्रिया आडम्बर का भाग नहीं कि यह क्रिया शुभ है। भगवान की भक्ति है, इसलिए इस भक्ति से मुझे कुछ होगा, ऐसा बिल्कुल नहीं है। बाह्य पदार्थ के अवलम्बन से अन्तर अवलम्बन कभी नहीं होता। आहाहा! कठिन है, भगवान!

बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है ऐसी अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत आत्मा को—नीचे (फुटनोट में) **आधार। (अन्तरंग क्रिया का आधार आत्मा है।)** दया, दान, बाह्यक्रिया का आधार दिशा पर है। पुण्य, पाप, दया, दान, भक्ति, ब्रह्मचर्य शुभ वह राग है। राग की दिशा परसन्मुख है। राग की दशा की दिशा परसन्मुख है और वीतरागी परिणति की दशा स्वसन्मुख है। आहाहा! समझ में आया ? जितने विकल्प उठते हैं, चाहे तो भगवान की भक्ति या स्मरण या यात्रा या चाहे जो, उस विकल्प की दिशा पर है। दशा की दिशा पर है और उस समय निर्विकल्प दशा की दिशा स्व है। तो अपने आत्मा के आधार से उत्पन्न हुआ... आहाहा! आया ?

अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर की निर्विकल्प... राग की क्रिया और पाँच इन्द्रिय के विषय से रहित अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान, उसकी क्रिया, उसका आधार भगवान आत्मा है। बाह्य क्रिया का आधार परवस्तु है। आहाहा! अन्तर रागरहित वीतरागी परिणति की क्रिया का आधार आत्मा है। आहाहा! दोनों की दिशा में अन्तर है, दोनों की दशा में अन्तर है, दोनों की दिशा में अन्तर है। दया, दान आदि का जितना राग उत्पन्न होता है, उस दशा की दिशा परसन्मुख है। परद्रव्य की ओर लक्ष्य है और वीतरागी परिणति होती है, उस दशा की दिशा स्व आत्मा आधार है। वीतराग परिणति का आधार त्रिकाल आत्मा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मनुष्यपना मिला, जैन में जन्में तो भी जैन परमेश्वर क्या कहते हैं, उसे सुनने को मिलता नहीं और अपनी कल्पना से जो मत, परम्परा मानकर बैठे, वह सब पाप की बातें पूरे दिन किया करते हैं। आहाहा! आत्मा की बातें, बापू! ऐसी सूक्ष्म है।

सम्यग्दर्शन, पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का झुकाव छूटकर, मन-वचन-काया की क्रिया का झुकाव छूटकर, उस ओर का झुकाव छूटकर अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसमें झुकाव होता है, तब पर्याय में आत्मा अनुभव में आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान होता ही

नहीं। मिथ्याज्ञान है, चारित्र मिथ्या है। व्रत तप, वह सब मिथ्या / निष्फल है। चार गति में भटकने के कारण हैं। आहाहा!

अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर की वीतरागी परिणति निर्विकल्पदशा का आधार, अन्त:क्रिया अर्थात् अन्तर वीतरागी पर्याय। पाँच इन्द्रियों की ओर का झुकाव और मन-वचन-काया की ओर का झुकाव छोड़कर अन्त:क्रिया जो वीतरागस्वरूप की ओर ढले, उस क्रिया का आधार आत्मा है। वह आत्मा के आधार से वीतराग परिणति उत्पन्न होती है। वह वीतराग परिणति कोई राग, व्यवहाररत्नत्रय किया तो व्यवहाररत्नत्रय से धर्म की अन्त:क्रिया उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। मार्ग समझे, न समझे। दुनिया चाहे जहाँ भटके। मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया?

अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर धर्म की धार्मिक क्रिया, वीतरागभाव की क्रिया, वीतराग भाव की परिणति की पर्याय का आधार आत्मा है। आहाहा! कोई राग की मन्दता की या भक्ति आदि की, परमेश्वर की स्तुति की तो उससे कुछ अन्त:क्रिया प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **कि जिसका स्वरूप अवधि रहित...** जो अन्त:क्रिया, वीतराग परिणति की क्रिया, उसका आधार आत्मा है। वह आत्मा कैसा है? आहाहा! **जिसका स्वरूप अवधि रहित...** जिसकी मर्यादा नहीं। **तीनों काल...** आत्मा भगवान है। आहाहा! किसी काल में पर्याय उत्पन्न हो, उसका काल होता है। पर्याय नाश हो, उसके काल में नाश होती है परन्तु भगवान आत्मा तो तीनों काल मर्यादा, तीनों काल जिसकी अवधि और मर्यादा है। आहाहा! है?

(अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है... भगवान आत्मा तो परमात्मस्वरूप निरुपाधिक है। पर्याय में विकारादि है, वह आत्मा में-द्रव्य में नहीं है। आहाहा! द्रव्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, वह तो निरुपाधिक है, त्रिकाल निरावरण है, त्रिकाल उपाधि से रहित है। आहाहा! त्रिकाल निरुपाधिक, (उपाधि से) रहित, उसमें निर्मल पर्याय भी नहीं। विकार आदि तो नहीं परन्तु धर्म की निर्मल पर्याय जो द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, उस पर्याय का भी द्रव्य में अभाव है। आहाहा! द्रव्य तो तीनों काल एकरूप है। उसके अवलम्बन से पर्याय उत्पन्न हो, वह समय है। आहाहा! वह एक समय है। एक समय में द्रव्य के अवलम्बन से अनन्त निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

जिनकी निर्मल पर्याय का आधार आत्मा है। निर्मल पर्याय का आधार कोई देव-गुरु-शास्त्र और मूर्ति-प्रतिमा या सम्मेदशिखर और शत्रुंजय की यात्रा (वह नहीं है)।

मुमुक्षु : जिनवाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र पठन-पठन वह भी आधार नहीं। शास्त्र पढ़ना, वह भी विकल्प है। शास्त्र में तो ऐसा भी कहा है कि शास्त्र की ओर लक्ष्य जाएगा तो बुद्धि व्यभिचारिणी होगी क्योंकि वह परद्रव्य है। कठिन है, भगवान! हम दुनिया को सबको जानते हैं। आहाहा! मार्ग कोई दूसरा रह गया है। आहाहा! यह कहते हैं।

तीनों काल (अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है... भगवान आत्मा। जिसमें भगवान की भक्ति के राग की भी उपाधि नहीं। आहाहा! राग, वह उपाधि है। **तीनों काल (अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है उसे—जो जीव...** ऐसा जो आत्मा **उसे—जो जीव जानता है, उस जीव की परिणति-विशेष...** वह जीव की अवस्था-दशा विशेष। आहाहा! **वह स्वात्माश्रित...** वह परिणति स्वआत्मा-आश्रित। तीनों काल रहनेवाला भगवान आनन्दकन्द प्रभु, उसके स्व आश्रय से जो पर्याय उत्पन्न होती है... वह **निश्चयधर्मध्यान है।** आहाहा! गजब बात है।

मुमुक्षु : आत्मा में और आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई शुद्धपर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई, वह पर्याय है। धर्मध्यान। उसके आश्रय से हुई, पर के आश्रय से नहीं। निर्मल वीतराग धर्म की परिणति जो उत्पन्न होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, उसका आधार त्रिकाली द्रव्य आत्मा है। आहाहा! अलग प्रकार का है। जज! यह तुम्हारे सब कानून अलग प्रकार के। सरकार के कहे वे कानून दिये रखो। यह कानून भगवान के घर का। कभी इसने सुना नहीं। अरे! प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो बहुत फेरफार हो गया। आहाहा! कोतवाल... वे कहते हैं न, चोर कोतवाल को डण्डे, ऐसा हो गया है। सत्य बात कहते हैं तो यह नहीं... नहीं... यह एकान्त है... एकान्त है। करो एकान्त। मरो एकान्त करके। आहाहा!

भाई! वह निरुपाधिक आत्मतत्त्व जो है, वह निश्चय स्व आत्मआश्रित, स्व आत्मा आश्रित। परमात्मा के आश्रित नहीं, वीतराग आश्रित नहीं। वीतराग आश्रित करे तो राग ही

होता है। आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय छोड़कर कोई भी परद्रव्य अरिहन्तदेव, पंच परमेष्ठी का आश्रय करे तो राग ही उत्पन्न होता है और राग, वह चैतन्य की गति नहीं है; वह दुर्गति है। वह चैतन्य से विरुद्ध गति है। आहाहा!

यह मोक्षपाहुड़ में कहा है। '**परदव्वादो दुग्गई**' कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में कहा है। '**परदव्वादो दुग्गई**' स्वयं कहते हैं कि हम परद्रव्य हैं। यदि तेरा लक्ष्य हमारे ऊपर जाएगा तो तुझे चैतन्य की दुर्गति अर्थात् राग होगा। राग का फल चार गति है। इस राग का फल स्वर्ग है। वह स्वर्ग भी दुर्गति है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यहाँ तो ४५ वर्ष से चलता है। सुननेवाले भी सुनते हैं। देश-परदेश सर्वत्र चारों ओर फैलाव हो गया है। अफ्रीका तक चला गया है। ४५ वर्ष से यह पुस्तकें बहुत छप गयी हैं। बाईस लाख तो यहाँ से छपी हैं और आठ लाख जयपुर से छपी हैं। अभी नये सात लाख रुपये की मुम्बई की ओर से छपानेवाले हैं। सात लाख की मुम्बई की ओर से। उसमें एक पुस्तक आयी है। आहाहा! सब व्याख्या स्पष्ट, बहुत स्पष्ट। साधारण चार कक्षा पढ़ा हुआ व्यक्ति भी पढ़ सकता है, ऐसी सादी भाषा है। परन्तु गरज हो उसकी बात है।

यहाँ कहते हैं **स्वात्माश्रित...** आहाहा! **निश्चयधर्मध्यान है।** भगवान पूर्णानन्द का नाथ, निर्विकल्प—रागरहित, भेदरहित, गुण और गुणी का जिसमें भेद भी नहीं। ऐसे भगवान आत्मा में ध्यान लगाना, वह निश्चयधर्मध्यान है। निश्चयधर्मध्यान का आश्रय आत्मा है। निश्चय-सच्चे धर्मध्यान का आश्रय परचीज़ नहीं। देव-गुरु-शास्त्र भी निश्चयधर्मध्यान का आश्रय नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्मध्यान का काउस्सग्ग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय बिना धर्मध्यान कहाँ है? राग है। राग है, राग। विकल्प। वह तो विकल्प है। अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त... अन्दर धुन लगावे, वह विकल्प है, राग है। राग है, वह तो ठीक परन्तु उसमें भेद नहीं। आत्मा गुणी है और यह आनन्दगुण है, ऐसा भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय तो अकेला अभेद आत्मा है। स्व-आश्रय। अखण्ड स्व आश्रय। ऐसी बात है, प्रभु! जँचे, न जँचे दुनिया जाने। यहाँ कहाँ दुनिया की माने या आदरे तो यह ठीक है, ऐसा कुछ है नहीं। सत् को संख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। सत् को सत् की आवश्यकता है।

अधिक संख्या हो और लाखों लोग मानें तो सत्य, थोड़े मानें तो असत्य, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! भाषा तो देखो! आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है। ध्यान-ध्येय-ध्याता, ध्यान का फल आदि के विविध विकल्पों से विमुक्त (अर्थात् ऐसे विकल्पों से रहित), अन्तर्मुखाकार... अन्तर्मुखाकार—अन्तर्मुख की परिणति। एकदम अन्तर्मुख परिणति। आहाहा! **(अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसा), समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर...** कोई भी इन्द्रिय से, मन से भी अगोचर - गम्य नहीं, ऐसा प्रभु अन्दर आत्मा है। आहाहा! **अगोचर निरंजन-निज परम तत्त्व में...** आहाहा! निरंजन-निज परम तत्त्व भगवान आत्मा में **अविचल स्थितिरूप...** उसमें चलित होना नहीं, स्थिर होना। ऐसे निश्चय **स्थितिरूप (- ऐसा जो ध्यान) वह निश्चयशुक्लध्यान है।** धर्मध्यान में तो अभी ध्याता-ध्यान-ध्येय आदि विकल्प आते हैं और फिर एकाग्र होता है परन्तु थोड़ी एकाग्रता (होती है)। शुक्लध्यान में बहुत एकाग्रता है। बाकी वीतरागभाव, वह धर्मध्यान; वीतरागभाव वह शुक्लध्यान। वीतरागभाव, वह धर्म। क्यों ?—कि आत्मा वीतरागस्वरूप है।

'घट घट अन्तर जिन बसै अरु घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' अपने मत के आग्रह के पक्ष के कारण... आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै...' जिन—स्वयं भगवान ही है आत्मा। आहाहा! और 'घट घट अन्तर जैन,...' उसका अनुभव करे वह जैन है। जैन कोई वाड़ा और पक्ष नहीं। हरिजन भी आत्मा का अनुभव करे तो वह भी जैन है और जैन में जन्मे हुए को जैन का भान नहीं तो वह भी जैन नहीं। कहो, दामोदरभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

(-ऐसा जो ध्यान) वह निश्चयशुक्लध्यान है। इन सामग्री-विशेषों सहित... यह सामग्री-विशेष अर्थात् अन्तर्दृष्टि। अन्तर्दृष्टि, अन्तरज्ञान, अन्तर रमणता। **इन सामग्री-विशेषों सहित (इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित)...** अन्तर के साधनसामग्री सहित। **अखण्ड अद्वैत परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है।** आहाहा! एक-एक बोल कठिन है। समाधि का अधिकार है न ? बाबा समाधि चढ़ावे, वह नहीं, हों! वह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। जैन के अतिरिक्त सब मार्ग मिथ्यादृष्टि के हैं। यह बात जरा सूक्ष्म पड़ती है, भाई! आहाहा!

दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त भी कोई भी धर्म वह सब मिथ्यादृष्टि है। माने, न माने स्वतन्त्र है। त्रिलोकनाथ की वाणी है। समझ में आया ? आहाहा! यह वाणी... कैसी ?

(आन्तरिक साधनसामग्री सहित) अखण्ड अद्वैत... एकरूप प्रभु, **परम चैतन्यमय आत्मा को...** अब आत्मा कैसा है, वह सिद्ध किया। रागादि, इन्द्रिय आदि का विषय नहीं परन्तु चैतन्यमय आत्मा। चेतन-चैतन्यमय। चेतनद्रव्य आत्मा, चैतन्यमय वह ज्ञानमय। आहाहा! चैतन्यमय क्यों कहा ? चेतनवाला ऐसा भी नहीं। अभेद कहा है। चैतन्यमय। चेतन, चैतन्यमय है। चैतन्यवाला है, ऐसा भी नहीं। वाला में भेद होता है। आहाहा! **परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है,...** आहाहा! **उसे वास्तव में परम समाधि है।** छद्मस्थ की बात है। आहाहा! उसे अन्तर में शान्ति का स्वाद आता है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। और यह सब वीतरागपर्याय है, उसका अनुभव पर्याय में होता है। द्रव्य में अनुभव नहीं होता। द्रव्य तो ध्रुव है। उसके आश्रय से पर्याय में अनुभव होता है। वह शुक्लध्यान, धर्मध्यान की वीतरागी पर्याय, वह स्वआश्रय से है। आत्मा के आश्रय से दोनों उत्पन्न होते हैं। पर के आश्रय से उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! एक श्लोक इतना अधिक कठिन पड़े। यहाँ तो बहुत बार यह पढ़ा गया है।

मुमुक्षु : आपने निश्चय की समाधि बतायी। निश्चय साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन ही यह है, सामग्री ही यह है। सामग्री ही निश्चय सामग्री है। अन्तर में आनन्दस्वरूप की रागरहित एकाग्रता, वह उसकी सामग्री है। आहाहा! ऐसी बात! यहाँ तो अभी एकेन्द्रिय की दया पालो, पर को कुछ दान दो, आहार दो, पानी दो, तो धर्म होगा। यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर छद्मस्थ हों। जब छद्मस्थ आहार लेने जाते हैं, उन्हें आहार देने का शुभभाव होता है। धर्म-निर्जरा नहीं, परित संसार नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उससे संसार कृश होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह बात कही थी। पोपटभाई के साथ 'गोंडल' में (संवत्) १९७७ के वर्ष। उनके रिश्तेदार। १९७७ के वर्ष में गोंडल में बहुत चर्चा हुई थी, इस भगवतीसूत्र में ऐसा आया है कि भगवान को रोग हुआ तो रेवती के घर से दवा ले आये और दवा खायी। दवा दी तो उसे परित संसार हुआ। कहा, यह बात मिथ्या है।

भगवान को रोग होता है, यह बात झूठ है; दवा लाये, यह बात झूठ है; दवा खायी, यह बात झूठ है और परित संसार हुआ, यह बात भी झूठ है। १९७७ के वर्ष की बात चलती है। १९७७ के वर्ष में गोंडल में रामजीभाई के रिश्तेदार पोपटभाई वृद्ध थे। आहाहा! पोपटभाई जादवजी। व्याख्यान में तो सब आते थे न? जहाँ जाएँ वहाँ सब आवें तो अवश्य। कितनों को न जँचे और कितनों को जँचे। यह सबको कहाँ से जँचे? बापू! आहाहा! वह भगवान है परन्तु भगवान का स्वरूप उसे जँचे कैसे? पामर दो बीड़ी पीवे, तब दस्त उतरे। सवेरे दो बीड़ी-सिगरेट पीवे, तब दस्त उतरे, ऐसे लक्षण। अब उसे भगवान.. भगवान.. बताना। तू भगवान है। तेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। पर के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। आज माने, कल माने, बाद में माने, यह मानने से ही छुटकारा है। दुनिया तो दुनिया बहुत प्रकार से उल्टे रास्ते मनाती है। वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें बहुत है। खबर है। सब बात हो गयी है। मेघकुमार ने दया पालन की। वह क्या? पैर के नीचे आया तो परित संसार। सब मिथ्या बात है। बात एकदम खोटी है। आहाहा! दूसरा विपाक अधिकार है। विपाक में दस व्यक्ति मिथ्यादृष्टि ने साधु को आहार दिया और परित संसार किया, यह बात मिथ्या है।

यहाँ तो बात सत्य है। माने, वह माने और न माने, वह उसके घर रहा। यहाँ कोई पक्ष करना नहीं है। उसमें कोई अधिक लोग बढ़ाने नहीं है। आहाहा! बड़ी चर्चा हुई थी। विपाक की बड़ी चर्चा हुई थी। विपाकसूत्र है। सुख विपाक-दु:ख विपाक। सुखविपाक में दस प्रकार के अधिकार हैं। सब देखा है। सत्रह बार तो भगवती (सूत्र) देखा है। भगवती के सोलह हजार श्लोक और सवा लाख की टीका। सत्रह बार। सब शास्त्र (देखे हैं)। उसमें यह जब अधिकार आया कि रेवती के यहाँ आहार लेने गये, भगवान को रोग हुआ, उसे परित संसार हुआ। बिल्कुल झूठ है, कहा। परद्रव्य के आश्रय से कभी संसार नहीं घटता। संसार बढ़ता है, प्रभु! क्या कहें? किसे कहें? क्या कहें? ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....प्रकृति का बन्ध तो क्या न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकृति उससे बन्ध नहीं हुआ, वह तो शुभभाव से हुआ है, वह

तो शुभभाव था तब हुआ, स्वयं को। यह तो वह रेवती आहार देने गयी थी न ? ऐसा कहते हैं न और भगवान को रोग हुआ। क्या कहलाता है ? दस्त।

मुमुक्षु : खूनी दस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : खूनी दस्त। भगवान को होवे खूनी दस्त ? उन्हें असाता का उदय होगा ? आहाहा ! तीन लोक के नाथ, वे तो आनन्दकन्द परम औदारिक शरीर होता है।

मुमुक्षु : वीतराग को असाता नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग को नहीं होती, भाई ! बहुत कठिन बात है, बापू ! सब खबर है। दुनिया कहती है, वह सब खबर है। सब पढ़ा है न ! अनेक शास्त्र (देखे हैं)। पैंतालीस सूत्र अनेक बार पढ़े हैं। बत्तीस सूत्र तो आठ महीने में वर्ष के वर्ष पढ़ते थे। फिर यह जो... १३ है वह एक बार (संवत्) १९७६ में देख लिया। पैंतालीस है न ? दामनगर में १९७६ के वर्ष। एक माह अधिक था। उन पाँच महीनों में तो पैंतालीस बार लाखों करोड़ों टीका सब देखा। वाँचन तो... निवृत्ति थी न ! परन्तु यह बात... आहाहा ! कहीं नहीं है।

देखो ! **सामग्री-विशेषों सहित...** इस सामग्रीसहित **(इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित)...** आन्तरिक सामग्री। अन्तर की एकाग्रता ध्यान में, आनन्द में, वह अन्तर की सामग्री है। आहाहा ! निर्विकल्प दशा, वह अन्तर की सामग्री है। अन्तर की सामग्री सहित। **अखण्ड अद्वैत परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है,...** जो परम संयमी समकिती... समकित बिना संयम नहीं होता। सं—यम अर्थात् सम्यक्त्वसहित यम होता है। यम अर्थात् व्रत। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे तो कुछ है ही नहीं। सब मिथ्यादृष्टि है। संयम भी नहीं, इन्द्रियदमन भी नहीं और व्रत भी नहीं तथा तप भी नहीं। आहाहा ! कठिन बात है।

परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है। शान्ति है। आहाहा ! वहाँ आत्मा में शान्ति है क्योंकि आत्मा शान्तस्वभावी पूरा भरा पड़ा है। शान्तस्वभाव का अर्थ चारित्रस्वरूप। आत्मा में चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। पर्याय में प्रगटे, वह दूसरी चीज़ है। अन्दर आत्मा में चारित्र नाम का गुण त्रिकाल ध्रुव है, ध्रुव। आहाहा ! उसे अकषायभाव कहते हैं। उसे अकषायभाव कहते हैं, शान्तभाव कहते

हैं, चारित्रभाव कहते हैं। वे सब ध्रुव हैं, ध्रुव। उसके आश्रय से जो संयम उत्पन्न होता है, उसे संयम और चारित्र कहते हैं। आहाहा! यह कहा, देखो। **संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है।**

अब, इस १२३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

श्लोक-२०१

[अब, इस १२३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्त-मात्मानं तं नमाम्यहम् ।।२०१।।

(वीरछन्द)

निर्विकल्प चैतन्य समाधि में सदैव जो है रहता।
द्वैत-अद्वैत विकल्प रहित आतम को मैं वन्दन करता॥२०१॥

श्लोकार्थ : जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त (द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से मुक्त) आत्मा को मैं नमन करता हूँ॥२०१॥

श्लोक - २०१ पर प्रवचन

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्त-मात्मानं तं नमाम्यहम् ।।२०१।।

आहाहा! एक तो दुनिया के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं। निवृत्ति मिले और घण्टे

भर सुनने जाए, वहाँ कुगुरु लूट लेता है। श्रीमद् कहते हैं। कुगुरु एक घण्टा लूट लेता है। उसे व्रत, नियम और तप में धर्म मनवा ले। मिथ्यात्व को सेवन करे। उसका एक घण्टा लुट गया। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं। अरे रे! तत्त्व की बात बिना, प्रभु! अनन्त काल से भटकता है। निज जाति को जाने बिना परजाति से कुछ मुझे होगा, मुझे परद्रव्य से कुछ लाभ होगा, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! यह मिथ्यात्व अनन्त संसार का कारण है। मिथ्यात्व, वह संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, धन, मकान, वह कोई संसार नहीं; वे तो अजीव चीज़, परचीज़ है। संसार तो स्वरूप से संसरण इति संसार। स्वरूप जो त्रिकाली आनन्द का नाथ है, उसमें से हटकर रागादि को अपना मानना, वह संसार है। आहाहा! संसार, वह आत्मा की एक विकारी पर्याय है। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था।

सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा की निर्विकारी पर्याय है। मिथ्यात्व, वह आत्मा की विकारी पर्याय है। केवलज्ञान, वह आत्मा की पूर्ण निर्विकारी पर्याय है। सब पर्याय है। संसार पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है, सिद्ध पर्याय है, आर्तध्यान पर्याय है, रौद्रध्यान पर्याय है, शुक्लध्यान पर्याय है, धर्मध्यान पर्याय है। यह सब पर्याय है। आहाहा! इसमें अनजाने ने कभी सुना न हो। इसमें कितना ध्यान रखना? माणेकलाल के परिवार में हो न? यहाँ सुना था। माणेकलाल आता है न। गुजर गया न। उसके बड़े भाई भी गुजर गये। दोनों गुजर गये। छोटा आता है। आहाहा!

प्रभु! बात बहुत सूक्ष्म है। किसी का अनादर करने की बात नहीं है, प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! तू पर के आश्रय से प्रगट हो, ऐसा तू पंगु-पामर नहीं है। पर के आश्रय से तुझे कुछ धर्म का लाभ मिले, ऐसा तू पामर नहीं है, प्रभु! आहाहा! तेरे अन्दर में इतना अनन्त रत्न भरा है। चैतन्यरत्नाकर आत्मा है। चैतन्य के रत्न का आकर-सागर अन्दर है, भाई! आहाहा! उसकी अन्दर में ध्यान में नजर करने से पर रागादि की क्रिया का अभाव होने पर, निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसका नाम धर्मध्यान और मोक्ष का कारण कहने में आता है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

श्लोकार्थ : जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है,... आहाहा! मुनि तो जंगल में रहते थे। मुनि को कभी वस्त्र-पात्र नहीं थे। तीन काल में नहीं। भगवान के पास यह मार्ग है। यहाँ कहते हैं, वह मार्ग वहाँ महाविदेह में है। यहाँ कहते हैं... आहाहा!

सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त... आहाहा! मैं द्वैत— गुणी हूँ और मुझमें गुण है, ऐसा द्वैत का विकल्प भी जिसे छूट गया है और मैं गुणी हूँ, ऐसा विकल्प भी छूट गया है। द्वैत का भी विकल्प / राग छूट गया है, अद्वैत का भी विकल्प छूट गया है। द्वैत-अद्वैत का अर्थ **जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि...** जिसमें कोई राग के अंश का अवलम्बन नहीं है। भगवान की भक्ति, भगवान की पूजा, भगवान का स्मरण उसका आंशिक भी अवलम्बन नहीं है। आहाहा! वह सब तो राग है। उसमें धर्म मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि संसार है। आहाहा!

जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त (द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से मुक्त) आत्मा को मैं नमन करता हूँ। आहाहा! जो कोई अपने में द्वैत अर्थात् मैं आत्मा हूँ और यह गुण है, ऐसा द्वैत का विकल्प भी छोड़ता है और मैं गुणी हूँ, ऐसा विकल्प भी छोड़ता है, ऐसा द्वैताद्वैत का विकल्प छोड़ने से जो वीतराग ध्यान होता है, उसे मैं नमन करता हूँ। आहाहा! है? ऐसे **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** आहाहा! इसमें एक घण्टे में याद कितना रखना? धन्धे का सब याद रहता है। व्यापार की बात बहुत याद रखे। हमारे यहाँ दुकान में 'आनन्द' था। बहुत याद रखता। बड़ा व्यापार था न! कब आया था, कितना बिका, कितना पड़ा रहा, अभी उसका भाव मुम्बई में क्या है। यह त्रणपटी उसे खबर होती। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि दुकान बड़ी थी, इसलिए मुम्बई का वह लेते। क्या कहलाता है? पास। मुम्बई का पास; इसलिए तीन-चार दिन में मुम्बई माल लेने हमेशा जाना पड़े। बड़ा व्यापार। फिर मुम्बई का माल लावे। उसे त्रणपटी खबर होवे कि यह भाव अभी है। दुकान में हजारों चीज़ें। यह भाव अभी चलता है, इस भाव से यह लाये थे। उसमें से इतना बिका है, इतना बाकी है। ऐई! कान्तिभाई! तुम्हारा चूरा। आहाहा!

जिसे जिसकी प्रीति, उसे उसका काम सरल लगता है। आहाहा! रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे जिसकी रुचि और पोषाण, उसकी ओर उसका वीर्य— पुरुषार्थ काम किये बिना नहीं रहता। जिसे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहाहा! न्याय-लॉजिक से (बात है)। यह तो वीतराग तीन लोक

के नाथ के न्याय हैं। आहाहा! रुचि जिस ओर की है, उस ओर वीर्य काम करता है। यदि पुण्य-पाप की रुचि हो तो वहाँ काम करता है। परन्तु भगवान ने तो ऐसा कहा कि पुण्य-पाप में रुचि करे, पुण्य-पाप करता है, वह नपुंसक है। वह नपुंसक है। पावैया को-हिजड़े को जैसे वीर्य नहीं होता, पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार इसके शुभभाव में से धर्म प्रजा नहीं होती। इसलिए शुभभाव की रचना करनेवाला नपुंसक है। आहाहा! समयसार में आ गया है। शुभभाव चाहे जिस प्रकार का हो, परन्तु उसका स्वामी होता है और कर्ता होता है, वह नपुंसक / पावैया / हिजड़ा है। आहाहा! क्योंकि पावैया को वीर्य नहीं, इसलिए नपुंसक को पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार इस शुभभाव में धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! गजब बातें हैं।....कठिन पड़े। मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! भगवान सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। उनकी यह सब बात है। आहाहा!

कहते हैं **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** ऐसे आत्मा को मैं नमन करता हूँ। जिसे द्वैताद्वैत का विकल्प छूट गया है। मैं एक हूँ या मैं गुण और गुणी दो हूँ, ऐसा जिसे राग / विकल्प छूट गया है, उसे मैं नमन करता हूँ। आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि विकल्प से कोई धर्म मानता है तो वह नमन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! राग से धर्म मानते हैं, मनाते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे नमन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! गाथा १२४।

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयण-मोण-पहुदी समदा-रहियस्स समणस्स।।१२४।।

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

टीका : आहाहा! **यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना...** समता किसे कहते हैं? वीतरागभाव को। आहाहा! अन्दर में वीतरागभाव से भरा प्रभु है, उसके अवलम्बन से जो वीतरागदशा उत्पन्न होती है, उस वीतरागदशा को समता कहते हैं। सामायिक में कहते हैं न? सामायिक में समता का आय / लाभ। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन नहीं, उसे सामायिक कहाँ से आ गयी? समता का लाभ। समतास्वरूप वीतराग आत्मा है, उसकी अनुभव दृष्टि हो, पश्चात् उसमें लीन होवे तो समता का, वीतराग का लाभ होता है। आहाहा! गजब बात है। ठीक आये। थोड़ा सुनने तो आये यहाँ क्या है यह? कुछ दूसरा प्रकार है। आहाहा!

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को किंचित् परलोक का कारण नहीं है (अर्थात् किंचित् मोक्ष का साधन नहीं है)... समता के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... समता शब्द से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निश्चय वीतरागभाव। आत्मा वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। उस वीतरागस्वरूप की दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता तीनों ही वीतराग है। मोक्षमार्ग, वह वीतरागभाव है, यह कहते हैं कि उस वीतरागभाव **के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास...** साधु नाम धराकर द्रव्यलिंग धारण किया। आहाहा! **किंचित् परलोक का कारण नहीं है...** ऐसे द्रव्यलिंग धारण करके साधु होता है, नग्न-मुनि दिगम्बर होता है, पंच महाव्रत पालन करता है, अट्ठाईस मूलगुण पालता है, उसे किंचित् परलोक का कारण नहीं है, मोक्ष का किंचित् कारण नहीं है। परलोक अर्थात् मोक्ष। आहाहा!

यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना... वीतरागी दृष्टि के बिना, वीतरागी परिणति के बिना मोक्ष का कारण नहीं है। **द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को किंचित् परलोक का कारण नहीं है (अर्थात् किंचित् मोक्ष का साधन नहीं है) ऐसा कहा है।** आहाहा!

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास... द्रव्यलिंग नग्नपना धारण (किया)। नग्नपना, वह द्रव्यलिंग है। समझ में आया? वस्त्रसहित तो द्रव्यलिंग भी नहीं है। यह भगवान का वचन है। **केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को...** आहाहा! **समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना,...** आहाहा! अन्तर में समता का पिण्ड प्रभु वीतरागभाव से भरा है। उस वीतरागभाव के अवलम्बन से समता, वीतरागता उत्पन्न होती है, वही मोक्षमार्ग है। इस समता के बिना, यह मोक्षमार्ग जो स्वद्रव्य के आश्रय से है, इसके बिना... आहाहा! है न? इसके बिना...

(१) वनवास में बसकर... क्या हुआ? नग्न दिगम्बर मुनि वन में बसता है, तो उसमें क्या हुआ? आहाहा! आया? **कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से,...** इससे तुझे क्या हुआ? वृक्ष के नीचे स्थिति करे, सिर पर वर्षा का पानी

गिरे तो उसमें क्या लाभ है ? कुछ लाभ नहीं है। आहाहा ! कठिन बात है, भगवान ! **आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से, ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला पर बैठने से...** तेज धूप हो और शिला पर बैठे, इससे क्या हुआ ? आहाहा ! वह सब अंकरहित शून्य है।

अन्तरस्वरूप सामग्री सम्यग्दर्शन; राग से विकल्प से भेद से रहित ऐसी दृष्टि हुई नहीं, अनुभव में आनन्द आया नहीं तो यह क्रियाकाण्ड सब व्यर्थ है। व्यर्थ नहीं; संसार फलेगा, परिभ्रमण मिलेगा। आहाहा ! यह कहते हैं, देखो ! आहाहा ! **शिखर की शिला पर बैठने से और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...** मूल तो दिगम्बर धर्म अनादि है। अनादि है और भगवान के पास यह चलता है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं, पक्ष नहीं, कोई पन्थ नहीं। वस्तु का स्वरूप है। यह चीज़ है। यह कहते हैं कि **दिगम्बरदशा में रहने से, (२) त्वचा और अस्थिरूप (मात्र हाड़-चामरूप) हो गये सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** आहाहा ! छह-छह महीने के अपवास किये, महीने के अपवास किये, वर्षीतप किये। क्लेशदायक। है न ? **सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** उससे क्या हुआ ? वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा ! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-२११

(पृथ्वी)

जयत्यनघमात्मतत्त्वमिदमस्तसन्सारकं,
महामुनिगणाधिनाथहृदयारविन्दस्थितम् ।
विमुक्तभवकारणं स्फुटितशुद्धमेकान्ततः,
सदा निजमहिम्नि लीनमपि सद्दृशां गोचरम् ।।२११।।

(वीरछन्द)

अस्त किया संसार तथा गणधर के उर में जो स्थित।
भवकारण से मुक्त हुआ जो शुद्धरूप एकान्त प्रगट॥
निज महिमा में लीन तथापि समदृष्टि को अनुभव गम्य।
अहो! अनघ यह आत्म तत्त्व है परिणति में नितप्रति जयवन्त॥२११॥

श्लोकार्थ : यह अनघ (निर्दोष) आत्मतत्त्व जयवन्त है—कि जिसने संसार को अस्त किया है, जो महामुनिगण के अधिनाथ के (-गणधरों के) हृदयारविन्द में स्थित है, जिसने भव का कारण छोड़ दिया है, जो एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है (अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है) तथा जो सदा (टंकोत्कीर्ण चैतन्यसामान्यरूप) निज महिमा में लीन होने पर भी सम्यग्दृष्टियों को गोचर है॥२११॥

प्रवचन-१४७, श्लोक-२११, गाथा-१२७, शनिवार, ज्येष्ठ कृष्ण ९, दिनांक ०७-०६-१९८०

नियमसार, कलश २११।

जयत्यनघमात्मतत्त्वमिदमस्तसन्सारकं,
महामुनिगणाधिनाथहृदयारविन्दस्थितम्।
विमुक्तभवकारणं स्फुटितशुद्धमेकान्ततः,
सदा निजमहिम्नि लीनमपि सद्दृशां गोचरम्।।२११।।

श्लोकार्थ : यह अनघ (निर्दोष) आत्मतत्त्व... अनघ अर्थात् निर्दोष। उसमें कोई पुण्य और पाप या कोई चीज़ है नहीं। उसमें संसार है नहीं। निर्दोष आत्मतत्त्व। अनघ अर्थात् निर्दोष **आत्मतत्त्व जयवन्त है**—वह कायम है। नया होता है, लक्ष्य में लेनेवाले को नया लगता है। वस्तु तो अनादि-अनादि सनातन, नित्यानन्द प्रभु, निर्दोष आत्मतत्त्व पूरा पड़ा है। कि जो **आत्मतत्त्व जयवन्त है—कि जिसने संसार को अस्त किया है,...** आहाहा! यह चैतन्य जो वस्तु, निर्दोष जो आत्मतत्त्व, उसने संसार को अस्त किया है। संसार अस्त हो गया है। स्वयं उगा है, संसार को अस्त कर दिया है। आहाहा! ऐसे आत्मा की दृष्टि करो तो सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहना है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी।

जिसने संसार को अस्त किया है,... आहाहा! चैतन्यज्योति भगवान आत्मा द्रव्य,

जिसमें संसार का अस्तिपना है ही नहीं। आहाहा! **जो महामुनिगण के...** महामुनिगण के झुण्ड उनके अधिनाथ। महामुनि के झुण्ड-गण, उनके अधिनाथ **(-गणधरों के) हृदयारविन्द में...** आहाहा! गणधर जो गौतम आदि, उनके हृदय में। हृदयारविन्द— हृदयरूपी कमल। उसमें आत्मा स्थित है। आहाहा! इसलिए ऐसा कहना है कि ज्ञान, ज्ञान में स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा अन्यत्र कहीं नहीं जाता। आहाहा! वह **हृदयारविन्द में स्थित है,...** आहाहा!

जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,... वस्तुस्वरूप ऐसा है कि भव तो नहीं परन्तु भव का कारण जिसने तज दिया है। आहाहा! जिसमें भव तो नहीं क्योंकि भव का कारण जिसमें नहीं। आहाहा! वह तो मोक्ष के कारणरूप पूरा तत्त्व पड़ा है। आहाहा! अब यह बात कैसे जँचे ? यह करो... यह करो... ऐसा कहे (तो इसे समझ में आये।) यह कहे भगवान अन्दर पर्याय के अतिरिक्त पूरा तत्त्व जो है, संसार का जिसने अन्त कर दिया है। संसार तो जिसमें अस्त है और भव का कारण। पहले संसार को अस्त किया है, कहा। पश्चात् कहा **भव का कारण छोड़ दिया है,...** क्या कहा यह, समझ में आया ? पहले कहा कि भव का ही अभाव किया। स्वरूप में संसार है ही नहीं। दूसरे प्रकार से कहा कि संसार के-भव के जो कारण हैं, वे कारण उसमें नहीं है। कारण तज दिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग, लो!

मुमुक्षु : .... है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : .... महावस्तु है। परमपरमात्मा स्वयं है।

अन्दर द्रव्यस्वभाव वस्तु स्वरूप ऐसा है कि उसमें संसार का अस्त है। संसार है ही नहीं। आहाहा! संसार नहीं, उसे अब संसार का नाश करना, यह रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। वह तो वस्तु की दृष्टि और अनुभव हुआ तो संसार है ही नहीं। आहाहा! फिर कहा कि गणधरों के हृदय में है। **जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,...** आहाहा! स्वर्ग का कारण जो शुभभाव... आहाहा! भव के कारण तज दिये हैं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भव का कारण है। यह उसने तज दिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यतत्त्व आत्मतत्त्व है। उसमें कहते हैं कि, आहाहा! **भव का कारण छोड़ दिया है,...** आहाहा! भव का कारण अब छोड़ना नहीं। तज दिया है, उसमें है ही नहीं। आहाहा! वस्तु

है, उसमें अनन्त-अनन्त गुण बसे हुए हैं। उसमें संसार के कारण और संसार दो चीज़ का अभाव है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मतत्त्व, उसकी दृष्टि करना।

जो एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है... एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है। **(अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** आहाहा! ऐसी चीज़ है, उसकी अन्दर नजर करने से, पर्याय को उस ओर झुकाने से वह सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है। सर्वथा शुद्धरूप से प्रत्यक्ष वेदन में आता है। आहाहा! बहुत ऊँचा श्लोक! एक श्लोक में तो... आहाहा! **(अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** है ? **एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है...** इसका अर्थ किया। **एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है (अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** आहाहा! आनन्द और ज्ञान प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होता है। आहाहा! जिसमें संसार और संसार के कारण तो है ही नहीं परन्तु यह वस्तु है, वह स्पष्टरूप से ज्ञात होती है। आहाहा! स्पष्टरूप से वस्तु है। वह प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होती है। सर्वथा शुद्धरूप से प्रत्यक्ष ज्ञात होती है। आहाहा! अशुद्धता का तो जिसमें अंश भी नहीं है। ऐसा जो आत्मतत्त्व अन्दर, उसकी दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, वह धर्म का पहला सोपान है। आहाहा! इस बिना धर्म की शुरुआत है नहीं। बाहर के लाख व्रत और तप और क्रिया किया करे, वह सब संसार में भटकने का (मार्ग है)। आहाहा! **तथा जो सदा (टंकोत्कीर्ण चैतन्यसामान्यरूप)...** एकरूप। जिसका रूप एकरूप है। पर्याय में तो हीनाधिकता होती है। वस्तु है, उसमें हीनाधिकता नहीं है। वह तो सदा एकरूप है। सदा ध्रुव नित्य एकरूप है। आहाहा! **निज महिमा में लीन होने पर भी...** विशिष्टता क्या कही है ?—कि शाश्वत सदा चैतन्यसामान्य होने पर भी **सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा! संसार की दशा नहीं, संसार के कारण नहीं और स्पष्ट प्रगट ज्ञात होता है। ऐसा सदा टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत् चैतन्यसामान्यरूप ऐसा जो निज महिमा में लीन। वह तो सामान्यस्वरूप ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप में वह आत्मा लीन है। आहाहा! ऐसी बात वाड़ा में तो सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। वह तो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। मिथ्यादृष्टि, मिथ्यात्वसहित संसार में भटकनेवाला है, बापू! अरे रे! जिसमें, जिस तत्त्व में संसार नहीं है, उसे संसार के भाव से लाभ हो... आहाहा! जिसमें संसार के भव के कारण ही नहीं, उसे भव के कारण से लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। सूक्ष्म लगे, गूढ़ लगे परन्तु वस्तु परम सत्य तो यह है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली परमात्मा ऐसा अनादि

काल से कहते आये हैं। अनादि काल से ऐसा कहते आये हैं और अभी भी भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! और भविष्य में अनन्त तीर्थंकर ऐसा ही कहेंगे। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ'। आहाहा! श्लोक भी कैसा!

निज महिमा में लीन होने पर भी... आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि ध्रुव नित्य होने पर भी, सामान्य होने पर भी, ऐसा कहते हैं। सामान्य होने पर भी **निज महिमा में लीन होने पर भी...** अर्थात् सामान्य, सामान्य में ही लीन है। आहाहा! सामान्य, वह सामान्य में ही लीन है। **तथापि सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा! क्या कहा समझ में आया? सामान्य, जिसमें संसार नहीं, संसार के कारण नहीं, स्पष्ट प्रगट वस्तु है और (जो)... आहाहा! निज महिमा में सामान्यस्वरूप से (लीन है)। सामान्य अर्थात्? विशेष नहीं। पर्याय की विशेषता उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा जो सामान्य एकरूप तत्त्व **निज महिमा में लीन होने पर भी...** विशिष्टता क्या कहते हैं? कि वस्तु सामान्य है, निज महिमा में लीन है। **तथापि सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा!

मुमुक्षु : गोचर होवे तब कही जाए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह गोचर सम्यग्दृष्टि करे, तब उसे खबर पड़े न? इसके बिना ऐसा है, ऐसा जाने कौन? वैसे तो कहा, सामान्य है। अपने स्वरूप में लीन है अर्थात् सामान्य में लीन है। विशेष में नहीं आता। तथापि वह चीज़ सम्यग्दृष्टि को गोचर है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को फिर लगता है (कि) 'सोनगढ़' की बात एकान्त है। निश्चय-निश्चय की बातें हैं। बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। सत्य अर्थात् परम सत्य। वह परम सत्य यह है। आहाहा!

इसमें विशिष्टता क्या की है?—कि संसार और संसार का कारण, उनसे रहित है। बाकी है शुद्धस्वरूप सामान्य। सामान्य में सामान्य लीन है। सामान्य है, वह सामान्य; विशेष बिना, पर्याय बिना, भेद बिना, सामान्य वस्तु वह त्रिकाल सामान्य में लीन है, तथापि सम्यग्दृष्टि को गोचर है। ऐसा यहाँ तक कहा। आहाहा! भले सामान्य, सामान्य में हो परन्तु सम्यग्दृष्टि की पर्याय विशेष है, वह सामान्य को जान लेती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन—प्रथम धर्म का सोपान—धर्म का पहला सोपान। आहाहा! कहते हैं

कि वह भगवान सामान्यस्वरूप है, ध्रुव है और वह ध्रुव में लीन है, तथापि सम्यग्दृष्टि वहाँ दृष्टि करे तो उसे प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? न्याय से, लॉजिक से बात की है। न्याय का मार्ग है, न्याय का अर्थ—नि धातु है। न्याय में नि धातु है। नि धातु का अर्थ ऐसा है, जैसा स्वरूप है, वैसा उस ज्ञान को ले जाना, ले जाना, उसका नाम न्याय है। सज्जनलालजी! तुम्हारे न्याय, वे न्याय नहीं। कोर्ट के न्याय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वे लौकिक हैं, यह लोकोत्तर न्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लौकिक सब झूठे। आहाहा!

क्या बात की? आहाहा! जिसमें—प्रभु में संसार और संसार के कारण नहीं, इसलिए छेदना रहा नहीं। आहाहा! और जो सामान्य अपने स्वरूप में लीन है, वह कैसे जानने में आवे? सामान्य है, वह अपने में लीन है तो भी सम्यग्दृष्टि को जानने में आता है। आहाहा! ऐसा श्लोक है। गजब बात है, एक श्लोक में तो गजब कर दिया। यह तो जिनवाणी है। सन्त, दिगम्बर सन्त अर्थात् वीतराग। दिगम्बर सन्त अर्थात् वीतराग। उन वीतराग की यह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तुझमें राग की गन्ध नहीं न, इसलिए छोड़ना, ऐसा कैसे? कहते हैं। तुझे उस पर लक्ष्य कहाँ करना है? जो नहीं है, उसमें लक्ष्य कहाँ करना है। आहाहा! जिसमें संसार और संसार के कारण नहीं है। नहीं है, उन पर तुझे लक्ष्य कहाँ करना है? आहाहा! और जो है, वह सामान्य में लीन है। इसलिए किसी को ऐसा लगे सामान्य में लीन है, सामान्य विशेष में कैसे ज्ञात हो? तो कहते हैं कि वह सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर नजर करने पर उसे सामान्य ध्रुव ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान!

चौरासी के अवतार... आहाहा! कल नहीं कहा था? ६६३३६ (भव) एक अन्तर्मुहूर्त में निगोद के भव करे। जन्मे और मरे... जन्मे और मरे... जन्मे और मरे। अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट। आहाहा! ४८ मिनिट में इस काई में और इस लहसुन में और प्याज में और कान्दा में, मूला का कान्दा, उसमें पत्ते नहीं। पत्ते प्रत्येक हैं। एक कान्दा है, उसके एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे जो जीव हैं... आहाहा! वे अन्दर जीव हैं, वे पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन हैं, तथापि भूलकर एक अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार भव करते हैं। अररर! यह जन्म-मरण के दुःख, बापू! कैसे होंगे? आहाहा!

यहाँ माता के गर्भ में से निकले तो दबाव होकर पेट दु:खे। महापीड़ा हो। जन्म के समय महापीड़ा होती है और जन्मने के बाद सीधे पहले ऊंहकारा करे। आँख उघाड़े नहीं। जन्मा तो बालक ऊंहकारा ऊं... करे। आँख उघाड़े नहीं। फिर उसकी माँ आकर देखे कि यह लड़का है या .... फिर और उसे पम्पाले और ऐसे करे, फिर ऊंहकारा करे, ऐसे-ऐसे किया करे। आहाहा! मनुष्य भव में यह तो साधारण दु:ख है। यह तो साधारण है और निगोद में तो अनन्त दु:ख है। जिसे पर्याय में अक्षर में अनन्तवें भाग का विकास है। आहाहा!

जो ज्ञानमूर्ति प्रभु भवसागररहितस्वरूप, परन्तु उसकी पर्याय में, विकास में... विकास में तो अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास है। बाकी उसका स्वरूप पूर्ण है, वह पूर्ण भवरहित है। आहाहा! उसमें ६६ हजार भव। अन्तर्मुहूर्त में क्या होगा यह ? आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६। आहाहा! एक बार तो अन्दर चोट लगनी चाहिए न! हृदय में चोट लगनी चाहिए कि आहाहा! ऐसे भव, प्रभु! तूने किये और जब तक अभी मिथ्यात्व नहीं टालेगा, तब तक भवभ्रमण करेगा। आहाहा!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि यह मिथ्यात्व-फिथ्यात्व तुझमें नहीं है। सुन न! आहाहा! मिथ्यात्व, वह संसार का कारण है। वह कारण तुझमें नहीं है। वह तो पर्याय में है। आहाहा! और यह सामान्यस्वरूप है और एकरूप है। एकरूप ख्याल में कैसे आवे ? ऐसा कहते हैं। जो सामान्य है, ध्रुव है, एकरूप है, सदा नित्य शाश्वत है, वह अनुभव में कैसे आवे ? वह सम्यग्दृष्टि के अनुभव में आता है। आहाहा! भाषा तो सादी समझ में आये ऐसी है। नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है। परन्तु वस्तु कड़क है, बापू! आहाहा! धर्म कोई ऐसा वीतराग है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं धर्म है भी नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप का कथन भी कहाँ है ? दया पालो, व्रत करो, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, जीविया, वहरोविया तस्स मिच्छामी दुक्कडम। कायोत्सर्ग करो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कायोत्सर्ग तो अपने आ गया।

आत्मा आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द नित्यानन्द में काया का उत्सर्ग ही है। इस शरीर से लेकर सभी चीज़ों का प्रभु में अभाव ही है। इसलिए उन्हें छोड़ना, वह कुछ है नहीं।

आहाहा! वह वस्तु है, उसमें स्थिर होना। ध्रुव है, उसमें स्थिर होना। सामान्य है, उसमें विशेषरूप से रहना-होना। आहाहा! सामान्य वस्तु त्रिकाल एकरूप होने पर भी सम्यग्दृष्टि की पर्याय विशेष, वह विशेष उसे जान लेता है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टियों को गोचर है। एक वचन नहीं लिया। सम्यग्दृष्टियों को (अर्थात्) बहुत से सम्यग्दृष्टि जीव हैं, उन्हें वह गम्य है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। धीरे से वस्तु का स्वरूप क्या है, (उसे समझना चाहिए)। सर्वज्ञ परमात्मा इन्द्र की उपस्थिति में गणधरों की हाजरी में जो वाणी निकली, वह यह वाणी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। संवत् ४९ में। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आये और फिर इस शास्त्र में तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! समयसार और प्रवचनसार में दूसरे प्रकार से कहा। वहाँ तो यह मैं कहूँगा और वर्णन करूँगा ऐसा (कहा) और इसमें तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना... अन्तिम गाथा है न? मेरी भावना के लिये मैंने तो यह बनाया है। अन्तिम है। १८७ अन्तिम गाथा। आहाहा! १८७।

'**णियभावणाणिमित्तं**' १८७। गुजराती में पृष्ठ ३७१ '**णियभावणाणिमित्तं**' मेरी भावना के कारण से आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। मेरी भावना के कारण से '**मए कदं**' मैंने किया है। '**णियमसारणामसुदं**' नियमसार नामक सूत्र '**णच्चा जिणोवदेसं**' वीतराग के उपदेश को पूर्वापर अविरोध जानकर। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ केवली परमात्मा की वाणी को पूर्वापर विरोधरहित जानकर '**णच्चा**' अर्थात् जानकर। जिनोपदेश '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पहले और बाद में कहीं विरोध नहीं। पहले कुछ कहे और पश्चात् कुछ कहे (ऐसा नहीं)। **दोष रहित...** दोष का विरह है। दोष उसमें है नहीं। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' आहाहा! स्वयं कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है, लो! आहाहा! मुझे तो ऐसा कहना है, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे एक भव में मोक्ष जानेवाले, भगवान के पास गये, आठ दिन वहाँ रहे। वे ऐसा कहते हैं। मैंने मेरे लिये नियमसार बनाया है, बापू! आहाहा! मैंने तो मेरी भावना के लिये... आहाहा! अनन्त आनन्द का नाथ, उसकी भावना, उसका अनुभव, उसकी पर्याय में, उसका सब सर्वस्व आवे, उसकी पर्याय में अन्दर सर्वस्व आवे, इसके लिये मैंने बनाया है। आहाहा!

गाथा-१२७

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२७।।

यस्य सन्निहितः आत्मा संयमे नियमे तपसि।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१२७।।

अत्राप्यात्मैवोपादेय इत्युक्तः। यस्य खलु बाह्यप्रपञ्चपराङ्मुखस्य निर्जिताखिलेन्द्रिय-व्यापारस्य भाविजिनस्य पापक्रियानिवृत्तिरूपे बाह्यसंयमे कायवाङ्मनोगुप्तिरूपसकलेन्द्रिय-व्यापारवर्जितेऽभ्यन्तरात्मनि परिमितकालाचरणमात्रे नियमे परमब्रह्मचिन्मयनियतनिश्चयान्त-र्गताचारे स्वरूपेऽविचलस्थितिरूपे व्यवहारप्रपञ्चितपञ्चाचारे पञ्चमगतिहेतुभूते किञ्चनभाव-प्रपञ्चपरिहीणे सकलदुराचारनिवृत्तिकारणे परमतपश्चरणे च परमगुरुप्रसादासादितनिरञ्जन-निजकारणपरमात्मा सदा सन्निहित इति केवलिनां शासने तस्य परद्रव्यपराङ्मुखस्य परमवीतराग-सम्यग्दृष्टेर्वीतरागचारित्रभाजः सामायिकव्रतं स्थायि भवतीति।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

अन्वयार्थ : [यस्य] जिसे [संयमे] संयम में, [नियमे] नियम में और [तपसि] तप में [आत्मा] आत्मा [सन्निहितः] समीप है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है।

बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख और समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए ऐसे जिस भावी जिनको पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में, काय-वचन-मनोगुप्तिरूप, समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में, मात्र परिमित (मर्यादित) काल के आचरणस्वरूप नियम में, निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप, चिन्मय-परमब्रह्म में

नियत (निश्चल रहे हुए) ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में), व्यवहार से *प्रपंचित (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्याचाररूप) पंचाचार में (अर्थात् व्यवहार-चारित्र में), तथा पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित, सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ निरंजन निज कारणपरमात्मा सदा समीप है (अर्थात् जिस मुनि को संयम में, नियम में, चारित्र में और तप में निज कारणपरमात्मा सदा निकट है), उस परद्रव्यपराङ्मुख परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि वीतराग-चारित्रवन्त को सामायिक व्रत स्थायी है, ऐसा केवलियों के शासन में कहा है।

गाथा - १२७ पर प्रवचन

१२७ गाथा।

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२७।।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

आहाहा! अलौकिक बातें हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है। आत्मा ही उपादेय है। पर्याय नहीं, व्यवहार नहीं, निमित्त नहीं, कुछ नहीं। आहाहा! यह आत्मा उपादेय है, यही सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **(इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है।**

बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख... आहाहा! **और समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए...** समस्त इन्द्रिय विषय को जीते हुए **ऐसे जिस भावी जिन को...** आहाहा! भविष्य में तीर्थंकर होनेयोग्य। आहाहा! भावी जिन। कलश में भी फिर आता है। भाई! भावी

** प्रपंचित=दर्शाये गये; विस्तार को प्राप्त।*

तीर्थाधिनाथ। फिर २१२ वाँ कलश आता है न? उसमें अन्त में शब्द है भावी तीर्थाधिनाथ। ध्वनि तो ऐसी उठती हो मानो कि ये भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले होंगे। ऐसी ध्वनि उठती है। एक भक्तामर ऐसी ध्वनि आती है। भक्तामर है, उसमें ऐसी ध्वनि आती है। मानो भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हों। आहाहा!

ऐसे जिस भावी जिन को... भविष्य में परमात्मा होनेवाले, भविष्य में केवलज्ञान होनेवाला है, ऐसे जिन को। **पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में,...** पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम होने पर भी अन्दर आत्मा समीप है। वह क्रिया समीप नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह समीप में वर्तता है। आहाहा! **पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में, काय-वचन-मनोगुप्तिरूप,...** उसके वचन में भी **समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में,...** आहाहा! अन्तर के अभ्यन्तर संयम में। आनन्दस्वरूप में सम्यक्‌प्रकार से यम, संयम। यम अर्थात् लीनता होना। आहाहा! ऐसे संयम में भी। **मात्र परिमित (मर्यादित) काल के आचरणस्वरूप नियम में,...** आहाहा! भले मुनि कोई परिमित करे। दोपहर में आहार करे, प्रत्याख्यान करे,... ऐसे मर्यादित काल के आचरण नियम में। **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** आहाहा! उस प्रत्येक में भी **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** आहाहा! उस क्रिया के काल में भी निजस्वरूप में स्थितिरूप। आहाहा!

चिन्मय-परमब्रह्म में नियत... ज्ञानमय ऐसा जो परमब्रह्म भगवान, उसने **(निश्चल रहे हुए)...** आहाहा! **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में...** वह बाहर का लिया था। यह अन्दर का लिया। **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में),...** आत्मा बसता है, ऐसा कहना है। आत्मा समीप है। सबमें नजदीक है। सामने विद्यमान है। आहाहा! चाहे जो क्रिया होती हो, तथापि भगवान तो ऐसे समीप में पड़ा है। नजरें वहाँ नहीं है। नजरें यहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह बाह्य क्रिया या अभ्यन्तर क्रिया, उस पर नजर नहीं है। वह वर्तती है परन्तु उनमें प्रभु समीप वर्तता है। अपना आत्मा भगवान सामान्य ध्रुवस्वरूप समीप में, प्रत्येक में समीप में वर्तता है। आहाहा! ऐसा उपदेश है, लो!

व्यवहार से प्रपंचित... आहाहा! व्यवहार से जो वर्णित **(ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्याचाररूप)...** आहाहा! व्यवहार। व्यवहार से वर्णन होवे न! ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का, ऐसे पंचाचार में... आहाहा! भी भगवान समीप वर्तता है, कहते हैं। पंचाचार

है, वह तो विकल्प है परन्तु उसके समीप में प्रभु वर्तता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को ऐसी क्रिया के समय के काल में भी दृष्टि में वह प्रभु तैरता है। दृष्टि में वह क्रिया नहीं तैरती। आहाहा! वह क्रिया आदि को जाने, परन्तु समीप में वर्तनेवाला प्रभु, उस पर उसकी दृष्टि है। आहाहा! **व्यवहार से प्रपंचित (ज्ञान-दर्शन)...** प्रपंचित, देखा! **दर्शाये गये; विस्तार को प्राप्त।** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार, तपाचार। आहाहा!

तथा पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित,... पंचम गति के हेतुभूत, कुछ भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित। आहाहा! एक वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि को नहीं होता। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने तो निगोद में जानेवाला है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में यह पाठ है। यह तो वस्त्र के ढ़ेर रखे। चले, बड़े टोकरा बाँधे। हम निर्ग्रंथ हैं, हम मुनि हैं (ऐसा माने)। बहुत अन्तर, भगवान! बहुत अन्तर। आहाहा! सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा में ऐसा कहते हैं, एक वस्त्र का टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने, मनावे, वह निगोद में जाएगा।

मुमुक्षु : तिल के तुष जितना, तिल-तुष...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है। तिल-तुष मात्र छिलका रखे तो भी ऐसा है। तिल-तुष का छिलका जितना भी रखे... आहाहा! समझ में आया?

यह सूत्रपाहुड़ में है। मोक्षपाहुड़ में तो '**परदव्वादो दुग्गई**' है। परद्रव्य से तो दुर्गति होगी। वीतराग कहते हैं कि तू मेरे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा, विकार होगा, दुर्गति होगी। आहाहा! यह तो वीतराग ऐसा कहते हैं। वह सूत्रपाहुड़ में है। मोक्षपाहुड़ में यह है। सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। '**जहजायरूवसरिसो**' माता ने जन्म दिया, उससे विशेष '**तिलतुसमेत्तं**' तिल के तुषमात्र '**ण गिण्हदि हत्थेसु**' जो वस्त्र का टुकड़ा हाथ से ग्रहण करे '**जइ लेइ अप्पबहुयं,**' थोड़ा या बहुत ग्रहण करे। '**तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्**' आहाहा! वह वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे और माननेवाले को भला जाने, वे सब निगोदगामी हैं। गजब बात है। है? सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। '**तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि**' तिल के छिलके जितना भी ग्रहण नहीं करता। यदि ग्रहण करे तो निगोद में जाएगा। मुनिपना किसे कहें? आहाहा! अलौकिक दशा है!

पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित, सकल

दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में... आहाहा! आत्मा के आनन्द का उग्रपना प्रगट होना, वह तपस्या है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, वह चारित्र और उसमें से उग्र पुरुषार्थ करना, उसका नाम तप। यह सब तप करते हैं, वह तो सब लंघन है। उसमें से भटकने का संसार बढ़ेगा। आहाहा! बहुत दुनिया से पूरा अन्तर है। **दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ...** आहाहा! इतना रखा। परम गुरु ने कहा हुआ इसके अतिरिक्त कोई इस वस्तु को कह नहीं सकता। आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ... इतना निमित्त रखा। उनसे मिला। उन्होंने कहा है कि यह, यह आत्मा। ध्रुव वह आत्मा, वहाँ ध्यान (दे)। वापस परम गुरु लिये हैं। अकेले अज्ञानी गुरु नहीं। आहाहा! **परम गुरु के प्रसाद से...** उनके प्रसाद से कहा। देखा? आहाहा! यह तो पाँचवीं गाथा में कहा। चार बोल– आगम सेवा से, गुरु सेवा से... चार बोल कहे हैं। निमित्त से कथन करे न! ऐसी बात सुनानेवाले कौन होते हैं? वे परम गुरु सन्त होते हैं। नग्नदिगम्बर मुनि, वे ऐसी बात सुनाने के योग्य हैं। आहाहा! उनके पास से ऐसा सुनने को मिलता है। आहाहा! वस्त्र का पोटला रखे, उनके पास से सुनने का नहीं मिलता। विपरीत सुनने को मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्त्र तो परद्रव्य है, वह क्या हैरान करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान वस्त्र कहाँ करता है? वस्त्र के प्रति ममत्वभाव, वह हैरान करता है। वस्त्र तो जड़ है, जड़ तो आत्मा को स्पर्श भी नहीं करता। परन्तु वह वस्त्र मेरा है, ऐसा करके ओढ़े और रखे, वह निगोद में जाएगा। लहसुन और प्याज में अवतरित होंगे। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य की शिक्षा बड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिक्षा बड़ी नहीं। जैसा स्वरूप है, वैसा कहा है। शिक्षा बड़ी तो अधिकपना कहा। यह (तो) जैसा है, वैसा कहा। क्यों? – कि वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखे तो नवतत्त्व की भूल होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! एक तो जीव की, मुनि की जो दशा है, उस दशा में वस्त्र का राग नहीं होता। वस्त्र लेने का राग नहीं होता। उसे राग का ज्ञान नहीं है तथा वस्त्र का संयोग उसे नहीं होता। तो संयोग – उस अजीव का ज्ञान नहीं है।

उस समय संवर की दशा, राग और वस्त्र से राग आया, उसमें जो संवर की दशा चाहिए, वह नहीं है। वह संवर दशा की भूल है, निर्जरातत्त्व की भूल है। नवतत्त्व की भूल है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह बात तो बहुत बार कही जा चुकी है।

वस्तुस्वरूप है, उससे वस्त्र का टुकड़ा मुनि की दशा, उस टुकड़े की जो ममता है, वह राग है, उसे मुनिपना नहीं होता, तथापि वह राग है और मुनिपना मनाता है; और संयोग भी उसे ऐसा नहीं होता। राग होता नहीं तो वस्त्र का संयोग भी नहीं होता, तथापि संयोग के पोटला रखे और मुनिपना मनावे। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई, और जीव की दशा जितनी चाहिए, उतनी उसमें नहीं है, तथापि वह मुनिपने की दशा मानता है। संवर-निर्जरा की भूल है, पुण्य-पाप की भूल है। अजीव की भूल है। अजीव इतना संयोग नहीं होता, मुनि को अजीव का, वस्त्र का संयोग नहीं होता, उसे संयोग मानता है, वह अजीवतत्त्व की भूल है। आहाहा! वाड़ावालों को तो कठिन लगे ऐसा है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर दोनों... यहाँ तो वस्त्र रखे, वह निगोदगामी है, ऐसा कहा है। आहाहा! कठिन पड़े, बापू! क्या हो? वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी है, वह दिव्यध्वनि है। किसी ने सुनी न हो, इसलिए ऐसा लगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्थविरकल्पी और जिनकल्पी के भेद किसलिए कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद... यह विकल्प। जिनकल्पी अकेले रहते हैं, स्थविरकल्पी साधुओं के साथ रहते हैं इसलिए। बस, दूसरा कोई नग्नपने में दूसरे में कुछ अन्तर नहीं है। जिनकल्पी अकेले जंगल में रहते हैं और स्थविरकल्पी हैं, वे साधुओं के साथ रहते हैं। नग्नपना दिगम्बर मुनि। एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं, पात्र का टुकड़ा नहीं। वस्त्र और पात्र दोनों नहीं। आहाहा! एक मोरपिच्छी और कमण्डल होता है। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा, उससे विपरीत माने तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व है, वह निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा! यहाँ तो स्पष्ट रीति से बात रखी है, कहीं गुप्त नहीं रखी। शास्त्र में पाठ है। बताया न? सूत्र में-सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। आहाहा! अभी तो वाड़ा में कौन सा वाड़ा सच्चा, इसकी भी खबर नहीं, (तो) उसे अन्दर तत्त्व क्या है, इसकी तो खबर ही कहाँ है? आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ... अर्थात् क्या कहते हैं? परम गुरु ऐसा कहते हैं कि संसार तुझमें नहीं है; क्रियाकाण्ड, वह तुझमें नहीं है; तू उससे अत्यन्त भिन्न

है। व्यवहार के जितने आचार हैं, वे भी तुझमें नहीं हैं। आहाहा! ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार (तपाचार, वीर्याचार) **सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत...** ओहोहो! यह शुभभाव भी दुराचार की निवृत्ति है। आहाहा! शुभभाव, अशुभभाव दोनों एक जाति है। दोनों जहर है, दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! **ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ...** ऐसी सब जो क्रिया कही, उसमें **निरंजन निज कारणपरमात्मा सदा समीप है...** इस क्रिया के विकल्प के समय भी भगवान अन्दर शुद्ध चैतन्य निर्मलानन्द नजदीक (वर्तता है)। वहाँ दृष्टि है। आहाहा!

तब पात्र रखकर साधुपना माने, वे सब खोटे ? वस्त्र और पात्र। आहाहा! खोटे वे खोटे कैसे ? मिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। उन्हें दुःख हो, वह कहीं कोई चाहेगा ? परन्तु विपरीत मान्यता का फल दुःख है, बापू! विपरीत मान्यता का फल नरक और निगोद है। वह कोई नरक और निगोद में जाए, यह कहीं ज्ञानी चाहेगा ? सब आत्मा भगवान होओ। आहाहा! अपवित्रता छोड़ दो। पवित्र प्रभु है, उसे ग्रहण कर लो। सब परमात्मा होओ। ज्ञानी तो अवाय में ऐसा विचार करता है। आहाहा! ऐसा नहीं कि यह मेरा विरोधी है, वह नरक में जाओ, निगोद में जाओ। आहाहा! यह तो स्वरूप बतलाया है कि ऐसा भाव होवे, वह ऐसा होगा परन्तु सब आत्मा पवित्र होओ और अपवित्रता की झूठी बात छोड़ दो। आहाहा! कठिन पड़ता है।

ऊपर यह जो सब बात की न ऊपर ? कि एक तो प्रपंच से पराङ्मुख, इन्द्रिय व्यापार का विजेता, भावी जिन को पापक्रिया की बाह्य संयम, उसमें भी आत्मा है, ऐसा कहा। उसके समीप में आत्मा वर्तता है। **काय-वचन-मनोगुप्तिरूप, समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में,...** आत्मा नजदीक वर्तता है। **मात्र परिणमित (मर्यादित) काल के आचरण...** दो घड़ी, दो-चार दिन अमुक नहीं खाना, ऐसी प्रतिज्ञा हो, उसमें भी आत्मा नजदीक होना चाहिए। आहाहा! **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** उसमें भी आत्मा। **चिन्मय-परमब्रह्म में नियत (निश्चल रहे हुए)...** ज्ञानमय परमब्रह्म में नियत **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में),...** भी भगवान आत्मा नजदीक और **व्यवहार से प्रपंचित...** में भी भगवान आत्मा नजदीक है। आहाहा! व्यवहार होता अवश्य है परन्तु निश्चय में, ज्ञानानन्द में उसका आदर होता है, व्यवहार का आदर नहीं होता। आहाहा!

यह सब जो बात की, उसमें परमात्मा नजदीक वर्तता है अर्थात् प्रत्येक समय में जो क्रिया होती है, उसमें आत्मा पर नजर है, आत्मा पर नजर और आत्मा समीप है। वह क्रिया समीप नहीं है। आहाहा! और परम गुरु ने कहा हुआ यह। आहाहा! जैन परमेश्वर के पन्थ के जो गुरु, उन गुरु के प्रसाद से प्राप्त किये हुए। दूसरे गुरु जो कुछ का कुछ कुगुरु ने कहा हो, उससे तो अज्ञान मिलता है। आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ निरंजन निज कारणपरमात्मा... आहाहा! **सदा समीप है...** यह लेना है। यह सब जितने कहे, उन सबमें भगवान आत्मा मुख्य है। आनन्दकन्द प्रभु मुख्य है। यह राग भले हो। पंचाचार का राग हो या निवृत्ति का हो, तथापि अन्दर भगवान शुद्ध चैतन्य है, वह उसमें समीप में है। वहाँ उसका आदर है। वह क्रिया आदि का आदर नहीं है। व्यवहार बीच में आता है। पूर्ण वीतराग न हो, उसे व्यवहार-राग आता है, परन्तु उसका आदर नहीं है। आदर तो भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति आनन्दघन का आदर है। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया तो कुछ आता नहीं। तत्सूत्री करणेन अप्पाण वोसरे। लोगस्स में विहुयरयमला। अरे! प्रभु! वह तो सब पाप है। वह पाप सब राग का कारण है। आहाहा!

यह कहा न? पाठ भी कहाँ सरीखा है? लींबड़ी में सेठिया का बड़ा उपाश्रय है और विसाश्रीमाली का यहाँ संघवी का। संघवी का उपाश्रय। दशा और विसा दोनों को विरोध चलता है। उसमें दशाश्रीमाली की महिला सामायिक करती थी। पढ़ती थी पहाड़े आदि (प्रतिक्रमण के पाठ आदि)। उसमें यह पाठ आया, उसमें विहा रोई मल्या, ऐसा बोली। लोगस्स में आया वहाँ उसमें विहा रोई मल्या। वह कहे परन्तु अपना यहाँ कहाँ आया इसमें? अपना विवाद लोगस्स में कहाँ आया? लोगस्स में है विहुईरयिमला। विशेष, हुई-टाला है कर्मरूपी रज और रागरूपी मैल। वह विहुईरयिमला का अर्थ है। वह वृद्धा सामायिक में बोली, विहा रोई मल्या। आहाहा! ऐसा! अर..र..र..! गजब है न कोई! ऐसा ही चलता है ऐसी की ऐसी पोल। और णमोत्थुणं में आता है दीवोताणम, सरणगईपईट्ठा। णमोत्थुणम अरिहंताणं में। उसमें वह महिला बोली णमोत्थुणम्, दीवा टाणे संघवी पिट्या। दिवो ताणम सरणगईपईट्ठा। आहाहा! अरे रे! इतने अर्थ की खबर नहीं होती। अब उसे यह आत्मा ऐसा और यह आत्मा ऐसा किस प्रकार जँचे?

(अर्थात् जिस मुनि को संयम में, नियम में, चारित्र में और तप में निज कारणपरमात्मा सदा निकट है), उस परद्रव्यपराङ्मुख... मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख है। यह रागादि सब परद्रव्य है। **परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि...** परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि मुनि... आहाहा! **वीतराग-चारित्रवन्त को...** ऐसे वीतराग-चारित्रवन्त को, **सामायिक व्रत स्थायी है,...** नित्य है, वह सच्चा है, **ऐसा केवलियों के शासन में कहा है।** भगवान केवली तीर्थंकर के शास्त्र में ऐसा कहा है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२१२

[अब इस १२७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

आत्मा नित्यं तपसि नियमे संयमे सच्चरित्रे,
तिष्ठत्युच्चैः परम-यमिनः शुद्ध-दृष्टेर्मनश्चेत्।
तस्मिन् बाढं भवभयहरे भावितीर्थाधिनाथे,
साक्षादेषा सहज-समता प्रास्त-रागाभिरामे।।२१२।।

(वीरछन्द)

'परम मुनि को तप संयम में और नियम सत् चारित में।
सदा आत्मा ऊर्ध्व रहे' यदि शुद्धदृष्टि ऐसा समझे॥
तो उस भवभयहारी भावी तीर्थनाथ को निश्चित ही।
यह साक्षात् सहज समता है राग नाश के कारण ही॥२१२॥

श्लोकार्थ : यदि शुद्धदृष्टिवन्त (-सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है (अर्थात्

प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है) तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण [१]अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है॥२१२॥

प्रवचन-१४८, श्लोक-२१२-२१३, गाथा-१२८, रविवार, ज्येष्ठ कृष्ण १०, दिनांक ०८-०६-१९८०

पहली यह बात ली। सामायिक होती किसे है ? जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन हुआ हो। शुद्ध आत्मा परमानन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसा आत्मा अनुभव में आया हो, वह सम्यग्दृष्टि (है, और) उसे सामायिक होती है। सम्यग्दृष्टि बिना सामायिक नहीं होती। इसलिए सम्यग्दृष्टि की व्याख्या ऐसी है। त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यवस्तु सत्ता सत् है, उसके सन्मुख होकर, उसकी अनुभव में प्रतीति (होना), इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन होता है, उसे सामायिक होती है, वरना उसे सामायिक नहीं होती।

श्लोकार्था : यदि शुद्धदृष्टिवन्त (-सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है... सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा समझता है, **कि परम मुनि को...** तप में मुख्य ये होते हैं। तपस्या, वह मुख्य नहीं होती। आहाहा! तप में भी भगवान पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्यघन, तप में भी उसका लक्ष्य, दृष्टि और ध्येय वहाँ है। आहाहा! **तप में, नियम में,...** कोई नियम लिया हो तो उस नियम में भी दृष्टि का विषय वह ध्रुव सदा होता है। ध्रुव के ऊपर की दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! कहो, उसे सामायिक होती है। अभी तो सम्यक्त्व क्या, इसकी खबर न हो और सामायिक करके बैठे। आहाहा!

नियम में, संयम में... आत्मा में अन्दर 'सं'—सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन होकर 'यम' अर्थात् आत्मलीनता हो, उस संयम में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। उसमें धर्मी ध्रुव, वह दृष्टि में मुख्य है। आहाहा! त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा जो है, जो अनन्त चैतन्य रत्नाकर, अनन्त चैतन्य के रत्न का भरपूर आकर अर्थात् समुद्र, ऐसा यह चैतन्य, यह उसे मुख्य होता है। **संयम में...** भी मुख्य वह होता है। **सत्चारित्र...** सच्चा चारित्र—स्वरूप में

१- अभिराम=मनोहर; सुन्दर। (भवभय के हरनेवाले ऐसे इस भावि तीर्थंकर ने राग का नाश किया होने से वह मनोहर है।)

रमणता, उसमें भी मुख्य तो भगवान द्रव्य आत्मा होता है। वह यदि न हो तो चारित्र-फारित्र होता नहीं। आहाहा! **सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है...** इन सबमें आत्मा ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रहता है। समझ में आया इसमें?

तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है... एक समय भी ध्रुव की दृष्टि हटती नहीं। ध्रुव जो चैतन्य है, उसमें इसकी मुख्यता है। आहा! वह यदि न हो तो वह चारित्र नहीं है, संयम नहीं है, कुछ नहीं है। आहाहा! उसमें **सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है...** सदा आत्मा संयम में, सम्यग्दर्शन में, चारित्र में, नियम में आत्मा त्रिकाली ही मुख्य रहता है। दृष्टि का विषय वह है। उसकी ही ऊर्ध्वता अर्थात् मुख्यता होती है। आहाहा! यदि वह शुद्ध आत्मा पवित्र परमात्मा की दृष्टि नहीं और उसका मुख्यपना नहीं आया तो वह सब बिना एक के शून्य है। यह सब व्रत करे, तप करे, क्रियाकाण्ड करे, वह सब संसार में भटकने के हैं। आहाहा! ऐसा है।

उस **सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है...** आहाहा! एक समय भी ध्रुव में से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! ध्रुव को ध्येय में लेकर ध्रुव का जो अनुभव किया, वह ध्रुव दृष्टि में से एक समय भी, चाहे वह संयम, चारित्र, नियम आदि हो, परन्तु उसमें से वह ध्रुव है, वह हटता नहीं। ध्रुव है, वह दृष्टि में से हटता नहीं और ध्रुव में से दृष्टि हटे तो मिथ्यादृष्टि हो जाए। आहाहा! **(अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है)...** स्पष्टीकरण किया। **(अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर... निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य...)** शुद्ध त्रिकाली द्रव्य, आनन्दस्वरूप प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अनन्त चैतन्य रत्न से भरपूर भगवान; उस प्रत्येक क्रिया में उसकी मुख्यता और ऊर्ध्वता रहती है। उसकी मुख्यता और ऊर्ध्वता न हो तो एक भी चीज़ सच्ची नहीं होती। आहाहा!

तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि)... तो ऐसा साबित हुआ कि **राग के नाश के कारण...** आहाहा! राग-द्वेष के विकल्पों के नाश के लिये **अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है।** आहाहा! तीर्थंकर होनेवाले हैं। उन्हें—भावी तीर्थाधिनाथ को भी ऐसी समता होती है, तब वे तीर्थंकर होते हैं। आहाहा! ऐसी समता कि अन्तर में चारित्र में, संयम में, नियम में, दृष्टि में, ध्येय में, सबमें आत्मा मुख्य रहता है। ऐसे भावी नाथ को राग-नाश के लिये यह उपाय है। आहाहा! बात तो

अलग प्रकार की है। सुनना कठिन पड़े। एक तो यह क्या है परन्तु इस प्रकार का ? और वह भी लिये कौन है ? **भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** इसलिए ऐसा लगता है कि स्वयं ग्रन्थकार / टीकाकार भी तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! बहुत निर्मल।

पद्मप्रभमलधारिदेव, यह फोटो है। मुनि अन्तर में परमपारिणामिकस्वभाव में त्रिकाली सहज पर की अपेक्षा बिना स्वाभाविक परमपारिणामिक स्वभावभाव में वे लीन होते हैं। आहाहा! वे लीन होते हैं, यह चारित्र और संयम कहा जाता है। परमस्वभाव में लीन होते हैं, उसे सामायिक, संयम, तप उसे कहा जाता है; वही सब लंघन है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसे भावी भवमयहर, भव के भय को हरनेवाले। आहाहा! ऐसे भावी तीर्थाधिनाथ को अब भव ही नहीं है, कहते हैं। एकाध भव में तीर्थंकर होकर मोक्ष में जानेवाले हैं। आहाहा!

भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है। समता अर्थात् वीतरागता। शुद्ध जो वीतरागस्वरूप आत्मा; आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! उसकी दृष्टि नहीं, इसलिए राग-द्वेष और पुण्य-पाप पर्याय में खड़े होते हैं, परन्तु वीतरागस्वरूप की दृष्टि हुई तो वीतराग ही उत्पन्न होता है। वीतरागता, वह समता है। समता कहो या वीतरागता कहो। वीतरागता कहो या समता कहो। उस समता का लाभ, वह सामायिक है। ऐसी अन्तर वीतरागदशा, वीतरागस्वरूप चैतन्य के अवलम्बन से हुई वीतरागदशा, वह सामायिक है। ओहोहो! यहाँ तो साधारण मनुष्य ने सामायिक का रूप दे दिया। पाँच वर्ष की लड़की हो तो सामायिक करने बैठे। हो गयी सामायिक। पाँच सामायिक करे, फिर ईनाम में कुछ कुछ दे। आहाहा!

अरे! भाई! तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी प्रभु, अनन्त केवली, अनन्त तीर्थाधिनाथ तीर्थंकर सामायिक उसे कहते हैं, आहाहा! अन्तर चैतन्यस्वरूप प्रकाश का पुंज प्रभु, उस प्रकाश के पुंज में प्रकाश को प्रगट करके, समता और वीतरागता साथ में लेकर स्थिर हो, उसे सामायिक व्रत कहा जाता है। आहाहा! यह कलश हो गया। अब गाथा।

गाथा-१२८

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२८।।

यस्य रागस्तु द्वेषस्तु विकृतिं न जनयति तु।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने।।१२८।।

इह हि रागद्वेषाभावादपरिस्पन्दरूपत्वं भवतीत्युक्तम्। यस्य परमवीतरागसंयमिनः पापाटवीपावकस्य रागो वा द्वेषो वा विकृतिं नावतरति, तस्य महानन्दाभिलाषिणः जीवस्य पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहस्य सामायिकनामव्रतं शाश्वतं भवतीति केवलिनां शासने प्रसिद्धं भवतीति।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२८॥

अन्वयार्थ : [यस्य] जिसे [रागः तु] राग या [द्वेषः तु] द्वेष (उत्पन्न न होता हुआ) [विकृतिं] विकृति [न तु जनयति] उत्पन्न नहीं करता, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ राग-द्वेष के अभाव से [1]अपरिस्पन्दरूपता होती है, ऐसा कहा है।

पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष *विकृति उत्पन्न नहीं करता, उस महा आनन्द के अभिलाषी जीव को— कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह है उसे—सामायिक नाम का व्रत शाश्वत है, ऐसा केवलियों के शासन में प्रसिद्ध है।

---

१. अपरिस्पन्दरूपता=अकम्पता; अक्षुब्धता; समता।

* विकृति=विकार; स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति। [परमवीतरागसंयमी को समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से विकृतिभूत (विभावभूत) विषमता (राग-द्वेष परिणति) नहीं होती, परन्तु प्रकृतिभूत (स्वभावभूत) समतापरिणाम होते हैं।]

गाथा - १२८ पर प्रवचन

१२८ वीं गाथा।

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२८।।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२८॥

आहाहा! केवली भगवान त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा, ऐसा मुनिराज कहते हैं। अपने घर की बात नहीं करते। केवली भगवान त्रिलोकनाथ उसे सामायिक कहते हैं।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२८॥

यहाँ राग-द्वेष के अभाव से... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प जो उठता है, वह सब सामायिक का अभाव है। आहाहा! **राग-द्वेष के अभाव से अपरिस्पन्दरूपता...** अर्थात् आत्मा में **अकम्पता;...** स्थिरता। आहाहा! नीचे (फुटनोट) **अकम्पता; अक्षुब्धता; समता।** है न? **राग-द्वेष के अभाव से...** सूक्ष्म राग-द्वेष का भी जहाँ अभाव है, इसलिए **अपरिस्पन्दरूपता...** जहाँ सुन्दर अकम्पता है। यह अकम्प कोई योग की अपेक्षा का नहीं है; यह अकम्पता राग के अभाव की स्थिरता की अपेक्षा से है। क्या कहा, समझ में आय?

अकम्पता दो प्रकार से है : एक अन्दर योग कम्पन है, उसे भी आंशिक घटाना, वह अकम्प है और यहाँ अकम्पता-स्थिरता करना, उसे स्थिरता में अस्थिर न हो, वह अकम्प है। आहाहा! ऐसा कब सुने? कब समझे? कब दृष्टि में ले? और कब उसमें रमे? कब इसके भव का अभाव हो? आहाहा! (यह किये बिना) भव का अभाव नहीं होता।

राग-द्वेष के अभाव से... वीतरागता जो प्रगटे, उसे यहाँ अपरिस्पंद कहते हैं। आहाहा! समता। दुनिया की अनुकूल और प्रतिकूल, सारी दुनिया के सामने धर्मी-समकिती को सामायिक में वीतरागता होती है। किसी के प्रति ज्ञेय में अनुकूल और

प्रतिकूल वह मानता नहीं है। स्व के अतिरिक्त ज्ञेय जितनी चीज़ है, उन सब ज्ञेयों के दो भाग नहीं है अर्थात् कि एक ठीक है और एक अठीक है—ऐसे दो भाग नहीं है। आहाहा! सब ज्ञेय हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भी ज्ञेय हैं, स्त्री ज्ञेय है, निगोद के जीव ज्ञेय हैं, सिद्ध के जीव ज्ञेय हैं। वे सब जीव ज्ञेय हैं। आहाहा! उस ज्ञेय में स्थिर न होकर ज्ञान में स्थिर होता है। वह भले ज्ञेय का ज्ञान ज्ञानाकार यहाँ हो, ज्ञेयसम्बन्धी का ज्ञान ज्ञानाकार हो, उसमें स्थिर हो, वह अपरिस्पन्द है। आहाहा! वह अकम्प स्थिर प्रभु में हुआ। प्रभु स्वयं अकम्प है, वीतरागस्वरूप है। आहाहा! कैसे जँचे? स्वयं अभी वीतरागस्वरूप है, उसका स्वभाव वीतराग है। सर्वज्ञस्वभाव है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, शान्तरस से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! यह इसे पर्याय में बैठना चाहिए। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में कुछ घट-बढ़ नहीं है, विकार नहीं है, हीनता नहीं है।

'बहिन' के शब्द में आता है। 'कंचन को जंग नहीं।' बहिनश्री के वचनामृत में आता है। कंचन को जंग नहीं होती, अग्नि में दीमक नहीं होती; उसी प्रकार प्रभु में अपूर्णता और अशुद्धता नहीं होती। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान आत्मा; जैसे अग्नि को दीमक नहीं होती, वैसे स्वरूप में उसे कोई खा जाए, ऐसी रागादि वस्तु नहीं होती। आहाहा! कंचन को जंग नहीं होती; वैसे ही भगवान पूर्णाननद के नाथ को मलिनता और जंग अन्दर वस्तु-द्रव्य में नहीं होती। आहाहा!

ऐसा जो द्रव्य अन्दर भगवान विराजता है, उसका अपरिस्पन्दरूप पर्याय में उसका अकम्पपना (प्रगट होना)। अपरिस्पन्दरूप तो है। वस्तुरूप से अपरिस्पन्दरूप है। प्रभु आत्मा का अकम्पपना है। आहाहा! परन्तु पर्याय में अपरिस्पन्दता होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका नाम सामायिक। सामायिक-बामायिक की होगी या नहीं? सम्प्रदाय की द्रव्य सामायिक। हमने भी की थी। सामायिक करते, प्रतिक्रमण करते। आठ दिन पर्यूषण, हों! पर्यूषण। आठ दिन पर्यूषण... सात-आठ दुकान में जितने अपने स्थानकवासी हों, वे सब आवें, एकत्रित हों, पश्चात् मैं प्रतिक्रमण कराता था। तब... तब (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात है। सामायिक करके प्रतिक्रमण किया, इसलिए सबको ओहो! फिर एक गायन गाते। 'देखो रे देखो जैनी कैसे व्रतधारी।' ऐसा गायन आता है। यह गायन आता है। यह तो (संवत्) १९६५ के वर्ष की बात है। यह सब हो जाए, फिर बैठे। दुकान में बैठे।

मैं फिर ऐसे बाहर वह बैठा होवे न, पड़ा होवे न ? क्या कहलाता है, वह बैठने का ? वहाँ बैठकर गायन गाता। सुने। कुछ खबर नहीं होती। भाषा बोली... आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, प्रभु! तेरा रूप अकम्प है, हों! नाथ! पुण्य-पाप में आ जाए, अस्थिरता हो, वह तेरा स्वरूप नहीं है। दया, दान, व्रत के परिणाम आवे, वह तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं, मेरा स्मरण करे, वह भी सामायिक और अकम्पता नहीं है। आहाहा! तेरा स्मरण कर। अन्दर प्रभु चिदानन्दस्वरूप, अखण्डानन्द -स्वरूप है, नित्य है, नित्य सत्ता है, अस्तिवाली चीज़ है। उसकी उत्पत्ति का अभाव है। अनादि है, उसकी उत्पत्ति क्या ? है, उसका नाश क्या ? और है, उसके स्वभाव से खाली कैसे हो ? आहाहा! ऐसे अपरिस्पन्दरूप। यहाँ तो पर्याय की बात है।

अपरिस्पन्दरूपता होती है,... यह तो पर्याय की बात है, हों! अपरिस्पन्दरूप स्वयं भगवान है। अकम्प, स्थिर, ध्रुव (है), उसका आश्रय लेकर, उसका ध्यान करके, उसका अवलम्बन करके जो पर्याय में अकम्पता-स्थिरता हो, उसे वीतरागता कहकर उसे सामायिक कही है। आहाहा! अब ऐसा कठिन कहे... ऐसी सामायिक नहीं होती। परन्तु यह सामायिक करते-करते होती है या नहीं ? ऐसी सामायिक पहली नहीं होती, परन्तु यह दूसरी व्यवहार सामायिक करे। जहर खाते-खाते अमृत हो, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : थोड़ा जहर दे तो अमृतरूप से काम दे।

पूज्य गुरुदेवश्रीः बिल्कुल काम नहीं दे। जहर मार डाले। थोड़ा जहर मार डाले। अमृत का काम जरा भी नहीं करता। जिसकी जाति अलग है, जिसका फल अलग है, जिसका लक्षण अलग है। आहाहा! भगवान आत्मा और विकारी परिणाम, राग और द्वेष, दोनों के लक्षण अलग, दोनों की जाति अलग, दोनों की स्थिति अलग। यह विकार है, वह थोड़े काल रहता है और यह वस्तु भगवान है, वह तो अन्दर त्रिकाल है। आहाहा!

यहाँ राग-द्वेष के अभाव से अपरिस्पन्दरूपता होती है, ऐसा कहा है। अपरिस्पन्दता का अर्थ नीचे किया है। **अकम्पता; अक्षुब्धता; समता।** वीतरागता। जैसी वीतरागता स्वभाव से है, वैसी पर्याय में वीतरागता प्रगट करे, उसका नाम यहाँ सामायिक कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो केवली के शासन में।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली ने कहा हुआ है कि इसका नामा सामायिक। केवली शासन में केवली ने ऐसा कहा है (कि) इसका नाम सामायिक हे। केवली को सामायिक है - ऐसा नहीं। केवली ने ऐसा कहा कि इसका नाम सामायिक है। है न, देखो न! '**तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे**' पाठ में हे न? केवली शासन में ऐसा कहा है। पाठ ऐसा है न! भगवान के शासन में, तीर्थंकर के शासन में, तीर्थंकरदेव के मार्ग में ऐसा कहा है। यह कहा है भगवान ने। कहा है, यह मार्ग भिन्न है। आहाहा!

पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान... ऐसे जो परम वीतराग संयमी.... आहाहा! यहाँ तो परम वीतराग मुनि को लिया है। परम वीतराग संयमी कैसे हैं? परम वीतराग संयमी (कैसे हैं)? कि **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान...** पापरूपी अटवी-वन को जलाने को तो अग्नि-समान हैं। आहाहा! राग की उत्पत्ति तो नहीं होती, क्योंकि वे आत्मा में वीतरागता में स्थित हैं। आहाहा! उसका नाम यहाँ सामायिक और उसका नाम वीतरागता है। आहाहा!

परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नहीं करता,... आहाहा! किसे? **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग...** मुनि। मुनि की बात है, हों! केवली की नहीं। अन्दर परम वीतरागस्वरूप प्रगट हुआ है। वीतराग की मूर्ति प्रभु त्रिकाल अनादि-अनन्त है। वीतरागता का कन्द ही आत्मा है। उसका अवलम्बन लेकर पर्याय में जो वीतरागता प्रगट हुई, वह वीतरागता राग-द्वेष-विकृति उत्पन्न नहीं करती। उस समता के राग-द्वेष नहीं होते। आहाहा! ऐसे शास्त्र हैं, ऐसी पुस्तकें तो रखी हैं, परन्तु उसे पढ़ने का समय चाहिए। आहाहा! और कुशास्त्र, कथायें-विकथायें, कुकथा पढ़े, उसमें काल व्यतीत करता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वीतरागी मुनि को अपरिस्पन्दता होती है। क्योंकि **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नहीं करता, 'विकार; स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति।'** विकृति अर्थात् स्वभाव परिणति जो वीतराग परिणति। परिणति अर्थात् पर्याय। वीतरागी स्वरूप त्रिकाल, उसे पर्याय / अवस्था में वीतरागपना लाना, उसका नाम वीतराग परिणति है। उस वीतराग **स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति। [परमवीतरागसंयमी को समतास्वभावी**

शुद्धात्मद्रव्य का...] समतास्वभावी। आहाहा! भगवान स्वयं वीतरागस्वभावी है, समतास्वभावी है। वह समता में जाए, उसे समता मिले। उसे सामायिक हो। सं—आय। समता की आय अर्थात् लाभ। सामायिक अर्थात् समता की आय-लाभ। वह स्वरूप में जाए, तो उसे समता का लाभ मिलता। आहाहा!

[शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से...] आहाहा! **[परमवीतरागसंयमी को...]** नीचे (फुटनोट) **[समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से...]** त्रिकाली का दृढ़ आश्रय होने से **[विकृतिभूत (विभावभूत) विषमता (राग-द्वेष परिणति) नहीं होती, परन्तु प्रकृतिभूत (स्वभावभूत) समतापरिणाम होते हैं।]** प्रकृति अर्थात्? स्वभाव। यहाँ प्रकृति अर्थात् कर्मप्रकृति, वह नहीं। विकृति अर्थात् विकार और दुःख तथा प्रकृति अर्थात् आत्मा का स्वभाव। आहाहा! यह प्रवचनसार में आ गया। प्रवचनसार में वीतराग... लिखा है। प्रवचनसार २१४ गाथा। उसमें यह आया है। आहाहा!

[परन्तु प्रकृतिभूत (स्वभावभूत) समतापरिणाम होते हैं।] विकृति, वह राग-द्वेष के विकारी परिणाम हैं और प्रकृति अर्थात् जीव का निजस्वभाव। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। लोग नहीं कहते? कि तेरी प्रकृति ऐसी है। ऐसा नहीं कहते? तेरी प्रकृति ऐसी है या तेरा स्वभाव ऐसा है। उसी प्रकार आत्मा की प्रकृति ऐसी है। आहाहा! वीतरागस्वरूपी प्रकृति आत्मा की है। उस प्रकृति का स्वभाव जिसने पकड़ा और पर्याय में प्रगट किया, उसे विकृति के अभाव में प्रकृति का भाव उत्पन्न होता है। आहाहा! अनादिकाल से विकार की प्रकृति उत्पन्न होती है। यह स्वभाव की प्रकृति है। विकार की प्रकृति को विकृति कहा। स्वभाव की प्रकृति को स्वभाव कहा। आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके अवलम्बन से जो दशा होती है, उसे प्रकृति अर्थात् स्वभाव कहते हैं। आहाहा! और उससे विरुद्ध राग-द्वेष उत्पन्न हो, उसे विकृति कहते हैं। विकृतिवाले को सामायिक नहीं होती। प्रकृतिवाले को सामायिक होती है। आहाहा! ऐसी बड़ी महंगी सामायिक करना नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... किया हो तब तो ठीक परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने सम्यग्दर्शन को और सामायिक को बहुत महंगा कर डाला। जो उल्टा था सस्ता, उल्टा सस्ता था। आहाहा! अरे! प्रभु! मार्ग

तो यह है। आहाहा! कोई शरण नहीं, बापू! देह छूटने पर यदि आत्मा की चीज़ आनन्दकन्द प्रभु वीतरागस्वरूप को पकड़ा नहीं हो तो मरते हुए शरण किसी का नहीं। आहाहा! गणेशप्रसाद वर्णी बेचारे मरते हुए बोल गये। क्षुधा-तृषा बहुत लगी और खड़े होकर पानी पीने आये। क्षुल्लक थे, क्षुल्लक। अरे रे! आत्मा का शरण है, ऐसा कहा। उन्होंने आत्मा तो जाना नहीं था। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

जिसने ज्ञानज्योति द्वारा... चैतन्य के प्रकाश द्वारा चैतन्य प्रकाश का पुंज है, उस पर दृष्टि पड़ने से प्रकाश प्रगट हुआ, उस **द्वारा पापसमूहरूपी घोर अन्धकार का नाश किया।** आहाहा!

मुमुक्षु : ऊपर की टीका बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—विकृति उत्पन्न नहीं होती। **महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—**आहाहा! विकृति किसे उत्पन्न नहीं होती? परमानन्द अतीन्द्रिय आत्मा की जिसे उत्पत्ति हो, उसे विकृति उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! **महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह...** मुनि। मुनि को एक देहमात्र परिग्रह होता है। मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं हो सकते। वस्त्र-पात्र वह बाद में इन लोगों ने नये कल्पित शास्त्र बनाये, उनमें डाले हैं। आहाहा! **देहमात्र परिग्रह...** है? देह छूटती नहीं, बाकी सब चीज़ें छोड़ दी है। आहाहा!

उसे—सामायिक नाम का व्रत शाश्वत है... अर्थात् सच्चा है। **ऐसा केवलियों के शासन में प्रसिद्ध है।** देखा? केवली परमात्मा के शासन में यह बात सत्य है। बाकी अज्ञानी उनकी कल्पना से माने, वे भटक मरनेवाले हैं। आहाहा! परमात्मा अरिहन्तदेव केवली परमात्मा के शासन में उस सामायिक की यह स्थिति है। आहाहा!

श्लोक-२१३

[अब इस १२८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

रागद्वेषौ विकृति-मिह तौ नैव कर्त्तुं समर्थौ,
ज्ञानज्योतिः-प्रहतदुरितानीक-घोरान्धकारे ।
आरातीये सहज-परमानन्द-पीयूष-पूरे,
तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधिः को निषेधः ।।२१३।।

(वीरछन्द)

जिसने ज्ञान-ज्योति के द्वारा पाप तिमिर का किया विनाश।
परमानन्दामृत का पूर निकट ही करता जहाँ निवास॥
उसमें विकृति करने की नहिं राग द्वेष में है सामर्थ्य।
समरस मय उस आत्म तत्त्व में क्या विधि है अरु कहाँ निषेध॥२१३॥

श्लोकार्थ : जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापसमूहरूपी घोर अन्धकार का नाश किया है, ऐसा सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर (अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मतत्त्व) जहाँ निकट है, वहाँ वे राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं। उस नित्य (शाश्वत्) समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है ? (समरसस्वभावी आत्मतत्त्व में 'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को स्वभावपरिणमन होने के कारण समरसरूप परिणाम होते हैं, विधि-निषेध के विकल्परूप—राग-द्वेषरूप परिणाम नहीं होते)॥२१३॥

श्लोक- २१३ पर प्रवचन

[अब इस १२८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

रागद्वेषौ विकृति-मिह तौ नैव कर्त्तुं समर्थौ,
ज्ञानज्योति:-प्रहतदुरितानीक-घोरान्धकारे ।
आरातीये सहज-परमानन्द-पीयूष-पूरे,
तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधि: को निषेध: ।।२१३।।

श्लोकार्थ : आहाहा ! **जिसने ज्ञानज्योति द्वारा...** आहाहा ! चैतन्य के प्रकाश द्वारा। जिसकी नजरें चैतन्य प्रकाश में अन्दर पड़ी है। आहाहा ! जिसकी दृष्टि में चैतन्य प्रकाश, चैतन्य के नूर का पूर दृष्टि में आया है। आहाहा ! उस **ज्ञानज्योति द्वारा पापसमूहरूपी घोर अन्धकार का नाश किया है...** पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों। आहाहा ! शुभ और अशुभभाव दोनों पाप हैं। दोनों घोर अन्धकार का नाश किया है। आहाहा ! क्या कहते हैं ? ज्ञान के प्रकाश में, चैतन्य ज्ञानप्रकाश मूर्ति का प्रकाश प्रगट किया है और अन्धकार का नाश किया है। उत्पाद और व्यय कहा। आहाहा ! **जिसने ज्ञानज्योति द्वारा...** राग द्वारा या पुण्य द्वारा नहीं। आहाहा ! व्यवहार के क्रियाकाण्ड द्वारा नहीं। ज्ञानज्योति अन्तरचैतन्य की ज्योति द्वारा **पापसमूहरूपी...** पाप का ढ़ेर। **घोर अन्धकार...** ज्ञान का प्रकाश अन्दर एकाग्र होकर जागृत हुआ, वहाँ पापरूपी अन्धकार का नाश किया। आहाहा! **ऐसा सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर...** आहाहा ! अब यहाँ कहते हैं कि मुझे दिखता नहीं, ज्ञात नहीं होता। हमें किस प्रकार करना ? परन्तु प्रभु ! दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसने किया ? ज्ञात नहीं होता, ऐसा निर्णय किस सत्ता में हुआ ? किसकी सत्ता में ज्ञात नहीं होता—ऐसा निश्चित किया ? यही कहते हैं कि सत्ता ज्ञान सत्तास्वरूप है। आहाहा ! मैं ज्ञात नहीं होता, इसका अर्थ यह हुआ कि मैं ज्ञात होता हूँ, ऐसा। मैं ज्ञात नहीं होता, यह किसमें हुआ ? यह ज्ञान में हुआ या अन्धकार में हुआ ? आहाहा ! परन्तु समय कहाँ मिले ? यह दुनिया के... आहाहा ! मान, सम्मान, इज्जत, कीर्ति, विषय, भोग और यह सब... आहाहा !

यहाँ कहते हैं जिसने.. आहाहा ! **सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर...** आहाहा ! भगवान आत्मा स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत का पूर है वह तो। आहाहा ! जैसे नदी का पूर होता है। दो किनारे जोरदार नदी बहती हो। हमारे उमराला में बड़ी नदी है। बहुत पानी। पानी आवे तो दो-तीन माथोड़ा... समुद्र। वह भी साधारण।

यहाँ तो कहते हैं कि **सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर (अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी**

आत्मतत्त्व) जहाँ निकट है,... जहाँ भगवान आनन्दस्वरूप नजदीक में है। राग और पुण्य वहाँ नजदीक में नहीं। वे तो दूर हो गये। आहाहा! वह आनन्दस्वरूपी भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपी है। वह सुख के लिये बाहर में झपट्टे मारे। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी है। उसकी गन्ध आवे, तब बाहर में देखने जाता है। वन में भटका करता है। उसकी नाभि में कस्तूरी है। उसी प्रकार इस भगवान आत्मा में अन्दर में कस्तूरी—आनन्द है। आहाहा! वह आनन्द यहाँ खोजने जाए—स्त्री में, धूल में, पैसे में, नौकरी में, पैसे कुछ दो-पाँच हजार का वेतन हो। आहाहा! अच्छे कपड़े-बपड़े बराबर पहने। आहाहा! धूल में। धूलधोया में। धूलधोया भी ठीक होता है। धूलधोया देखा है ? सोनी की (दुकान के) बाहर धोता है। पहले धोते थे। हमने नजरों से देखा है, सब देखा है। सोनी की दुकान के नजदीक नीचे धूल धोता है। सोने का कण पड़ा हो, पीतल का कण हो। यह अंगूठी होती है न ? स्त्रियाँ पहनती हैं। उसमें पीला पट्टा होता है, उसका टुकड़ा पड़ा हो। ये तीनों टुकड़े पीले होते हैं, तथापि उन तीन में से सोने को छाँट लेते हैं, धूलधोया। सब नजरों से देखा है। हमारा भाईबन्ध सोनी था, उसकी दुकान थी। उसकी दुकान के पास धूलधोया धोता था। यह तो बहुत वर्ष पहले की बातें हैं। अस्सी वर्ष पहले की। यह क्या करते हो ? उसमें तीनों पीले कण हैं। पीले तो तीनों कण हैं। काँच की बरनी में पीला पट्टा होता है न ? चूरा हो गया पीला टुकड़ा होता है। धूल में पड़ा हो और पीतल का बारीक टुकड़ा पड़ा हो और सोने का टुकड़ा कोई मानो पड़ा हो परन्तु तीन में से छाँटकर, वजनदार वह सोना है और वजनरहित काँच तथा पीतल है। आहाहा! ऐसे उनके लक्षण छाँटकर धूलधोया सोना ले लेता है। पहले बहुत था। अब तो अभी...

यहाँ कहते हैं, धूलधोया। धूल—पुण्य और पाप को धोनेवाला और आत्मा के स्वर्ण को पकड़नेवाला, आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभावी **परमानन्दरूपी अमृत का पूर (अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मतत्त्व) जहाँ निकट है,...** आहाहा! उसकी दशा में, धर्मी की दशा में पूर्णानन्द का नाथ निकट है। अज्ञानी की दशा में राग और द्वेष तथा विषय की वासना निकट है। आहाहा! **सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर...** अर्थात् आत्मतत्त्व। **जहाँ निकट है, वहाँ वे राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं।** आहाहा! आत्मा के परमानन्द के पूर को, अरूपी होने पर भी वस्तु है, सत्ता है, अस्तिवाली चीज़ है। आहाहा!

उसे पकड़कर **राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं।** उसे राग-द्वेष उत्पन्न हो, अब ऐसी ताकत नहीं है। आहाहा! प्रतिमा बहुत लेते हैं। पाँच प्रतिमा, छह प्रतिमा, सात प्रतिमा। सात प्रतिमावाले बहुत। किसकी प्रतिमा? बापू! अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसे खबर भी नहीं। प्रगट हुए बिना सम्यग्दर्शन की प्रतिमा भी नहीं होती। आहाहा! उसे व्रत की प्रतिमा और उसे अनेक प्रकार की... आहाहा! सबको खोटा? तब यह एक ही सच्चा? भाई! यह तो केवली ने कहा हुआ यह एक ही सच्चा है। यह तो सर्वज्ञ भगवान वीतराग ने यह कहा हुआ है। यह एक ही सच्चा है। आहाहा!

जिसने अन्तर के आनन्दस्वरूप में एकाग्रता की है, उसे राग-द्वेष की विकृति उत्पन्न नहीं होती। है? **विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं। उस नित्य (शाश्वत्) समरसमय आत्मतत्त्व...** आहाहा! आत्मा कैसा है? कि परमरसस्वभावी। समरस-वीतरागरस स्वभावी आत्मतत्त्व। आहाहा! उस **समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है?** आहाहा! यह है और यह नहीं - यह दो विकल्प वहाँ है? आहाहा! यह है—भगवान पूर्णानन्द है और रागादि नहीं, ऐसे दो के विकल्प का भी वहाँ अवकाश कहाँ है? आहाहा! विधि और निषेध दोनों उसमें है ही नहीं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ आनन्द का पूर, वह विधि—है और राग-द्वेष नहीं, परन्तु ऐसे है और नहीं का भी जहाँ अवकाश नहीं। आहाहा! क्योंकि है और नहीं, यह भी विकल्प है। आहाहा! ऐसा किस प्रकार का उपदेश! दुनिया से अलग प्रकार।

(समरसस्वभावी आत्मतत्त्व में 'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से...) आहाहा! यह अन्तर में जानेयोग्य है और राग छोड़नेयोग्य है, ऐसे विकल्प अन्तर जानेवाले को कुछ नहीं होते। ऐसा विकल्प उसे नहीं होता। **(ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से...)** आहाहा! **(उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को...)** आहाहा! भगवान आत्मा जहाँ यह है और राग नहीं, यह भी जहाँ विकल्प है, उसे भी छोड़कर जो आत्मा को पकड़ता है। आहाहा! महाप्रभु अमृत के पूर को जहाँ पकड़ता है, ऐसे तत्त्व में विधि और निषेध क्या? यह है और राग-द्वेष नहीं, ऐसे विकल्प वहाँ नहीं है। वहाँ तो वस्तुस्थिति पूरी पड़ी है। आहाहा! यह तो बात-बात में सब अन्तर है। सम्प्रदाय में सुना हो और यह तो पूरा

प्रकार अलग। सम्प्रदाय में तो बातें ऐसी करे कि यह करो... यह करो... सामायिक करो... हम साधु हैं। अरे! प्रभु! विरुद्ध होगा, उसका दुःख सहन करना पड़ेगा, प्रभु! वहाँ कोई सिफारिश चले, ऐसा नहीं है। केवली भगवान ने जो सत्य कहा, उससे यदि विरुद्ध बाँधेगा, उसे नरक और निगोद के दुःख सहन करना पड़ेंगे। वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलेगी। आहाहा! वह तो सूत्रपाहुड़ की १८ वीं गाथा में कहा नहीं ? एक कपड़े का टुकड़ा रखकर साधु है ऐसा मानेगा... आहाहा! अर..र..र! वह निगोद में जाएगा। लहसुन और प्याज में अवतरित होगा... अर..र..र..! प्रभु! प्रभु! केवली के शासन में ऐसी बात है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य कड़क हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य जैसा है, वैसा कहते हैं। जैसा केवली ने कहा है, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। कठोर स्वयं कहते हैं, ऐसा कुछ है नहीं। अनन्त तीर्थंकर (यही कहते हैं)। भगवान वहाँ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। (वहाँ से) लेकर आये और यह बात उन्होंने की। वहाँ आठ दिन गये। थे तो ज्ञानी। वहाँ गये, इसलिए अधिक स्पष्ट हुआ। अधिक स्पष्ट होकर शास्त्र बनाये। आहाहा! उनमें यह डाला।

प्रभु! तू आनन्द का पूर है न! और है तथा यह नहीं-ऐसा विधि-निषेध भी, प्रभु! तुझमें शोभा नहीं देता। आहाहा! गजब बात है। (**'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध..**) विधि अर्थात् स्थापन और निषेध अर्थात् नकार। ऐसे (**विकल्परूप स्वभाव न होने से..**) ऐसा विकल्पस्वभाव तुझमें नहीं है। (**उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले...**) उस आत्मतत्त्व को अन्दर दृढ़रूप से अवलम्बन करनेवाले। (**मुनि को स्वभावपरिणमन होने के कारण...**) आहाहा! ऐसा भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसे दृढ़रूप से अन्दर पकड़ा है, इसलिए उसे (**स्वभावपरिणमन होने के कारण...**) स्वाभाविक परिणमन हुआ है। ध्रुव तो था भगवान, परन्तु उसका आश्रय लेकर पर्याय में स्वभाव परिणमन हुआ, वीतरागी परिणमन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन हुआ, अतीन्द्रिय शान्ति का परिणमन हुआ। आहाहा! उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! मुनि को विशेष (शान्ति होती है)। गृहस्थाश्रम में सामायिक होती है परन्तु थोड़ी शान्ति होती है, थोड़ी शान्ति होती है। मुनि को विशेष शान्ति और उग्र पुरुषार्थ है। अन्तर अवलम्बन का उग्र पुरुषार्थ है। समकिती गृहस्थ को, समकिती को भी अवलम्बन है

परन्तु थोड़ा है, इसलिए उसे थोड़ा आनन्द है। बाकी राग भी है। मुनि को तो राग है ही नहीं। आहाहा! ऐसा कहा न?

(मुनि को स्वभावपरिणमन होने के कारण...) स्वभाव की दशा होने के कारण। आत्मा का जो स्व-स्वभाव, आत्मा वस्तु है, उसका स्वभाव, स्वभाव—अपना भाव। वीतराग और आनन्दकन्द वह स्वभाव है। आहाहा! **(ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को स्वभावपरिणमन...)** वह स्वभाव परिणमन है। **(होने के कारण समरसरूप परिणाम होते हैं,...)** वहाँ समता... समता... समता (परिणमित होती है)। अनन्त ज्ञेय प्रतिकूल हों तो भी ज्ञेय में भाग नहीं डालते कि यह ठीक है और यह अठीक। वह तो ज्ञेय है। ज्ञेय में भाग कैसे? आत्मा के अतिरिक्त दूसरी सब चीज़ें एक ही प्रकार से ज्ञेय है। ज्ञान में ज्ञात हो, बस। उसके दो भाग नहीं कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय अठीक है। आहाहा! ऐसी जिसकी दृष्टि छूट गयी है, अन्तरस्वभाव का परिणमन हुआ है, उसे समरसरूप परिणाम होते हैं। उसे समरस-वीतरागरसरूप दशा होती है। **(विधि-निषेध के विकल्परूप—राग-द्वेषरूप परिणाम नहीं होते)** आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१२९

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२९।।

यस्त्वार्तं च रौद्रं च ध्यानं वर्जयति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने।।१२९।।

आर्तरौद्रध्यानपरित्यागात् सनातनसामायिकव्रतस्वरूपाख्यानमेतत्। यस्तु नित्यनिरञ्जननिजकारणसमयसारस्वरूपनियतशुद्धनिश्चयपरमवीतरागसुखामृतपानपरायणो जीवः तिर्यग्योनिप्रेतावासनारकादिगतिप्रायोग्यतानिमित्तं आर्तरौद्रध्यानद्वयं नित्यशः सन्त्यजति, तस्य खलु केवलदर्शनसिद्धं शाश्वतं सामायिकव्रतं भवतीति।

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२९॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [आर्त्तं] आर्त [च] और [रौद्रं च] रौद्र [ध्यानं] ध्यान को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा सनातन (शाश्वत) सामायिकव्रत के स्वरूप का कथन है।

नित्य-निरंजन निज कारणसमयसार के स्वरूप में नियत (-नियम से स्थित) शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत के पान में परायण ऐसा जो जीव तिर्यंचयोनि, प्रेतवास और नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है, उसे वास्तव में केवलदर्शनसिद्ध (-केवलदर्शन से निश्चित हुआ) शाश्वत सामायिक व्रत है।

प्रवचन-१४९, श्लोक-२१४-२१५, गाथा-१२९-१३०,
सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण ११, दिनांक ०९-०६-१९८०

नियमसार, १२९ गाथा।

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२९।।

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२९॥

टीका : यह आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा... समझाना है न? **आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा सनातन (शाश्वत) सामायिकव्रत के स्वरूप का कथन है।** है तो सामायिक पर्याय, परन्तु शाश्वत ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञानस्वरूप है, जाननहार है। वह किसी का करनेवाला तो नहीं, परन्तु पर को जाननेवाला है, यह व्यवहार है। ऐसा जो उसका ज्ञानस्वरूप है, उसके भान द्वारा आर्त और रौद्रध्यान का त्याग (होता है), वहाँ समस्वभाव जो प्रगट होता है, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा!

नित्य-निरंजन... आहाहा! कायम की जिसकी सत्ता है। नित्य-कायम सत्ता जिसकी है, ऐसा नित्य निरंजन। जिसे अंजन नहीं। नित्य निरंजन त्रिकाल अंजन रहित। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य निरंजन है। आहाहा! **निज कारणसमयसार के स्वरूप में...** ऐसा जो निज कारणसमयसार त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, उसके **स्वरूप में नियत (-नियम से स्थित)...** नियत अर्थात् निश्चय से रहा हुआ। आहाहा! **नित्य-निरंजन निज कारणसमयसार...** उसका जो ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसमें जो रहा हुआ। आहाहा!

शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत के पान में परायण... रहकर उसमें अन्दर में रहा। ज्ञानस्वरूपी भगवान में रहा, टिका, तब क्या मिला? **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग...** शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग **सुखामृत के पान में...** वीतरागी आनन्द के पान में तल्लीन है। आहाहा! इसका नाम सामायिक। शब्द भी सुने न हों। सामायिक किसे कहना? आहाहा! **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत...** अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, नितय ध्रुव शाश्वत, उसमें स्थित। और स्थित होने से **पान में परायण...** उस वस्तु के पान में - अनुभव में परायण। आहाहा!

आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप करे क्या? किसका करे? पर का करे? राग करे? नहीं, नहीं। पर को जाने, यह भी व्यवहार। आहाहा! यहाँ कहना क्या है?—कि व्यवहार से पर का कर सकता है—यह तो शब्द भी नहीं है, वह तो कथनमात्र शब्द है। पर को जानता है – यह भी व्यवहार है। वह अन्दर स्व को जानता है, इसका नाम निश्चय है। आहाहा!

अन्दर में रहने पर **परम–वीतराग–सुखामृत...** वीतरागी सुख का अमृत, उसके **पान में परायण...** उसे पीने में, अनुभव में परायण। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के पान में अर्थात् अनुभव में जो तत्पर है। आहाहा! जहाँ राग और द्वेष का कण नहीं, जहाँ चैतन्य के सुखामृत से भरपूर शुद्ध निरंजन ध्रुव सत्ता है, उसमें तत्पर है। **ऐसा जो जीव तिर्यंचयोनि, प्रेतवास और नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है,...** आहाहा! आर्तध्यान और रौद्रध्यान प्रेतवास अर्थात् व्यन्तर और भूत के भव हों। कोई ऐसा साधारण शुभभाव हो तो व्यन्तर के भव हों। आहाहा! नारकी। पाप के तीव्र भाव से नरक आदि, मनुष्य और देव आदि गति। उसकी योग्यता के हेतुभूत। चार गति की योग्यता के हेतुभूत। चार गति जिस भाव से मिले, उसके हेतुभूत। **आर्त और रौद्र दो ध्यानों को...** आहाहा! आर्त और रौद्र ध्यान से तो चार गति मिलती है, परिभ्रमण मिलता है। आहाहा! उसे **नित्य छोड़ता है,...** उन दो ध्यान को नित्य तजता है।

अन्तर के सुखामृत के... ज्ञानस्वरूपी आत्मा, वह क्या करे? पर का कुछ करे? पर को मारे? पर को बचावे? वह क्या करे? कुछ नहीं करे। आहाहा! मात्र होता हो, उसे जाने। इसलिए आर्त और रौद्रध्यान नहीं होता। होता हो, उसे जानता है। वह जानने का व्यवहार है, इसलिए वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होता। आहाहा! किसी को दूर करना है, किसी को मिलना है, किसी के साथ मेल करना है, यह कुछ है नहीं। जहाँ आत्मा के साथ मेल किया है, नित्य निरंजन भगवान सुखामृत के साथ जहाँ मेल करके अन्दर अनुभव करता है, उसका पान करता है। निर्विकल्प आनन्द का पान करता है। आहाहा!

वह **प्रेतवास...** अर्थात् हल्का देव **और नारकादिगति...** तिर्यंच, मनुष्य। उसकी **योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है,...** आहाहा! **उसे**

वास्तव में... उस जीव को वास्तव में **केवलदर्शनसिद्ध (-केवलदर्शन से निश्चित हुआ)...** केवलज्ञान से सिद्ध हुआ। आहाहा! ऐसा **शाश्वत सामायिक व्रत है।** उसे सामायिक व्रत सच्चा है। शाश्वत शब्द से (आशय) सच्चा। जैसा भगवान शाश्वत् है, वैसी ही पर्याय प्रगट हुई है और शान्ति में रमता है, वह भी एक शाश्वत है। आहाहा! इसका नाम सामायिक है।

श्लोक-२१४

[अब इस १२९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(आर्या)

इति जिनशासनसिद्धं सामायिकव्रतमणुव्रतं भवति।
यस्त्यजति मुनिर्नित्यं ध्यान-द्वय-मार्त-रौद्राख्यम् ।।२१४।।

(वीरछन्द)

जो मुनि आर्त रौद्र इन दोनों ध्यानों को नित प्रति छोड़ें।
जिनशासन में सिद्ध उन्हें अणुव्रतमय सामायिक व्रत है॥२१४॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रत सामायिकव्रत है ॥२१४॥

श्लोक - २१४ पर प्रवचन

[अब इस १२९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

श्लोकार्थ : इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को... मुनि की

मुख्यता से बात है। जो कोई मुनि आत्मा के आनन्द में रमता है। आहाहा! आत्मा के सुखामृत में जिसकी लीनता है, उसे आर्त और रौद्रध्यान नहीं होते। **दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है...** अर्थात् उसे नहीं होते। छोड़ना चाहता है न? यह आर्त और रौद्रध्यान तजूँ, ऐसा नहीं। यह समझाने की शैली है। सुख आनन्द अमृत प्रभु, जिसका जीवन अमृत जीवन है। ऐसे अमृत जीवन में जो लीन है, उसे आर्त और रौद्रध्यान नहीं होते। उत्पन्न नहीं होते, उसे तजता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी सामायिक की बातें! वे तो दो घड़ी णमो अरिहंताणं करके... करके... सामायिक हो गयी। अरे! भाई! एक सेकेण्ड की सामायिक भव के अन्त को लावे, क्योंकि भव का अन्त, भव और भव के कारण, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है, वह तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसके स्वरूप की लीनता करने से, संसार के कारण जो आर्त और रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होते, उन्हें यहाँ तजता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

सवेरे तो आया था न? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। आहाहा! करता नहीं परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को जानता है, यह भी व्यवहार है। होनेवाली दशा को (जाने), जड़ की और परद्रव्य की होनेवाली अवस्था, उसे ज्ञान का स्वभाव भगवान का है इसलिए जानना, वह भी पर को जानना यह भी व्यवहार है। पर को करना, यह तो वस्तु में है ही नहीं। आहाहा! राग का करना, यह भी वस्तु के स्वरूप में नहीं है तो फिर हाथ-पैर हिलाना, मैं हाथ-पैर को हिला सकता हूँ, यह मान्यता तो एकदम मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। उसे जैन की खबर नहीं है। आहाहा!

'घट-घट अन्तर जिन बसे' तुम्हारा लड़का बोलता है। सिद्धप्रकाश। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' चार वर्ष का छोटा लड़का है। 'घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' 'घट-घट अन्तर जिन बसे' घट-घट अन्तर जिन प्रभु विराजमान है। आहाहा! जिसके अन्दर में आर्त और रौद्रध्यान और कोई शुक्ललेश्या भी नहीं। आहाहा! शुक्ललेश्या भी जिसमें नहीं। भव और भव का कारण जिसमें नहीं। आहाहा!

जो अकेले ज्ञानानन्दस्वभाव से, अनन्त ऐसे दूसरे गुणों से भरपूर है। उसे पकड़कर उसमें स्थिर हो, तब आनन्द का अनुभव होता है, तब आर्त और रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होता,

इसलिए वह सामायिक सच्ची कही जाती है। आहाहा! नहीं तो खोटी सामायिक है। आहाहा! खोटी में भी नुकसान कितना? सामायिक नहीं और सामायिक माने, इसलिए मिथ्यात्व का बड़ा पाप है। सामायिक का स्वरूप जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जाना नहीं और दूसरे प्रकार से करता है और मानता है... आहाहा! उसकी मान्यता ही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व, वह संसार है। मिथ्यात्व ही संसार है। आहाहा! गजब बात है। इस भाव सामायिक बिना द्रव्य सामायिक करनेवाले जीव संसारी हैं अर्थात् संसार में भटकनेवाले हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

२१४ कलश। **इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है...** अर्थात् होने नहीं देता और उसके स्थान में **उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रत सामायिकव्रत है।** यह सामायिक है, वह अभी अणुव्रत है। आहाहा! भगवान की सामायिक समता वीतरागता पूर्ण, वह पूर्ण है। मुनि को भी आत्मध्यान में हो और आनन्द में स्थिर रहे, उस सामायिक को भी यहाँ अणुव्रत सामायिक कहा है। आहाहा! क्योंकि पूर्ण वीतराग सर्वज्ञपना अभी आया नहीं। भले अन्दर सुखामृत में आत्मा के आनन्द में तृप्त रहे, परन्तु पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए उस सामायिक को अणुव्रत सामायिक कहा जाता है। अणुव्रत अर्थात् यह गृहस्थ के अणुव्रत हैं, वह नहीं। इस सामायिक को ही अणुव्रत कहा जाता है। आहाहा! छोटा व्रत है।

पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण जहाँ प्रगट होता है। आहाहा! उसके ज्ञान का प्रकाश अर्थात् ध्रुवस्वभाव ज्ञान जहाँ पूर्ण प्रगट होता है, आनन्द पूर्ण प्रगट होता है, वीर्य स्वरूप की रचना पूर्ण प्रगट करता है, तब उसे सामायिक पूरी होती है। आहाहा! यह तो मिथ्या सामायिक में व्यवहार तो नहीं परन्तु मिथ्यात्व है। आहाहा! जिसमें धर्म नहीं। धर्म को अधर्म मानना और अधर्म को धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। पच्चीस मिथ्यात्व आते हैं न? आहाहा! जगत से... तिरने का उपाय अलौकिक है। वह वीतराग केवली के अतिरिक्त, केवली की वाणी के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है, उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ)...** वीतराग केवलज्ञानी के ज्ञान में सिद्ध हुआ **(-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रतरूप...** आहाहा! उसे अणुव्रत सामायिक कहते हैं। आहाहा! मुनि

को, हों! मुनि होते हैं, वे पहले द्रव्यलिंगी होते हैं। पहले नग्नपना होता है। मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता।

मुमुक्षु : टुकड़ा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब बड़ा थोपला होता है? यह सब रखते हैं न, सब अज्ञान है। यह आर्यिकाएँ मिथ्यादृष्टि है, साधु मिथ्यादृष्टि है। सब मिथ्यादृष्टि है। वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे वह मिथ्यादृष्टि मूढ़, अज्ञानी है। वह जैन नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगता है। क्या हो? भाई! प्रभु का मार्ग कोई अलग और दुनिया दूसरे रास्ते चढ़ गयी। मार्ग रह गया अन्यत्र और दुनिया दूसरे रास्ते चढ़ गयी और माना कि हम कुछ जैन का धर्म करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .....पकड़कर कबूल करने बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! दूसरे प्रकार से संक्षिप्त में कहें तो वह तो ज्ञानस्वरूप प्रभु है। ज्ञान करे क्या? पर का करे? राग करे? मात्र बहुत तो ज्ञान पर को जाने। बस, व्यवहार की इतनी मर्यादा। पर को जाने। निश्चय से तो स्व को जाने। पर को भी निश्चय से जाने नहीं। आहाहा! ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान, नित्यानन्द नित्य प्रभु शाश्वत, ज्ञान और आनन्द की अनादि सत्ता पड़ी है, प्रसिद्ध है, प्रगट है, प्रसिद्ध है, व्यक्त है। गुप्त नहीं। आहाहा! अनन्त गुणों का संग्रह प्रभु प्रगट, प्रसिद्ध, प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष प्रगट है। आहाहा! उसके सन्मुख देखना नहीं और उसे छोड़कर विकल्प की बातें यह किया और वह किया, सामायिक की, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण किया, रात्रिभोजन नहीं किया। सब विकल्प अज्ञान, राग है। संसार के परिभ्रमण के कारण हैं। यह क्रियाकाण्ड शुभभाव भी घोर संसार में भटने का कारण है क्योंकि राग है। राग है, वहाँ आत्मा की हिंसा है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

(-जिनशासन से निश्चित हुआ)... जैन शासन में निश्चित हुई सामायिक ऐसी होती है। जैन वीतराग के मार्ग में, केवली परमात्मा के मार्ग में आर्त और रौद्रध्यानरहित (सामायिक ऐसी होती है)। आहाहा! आर्तध्यान के चार भेद सब हैं न, रौद्रध्यान के भेद न! कोई अंश न हो और अन्तरध्यान आनन्द का ध्यान हो। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में

तल्लीन पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में तृप्त-तृप्त हुआ है, उसे जैनशासन में सामायिक कहा जाता है। आहाहा! बहुत अन्तर है। मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया दूसरे विपरीत मार्ग में चढ़ गयी। जैन के नाम से विपरीत मार्ग में चढ़ गये। आहाहा!

यह तो मुनि की बात ली न? **जो मुनि... उसे अणुव्रतरूप सामायिक...** ऐसा कहा न? यह कहीं गृहस्थ की बात नहीं है। अणुव्रत शब्द आया है परन्तु मुनि के लिये आया है। जो परमात्मस्वरूप में पूर्ण लीन हैं, ऐसी जो पूर्ण वीतराग सामायिक है, वह यहाँ नहीं है, इसलिए उन्हें अपूर्ण है, इसलिए इसे अणुव्रत सामायिक कहा गया है। वीतरागी दशा अन्तर वीतरागी राग और द्वेष, आर्त और रौद्रध्यान से रहित दशा, वीतरागीदशा परन्तु अल्प है और पूर्ण नहीं, इसलिए उसे अणुव्रत सामायिक जैनशासन में सिद्ध हुई बात है। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा!

गाथा-१३०

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३०।।

यस्तु पुण्यं च पापं च भावं वर्जयति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१३०।।

शुभाशुभपरिणामसमुपजनितसुकृतदुरितकर्मसन्न्यासविधानाख्यानमेतत्। बाह्याभ्यन्तर-परित्यागलक्षणलक्षितानां परमजिनयोगीश्वराणां चरणनलिनक्षालनसम्वाहनादिवैयावृत्त्य-करणजनितशुभपरिणतिविशेषसमुपार्जितं पुण्यकर्म, हिन्सानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहपरिणामसञ्जात-मशुभकर्म, यः सहजवैराग्यप्रासादशिखरशिखामणिः सन्सृतिपुरन्धिकाविलासविभ्रमजन्मभूमि-स्थानं तत्कर्मद्वयमिति त्यजति, तस्य नित्यं केवलिमतसिद्धं सामायिकव्रतं भवतीति।

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [पुण्यं च] पुण्य तथा [पापं भावं च] पापरूप भाव को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।

बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित परमजिनयोगीश्वरों का चरण-कमलप्रक्षालन, [१]चरणकमलसंवाहन आदि वैयावृत्य करने से उत्पन्न होनेवाली शुभपरिणति विशेष से (विशिष्ट शुभ परिणति से) उपार्जित पुण्यकर्म को तथा हिंसा,

---

१- चरणकमलसंवाहन=पाँव दबाना; पगचंपी करना।

असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी स्त्री के [१]विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से, जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (-जो परम सहज वैराग्यवन्त मुनि) छोड़ता है, उसे नित्य केवलीमतसिद्ध (केवलियों के मत में निश्चित हुआ) सामायिकव्रत है।

गाथा - १३० पर प्रवचन

---

१३० (गाथा)

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३०।।

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

टीका : यह, शुभाशुभ परिणाम से... शुभ और अशुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह सब शुभभाव है, यह संसार है, बन्धन है। आहाहा! और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग अशुभ है। यह शुभ और अशुभ **परिणाम से उत्पन्न होनेवाले...** इन शुभ और अशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले **सुकृतदुष्कृतरूप...** सुकृत और दुष्कृतरूप कर्म। इनके त्याग की विधि का, इनके त्याग की रीति का यह **कथन है।(-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।** आहाहा! उसे सामायिक कहते हैं।

मुनि कैसे होते हैं? **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा नहीं, पात्र नहीं। माता से जैसा जन्मा, वैसा होता है। उसे जैनशासन में अनादि से जैनधर्म कहते आये हैं। यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो अभी नये निकले हैं। इसमें से कल्पित-विपरीत अर्थ करके, मिथ्यादृष्टि होकर शास्त्र बनाये। कठिन लगे, भाई! आहाहा! एक ओर भगवान के अनुगामी कहना और यहाँ कहे कि मिथ्यादृष्टि के अनुगामी है, बापू! आहाहा! उसमें भगवान की कही हुई बात से सब अत्यन्त विरुद्ध है।

१- विलासविभ्रम=विलासयुक्त हावभाव; क्रीड़ा।

सब विरुद्ध। देव का (स्वरूप) विरुद्ध, गुरु का विरुद्ध, शास्त्र का विरुद्ध, तत्त्व का विरुद्ध, धर्म का विरुद्ध।

मुमुक्षु : वस्त्र रखकर मुनि माने, तो सबमें विरुद्ध ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब में सब विपरीत है। मात्र वस्त्र के लिये नहीं। वस्त्रवाले साधु को साधु मानना, उसमें नव तत्त्व की भूल है। उसके नौ ही तत्त्व झूठे हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि जो मुनि है, वह छठवें गुणस्थान में, उसे वस्त्र का विकल्प नहीं होता और उस वस्त्र का विकल्प मानता है; इसलिए वह आस्रव को भी नहीं पहिचानता और जब वह विकल्प छठवाँ गुणस्थान हो, तब ऐसा वस्त्र का विकल्प नहीं होता, तब उसे संवर कहा जाता है। उस संवर को भी नहीं पहिचानता। वह वस्त्र न हो परन्तु कुछ भी तन्तु का टुकड़ा न हो तब उसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है। उसमें उसकी भूल है। बाकी अजीव में भी नग्नपने में संयोग नहीं होता। वस्त्र का संयोग मानता है, वह अजीव में भूल है। यह नवतत्त्व में भूल है। उसका एक भी तत्त्व सच्चा नहीं है। भूपतभाई! ऐसी बात है। यहाँ तो वीरान में-जंगल में पड़े हैं। कोई माने, न माने इसके साथ क्या है? मार्ग तो यह है। आहाहा!

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले... चाहे तो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, पंच परमेष्ठी की यादगिरि स्मरण करे, वह सब शुभभाव संसार है। वह **सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।** आहाहा! **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** केवली भगवान के शासन में मुनि कैसे होते हैं? कि **बाह्य-अभ्यन्तर...** परिग्रह। बाह्य में वस्त्र-पात्र का टुकड़ा नहीं और अभ्यन्तर में राग का अंश नहीं। अभ्यन्तर चौदह प्रकार का परिग्रह, बाह्य दस प्रकार का परिग्रह। चौबीस प्रकार का परिग्रह है, उस सब परिग्रह का त्याग जिसे होता है। आहाहा!

जैनशासन में स्त्री को साधुपना नहीं होता। स्त्री को साधुपना नहीं आता और उसे साधुपना माने तो वह मिथ्यात्व को पोषण करता है। संसार की वृद्धि करता है। आहाहा! गजब बातें! और साधु को भी वस्त्रसहित, पात्रसहित (साधुपना नहीं होता)। वह भी कहाँ

है ? उपाश्रय उसके लिये बनाये हुए मकान आदि में अभी तो रहते हैं न, वह व्यवहार भी कहाँ है। आहाहा! यह प्रश्न (संवत्) १९६९ के वर्ष में हुआ था। दीक्षा १९७० के वर्ष में हुई। मैंने १९६९ में हमारे गुरु हीराजी महाराज से प्रश्न किया। १९६९ का वर्ष, चातुर्मास में, संसार में। महाराज को कहा – साधु के लिये मकान बनाया हो, तो उसे नौ कोटि जो है मन, वचन, काया, करना, कराना, और अनुमोदन, (उसमें) कौन सी कोटि टूटती है ? यह प्रश्न १९६९ के वर्ष में हुआ था। हीराजी महाराज तो भद्रिक थे, उन्हें ऐसा कि यह तो दीक्षा लेनेवाला ही है। ऐसा कहा कि तुम्हारे लिये भाई ने मकान बनाया और तुम रहो, उसमें क्या ? परन्तु उस मकान में रहना, वह ही अनुमोदन है। यह अनुमोदन की कोटि टूट जाती है। इन नौ कोटि में एक भी कोटि उसे नहीं रहती। वह अज्ञानी हो जाता है। आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष से चर्चा चलती है। बड़ी चर्चा की।

एक बार तो सब गाड़ी जोड़कर 'पालियाद' गये थे। १९६९ के वर्ष की बात है। चातुर्मास में। यह क्या ? तब गुलाबचन्दजी थे न ? राजकोट के गुलाबचन्द गाँधी थे। एकल विहारी थे। अकेले रहते थे। क्रिया कड़क अवश्य थी। उन्होंने कहा कि साधु के लिये मकान का कुछ भी किया हो और प्रयोग करे तो वह साधु नहीं है। हमने सुना हुआ नहीं। दुकान छोड़कर दीक्षा लेने निकला, उसमें यह बात सुनी नहीं। पहले सुनी। इसलिए फिर पालियाद पूछने गये। तो जवाब का कुछ ठिकाना नहीं। फिर (संवत्) १९६९ में राणपुर में पूछा, तब कुछ जवाब में ठिकाना नहीं। जो चीज़ जिसके लिये बनायी है, वह भले कर्ता स्वयं नहीं है, करने को कहा भी नहीं हो परन्तु उसके लिये बनायी हुई वह चीज़ ले तो उसे नवकोटि में सब कोटियाँ टूट जाती है। वह अप्रत्याख्यानी और अव्रती है।

मुमुक्षु : एक कोटि टूटी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ ही टूट गयी। फिर एक भी रही कहाँ ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक हो, यह तो साधु है। नौ ही कोटि टूट गयी। आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष की बात है। ६७ वर्ष (हुए)। आहाहा! परन्तु लोगों में कुछ विचार श्रेणी नहीं है। धन्धे आदि में निवृत्त नहीं है। एक घण्टे सुनने आवे। ऊपर पाट पर (बैठा हुआ) जो कहे, उसे स्वीकार करके चले जाए। तुलना करने को निवृत्त कहाँ है कि सत्य

क्या है और असत्य क्या है ? आहाहा ! वीतराग केवली परमात्मा का कथन क्या है और दुनिया अभी क्या कहती है ? इसका मेल करने को निवृत्त कहाँ है ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, परम जिनयोगी कैसे होते हैं ? परम योगी साधु कैसे होते हैं ? कि **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** बाह्य परिग्रह से रहित और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित। अकेले बाह्य से त्याग नहीं। अकेला नग्नपना तो अनन्त बार धारण किया। अभ्यन्तर में जो रागादि हैं, उनका भी जिन्हें परित्याग है। परित्याग शब्द है। परि- समस्त प्रकार से त्याग। आहाहा ! **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप...** आहाहा ! **लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से लक्ष्य में लेनेयोग्य **परमजिनयोगीश्वरों का...** परम योगीश्वर का। **चरण-कमलप्रक्षालन,...** क्या कहते हैं ? ऐसे सन्त हों, उनके चरण में प्रक्षाल करे तो उसे शुभभाव होता है, धर्म नहीं। आहाहा ! ऐसे नहीं हैं, उनकी तो बात है ही नहीं परन्तु ऐसे मुनि जो हों... आहाहा !

बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित परमजिनयोगीश्वरों का चरण-कमलप्रक्षालन,... पैर को पानी से साफ करना। आहार लेने आते हैं, तब पानी डालकर (साफ करे)। **चरणकमलसंवाहन=पाँव दबाना; पगचंपी करना।** ऐसे मुनि, हों ! परन्तु। ऐसे मुनि को। वह सब शुभभाव है, पुण्य है, संसार है। आहाहा ! दूसरे वस्त्रवाले साधु की तो बात क्या करना ? वह तो स्वयं मिथ्यादृष्टि है और उसे मानता है, चरणस्पर्श करता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। वह जैन ही नहीं है। आहाहा ! ऐसे मुनि को भी पगचंपी और प्रक्षालन करे, अरे ! **वैयावृत्य करने से उत्पन्न होनेवाली शुभपरिणति...** उससे उत्पन्न होता शुभपरिणाम, पुण्यपरिणाम / बन्धन होता है, धर्म नहीं। आहाहा !

मुनि को आहार-पानी देने से संसारपरित नहीं होता, शुभभाव होता है। आहाहा ! कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर में विपाकसूत्र है। दस विपाक के अधिकार हैं। वे दसों मिथ्यादृष्टि है और साधु को आहार दिया और परितसंसार किया, ऐसा पाठ है। विपाक है, वह अत्यन्त मिथ्यादृष्टि ने बनाया हुआ है। ३२-४५ सब शास्त्र मिथ्यादृष्टि ने बनाये हैं। लोगों को कठिन पड़ता है, बापू ! परन्तु... आहाहा ! उस विपाकसूत्र के दस पाठ हैं। साधु को आहार दिया, वह देनेवाला मिथ्यादृष्टि है परन्तु साधु को (आहार) दिया तो परितसंसार किया—संसार तोड़ डाला। यह खोटी बात है। तथा ज्ञातासूत्र में मेघकुमार ने उस हाथी के

भव में खरगोश की दया पालन की, परितसंसार किया – यह झूठी बात है। पर की दया से शुभभाव होता है, परितसंसार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुभ से परितसंसार हो, ऐसा एक मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध से होता है, शुभ से नहीं होता। यह तो कहा, बड़ी चर्चा चली थी। रेवती, भगवान के लिये आहार लेने गयी। भगवतीसूत्र में पाठ है। वह सब कल्पित बनाया हुआ, मिथ्या, मिथ्यादृष्टि है। भगवान को रोग हुआ तो कैसा? सिंहअणगार आहार लेने गया। सिंहअणगार महिला के पास लेने गया, तो उसने वहाँ घोड़े के लिये बनाया हुआ आहार और भगवान के लिये बनाया हुआ, उसमें से घोड़े के लिये बनाया हुआ आहार लिया। परितसंसार किया, ऐसा पाठ है। एकदम झूठ। परद्रव्य की कोई भी क्रिया परिणाम में संसार का अन्त आते, ऐसा नहीं है। परद्रव्य का लक्ष्य जाए तो शुभभाव ही होता है। देव–शास्त्र–गुरु (पर लक्ष्य जाए तो) आहाहा! अरे! यह कब पहुँचे और कब जाए? शून्य कब लगाये?

ऐसे मुनि की भी सेवा करे, वैयावृत्य करे और शुभपरिणति को उपजावे। **शुभपरिणति विशेष से (विशिष्ट शुभ परिणति से) उपार्जित पुण्यकर्म....** ऐसे जो शुभपरिणाम से बँधा हुआ शुभकर्म। आहाहा! **तथा हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी...** आहाहा! मुनि की वैयावृत्य और चरणकमल की सेवा, यह पगचंपी करना, वह भाव **संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान...** है। आहाहा! वह भाव परद्रव्य की ओर झुकाव है अर्थात् शुभभाव है। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के सन्मुख देखे और उनका नाम ले तो शुभभाव संसार है, स्वआश्रय से संसार का नाश होता है। अन्दर आनन्द के नाथ का (आश्रय); पराश्रय से राग होता है। ओहोहो!

मुमुक्षु : सामायिक व्रत बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। सामायिक कैसी? आहाहा! सम्यग्दर्शन कहना किसे? आहाहा! विकल्परहित चिदानन्द ज्ञानमूर्ति अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, इसका भान होकर, अनुभव होकर प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है तो अभी उसका ठिकाना नहीं तो व्रत–फ्रत तो थे कब? आहाहा! (कोई

कहे), तुम यहाँ लड़कियों को ब्रह्मचर्य (व्रत) तो देते हो। वह शुभभाव है, धर्म नहीं। जो ब्रह्मचर्य ले, उसे शुभभाव होता है। पुण्यकर्म बँधता है। धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म नहीं कर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म है, धर्म नहीं। कहो, दामोदरभाई! ऐसा तो तुम्हारे पिताजी ने कभी नहीं कुछ सुना भी नहीं होगा।

मुमुक्षु : बाप-दादा की परम्परा छोड़ना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम्परा छोड़ना... यह परम्परा छोड़ी। आहाहा! बाप-दादा की परम्परा कैसे छोड़ी जाती है? यह वस्तु सत् है। भगवान तीन लोक के नाथ का पुकार है।

मुमुक्षु : सच्चे पिता तो भगवान हैं, उनकी परम्परा होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सच्चे पिता हैं और वे ही माता हैं। वह पिता कहाँ था? ऐसे तो अनन्त हो गये। आहाहा! जिनेश्वर पिता तीन लोक का नाथ, जगत पिता... आहाहा! जगत का नाथ जानने की अपेक्षा से। रक्षा करने की अपेक्षा से नहीं। आहाहा! उनके शासन में ऐसा कहा कि ऐसे जीव को पुण्यकर्म उत्पन्न होता है। ऐसे साधु नहीं, उन्हें पुण्य हो वह तो साधारण पापानुबन्धी पुण्य होता है। आहाहा! धर्म तो नहीं। यह पुण्य होता है। सच्चे साधु की वैयावृत्त्य से शुभभाव हो, वह पुण्य होता है। आहाहा!

तथा हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी... आहाहा! **वे दोनों कर्म संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का...** उसके साथ विलास का हावभाव, संसारी स्त्री, भटकने की स्त्री... आहाहा! उसके साथ **विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से,...** वह विलास और विभ्रम भटकने का जन्मस्थान होने से। आहाहा! सन्तों को पड़ी है कुछ? स्वयं अपनी बात करते हैं। हम मुनि हैं। नग्न मुनि दिगम्बर सच्चे भावलिंगी, तथापि हमें हमारी वैयावृत्त्य से (पुण्य) बँधेगा। हम परद्रव्य हैं। बाकी उसे शुभभाव होगा, धर्म नहीं होगा। भले उसे आहार दिया हो या उसे... आहाहा! तीर्थंकर परमात्मा जब छद्मस्थ हों, तब आहार के लिये निकले। उन्हें जो आहार दे, उसे शुभभाव होता है, धर्म नहीं। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। अभी तो सब पूरा बिगड़ गया है।

यह पुण्य और पाप के परिणाम से होते कर्म, वह कर्म संसाररूपी स्त्री... आहाहा! उसके भटकने के **विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से, जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि....** मुनि। उसे छोड़ देता है, ऐसा कहते हैं। मुनि उसके सन्मुख नहीं देखते। आहाहा! सहज वैराग्य, पुण्य-पाप से वैराग्य, शुभ-अशुभभाव से भी वैराग्य। वह शुभ-अशुभभाव मेरा नहीं। आहाहा! विरक्त। शुभ-अशुभ से विरक्त, स्वरूप में रक्त, इसका नाम वैराग्य। स्त्री, पुत्र छोड़े, वह सब श्मशान वैराग्य है। वह वैराग्य नहीं है। अन्दर में पुण्य-पाप के भाव को छोड़े, समकितसहित छोड़े, उसे वैराग्य कहते हैं।

समयसार के पुण्य-पाप (अधिकार में) आता है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव जो छोड़ता है, उसे वैराग्य कहा जाता है परन्तु स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान छोड़कर यहाँ साधु होकर शुभभाव में आया, इससे साधु हो गया... वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का पोषण (करके) मिथ्यात्व बाँधता है। आहाहा! क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की संसार की वृद्धि करता है। उसमें भी स्त्री को तो साधुपना होता ही नहीं। उसे पाँचवें गुणस्थान से ऊपर तीन काल में नहीं हो सकता। वह भी दिगम्बर धर्म को सच्चा माने और अनुभव करे तो। श्वेताम्बर में तो स्त्री और पुरुष सब पूरा सम्प्रदाय मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहीं बात गुप्त नहीं रखते। आहाहा! सब चीज़ ऐसी है। कठिन पड़े, भाई! क्या हो?

वीतराग ऐसा कहते हैं और वीतराग ने कहा हुआ सन्त ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूत्रपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? वस्त्र का एक टुकड़ा रखे, वह निगोद में जाएगा। निगोद में जाएगा, ऐसा १८वीं गाथा में कहा कि परद्रव्य को मेरा माने अथवा परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य करे, उसे दुर्गति होगी। भगवान कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखे, उसकी दुर्गति होगी। क्योंकि उसे राग होगा। राग का फल स्वर्ग है। स्वर्ग दुर्गति है। स्वर्ग में कहाँ सुख है? सुगति तो एक सिद्धगति है। आहाहा! बहुत अन्तर, भूपतभाई! कितना बदलना इसमें? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! क्या हो? भाई!

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (-जो परम सहज वैराग्यवन्त मुनि)... यह आर्तध्यान और जो भाव शुभ-अशुभ हैं, उन्हें छोड़ता है। जिससे कर्म बँधते हैं, उन भावों को छोड़ता है। आहाहा! **उसे नित्य केवलीमतसिद्ध...** ऐसे साधु को नित्य केवली ने स्वीकार किया हुआ **(केवलियों के मत में निश्चित हुआ)...** परमेश्वर के,

तीर्थंकरों के मत में सिद्ध हुआ वह सामायिक व्रत है। आहाहा! केवलियों के मत में निश्चित हुआ वह सामायिक है। आहाहा! अज्ञानियों ने कल्पित करके मत किया है, वह सामायिक नहीं है। केवली परमात्मा ने इस प्रकार से देखकर सिद्ध किया है। उसे सामायिक होती है। आहाहा! कठिन बात है। सम्प्रदाय की पकड़ होती है, पचास-पचास वर्ष निकाले वहाँ। अब उसमें कहते हैं कि वह सब मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्लोक-२१५

[अब इस १३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रान्ता)

त्यक्त्वा सर्वं सुकृत-दुरितं सन्सृतेर्मूलभूतं,
नित्यानन्दं व्रजति सहजं शुद्ध-चैतन्य-रूपम्।
तस्मिन् सद्दृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये,
पश्चादुच्चै: त्रिभुवनजनैरर्चित: सन् जिन: स्यात्।।२१५।।

(वीरछन्द)

भव-भव के जो मूलभूत सब पुण्य-पाप का करके त्याग।
सहज शुद्ध चैतन्यरूप आनन्द-नित्य को करता प्राप्त॥
वह सुदृष्टि जीवास्तिकाय में नित प्रति विचरण करता है।
फिर वह त्रिभुवनजन से पूजित-ऐसा जिनवर होता है॥२१५॥

श्लोकार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर, नित्यानन्दमय, सहज, शुद्धचैतन्यरूप जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है; वह शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है और फिर त्रिभुवनजनों से (तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित ऐसा जिन होता है॥२१५॥

श्लोक- २१५ पर प्रवचन

[अब इस १३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:]

त्यक्त्वा सर्वं सुकृत-दुरितं सन्सृतेर्मूलभूतं,
नित्यानन्दं व्रजति सहजं शुद्ध-चैतन्य-रूपम्।
तस्मिन् सद्दृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये,
पश्चादुच्चैः त्रिभुवनजनैरर्चितः सन् जिनः स्यात्।।२१५।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव...** जिसे आत्मा आनन्द का स्वाद आया है, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! देव-गुरु को माने, नव तत्त्व को माने, इसीलिए समकिती है, वह समकिती नहीं। नव तत्त्व के भेद को माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा भी शास्त्र में कहा है। कलश में आया है। नव तत्त्व के भेद हैं, उन्हें माने, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! एक स्वरूपी भगवान पूर्णानन्द का नाथ द्रव्यस्वभाव शक्ति से पूर्ण भरपूर, उसे जो सम्यक् रीति से माने, अनुभव से माने, वह **संसार के मूलभूत...** संसार का मूल कौन? पुण्य और पाप। आहाहा! संसार का-भटकने का मूल— पुण्य और पाप। आहाहा! ऐसे **सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,...** उन्हें छोड़ देता है। पुण्य-पाप का आदर नहीं करता। छोड़ देता है। आहाहा! **नित्यानन्दमय,...**

मुमुक्षु : आत्मा कैसा है, उसकी व्याख्या देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्या देते हैं। **नित्यानन्दमय,...** नित्य आनन्दमय। नित्य आनन्दवाला नहीं। नित्य आनन्दमय। आनन्दमय और आनन्दवाला इनमें अन्तर पड़ता है। आनन्दवाला, वह भेद पड़ता है। नित्य आनन्दमय प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! नित्य अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मा अन्दर विराजता है।

सहज, (स्वाभाविक) शुद्धचैतन्यरूप... और चैतन्य जिसका रूप स्वाभाविक है। आहाहा! अन्दर जानना-देखना, वह तो उसका सहज स्वरूप है। वह तो अनादि का उसका-आत्मा का नित्य स्वरूप है। आहाहा! ऐसे **जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...**

सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य-पाप को छोड़कर ऐसे **जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...** देखा? अस्तिकाय लिया। अस्तिकाय असंख्य प्रदेशी है। जैनमत के अतिरिक्त अन्यमत में यह कहीं नहीं है। एक वीतरागमार्ग में ही असंख्य प्रदेशी है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,... आहाहा! **नित्यानन्दमय, सहज, शुद्धचैतन्यरूप जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...** उन्हें छोड़ता है और इसे प्राप्त करता है। छोड़ता है, यह भाषा व्याख्यान में... और इसे प्राप्त करता है तो वह छूट जाता है। अस्ति से। नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु को पकड़ता है, उसमें लीन होता है, इससे पुण्य और पाप दोनों छूट जाते हैं। छोड़ना नहीं पड़ते परन्तु उपदेश में तो ऐसा ही आवे न! छोड़ता है, ऐसा आया।

वह शुद्ध जीवास्तिकाय में... आहाहा! शुद्ध जीवास्तिकाय कहा। देखा? जीव में, ऐसा नहीं। जीवास्तिकाय असंख्य प्रदेशी है। आहाहा! जीव के असंख्य प्रदेश हैं। जैसे सांकल में मकोड़ा-कड़ी, ५०-१००-२०० हो। उसी प्रकार आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेश का पूरा पिण्ड है। आहाहा! **सदा विहरता है... शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है...** आहाहा! **और फिर त्रिभुवनजनों से...** फिर कहते हैं कि केवलज्ञान होगा उसे। इसलिए **त्रिभुवनजनों से (तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित...** आहाहा! फिर इन्द्रों से पूज्य है। केवलज्ञान होगा, इसलिए तीन लोक के अग्रेसर मुख्य जीव हैं, वे सब पूजेंगे। आहाहा! पहले ऐसी सामायिक करे, तब वह पुण्य-पाप को तजता है और फिर जब पूर्ण होता है, (तब)... आहाहा! **पूजित ऐसा जिन होता है।** त्रिभुवनजनों से। देखा? तीन भुवन के जनों से, तीन लोक के जीवों से। इन तीन लोक में ऊँचा जीव हो, वही गिना जाता है। दूसरे भानरहित हों, वे गिनने में नहीं आते। आहाहा! तीन लोक से पूजित है। वे तो सब गरीब मनुष्य, मिथ्यादृष्टि सब आना चाहिए परन्तु इसका अर्थ जगत में जो सम्यग्दृष्टि और धर्मी जीव हैं, वे तीन लोक में बड़े हैं। उनसे वह पूज्य है। आहाहा! है? **(तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित ऐसा...** अत्यन्त पूजित ऐसा। **जिन होता है।** आहाहा! पूरा-पूरा वीतराग और जिन होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२१६

(शिखरिणी)

स्वतः-सिद्धं ज्ञानं दुरघ-सुकृतारण्य-दहनं,
महामोहध्वान्तप्रबलतरतेजोमयमिदम् ।
विनिर्मुक्तेर्मूलं निरुपधि-महानन्द-सुखदं,
यजाम्येतन्नित्यं भवपरिभवध्वन्सनिपुणम् ।।२१६।।

(वीरछन्द)

स्वतः सिद्ध यह ज्ञान शुभाशुभवन दहने को अग्नि समान।
महामोहतम नाश हेतु जो प्रबल तेजमय सूर्य समान॥
यह विमुक्ति का मूल महा निश्छल आनन्द सुखदायक है।
नित्य पूजता हूँ मैं इसको भव विध्वंस हेतु पटु है ॥२१६ ॥

श्लोकार्थ : यह स्वतःसिद्ध ज्ञान पाप-पुण्यरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है, महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है, विमुक्ति का मूल है और *निरुपाधि महा आनन्दसुख का दायक है। भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को मैं नित्य पूजता हूँ ॥२१६ ॥

प्रवचन-१५०, श्लोक-२१६-२१७, गाथा-१३१-१३२,
मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण १३, दिनांक १०-०६-१९८०

नियमसार २१६ (कलश)

स्वतः-सिद्धं ज्ञानं दुरघ-सुकृतारण्य-दहनं,
महामोहध्वान्तप्रबलतरतेजोमयमिदम् ।
विनिर्मुक्तेर्मूलं निरुपधि-महानन्द-सुखदं,
यजाम्येतन्नित्यं भवपरिभवध्वन्सनिपुणम् ।।२१६।।

* *निरुपाधि=छलरहित; सच्चे; वास्तविक।*

श्लोकार्थ : आहाहा ! **यह स्वत:सिद्ध ज्ञान...** भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञानप्रधान, वह स्वयंसिद्ध है। किसी से हुआ नहीं और किसी से नया हुआ नहीं-सादि हुआ नहीं; अनादि-अनन्त स्वत:सिद्ध। उसका स्वरूप ही अनादि-अनन्त स्वत: सिद्ध ज्ञान है। आहाहा ! वह ज्ञान **पाप-पुण्यरूपी वन को...** आहाहा ! ज्ञानस्वभाव भगवान में अन्तर्मुख होने से, बहिर्मुख से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव को वह **जलानेवाली अग्नि है,...** आहाहा ! **पाप-पुण्यरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है,...** आहाहा ! समझाना है। बाकी तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है। अन्दर जाए और स्थिर होता है, इसलिए पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते, उसे यहाँ जलानेवाली अग्नि कहा जाता है। आहाहा ! कर्तव्य तो यह है, करना होवे तो यह है; बाकी मनुष्य के भव को अफल करना हो तो यह है। अफल अर्थात् भव न करना हो तो। अनादि से सफल भव करता है। आहाहा !

प्रवचनसार में आता है न ? कि संसार मिलता है, वह सफल है। अनादि से जो मिलता है, वह सफल है और धर्म है, वह अफल है। आता है न ? आहाहा ! अनादि से ज्ञानस्वरूप से विरुद्ध भाव का फल सफल है। चार गति सफल है। आहाहा ! और ज्ञानस्वरूपी वस्तु है, उसे भव नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप अफल है। उसे अब भव भ्रमण का फल नहीं है। आहाहा !

ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, (वह) पुण्य-पापरूपी वन को जलाने के लिये अग्नि है। आहाहा ! एक-एक शब्द में बारह अंग का सार है। करनेयोग्य है और यह करने से इसके भव का अभाव हो, ऐसा है। बाकी इसका कोई उपाय नहीं है। आहाहा ! क्योंकि एक द्रव्य तो दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता। सँभाल नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता, रख नहीं सकता, फोड़ नहीं सकता, सँभाल नहीं सकता। आहाहा ! एक आत्मतत्त्व किसी दूसरे तत्त्व को सँभाल नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता। आहाहा ! यह करे तो अज्ञानभाव करे, नहीं तो ज्ञानभाव इसका स्वभाव है। वह तो-अज्ञान तो नया उत्पन्न करता है। पुण्य और पाप मेरे—यह तो अज्ञानभाव है। परन्तु पुण्य और पाप को जलानेवाली अग्नि, यह ज्ञानस्वरूप से सिद्ध, ज्ञानस्वरूपी सिद्ध, अस्तित्व-जिसकी अस्ति ज्ञानस्वभावी है, वह ज्ञानस्वभाव, पुण्य-पापरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है। आहाहा ! वन लिया वन। पुण्य-पाप का वन। आहाहा !

अनन्त काल से पुण्य और पाप के अनेक प्रकार सेवन करता आया है। उनमें परिभ्रमण करता आता है, इसलिए उन्हें वन कहा है। पुण्य-पाप का वन, उसे जलानेवाला प्रभु आत्मा ज्ञान है। वह ज्ञानस्वभाव स्वत:सिद्ध है। किसी से निष्पन्न, किसी से प्राप्त, किसी से बना, किसी से रचित नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान ज्ञानस्वभाव, (वह) पुण्य-पाप का जो वन विस्तार, अनन्त काल में, चार गतियों में चौरासी का जो विशाल वन पड़ा है, उसको जलानेवाली वह अग्नि है। आहाहा! एक बात।

महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है,... और कैसा है? महामोह-अन्धकार—राग को अपना मानना, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव-मिथ्यात्व। राग का कण भी अपना है – ऐसा जो मिथ्यात्व महामोहान्धकार है; क्योंकि राग स्वयं ही अन्धकार है। मिथ्यात्व भी अन्धकार है। राग मेरा और राग मैं—यह मिथ्यात्वरूपी अन्धकार है। ऐसा महामोहान्धकार, ऐसा लिया है न? ऐसे अन्धकार का नाशक... आहाहा! उस मिथ्यात्व का नाशक **अति प्रबल तेजमय है,...** आहाहा! अति-जोरदार तेजमय है। अन्तरस्वरूप भगवान महामोहरूपी अन्धकार को प्रकाशमय चीज़ से उसे जलाने को तेजमय है, तेजमय है। आहाहा! **अति प्रबल तेजमय है,...** ज्ञानस्वरूपी भगवान की विरुद्ध मान्यतारूप—मैं पर का कुछ करूँ, पर से कुछ लूँ और पर को कुछ मदद करूँ—ऐसा जो महामोहान्धकार मिथ्यात्व, उसे (जलाने को) यह ज्ञानस्वभाव तेजमय है, तेजमय है। उसे नाश करने के लिये तेजमय है। आहाहा! थोड़े में बहुत समाहित कर दिया है।

विमुक्ति का मूल है... विशेष मुक्ति अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति; मुक्ति अर्थात् परम आनन्द की पर्याय में प्राप्ति। उसका यह मूल है। ज्ञान, वही ज्ञानस्वरूप, त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उस विमुक्ति-विशेष मुक्ति का वह मूल है। आहाहा! उसके आश्रय से मुक्ति होती है। कोई दया, दान और व्रत के परिणाम से मुक्ति नहीं होती। आहाहा! कठिन लगे, लोगों को एकान्त लगे। यद्यपि अब तो लोग विचार में चढ़ गये हैं। नहीं तो एकान्त यह तो क्या? आहाहा!

चैतन्यपुंज प्रभु, ज्ञान का अस्तित्व-सत्ता; वह अनादि का जो महामोहान्धकार, राग और पुण्य तथा पर को अपने मानने का जो मिथ्यात्वभाव, ऐसा जो अन्धकार, उसका नाश करने को... आहाहा! अतिप्रबल तेजमय है। अति जोरदार तेजमय है। चैतन्य के तेज, अति प्रबल तेजमय है। आहाहा! करना क्या? यह। आहाहा! अति प्रबल महातेज जो मिथ्यात्व

अन्धकार, उसे नाश करने में यह समर्थ है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा या स्वाध्याय या वाँचन या विकल्प, वह कोई नाश करने को समर्थ नहीं है। आहाहा!

विमुक्ति का मूल है... विशेष मुक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन में तो मुक्तस्वरूप है - ऐसा ज्ञात होता है, परन्तु विशेष मुक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्ति। आहाहा! पूर्ण शुद्ध आनन्द-ऐसी विमुक्ति, उसका वह ज्ञानस्वरूप तेजमय-जोरदार मूल है। विमुक्ति का तो वह मूल है। आहाहा! क्योंकि वह मुक्तस्वरूप है, निरावरण है। जिसमें कलुषित और कलंक का अभाव है। ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, वह विमुक्ति का मूल है। वह पूर्ण मुक्ति का मूल है। पहले साधारण बात की कि मोहान्धकार-मिथ्यात्व का नाश, पुण्य-पाप को जलानेवाली अग्नि - यह पहले बात की। फिर विशेष ले गये कि यह तो **विमुक्ति का मूल है...** आहाहा! इतने से इतना नहीं, परन्तु पूर्ण मुक्ति होती है... आहाहा! उसका यह मूल है।

***निरुपाधि=छलरहित; सच्चे; वास्तविक।* महा आनन्दसुख का दायक है।** आहाहा! दुनिया में कल्पना, ठगाई मानकर सुख मानता है (कि) इसमें सुख है, विषय में सुख है, पैसे में सुख है। आहाहा! पुत्र उत्तराधिकार रखेगा, इसमें सुख है-यह महामोहान्धकार है। आहाहा! इसका नाश करके, **निरुपाधि महा आनन्दसुख का दायक है।** महा आनन्द, महा आनन्द - ऐसा जो सुख; उसका भगवान चैतन्यस्वरूप दातार है। आहाहा! एक श्लोक में तो कितना कहा! समाधिशतक! यह समाधि है। आहाहा! समाधि.. समाधि.. समाधि.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहा..! महा उपाधिरहित, महा आनन्द सुख का दातार है। कौन? ज्ञानस्वरूप सत्ता। जो ज्ञानस्वरूप सत्ता है, वह इस सुख की उत्पन्न करनेवाली है।

भवभव का ध्वंस करने में... आहाहा! **भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को...** आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान **भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को...** इस ज्ञान को-ऐसा लिया है न? अर्थात् प्रत्यक्ष। आहाहा! यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, उसे **मैं नित्य पूजता हूँ।** मेरा आदर त्रिकाली भगवान आत्मा के प्रति है, उसे मैं पूजता हूँ, उसका मुझे आदर है। बाकी उसके अतिरिक्त मुझे किसी चीज़ का आदर नहीं है। आहाहा! यह धर्मी का लक्षण। किसी का कुछ एक रजकण का भी कर नहीं सकता और स्वयं पूर्ण अपना कर सकता है। आहाहा! स्वयं पूर्ण स्वरूप भरपूर तेज-बल है। वह महामोहान्धकार का भी नाश करने को समर्थ है। पर का—एक रजकण बदलने में समर्थ नहीं। आहाहा!

आँख की पलक फिराने को भी भगवान समर्थ नहीं है, परन्तु अपना महाअन्धकार जो अनादि का मोह अन्धकार... आहाहा! उसे यदि अन्तर्दृष्टि करे तो नाश हो, ऐसी उसमें ताकत है। आहाहा!

भवभव का ध्वंस करने में निपुण... आहाहा! भवभव का नाश करने में आत्मा निपुण है। उसमें वह ज्ञानस्वभाव चतुर है। जगत की चतुराई यहाँ काम नहीं करती। भवभव का... आहाहा! **ध्वंस करने में निपुण...** है। इसका नाम निपुणता है। भवभव का ध्वंस करने में भगवान ज्ञान सत्ता, त्रिकाली स्वभाव एकरूप ध्रुव रहनेवाला, वह भवभव का नाश करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को.. यह सब विशेषण दिये। ऐसे इस आत्मा को। इस अर्थात् यह प्रत्यक्ष जो आत्मा भगवान प्रसिद्ध है, प्रत्यक्ष है, व्यक्त है। आहाहा! वही चीज़ है, वह प्रत्यक्ष है। उसे **मैं नित्य पूजता हूँ।** है? उसे नित्य पूजते हैं। हमेशा समय-समय मेरा झुकाव ही वहाँ है। आहाहा! परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अकेला ज्ञानज्योति तेज, उस पर मेरा झुकाव-उन्मुखता है, वह नित्य पूजन है। आहाहा! एक श्लोक (पूरा हुआ)।

श्लोक-२१७

(शिखरिणी)

अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् सन्सृतिवधू-
धवत्वं सम्प्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः।
क्वचिद् भव्यत्वेन व्रजति तरसा निर्वृतिसुखं,
तदेकं सन्त्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति।।२१७।।

(वीरछन्द)

अघ समूह के वश यह चेतन संसृति-रमणी पति होकर।
कामजनित सुख हेतु जी रहा आकुल मतिवाला होकर॥

और कभी भव्यत्व भाव से शीघ्र मुक्ति सुख करता प्राप्त।
उसे छोड़कर चलित न हो वह सिद्ध कभी उसके पश्चात्॥२१७॥

श्लोकार्थ : यह जीव अघसमूह के वश संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके (अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के वश संसाररूपी स्त्री का पति बनकर) कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। कभी भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है, उसके पश्चात् फिर उस एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता (अर्थात् एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य, अनुपम तथा परिपूर्ण है कि उसे प्राप्त करके उसमें आत्मा सदाकाल तृप्त-तृप्त रहता है, उसमें से कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता)॥२१७॥

श्लोक- २१७ पर प्रवचन

२१७ (श्लोक।)

अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् सन्सृतिवधू-
धवत्वं सम्प्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः।
क्वचिद् भव्यत्वेन व्रजति तरसा निर्वृतिसुखं,
तदेकं सन्त्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति।।२१७।।

आहाहा! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं। यह करो.. यह करो.. यह करो.. इसमें कुछ आत्मा को जरा भी लाभ नहीं मिलता। किसी की आलोचना नहीं है, वह प्रभु है। उल्टी दशा करेगा तो उसे दु:ख होगा। जैसा स्वरूप है, उससे दूसरे प्रकार से मानेगा तो उस जीव को दु:ख होगा। किसी जीव को दु:ख हो, यह इच्छनेयोग्य है ? आहाहा! सभी जीव सुखी होओ। आत्मा में जाकर आठ कर्मों का नाश करो और प्रभु होओ। आहाहा! सभी आत्मायें भगवान होओ। आहाहा! यह अपना जोर बताते हैं। मैं भगवान होनेवाला हूँ, तो फिर तुम आत्मा हो न ? मैं आत्मा हूँ तो भगवान होनेवाला हूँ, तो तुम भी आत्मा हो न, प्रभु! तुम आठ कर्मों का नाश करके भगवान होओ। कोई वैर-विरोध या शत्रु जगत में है नहीं। सब परमात्मा है। आहाहा! मत-मतान्तर के कारण सब भेद पड़ गये, परन्तु वस्तु तो अन्दर भगवान परिपूर्ण है। उसमें कोई मत-मतान्तर लागू नहीं पड़ता। आहाहा!

वस्तुस्वरूप जो है, उसमें कोई कम, अधिक, विपरीत नहीं कर सकता। कल्पना में, पर्याय की कल्पना में ऐसा करे, आहाहा! परन्तु इस तेज का बल ऐसा है, कहते हैं.. आहाहा! भव-भव का नाश करनेवाला। महामोह—ऐसा कहने से मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! जो मिथ्यात्व का जोर अनादि से है.. आहाहा! उसका भी नाश करने में समर्थ है। ऐसा नहीं कि अनादि का है, इसलिए... इससे शब्द आया न? महामोह... जीवों को... आहाहा! यहाँ इस ओर। **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है,...** अनादि से भले उसका बल चला। आहाहा! स्वयं कहेंगे। अन्तिम श्लोक में कहते हैं न? एक में कहीं कहते हैं। कर्म ने हैरान किया है। आहाहा! अन्तिम श्लोक है। अरेरे! मैं ऐसा आत्मा! कर्म से मारा गया हूँ। मारा गया हूँ अर्थात् मैंने मेरा लक्ष्य पर के ऊपर करके मेरी चीज़ को मैंने देखा नहीं, माना नहीं, जाना नहीं, माहात्म्य आया नहीं। अन्तिम श्लोक है न कहीं?

मुमुक्षु : पृष्ठ २४६

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आ गया है। २४६? यह आ गया है। अहो! २४६ पृष्ठ। **अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुण सम्पदा को...** मेरे हृदय में विराजमान यह निज आत्मगुणसम्पदा—**कि जो समाधि का विषय है...** आहाहा! बाद मैं समाधि (अधिकार)लेना है न? इसलिए उसका उपोद्घात करते हैं। जो आनन्द का विषय है। शान्ति... शान्ति... शान्ति का विषय है। वह विकार का, भव का विषय आत्मा नहीं है। आहाहा! **उसे मैंने पूर्व में एक क्षण भी जाना नहीं है।** आहाहा! उस समाधि का विषय, **उसे मैंने पूर्व में एक क्षण भी जाना नहीं है।** वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! ज्ञान किया। तीन लोक के वैभव के प्रलय अर्थात् नाश के **हेतुभूत दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुण शक्ति से...** आहाहा! यहाँ महामोहान्धकार कहा है न? आहाहा!

प्रभुत्वशक्ति से अरे रे! मैं संसार में मारा गया हूँ। आहाहा! मैंने मेरी चीज़ को देखे बिना, मेरी चीज़ की संभाल किये बिना, अरे रे! कर्म के कारण मेरे लक्ष्य में, उसमें मैं मारा गया हूँ। आहाहा! कर्म को लक्ष्य में लिया, भगवान को लक्ष्य में से छोड़ दिया। आहाहा! इसलिए मैं मारा गया हूँ। आहाहा! और इसका अर्थ यह कि मैं अब मरनेवाला नहीं हूँ। अब ऐसा तेजबल मेरे चैतन्य में आया है। अब उस (मोह) अन्धकार का नाश करके मैं जागृत हुआ हूँ। आहाहा! वह प्रायश्चित्त अधिकार है न?

(कलश) २१७। **श्लोकार्थ : यह जीव अघसमूह के वश...** पाप और पुण्य के समूह के वश से। आहाहा! भगवान अनन्त चमत्कारी चीज़ है, जो एक काल, एक समय और तीन काल को जाने, उसकी सत्ता में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय। उसमें एक ही पर्याय में ऐसा जाने। ऐसा चमत्कारी प्रभु... आहाहा! **अघसमूह के वश...** पाप और पुण्य के समूह के वश से। उनके आधीन होता हुआ, ऐसा होने पर भी। आहाहा! यहाँ कर्म के वश नहीं कहा। अघसमूह के वश से। अपने पुण्य और पाप के विकारी भाव के वश से **संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके...** संसाररूपी दशा का पतिपना पाकर। उसका स्वामी हुआ। आहाहा! विकारीदशा। तीन लोक का नाथ भगवान, जिसमें विकार की गन्ध नहीं। उसे भूलकर, अरे रे! मैं विकृति अवस्था का स्वामी हुआ—विकृति अवस्था का पति हुआ। आहाहा!

प्राप्त करके (अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के वश संसाररूपी स्त्री का पति बनकर)... आहाहा! शुभ और अशुभ जो भाव, उनके स्वामीपने उनके वश होकर। भगवान शुभाशुभभावरहित प्रभु आनन्द का नाथ है, उसे भूलकर **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर...** आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों में कामजनित। काम से-इच्छा से उत्पन्न होते ऐसे **सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर...** आहाहा! जो निराकुल प्रभु, वह आकुलता में आकुलता जनित होकर। कामजनित में आकुल होकर, आहाहा! **जी रहा है।**

कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! अनादि संसार में इस प्रकार से जीता है। आहाहा! स्वयं निष्काम चीज़ है, उसे छोड़कर परपदार्थ की इच्छा जो काम-भोग आदि, पाँचों ही इन्द्रियों के विषय की कामना के वश से स्त्री का पति बनकर, उस विकार की दशा का पति बनकर। आहाहा! **(संसाररूपी स्त्री का पति बनकर)** आहाहा! ऐसा बनकर जीता है, कहते हैं। आहाहा! ठगों की टोली में जीता है। स्वयं अन्दर भगवान है, उसके सन्मुख नहीं देखता। आहाहा! समय नहीं मिलता। अभी नहीं, बाद में बात, बाद में बात। आहाहा! देह के छूटने का काल क्षण में आकर खड़ा रहेगा। बाद में बाद रह जाएगा। बाद में तो बाद रह जाएगा। आहाहा!

आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! अज्ञानी का जीवन अनादि का

कैसा है ?—कि कामजनित आकुलतावाली मति से जीता है। बाहर की कोई भी इच्छा यह.. यह.. यह.. स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति की कामना से जीता है, उसका पति-स्वामी होकर जीता है। वे सब मेरे हैं। आहाहा! जो इसके स्वप्न में भी इसके नहीं। आहाहा! बाहर में तो नहीं, परन्तु स्वप्न में भी इसके नहीं। उन्हें अपना मानकर... आहाहा! **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर...** आहाहा! ऐसा करूँ, इससे मिलेगा, इससे मिलेगा, इससे मिलेगा। बाहर से सुख (मिलेगा)... आहाहा! इस प्रकार अनादि से जीता है।

कभी भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,... वह का वह अपने आत्मा के स्वभाव की सँभाल करके, भव्यत्व की योग्यता से, अपने स्वभाव की योग्यता की कीमत करके, उस भव्यता को प्राप्त करके... आहाहा! **शीघ्र मुक्तिसुख को...** यहाँ लिया शीघ्र मुक्तिसुख को। उसमें तो उसका पति होकर रहता था। कब ? कि भव्यत्व द्वारा अपनी योग्यता और लायकात द्वारा, आनन्द और ज्ञान की जिसकी लायकता है। आहाहा! उसकी प्रभुता की योग्यता के कारण शीघ्र-अल्प काल में **मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,...** या इसी भव में या दूसरे भव में, परन्तु मुक्ति प्राप्त करता है। ऐसी सामर्थ्यवाला है। आहाहा! बाहर की कामजनित आकुलता के सुख को प्राप्त करके उसका स्वामी होता है। परन्तु कहते हैं कि एक बार यह देख तो भव्यत्वपने को प्राप्त करके तुझे शीघ्र-अल्प काल में केवलज्ञान होगा। अल्प काल में। केवलज्ञानस्वरूप है, केवलज्ञानस्वरूप है। केवलज्ञानस्वरूप है ही। वह शीघ्र भव्यता के कारण प्राप्त कर सकेगा। आहाहा!

उसके पश्चात् फिर... मुक्त हुआ, इसलिए अब **फिर उस एक को छोड़कर...** आहाहा! मुक्ति के सुख को-एक को छोड़कर, आनन्द के सुख को-आत्मा के सुख को एक को छोड़कर **वह सिद्ध चलित नहीं होता...** वे सिद्ध वहाँ से हटते नहीं हैं। उन्हें फिर से अवतार धारण नहीं करना पड़ता। आहाहा! कितने ही कहते हैं न कि सिद्ध होते हैं, परन्तु फिर वापस आते हैं। यहाँ जीव घट जाए, जीव घट जाए, फिर वापस आते हैं। सिद्ध में से वापस आते हैं। आहाहा! यह एक। भाषा देखी! **एक को छोड़कर...** एक स्वरूप भगवान चिदानन्द **एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता...** सिद्ध भगवान चलित नहीं होते, अवतार धारण नहीं करते। आहाहा!

(अर्थात् एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य,...) मुक्ति का सुख अनन्य। अन्य नहीं – ऐसा। **अनुपम...** उपमा नहीं – ऐसा **तथा परिपूर्ण है...** आहाहा! मुक्ति का सुख कैसा है ? अनन्य है। अन्य-अन्य नहीं। अनन्य है। वह का वही एकरूप रहनेवाला है। आहा! अनुपम-जिसकी उपमा नहीं। और जो परिपूर्ण है। आहाहा! **कि उसे प्राप्त करके...** ऐसा जो परिपूर्ण है **कि उसे प्राप्त करके उसमें आत्मा सदाकाल तृप्त-तृप्त रहता है,...** आहाहा! सबमें से निकलकर एक आत्मा में ही सदाकाल—सादि-अनन्त तृप्त-तृप्त रहते हैं। आहाहा! **उसमें से कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता।** आहाहा! सिद्ध के सुख को प्राप्त होकर, पश्चात् किसी दूसरे के सुख के कारण दुनिया में वैर रखोगे तो बढ़ जाए तो जन्म लेना पड़े, ऐसा सिद्ध को नहीं है। आहाहा!

कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता। आहाहा! अनाकुल आनन्द सुख को प्राप्त कर, वह तो वापस शीघ्र प्राप्त कर, उसे लम्बा काल नहीं होता। संसार है, वह तो अनादि-सान्त है और मोक्ष है, वह तो एक क्षण में प्राप्त होता है; पश्चात् सादि-अनन्त रहता है। भूतकाल की अपेक्षा अनन्त गुना रहता है और वह भी शीघ्र प्राप्त करके... आहाहा! अपनी जाति को जानने पर, अपनी जाति को पहिचानने पर शीघ्र पूर्ण सुख को प्राप्त करता है। आहाहा! वह सुख कहीं से लेने नहीं जाना है। अन्यत्र कहीं सुख है ही नहीं। आत्मा के अतिरिक्त कहीं सुख मानना, वह मिथ्याभ्रमणा है। आहाहा!

मृग की नाभि में कस्तूरी, उसकी गन्ध बाहर में खोजने जाता है। वह कहाँ मिले ? इसी प्रकार यह अन्दर में सुख, आनन्द है। यह बाहर में—स्त्री में, पुरुष में, पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में खोजने जाता है। आहाहा! कहीं है नहीं; सर्वत्र दुःख है। यह एकरूप सुख, वह सुख है। एकरूप सुख मिटकर दूसरी आकुलता जरा भी नहीं होती। आहाहा! थोड़े में भी बहुत समाहित कर दिया है।

गाथा १३१-१३२

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३१।।
जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३२।।

यस्तु हास्यं रतिं शोकं अरतिं वर्जयति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१३१।।
यः जुगुप्सां भयं वेदं सर्वं वर्जयति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१३२।।

नवनोकषायविजयेन समासादितसामायिकचारित्रस्वरूपाख्यानमेतत्। मोहनीयकर्मसमुपजनितस्त्रीपुन्नपुन्सकवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साभिधाननवनोकषायकलितकलङ्कपङ्कात्मकसमस्तविकारजालकं परमसमाधिबलेन यस्तु निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमतपोधनः सन्त्यजति, तस्य खलु केवलिभट्टारकशासनसिद्धपरमसामायिकाभिधानव्रतं शाश्वतरूपमनेन सूत्रद्वयेन कथितं भवतीति।

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३१॥
जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३२॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [हास्यं] हास्य, [रतिं] रति, [शोकं] शोक और [अरतिं] अरति को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

[यः] जो [जुगुप्सां] जुगुप्सा, [भयं] भय और [सर्व वेदं] सर्व वेद को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह नौ नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।

मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा नाम के नौ नोकषाय से होनेवाले कलंकपंकस्वरूप (मल-कीचड़स्वरूप) समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से जो निश्चयरत्नत्रयात्मक परम तपोधन छोड़ता है, उसे वास्तव में केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ परम सामायिक नाम का व्रत शाश्वत्‌रूप है, ऐसा इन दो सूत्रों से कहा है।

गाथा - १३१-१३२ पर प्रवचन

गाथा।

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३१।।

जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३२।।

आहाहा! केवलीशासन में होती है, अन्यत्र होती नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३१॥

जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३२॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वयं कहते हैं कि मैं कहता हूँ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! केवली के शासन में केवली भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा! केवलीशासन में ऐसी सामायिक कही है। हम कहते हैं, ऐसा नहीं, भगवान ने कहा है। भगवान के मार्ग

में यह मार्ग है। आहाहा! ऐसी सामायिक केवलीशासन में होती है। ऐसी सामायिक अन्यत्र नहीं होती। आहाहा!

टीका : यह नौ नोकषाय की विजय द्वारा... नौ है न ? हास्य, रति, अरति आदि। ये नौ नोकषाय है। इन **नौ नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले...** इन्हें विजय करके प्राप्त होनेवाले **सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।** इस हास्य को, रति को, अरति को, जुगुप्सा को, भय को, वेद को जीतकर आत्मा के सुख की विजय प्राप्त की है। **नोकषाय की विजय द्वारा...** आहाहा! ऐसी इसमें ताकत है। नोकषाय तो उत्पन्न हुई पर्याय में क्षणिक विकृत संसार है और वस्तुस्वरूप तो त्रिकाल विजयस्वरूप है। आहाहा! पर के ऊपर विजय प्राप्त करे, ऐसा प्रत्यक्ष स्वभाव है। उसके विरुद्ध से इसे कोई जीत सके – ऐसा यह नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... **सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।**

नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले... आहाहा! विषय की वासना, रति-अरति, हास्य-दाँत निकालना, प्रसन्न होना – इन सबको छोड़कर सामायिक की प्राप्ति हो, वहाँ नौ नोकषाय की विजय प्राप्त होती है। आहाहा! हास्य भी परिग्रह है न ? पाप है न ? आहाहा! दुनिया की चीज़ को देखकर, दुनिया की चीज़ को देखकर हर्ष करना, वह पाप है। आहाहा! हास्य करना, रति करना, अरित करना, प्रतिकूलता में खेद करना, अनुकूलता में रति-प्रसन्न होना। आहाहा! विषय की वासना, स्त्री या पुरुष या नपुंसक की। तीनों वासना दु:खरूप है। इन पर विजय करके प्राप्त होनेवाली सामायिक, इन्हें जीतकर प्राप्त होनेवाली सामायिक। आहाहा!

यहाँ तो सामायिक का रूप ऐसा कर डाला। वस्त्र बिछाकर चाहे जो कर डाले। हो गयी सामायिक, लो! दो घड़ी हो गयी। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि एक समय की समाायिक भव का अन्त लावे। समता की आय-लाभ। समतास्वरूप भगवान, वीतरागस्वरूप का लाभ होने पर, उसके सन्मुख होकर पर्याय में शान्ति आने पर, उसका नाम सामायिक है। वह भव के अन्त का कारण है। आहाहा! यह बाहर की समझे बिना का बाहर का क्रियाकाण्ड करे, वह संसार है। वह संसार का पति है। आहाहा! उसका वह स्वामी होता है। आहाहा! स्वामीपने की चीज़ है, उसका स्वामी नहीं होता और जिसका स्वामी नहीं है,

क्षणिक विकृत उत्पन्न हो, उसका स्वामी होकर भटकता है। आहाहा! उसे जीतकर... आहाहा! **सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।**

मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद,... मोहनीयकर्म से उत्पन्न हुआ स्त्री का वेद, **पुरुषवेद,...** आहाहा! **नपुंसकवेद,...** पावैया, हीजड़ा। उसे जो अन्दर विकार की वृत्ति होती है। आहाहा! **हास्य,...** नवीनता देखकर हास्य होता है। जगत में कुछ नवीनता है नहीं। जो है, उस प्रमाण व्यवस्थित द्रव्य-गुण और पर्याय से सभी द्रव्य विराजमान हैं। जो द्रव्य है, वे अपनी-अपनी पर्यायसहित विराजमान हैं। नवीन कुछ है नहीं। परन्तु नवीन देखकर हास्य करता है, वह पाप है। आहाहा! **रति,...** अनुकूल देखकर प्रसन्न होना। प्रसन्नता में आ जाना। आहाहा! अनुकूल देखकर प्रसन्नता में प्रसन्न होना, वह पाप है।

अरति,... प्रतिकूल देखकर दु:ख में अप्रसन्न होना। प्रतिकूलता में अरुचि होना... आहाहा! वह अरति है, वह सब विकार है। आहाहा! **शोक,...** छोटा बालक आदि मर गया हो, पुत्र मर जाए, उसका शोक होना। **भय...** अपनी कमजोरी देखकर, दूसरे की चीज़ की महिमा देखकर भय होना। आहाहा! किसका भय? **और जुगुप्सा...** ग्लानि। कोई भी चीज़ देखकर ग्लानि। सड़ी हुई चीज़, विष्ठा, सड़ा हुआ सूकर मर गया हो, मर गयी बिल्ली, मर गया चूहा, उसे देखकर ग्लानि करना, वह पाप है। आहाहा! आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह जानता है। पर को जानता है, यह अभी व्यवहार है। उसके बदले जानने उपरान्त ग्लानि और रति, अरति उत्पन्न करना, वह जहर है। आहाहा! वह दु:ख है।

मुमुक्षु : पापभाव में ग्लानि आवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्लानि आवे, वह राग है। उतना विकल्प है न? पाप पर लक्ष्य ही है, वह दु:ख है। लक्ष्य बदल डालकर ऐसे भगवान पर लक्ष्य करना, किसी चीज़ पर ग्लानि नहीं, रति नहीं, अरति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर में जाए तो ही उसे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्तर में उतरे, तब यह... यहाँ तो पर्यायबुद्धि छोड़कर। संक्षिप्त भाषा तो यह है। पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि में जाए, तब टाल सकता है। संक्षिप्त यह है। विस्तार करें तो फिर बहुत अधिक विस्तार होता है, परन्तु सबका संक्षिप्त में सार

यह है। आहाहा! पर्याय की वर्तमान बुद्धि बाहर में जाती है। आहाहा! इससे ठीक और अठीक—ऐसी कल्पना उठाता है। ज्ञेय हैं, उसमें दो भाग नहीं है। ज्ञेय में ये अरिहन्त ज्ञेय ठीक है; शत्रु ठीक नहीं—ऐसा ज्ञेय में नहीं है। है ज्ञेय में ? आहाहा! एक ओर भगवान ज्ञान है तथा एक ओर ज्ञेय है। जानने का-जानने का है। जानने में दो भाग करे कि यह ठीक है और (यह) अठीक है, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा मार्ग, लो!

मुमुक्षु : सुनकर निश्चित तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चय तो करे। विचार करे। पहले सुने, निर्णय करे, विचार करे कि इस प्रमाण ही करनेयोग्य है। उसे वीर्य में इतना बन्दोवस्तु कर दे कि करनेयोग्य यही है और... वीर्य में, ज्ञान में, ध्यान में ऐसा लिया जाए कि यह चीज़ करनेयोग्य है और यह चीज़ करनेयोग्य नहीं है। ऐसा ध्यान में तो ले, ज्ञान में तो ले—ऐसा कहते हैं। आहाहा! पश्चात् उस दशा को बदले। पर के ऊपर का लक्ष्य बदलकर स्व के ऊपर ला। आहाहा! ऐसी बात है। बाहर की किसी क्रिया-प्रवृत्ति से वह बने - ऐसा नहीं है, क्योंकि बाहर की क्रिया - प्रवृत्ति उसमें है ही नहीं। शरीर, वाणी, मन बैठ जाए, इसलिए वहाँ स्थिर होता है - ऐसा नहीं है। वह तो सब परचीज़ है। शरीर और वाणी ऐसे बैठ जाए, इसलिए वहाँ स्थिरता होती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! जो परचीज़ है, उसे स्पर्श नहीं करता। उसके अस्तित्व में, उसके अंश में पर्याय भी नहीं है। द्रव्य-गुण में तो नहीं, परन्तु उसकी विकृत अवस्था भले हो, विकृत अवस्था में कहीं परचीज़ की अस्ति नहीं है। विकृत अवस्था हो। आहाहा! परद्रव्य का अस्तित्व इसकी विकृत अवस्था में भी नहीं है। आहाहा! इसलिए उस विकृत अवस्था को छोड़कर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में जा। वहाँ तुझे शान्ति प्राप्त होगी, वहाँ तुझे आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि वह आनन्द का सागर है। वह ज्ञान का महासमुद्र है। आहाहा! वह अनन्त गुण के प्रभु से भरपूर, अनन्त गुण के प्रभुत्व से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसके एक-एक गुण में अनन्त प्रभुता भरी है। उसके सन्मुख देखने पर यह पामर प्राणी, यह विकारी (भाव) तो कहीं चले जाते हैं, कहते हैं। ऐसा उसमें जोर है। माने उसको।

मुमुक्षु : ....स्वीकार करे, उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार न करे तो उसे है नहीं। कारणपरमात्मा तो भगवान है,

परन्तु उस कारणपरमात्मा का स्वीकार करे, उसे है। स्वीकार करता है राग को और कारणपरमात्मा है - ऐसा कहे, यह बात एकदम झूठ है। आहाहा! त्रिकाली भगवान ज्ञानस्वरूपी, कारणप्रभु का स्वीकार करनेवाला, और राग का भी स्वीकार करे कि राग मेरा और यह मैं, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य, अनुपम तथा परिपूर्ण है कि उसे प्राप्त करके उसमें...** यह आ गया न? यह नहीं, यहाँ है। **मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा नाम के नौ नोकषाय से होनेवाले कलंकपंकस्वरूप...** है। आहाहा! यह नोकषाय है, वह कलंकपंकस्वरूप है। स्वरूप में है नहीं। वे तो कादव है। आहाहा! पंक कहा न? कलंक और पंक। वह कलंक कादवस्वरूप है। आहाहा! भगवान अमृत का सागर अन्दर है। **(मल-कीचड़स्वरूप)...** है। आहाहा! नोकषाय है, वे मल कादवस्वरूप है।

समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से... आहाहा! समस्त विकार के ढ़ेर-समूह को **परम समाधि के बल से...** आहा..! ऐसे तो प्रतिक्रमण, सामायिक, लोग्गस करते हैं, उसमें बोलते हैं '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु समाधि किसे कहना? वर किसे कहना और दिंतु किसे कहना? आहाहा! ऐसा तो आचार्य भगवान भी कहते हैं कि हे भगवान! मुझे बोधि दो। परन्तु वे तो समझकर माँगते हैं। है, उसे माँगते हैं। है, उसे परिपूर्ण माँगते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में कहते हैं। समाधि दो। प्रभु! आप देव हो न! तो हमें समाधि दो। वे समझकर कहते हैं। समझ हुई है, अनुभव हुआ है। अब पूर्ण प्राप्ति के लिये प्रार्थना है। आहाहा! इससे माँगते हैं, इसलिए किसी से मिलती है (-ऐसा नहीं है)। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे माँगते हैं। एक ओर कहे किसी से नहीं मिलता। एक ओर स्वयं कहे- कि भगवान! आप देव हो। देव हो, इसलिए 'ददापि, वह देव', आप मुझे कुछ दो। हमें कुछ सुख दो, मुक्ति दो। आहाहा! यह लोगस्स में भी ऐसा आया न? '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' आहाहा! कौन दे? भाई! तू किसमें है? किसमें तू है, वह इससे तुझे प्राप्ति होगी? जिसमें जो तेरा स्वरूप है, उससे प्राप्ति होती है। पर में तू नहीं है कि जिससे पर से प्राप्ति हो। आहाहा!

पुण्य और पाप के भाव भी पर हैं। उनमें आत्मा नहीं है। उस पर में से आत्मा कहाँ

से प्राप्त होगा ? आहाहा ! यह तो विरोध है। आहाहा ! इसे पुण्य करते-करते होगा। व्यवहाररत्नत्रय लोगों को गले लगा है। और आगे यहाँ कहते हैं - व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र (है), अनन्त बार किया है। यह पहले आ गया है। व्यवहार कथनमात्र देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि अनन्त बार किया है। तथापि वहाँ से मरकर कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा कि जहाँ वापस जन्मा और मरा न हो। आहाहा ! ऐसी स्थिति पाकर भी समझा नहीं था; इसलिए अनन्त भव... प्रत्येक क्षेत्र में एक कण पर भी अनन्त भव और जन्म-मरण किये हैं। आहाहा ! कोई कण बाकी-खाली नहीं है। ऐसे लम्बे विचार कौन करे ? निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा ! भटकने के भाव में उत्साह और हर्ष। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ऐसा जो **कलंकपंकस्वरूप (मल-कीचड़स्वरूप) समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से...** आहाहा ! परम समाधि शान्ति... शान्ति... शान्ति... **जो निश्चयरत्नत्रयात्मक परम तपोधन...** यह लिया। जो निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मुनि। जिन्हें निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान, निश्चयसम्यक्‌चारित्र - ऐसे निश्चयरत्नत्रयात्मक, निश्चयरत्नत्रयस्वरूप **परम तपोधन (मुनि) छोड़ता है,...** आहाहा ! इन हास्यादि को तजते हैं और स्वरूप में स्थिर होते हैं। आहाहा ! **उसे वास्तव में केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ...** आहाहा ! वे भट्टारक है, वे नहीं, हों ! **केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ परम सामायिक नाम का व्रत शाश्वत्‌रूप है...** आहाहा ! है तो पर्याय, परन्तु शाश्वत्‌रूप है। **ऐसा इन दो सूत्रों से कहा है।** लो !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-२१८

[अब इन १३१-१३२ वीं गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] *

(शिखरिणी)

त्यजाम्येतत्सर्वं ननु नव-कषायात्मक-महं,
मुदा सन्सारस्त्रीजनितसुखदु:खावलिकरम् ।
महा-मोहान्धानां सतत-सुलभं दुर्लभ-तरं
समाधौ निष्ठाना-मनवरत-मानन्द-मनसाम् ।।२१८।।

(वीरछन्द)

संसृतिरूपी रमणी से उत्पन्न हुए सुख दुःख समूह।
नोकषाय नवरूप सभी मैं प्रमुदित होकर के छोड़ूँ॥
महामोह से अन्ध जीव को नोकषाय ये सदा सुलभ।
लीन निरन्तर जो समाधि में आनन्दित-मन को दुर्लभ॥२१८॥

श्लोकार्थ : संसारस्त्रीजनित [1]सुखदु:खावलिका करनेवाला नौ कषायात्मक यह सब (-नौ नोकषायस्वरूप सर्व विकार) मैं वास्तव में प्रमोद से छोड़ता हूँ—कि जो नौ नोकषायात्मक विकार महामोहान्ध जीवों को निरन्तर सुलभ है तथा निरन्तर आनन्दित मनवाले समाधिनिष्ठ (समाधि में लीन) जीवों को अति दुर्लभ है॥२१८॥

---

१. सुखदु:खावलि=सुख-दु:ख की आवलि; सुखदु:ख की पंक्ति-श्रेणी। (नौ नोकषायात्मक विकार संसाररूपी स्त्री से उत्पन्न सुखदु:ख की श्रेणी का करनेवाला है।)

* इस प्रवचन में इस श्लोक का प्रवचन उपलब्ध नहीं है।

गाथा-१३३

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३३।।

यस्तु धर्मं च शुक्लं च ध्यानं ध्यायति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१३३।।

परमसमाध्यधिकारोपसंहारोपन्यासोऽयम्। यस्तु सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनलोलुपः परमजिनयोगीश्वरः स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मध्यानेन निखिलविकल्पजालनिर्मुक्तनिश्चय-शुक्लध्यानेन च अनवरतमखण्डाद्वैतसहजचिद्विलासलक्षणमक्षयानन्दाम्भोधिमज्जन्तं सकलबाह्य-क्रियापराङ्मुखं शश्वदन्तःक्रियाधिकरणं स्वात्मनिष्ठनिर्विकल्पपरमसमाधिसम्पत्तिकारणाभ्यां ताभ्यां धर्मशुक्लध्यानाभ्यां सदाशिवात्मकमात्मानं ध्यायति हि तस्य खलु जिनेश्वरशासननिष्पन्नं नित्यं शुद्धं त्रिगुप्तिगुप्तपरमसमाधिलक्षणं शाश्वतं सामायिक-व्रतं भवतीति।

जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यान में ही रत रहे।
स्थायी सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१३३॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [धर्मं च] धर्मध्यान [शुक्लं च ध्यानं] और शुक्लध्यान को [नित्यशः] नित्य [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह परम-समाधि अधिकार के उपसंहार का कथन है।

जो सकल-विमल केवलज्ञानदर्शन का लोलुप (सर्वथा निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन की तीव्र अभिलाषावाला-भावनावाला) परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान द्वारा और समस्त विकल्पजाल रहित निश्चय-शुक्लध्यान द्वारा— स्वात्मनिष्ठ (निज आत्मा में लीन ऐसी) निर्विकल्प परम समाधिरूप सम्पत्ति के

कारणभूत ऐसे उन धर्म-शुक्ल ध्यानों द्वारा, अखण्ड अद्वैत-सहज-चिद्विलासलक्षण (अर्थात् अखण्ड अद्वैत स्वाभाविक चैतन्य-विलास जिसका लक्षण है ऐसे), अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले (डूबनेवाले), सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख, शाश्वत्‌रूप से (सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत, सदाशिवस्वरूप आत्मा को निरन्तर ध्याता है, उसे वास्तव में जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ, नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी परम समाधि जिसका लक्षण है, ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है।

प्रवचन-१५१, श्लोक-२१८-२१९, गाथा-१३३-१३४,
बुधवार, ज्येष्ठ कृष्ण १४, दिनांक ११-०६-१९८०

जो सकल-विमल केवलज्ञानदर्शन का लोलुप (सर्वथा निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन की तीव्र अभिलाषावाला-भावनावाला) परम जिनयोगीश्वर... सच्चे दिगम्बर जिन मुनि उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की समाधि प्रगट हुई है। अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट दशा हुई हो, उसे मुनि कहते हैं। अकेले पंच महाव्रत पालन करे, उसे मुनि नहीं कहते। आहाहा! वह **परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित...** जितने विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे सब पराश्रित हैं और यह धर्मध्यान, शुक्लध्यान, समाधि निश्चयभक्ति, वह स्वद्रव्य-आश्रित है। स्वद्रव्याश्रित उत्पन्न होता है और विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे परद्रव्याश्रित हैं। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान... लो! धर्मध्यान को भी स्व-आत्मा के आश्रित कहा। कहीं धर्मध्यान को शुभभाव भी कहा है। मोक्ष अधिकार में। वह धर्मध्यान नहीं है, वह तो व्यवहार से बात की है। उसमें स्वात्माश्रित अकेला चिदानन्द अनन्त आनन्दकन्द प्रभु के आश्रय से, उसके अवलम्बन से.. आहाहा! **परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान द्वारा...** व्यवहार के विकल्प द्वारा धर्मध्यान नहीं, णमो अरिहंताणं गिने, पंच परमेष्ठी गिने, वह कोई धर्म नहीं है, वह सब तो विकार है, राग है। आहाहा! **निश्चय-धर्मध्यान द्वारा और समस्त विकल्पजाल रहित...** बिल्कुल जिसमें राग की वृत्ति नहीं है, ऐसे **निश्चय-शुक्लध्यान द्वारा—स्वात्मनिष्ठ (निज आत्मा में लीन ऐसी)...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय शान्तस्वरूप की दृष्टि करके उसमें

लीन होना, इसका नाम यहाँ समाधि कहते हैं। आहाहा! वे बाबा समाधि करते हैं, वह समाधि यहाँ नहीं।

निर्विकल्प परम समाधिरूप... निर्विकल्प परम समाधि। जिसमें राग का अंश नहीं और वीतरागदशा उत्पन्न हो। निर्विकल्पदशा अर्थात् वीतरागदशा उत्पन्न हो, ऐसी **सम्पत्ति के कारणभूत...** परम निर्विकल्प समाधिरूप सम्पत्ति। वह आत्मा की सम्पत्ति। आहाहा! यह पैसा, स्त्री-पुत्र, यह सब धूल की सम्पत्ति है, वह आत्मा की सम्पत्ति नहीं है। आहाहा! यह पैसा, पाँच-पचास करोड़-अरब (मिले), वह सब धूल है। धूल आत्मा की सम्पदा कहाँ से ? आत्मा की सम्पदा तो यह है।

निर्विकल्प परम समाधिरूप सम्पत्ति के कारणभूत... आहाहा! **ऐसे उन धर्म-शुक्लध्यानों द्वारा,...** धर्म-शुक्ल (ध्यान) द्वारा... आहाहा! साधन यह कहा। साधन-बाधन कुछ कहा नहीं। उसका साधन, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य—ऐसा नहीं है। सीधे आत्मा आनन्दकन्द प्रभु निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान द्वारा **अखण्ड अद्वैत...** अन्तर में वस्तु में अखण्डता गुण और गुणी के भेद का खण्ड नहीं और अद्वैत एकरूप। वह एकरूप अन्दर सहजात्मस्वरूप **सहज-चिद्विलासलक्षण...** आहाहा! भाषा कम पड़ती है। सहज चिद्विलास आत्मा। जिसमें ज्ञान का विलास है। दुनिया अज्ञान में—राग और द्वेष में विलास करती है। धर्मी ज्ञान का विलास करता है। आहाहा!

सहज चिद्विलास। ज्ञान का विलास ऐसा लक्षण **(अर्थात् अखण्ड अद्वैत स्वाभाविक चैतन्य-विलास जिसका लक्षण है ऐसे), अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले (डूबनेवाले),...** आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा **अक्षय आनन्दसागर...** भगवान अक्षय अतीन्द्रिय आनन्द सागर भरा है। उसमें में **मग्न होनेवाले...** उसमें डूबनेवाले **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,...** आहाहा! बाह्य क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सब बाह्य क्रिया है। वह कोई धर्म नहीं है। वह सब पुण्य की क्रिया है। आहाहा! **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,...** मन-वचन-काया या पाँच इन्द्रियों की प्रवृत्ति की सकल बाह्य क्रियायें; उन बाह्य क्रियाओं से पराङ्मुख है। धर्मध्यान, इन पाँच इन्द्रिय और मन-वचन-काय की क्रिया से पराङ्मुख है।

शाश्वत्‌रूप से... आहाहा! **(सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत,...** आहाहा!

निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प आनन्द, निर्विकल्प समकित का आधार, अन्त:क्रिया का आधार भगवान आत्मा है। आहाहा! अन्त:क्रिया का आधार कोई बाह्य चीज़ नहीं है। भगवान भी अन्त:क्रिया का आधार नहीं है। आहाहा! **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख, शाश्वत्‌रूप से (सदा) अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत,...** आहाहा! निर्विकल्प-विकाररहित क्रिया का आधार भगवान आत्मा है। इस धर्म की क्रिया का आधार आत्मा है। धर्म वीतरागी परिणति है। वीतरागी परिणति का—अन्त:क्रिया का आधार आत्मा है। आहाहा!

शाश्वत्‌रूप से (सदा) अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत, सदाशिवस्वरूप आत्मा को... उस अन्त:क्रिया का आधार... आहाहा! अन्तर निर्मल आत्मस्वभाव को अवलम्बन कर निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प वीतरागता—ऐसी जो **शाश्वत्‌रूप से (सदा) अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत, सदाशिवस्वरूप आत्मा...** आहाहा! सदाशिवस्वरूप। त्रिकाली भगवान तो शिवस्वरूप है। उसमें राग नहीं है, संसार नहीं, पुण्य-पाप नहीं है। प्रभु तो अन्दर सदाशिवस्वरूप है। निश्चय से सम्यग्दर्शन का विषय सदाशिवरूप है। आहाहा! वह **सदाशिवस्वरूप आत्मा...** उसे धर्मी **ध्याता है,... निरन्तर ध्याता है,...** आहाहा! अब ऐसी बात सुनी न हो। बाह्यक्रिया में धर्म मानकर बैठे। पूजा, भक्ति, व्रत, तप, यात्रा में धर्म है। वह रागक्रिया है, संसार है। संसारक्रिया का वह आधार है। अन्त:क्रिया का आधार तो सदाशिवस्वरूप आत्मा है। आहाहा! उसे **निरन्तर ध्याता है,...** उसे निरन्तर ध्यान में ध्याता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

उसे वास्तव में जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ,... ऐसे जीव को **जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ, नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त....** नित्यशुद्ध... आहाहा! त्रिकाली भगवान तो शुद्ध है। और त्रिगुप्ति गुप्त। मन-वचन-काया की गुप्ति से गुप्त है। आहाहा! **गुप्त ऐसी परम समाधि जिसका लक्षण है...** आहाहा! **ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है।** उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो सबेरे एक लेकर बैठे। बस, सामायिक हो गयी। आहाहा!

नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी परम समाधि... शान्ति, वीतरागता, अकषायता, शान्तरस का झरना, आनन्द का झरना... आहाहा! वह समाधि है। वह **जिसका लक्षण है,**

ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है। उसे सच्ची सामायिक है। आहाहा! शाश्वत् सामायिक है। है तो पर्याय। कायम रहनेवाली है। आहाहा! शाश्वत् ऐसा भगवान शाश्वत् आत्मा, उसके अवलम्बन से—उसके आश्रय से शान्ति और वीतरागता उत्पन्न हुई, उसे सामायिक कहते हैं। बाकी सब सामायिक व्यर्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आसन बिछाकर बैठे और सामायिक का पाठ बोले, वह सामायिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : आसन बिछाकर बैठे, णमो अरिहंताणं कहे, इरिया वहरोविया, सामायिक हो गयी। धूल भी सामायिक नहीं है।

मुमुक्षु : पहले आसन बिछाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आसन बिछाने में सामायिक नहीं है। आसन यहाँ अन्दर में बिछाये। आत्मा आनन्दस्वरूप का आसन विस्तार करके, उसमें लीन होकर बैठे, उसमें बैठे, उसमें लीन हो, उसे जैनशासन में सामायिक कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यमति जैन में मिले हुए भी दूसरे को सामायिक कहें, वे जैन नहीं है; वे तो सब अन्यमति है। आहाहा! ऐसा आया या नहीं ?—कि जैनशासन से निष्पन्न हुआ। ऐसे जिनशासन से उत्पन्न हुए।

नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त... मन-वचन-काया से गुप्त ऐसा भगवान अन्दर आत्मा, उसमें लीन हुआ। **परम समाधि जिसका लक्षण है...** किसका ? इस सामायिक व्रत का। सामायिक व्रत का लक्षण यह। सच्चा सामायिक व्रत। शाश्वत् अर्थात् सच्चा। सच्चे सामायिक व्रत का यह लक्षण कि परमसमाधि जिसका लक्षण है। आहाहा! ऐसी सामायिक कभी सुनी भी नहीं होगी और हो गये सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण। आहाहा!

श्लोक-२१९

(मंदाक्रान्ता)

शुक्लध्याने परिणत-मतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा,
धर्मध्यानेऽप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रितेऽस्मिन् ।
प्राप्नोत्युच्चै-रपगत-महद्दुःखजालं विशालं,
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम् ।।२१९।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ परमसमाध्यधिकारो नवमः श्रुतस्कन्धः ।

[अब इस परम-समाधि अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैंः]

(वीरछन्द)

निष्पाप परम सुखरूप तत्त्व के आश्रित जो अन्तिम द्वय ध्यान।
बुद्धि परिणमित उनमें जिसकी रत्नत्रययुत जीव महान॥
प्राप्त करे वह महत् तत्त्व को रहित सदा जो दुःख समूह।
भेदों का जिसमें अभाव है अतः वचन मनपथ से दूर॥२१९॥

श्लोकार्थ : इस अनघ (निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है, ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव ऐसे किसी विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है कि जिसमें से (-जिस तत्त्व में से) महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है और जो (तत्त्व) भेदों के अभाव के कारण जीवों को वचन तथा मन के मार्ग से दूर है॥२१९॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमसमाध्यधिकार नाम का नववाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक- २१९ पर प्रवचन

[अब इस परम-समाधि अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

अन्तिम श्लोक।

शुक्लध्याने परिणत-मतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा,
धर्मध्यानेऽप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रितेऽस्मिन् ।
प्राप्नोत्युच्चै-रपगत-महद्दुःखजालं विशालं,
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम् ।।२१९।।

आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ है। ये श्लोक (गाथायें) कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। इनकी टीका फिर पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। उसे सामायिक कहते हैं, अन्तर में परम शान्ति और समाधि उत्पन्न हो; विकल्प उत्पन्न न हो, राग की उत्पत्ति न हो, उसे सामायिक कहा जाता है। बाकी तो व्यवहार संसार है। आहाहा! इस श्लोक का अर्थ।

श्लोकार्थ : इस अनघ (निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित... आहाहा! कहते हैं कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान उत्पन्न किसके आश्रय से होते हैं? किसके आश्रय से उत्पन्न होते हैं? धर्म किसके आश्रय से उत्पन्न होता है?—कि परमानन्दमय तत्त्व। आहाहा! निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व भगवान त्रिकाली। आहाहा! निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व आत्मा। आहाहा! उसके आश्रित धर्मध्यान। उसके आश्रित धर्मध्यान... आहाहा!

शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है... स्व-आत्मा के आश्रय से-त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु के आश्रय से जिसकी बुद्धि धर्मध्यान और शुक्लध्यान में परिणमी है। **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** आहाहा! भाषा कम पड़ती है इतने... आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** आहाहा! कैसे? —कि **परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित...** परमानन्दमय आत्मतत्त्व के आश्रित **धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है...** आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव। रत्नत्रय तीनों—दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

ऐसे किसी विशाल तत्त्व को... ऐसे किसी विशाल तत्त्व को **अत्यन्त प्राप्त करता**

है... अन्दर आत्मा। आत्मा विशाल तत्त्व है। अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त गुण। अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड है। ऐसा विशाल तत्त्व। आहाहा! जो स्व के आश्रय से रहता है, उस ऐसे विशाल तत्त्व को प्राप्त करता है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड करने से, दया, दान, व्रत करने से यह सामायिक और धर्म होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में होता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ काल ही लागू नहीं पड़ता। त्रिकाल में भगवान त्रिकाल स्वरूप है। त्रिकाल निर्मलानन्द परमानन्द... यह बात की न?

(निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित... त्रिकाली। आहाहा! **धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है...** आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** वह शुद्धरत्नत्रयस्वरूप जीव **ऐसे किसी विशाल तत्त्व को...** ऐसे किसी अर्थात् आत्मा। **विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है...** आहाहा! वह विशाल तत्त्व अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर भगवान, अनन्त-अनन्त गुण से भरा हुआ भगवान है, उसे समकिती प्राप्त करता है। आहाहा! **विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है...** आहाहा! **कि जिसमें से (-जिस तत्त्व में से) महा दु:खसमूह नष्ट हुआ है...** आहाहा! उस भगवान आत्मा के—तत्त्व के आश्रय में स्थित है। अन्दर सामायिक में उसे तो महादु:खसमूह नष्ट हुआ है। महादु:ख का समूह नाश हुआ है। आहाहा!

और जो (तत्त्व) भेदों के अभाव के कारण जीवों को वचन तथा मन के मार्ग से दूर है। क्या कहते हैं? यह भगवान तत्त्व अन्दर ऐसा है (कि) मन-वचन से दूर है, क्योंकि भेद का अभाव है। पूरा अभेद तत्त्व है। पूर्णानन्द पूर्णज्ञान से अभेद है। ऐसे अभेद तत्त्व में... आहाहा! **भेदों के अभाव के कारण जीवों को...** भव्यों को, लायक जीवों को **वचन तथा मन के मार्ग से दूर है।** मन और वचन के मार्ग से भव्य जीव को सामायिक दूर है। आहाहा! ऐसा कभी सुना भी नहीं होगा और हम सामायिक करते हैं। ऐसी सामायिक। इसने सामायिक की, इसने इतनी की, इसने इतनी की। आहाहा!

एक सामायिक किसे कहना? जो परमानन्दमूर्ति प्रभु तत्त्वविलासी का आश्रय करके जिसमें लीन हो, और जिसमें विकार का विकल्प उत्पन्न न हो, उस दशा को यहाँ सामायिक कहा जाता है। आहाहा! यह व्यवहार सामायिक करे, वह क्या होगी? पराश्रित,

परन्तु उसका कुछ कारण होगा न? उससे अन्दर प्राप्त होगा या नहीं? करते-करते अधिक करे तो थोड़ा मिले न? अधिक जहर खाये तो कुछ अमृत मिले? आहाहा! व्यवहार सामायिक तो जहर है, राग है। आहाहा! राग से अमृत आत्मा मिले (-ऐसा) तीन काल में नहीं मिलता।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह... मुनि को तो देहमात्र ही होती है। मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं होते। वस्त्र-पात्र होवें, वे मुनि नहीं है। आहाहा! यह... थे न, वह किसी मुनि ने लिखा है। मुनि किसे कहना?... कुछ लिखा है, उसका बड़ा विरोध किया है। मुनि कहाँ है? मुनि तो वस्त्र-पात्ररहित, जंगल में रहते हैं और अन्तरध्यान में आनन्द में रहते हैं और नग्नदशा होती है। अन्तर ध्यान में, आनन्द में रहें, इसका नाम मुनि है। आहाहा! मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता, आहार लाने को पात्र का टुकड़ा नहीं होता। आहाहा! उन्हें मुनि कहा जाता है। कोई लिख डाले मुनि, इसलिए फिर टीका (आलोचना) करे। आहाहा!

देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... देखा? **ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमसमाध्यधिकार नाम का नववाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** लो! नौवाँ अधिकार पूरा हुआ।

— १० —

परम-भक्ति अधिकार

गाथा-१३४

अथ सम्प्रति हि भक्त्यधिकार उच्यते।

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।१३४।।

सम्यक्त्वज्ञानचरणेषु यो भक्तिं करोति श्रावकः श्रमणः।
तस्य तु निर्वृत्तिभक्तिर्भवतीति जिनैः प्रज्ञप्तम्।।१३४।।

रत्नत्रयस्वरूपाख्यानमेतत्। चतुर्गतिसन्सारपरिभ्रमणकारणतीव्रमिथ्यात्वकर्मप्रकृतिप्रतिपक्षनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानावबोधाचरणात्मकेषु शुद्धरत्नत्रयपरिणामेषु भजनं भक्तिराराधनेत्यर्थः। एकादशपदेषु श्रावकेषु जघन्याः षट्, मध्यमास्त्रयः, उत्तमौ द्वौ च; एते सर्वे शुद्धरत्नत्रयभक्तिं कुर्वन्ति। अथ भवभयभीरवः परमनैष्कर्म्यवृत्तयः परमतपोधनाश्च रत्नत्रयभक्तिं कुर्वन्ति। तेषां परमश्रावकाणां परमतपोधनानां च जिनोत्तमैः प्रज्ञप्ता निर्वृत्तिभक्तिरपुनर्भवपुरन्ध्रिकासेवा भवतीति।

अब भक्ति अधिकार कहा जाता है।

सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

अन्वयार्थः [यः श्रावकः श्रमणः] जो श्रावक अथवा श्रमण [सम्यक्त्वज्ञानचरणेषु] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की [भक्तिं] भक्ति [करोति] करता है, [तस्य तु] उसे [निर्वृत्तिभक्तिः भवति] निर्वृत्तिभक्ति (निर्वाण की भक्ति) है [इति] ऐसा [जिनैः प्रज्ञप्तम्] जिनों ने कहा है।

टीका : यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत तीव्र मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूपशुद्ध-रत्नत्रय-परिणामों का जो भजन वह भक्ति है; आराधना ऐसा उसका अर्थ है। *एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं, मध्यम तीन हैं, तथा उत्तम दो हैं।—यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। तथा भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले (परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति—अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा—वर्तती है।

गाथा-१३४ पर प्रवचन

१०वाँ। 'परमभक्ति अधिकार।' भाषा क्या है ? परम भक्ति। और वह परमभक्ति चौथे गुणस्थान से भी होती है। अन्दर ऐसा कहेंगे। आहाहा! परमभक्ति, वह भगवान की भक्ति ? वह भक्ति नहीं। यह आगे कहेंगे। सिद्ध की भक्ति, वह व्यवहार भक्ति है। सिद्धपरमात्मा की भक्ति व्यवहार पुण्य है, राग है; धर्म नहीं। आहाहा! यह तो परमभक्ति; और वह भी श्रावक तथा तथा मुनि दोनों को होती है। कोई ऐसा कहे कि परमभक्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान चौथे गुणस्थान में होती है, परन्तु आचरण नहीं होता, स्वरूपाचरण नहीं होता। यहाँ यह कहते हैं कि उसे श्रद्धान, अवबोध और आचरण-स्वरूप शुद्धरत्नत्रय परिणाम होते हैं। आहाहा!

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।१३४।।

---

* एकादशपदी=जिनके ग्यारह पद (गुणानुसार भूमिकाएँ) हैं ऐसे। [श्रावकों के निम्नानुसार ग्यारह पद हैं—(१) दर्शन, (२) व्रत, (३) सामायिक, (४) प्रोषधोपवास, (५) सचित्तत्याग, (६) रात्रिभोजनत्याग, (७) ब्रह्मचर्य, (८) आरम्भत्याग, (९) परिग्रहत्याग, (१०) अनुमतित्याग और (११) उद्दिष्टाहारत्याग। उनमें छठवें पद तक (छठवीं प्रतिमा तक) जघन्य श्रावक हैं, नौवें पद तक मध्यम श्रावक हैं और दसवें तथा ग्यारहवें पद पर हों, वे उत्तम श्रावक हैं। यह सब पद सम्यक्त्वपूर्वक, हठ रहित सहज दशा के हैं, यह ध्यान में रखनेयोग्य हैं।]

जिनेश्वर ने कहा है—ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने वजन देकर कहा है कि जिनेश्वर ने ऐसा कहा है कि जो सच्चे श्रावक हों, उन्हें समकित सामायिक होते हैं। आत्मा की भक्ति होती है। समकित की, ज्ञान की और आचरण की अन्दर तीन भक्ति उन्हें होती है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य नाम लेकर कहते हैं। आहाहा! नीचे हरिगीत।

सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

उसे निर्वाणभक्ति कहा जाता है। निर्वाणभक्ति श्रावक भी करता है। सच्चा श्रावक होता हो वह।

मुमुक्षु : श्रावक का नाम तो पहले लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं, श्रावक और श्रमण। दोनों को भक्ति होती है। दोनों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आचरण होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आचरण दोनों को होता है। आहाहा! आगे आयेगा।

टीका : यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। यह है न? **चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत...** चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत **तीव्र मिथ्यात्वकर्म...** तीव्र मिथ्यात्व कर्म की **प्रकृति से प्रतिपक्ष...** आहाहा! मिथ्यात्व **प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के...** निज परमात्मतत्त्व जो आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा परमात्मा। उसकी सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक् अवबोध-ज्ञान और सम्यक् आचरणस्वरूप। देखो! आचरण। आचरण लिया है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि समकिती को चौथे (गुणस्थान) में शुद्धोपयोग नहीं होता, पाँचवें में शुद्धोपयोग नहीं होता, छठवें में मुनि को होता है। वह तो मुनि के योग्य शुद्धोपयोग होता है, परन्तु चौथे-पाँचवें में उसके योग्य शुद्धोपयोग होता है। आहाहा!

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत तीव्र मिथ्यात्वकर्म की **प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के...** भक्ति में पहले परमात्मा वीतराग और केवली नहीं लिये। बाद में सिद्ध लेंगे। व्यवहार, विकल्प। **परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** श्रावक को भी परम तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, उसे भी **अवबोध...** अर्थात्

सम्यग्ज्ञान, और उसे भी सम्यक् **आचरणस्वरूप...** आहाहा! देखो! चौथे गुणस्थान में अनुभूति नहीं होती – ऐसा विद्यासागर कहते हैं। अनुभूति सातवें में होती है। (–ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूप...** श्रावक और मुनि दोनों को। आहाहा! **रत्नत्रय-परिणामों का...** शुद्धरत्नत्रय सम्यक् निश्चय, शुद्ध परमपारिणामिकस्वभाव की श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका परिणमन—इन शुद्ध रत्नत्रय परिणामों का **जो भजन...** इन **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन वह भक्ति है;...** आहाहा! मिथ्यात्व से विरुद्ध **निज परमात्मतत्त्व के...** निज परमात्मतत्त्व का सम्यग्दर्शन-श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान-अवबोध और सम्यक् आचरणस्वरूप। आहाहा! यहाँ तो आचरण शब्द लिया है। श्रावक को भी आचरण होता है, चारित्र होता है – ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! दूसरी जगह आता है, जयचन्द्र (जयसेन) की टीका में। श्रावक को शुद्धोपयोग नहीं होता। वह तो मुनि का जो शुद्धोपयोग है, वह नहीं होता। परन्तु उसके योग्य जो है, ऐसा आचरणरूप उपयोग उसे होता है। आहाहा! यह आचरणरूप शुद्धोपयोग की बात है। इस आचरण में शुद्धोपयोगरूप शब्द है। आहाहा!

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-(सम्यक्) अवबोध-(सम्यक्) आचरणस्वरूप... किसे? दोनों को। श्रावक और साधु। आहाहा! जिसे अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आचरण नहीं, वह श्रावक ही नहीं। वह वाड़ा का सावज कहलाता है। आहाहा! कठिन लगे! एक-एक बात में अन्तर। पद्मप्रभमलधारिदेव को कहने के लिये शब्द कम पड़ते हैं। किस प्रकार कहना इस प्रभु को? अन्दर भगवान महा विशाल... है न? कल आया था। विशाल तत्त्व, महा विशाल तत्त्व। जिसमें अनन्त-अनन्त गुण और स्वभाव पड़े हैं, ऐसे तत्त्व को, **निज परमात्मतत्त्व के...** आहाहा! **सम्यक् श्रद्धान-...** उसके सन्मुख और स्वाश्रय की श्रद्धा, उसके सन्मुख का स्वाश्रय का ज्ञान, उसके सन्मुख का स्वाश्रय का आचरण। आहाहा!

वह **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों...** तीनों को शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा। देखा? श्रावक को आचरण में भी शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में श्रावक गृहस्थाश्रम में होता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान यदि हो तो शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा।

आहाहा! और **जो भजन वह भक्ति है;...** उस शुद्धरत्नत्रय का भजन, एकाग्रता, वह भक्ति है। आहाहा! श्रावक को भी होती है, मुनि को भी होती है। सब कहते हैं, साधु को होती है, श्रावक को गृहस्थाश्रम में नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो श्रावक के ग्यारह भेद है न? ग्यारह प्रतिमा। ग्यारह प्रतिमा, उनमें यह आचरण होता है। ग्यारह प्रतिमा में पहली प्रतिमा सम्यक् प्रतिमा। भले पाँचवाँ गुणस्थान हो। उसे भी श्रद्धान-अवबोध और आचरणस्वरूप होता है। अन्दर चारित्र का आचरण होता है। आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन... भगवान का भजन नहीं। शुद्धरत्नत्रय का भजन। आहाहा! उसका **जो भजन, वह भक्ति है;...** आहाहा! इसका नाम भक्ति। **आराधना ऐसा उसका अर्थ है।** आराधना। निज परमात्मतत्त्व की आराधना करना, ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! निजपरमात्मतत्त्व की आराधना, भजन, भक्ति और आराधना—ऐसा अर्थ है। आहाहा! अब कहते हैं कि श्रावक को ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं।

एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं,... प्रत्येक को चारित्रभक्ति होती है। दर्शन-ज्ञान-चारित्रभक्ति प्रत्येक को होती है। **एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं, मध्यम तीन हैं, तथा उत्तम दो हैं।—यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** देखो, भाषा! यहाँ तो स्पष्ट बात ली है। **यह सब...** पहली प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा तक **सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! श्रावक अर्थात् कहीं वाडा में पड़े हैं, वे श्रावक कहाँ सच्चे हैं? वाडा में रहे और पाँच श्रावक हैं। श्रावक तो अलग चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें चौथे गुणस्थानवाला गर्भित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाता है। वह श्रावक आ जाता है। ऐसे दर्शनप्रतिमा पाँचवेंवाले को होती है, परन्तु चौथे गुणस्थानवाला भी आ जाता है। अनन्तानुबन्धी के अभाव का आचरण है न?

मुमुक्षु : शुद्धरत्नत्रय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह शुद्धरत्नत्रय है। कलश की टीका में लिखा है। वह इस कलश टीका का प्रश्न है कि तुम बात समकित की करते हो और मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तीनों हैं। परन्तु समकित में तीनों आ जाते हैं। कलश टीका में है। अनन्तानुबन्धी

का अभाव, उतना आचरण भी आ जाता है। उतना वह चारित्र का अंश है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी प्रकृति चारित्र की है। उसके भाग का अभाव, इसका नाम चारित्र अंश है। संयम नाम नहीं पड़ता। पाँचवें में, चौथे में। यहाँ तो ग्यारह प्रतिमावाले को, ग्यारह प्रतिमावाले को सब होता है। **शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** ग्यारह प्रतिमावाला...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५२, श्लोक-२२०, गाथा-१३४,
गुरुवार, ज्येष्ठ कृष्ण १५, दिनांक १२-०६-१९८०

फिर से, टीका से। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** रत्नत्रय अर्थात् क्या? आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप है, उसकी अन्तर अनुभव में प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें लीनता (होना), वह रत्नत्रय है, वह मोक्ष का मार्ग है और धर्म है। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** निश्चयरत्नत्रय इसने अनन्त काल में कभी किया नहीं। बाहर से मानकर, व्यवहार से मानकर भटककर मर गया। अन्तर स्वरूप चिदानन्द निश्चय से पर का कर्ता तो नहीं। शरीर और वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं। कर्ता तो नहीं, परन्तु उसे जानना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! जानना भी ज्ञायक ज्ञायक का है, ऐसा भेद भी व्यवहार है। आहाहा! रत्नत्रय में मैं मात्र ज्ञायक हूँ, ज्ञायक, ज्ञायक का है—ऐसा भेद भी नहीं। ज्ञायक पर को जानता है—ऐसा तो नहीं; पर का कर्ता है—ऐसा तो तीन काल में नहीं। आहाहा! परन्तु मैं पर को जानता हूँ, यह भी असद्भूत व्यवहार है। यह भी नहीं; और आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी सद्भूत व्यवहार है, यह भी नहीं। आहाहा! ज्ञायक-ज्ञायकस्वभाव की अन्तर्दृष्टि होना—सम्यग्दर्शन, उसका विषय अकेला ज्ञायक है। भेद नहीं। आहाहा! ऐसे रत्नत्रयस्वरूप का कथन है।

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत... चार गतियों में भटकता हुआ नरक और निगोद... आहाहा! अनन्त-अनन्त भव किये। **तीव्र मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति से प्रतिपक्ष...** चार गतियों में भटकने की तीव्र मिथ्यात्व की प्रकृति जो है, उससे **(विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** आहाहा! निज आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु ज्ञान

और आनन्द का दल है। आत्मा आनन्द का दल है, वह निज आत्मा परमात्मतत्त्व, **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** उसका अन्तर्मुख होकर सम्यक्श्रद्धान, वह समकित है। आहाहा! अन्तर्मुख होकर अन्तर आत्मा का ज्ञान करना, वह ज्ञान है और अन्तर्मुख में आचरण करना, स्वरूप में आचरण करना, वह चारित्र है। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड, वह कोई चारित्र नहीं है। पंच महाव्रतादि, वह कोई चारित्र नहीं है। वह तो दुःख का कारण, बन्ध का कारण है। आहा... !

यहाँ कहते हैं कि **निज परमात्मतत्त्व...** निज परमात्मतत्त्व वस्तु अन्दर आत्मा परमात्मा है। परन्तु जँचे कैसे ? आहाहा! पर परमात्मा अनन्त तीर्थंकर, सिद्ध आदि हो गये। यह तो निज परमात्मतत्त्व। अपना निज परम आत्म परमस्वरूप तत्त्व जो त्रिकाल, ध्रुव, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति आदि अनन्त स्वरूप निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, उसका सम्यक् अनुभव... आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अन्तर्मुख निज परमात्मतत्त्व के सन्मुख होकर विकल्प और राग से भी भिन्न होकर, भेद से भी भिन्न होकर, वह आत्मा ज्ञान है और आत्मा ज्ञानी है-इस भेद को भी छोड़कर, अभेद में सम्यक्श्रद्धान होना, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान कहा जाता है। आहाहा! लोगों को अनजानी चीज़ अनन्त काल में कभी की नहीं। जो किया, वह सब संसार में भटकने का (किया)। नरक और निगोद में अनन्त भव किये। चींटी, कौआ आदि अनन्त भव (किये)। आहाहा!

भवभ्रमण का कारण जो मिथ्यात्व, उससे विरुद्ध सम्यक्श्रद्धा। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी शक्ति और स्वभाव की प्रतीति और श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है। उसका सम्यग्ज्ञान-चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है। शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान-बान है नहीं। आहाहा! वह ज्ञान और आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित ज्ञानस्वरूप में आचरण करना, ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा में आचरण अर्थात् रमना। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, क्रिया, वह कोई आचरण नहीं है; वह तो कुआचरण है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द परमतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान और उसका आचरण श्रावक को भी (होता है-ऐसा) यहाँ कहते हैं। उसे श्रावक कहते हैं। ये वाड़ा के श्रावक-

बावक, वे कोई श्रावक है नहीं। ये सब भटकनेवाले हैं। आहाहा! वाड़ा में हम श्रावक हैं और जैन हैं। जैन है ही नहीं। जैन तो उसे कहते हैं 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन, मतमदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' अपने मत के आग्रह और अभिप्राय के कारण... घट-घट में जिन बसता है, वह जिनस्वरूप ही है। उसका अनुभव -प्रतीति और रमणता करना, वह जैन है। बाकी जैन-बैन है नहीं। आहाहा! यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान तीनों के उपरान्त आचरण लिया है। तो श्रावक को भी अन्दर स्वरूप का आचरण होता है। आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अन्दर आचरण अर्थात् रमना, स्वरूप में रमना, वह आचरण है, वह श्रावक को होवे तो वह सच्चा श्रावक है। आहाहा!

आचरणस्वरूप शुद्धरत्नत्रय... ये तीन—दर्शन-ज्ञान और चारित्र। स्वरूप की अन्तररमणता। इन शुद्धरत्नत्रय परिणामों का। ये इसके परिणाम हैं। भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्य है, परन्तु उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह परिणाम-पर्याय है। उन **परिणामों का जो भजन...** आहाहा! परिणामों का भजन। परिणामी का नहीं कहा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अन्दर रमणता, उसका भजन करना अर्थात् एकाग्रता करना, इसका नाम भगवान भक्ति कहते हैं। भगवान की भक्ति और यात्रा-वात्रा सब राग है। वह कोई धर्म-बर्म नहीं है, वह शुभराग है। अशुभराग से बचने के लिये शुभराग आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है, वह मुक्ति का कारण बिल्कुल नहीं है। यात्रा और भक्ति और सम्मेदशिखर की यात्रा, गिरनार की यात्रा और शत्रुंजय की यात्रा, वह सब राग की क्रिया है, वह धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन...** आहाहा! **वह भक्ति है;...** उसे परमात्मा जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकर उसे भक्ति कहते हैं। दुनिया भगवान की भक्ति करके मानती है, वह तो पुण्य है; धर्म नहीं। वह कोई धर्म नहीं है। सबेरे उठकर भगवान की पूजा और वन्दन करे, वह सब पुण्य है, धर्म नहीं। वह जन्म-मरण का अन्त करनेवाली चीज़ नहीं है। उससे तो जन्म-मरण होता है, भवभ्रमण होता है। आहाहा! कुछ सुना न हो। अन्तर की चीज़ छोड़कर बाहर की चीज़ में जितना रुके, वह सब संसार का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन, वह भक्ति है;**

आराधना ऐसा उसका अर्थ है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की आराधना, सेवा... आहाहा! शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। उसके सन्मुख की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की आराधना... आहाहा! उसकी सेवा, (ऐसा) **उसका अर्थ है।** उसे आराधना कहते हैं। बाहर की चीज़ की आराधना नहीं। अन्तर के परिणाम की आराधना। परिणाम भी कैसे ?—कि निर्विकल्प। आहाहा! वीतरागी श्रद्धा-वीतरागी ज्ञान और वीतरागी आचरण तीनों की आराधना करने का नाम भक्ति है। आहाहा!

एकादशपदी श्रावकों में जघन्य... श्रावक को ग्यारह प्रतिमा है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्, आत्मा का अनुभव होने के पश्चात्। वस्तु प्रतीति में कब आती है ? उसका जो सामर्थ्य, उसका जब ज्ञान में भान हुआ, आत्मा की जितनी सामर्थ्य और शक्ति है, उतना ज्ञान में और श्रद्धा में आया, उस निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान को समकित-ज्ञान कहते हैं। इसका नाम धर्म है। बाकी धर्म-बर्म थोथा है। भक्ति-पूजा करे, गिरनार की यात्रा और यह सब थोथा है, शुभभाव है, पुण्य है, बन्धन का कारण है। आहाहा! ऐसा माने कौन ? बाहर में धमाल... धमाल... गजरथ करे, बड़े रथ निकाले, वह सब धमाल है।

यहाँ तो भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द पूर्ण शक्ति से भरपूर है। उसकी अन्तर में प्रतीति-ज्ञान और रमणता, वह आराधना और वह आत्मा की सेवा है। उसका नाम आत्मा की सेवा है। श्रावक के ग्यारह भेद हैं। **एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं,...** नीचे (फुटनोट में) है। पहले से छह प्रतिमा जघन्य। **मध्यम तीन हैं,...** सात, आठ, नौ। **तथा उत्तम दो हैं।** दस और ग्यारह। **यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! तब उसे श्रावक कहा जाता है। प्रतिमाधारी श्रावक तब कहा जाता है कि जब अपने शुद्धरत्नत्रयस्वरूप भगवान आत्मा की सेवा करे, उसकी रमणता करे, तब प्रतिमाधारी कहा जाता है। आहाहा! ऐसा नया धर्म निकाला होगा ? अभी तक तो यह सब सुनते थे कि ऐसा करना, ऐसा करना। यह और ऐसा कहाँ से निकाला ? सर्वज्ञ भगवान का यह मार्ग अनादि से है। अज्ञानी को सुनने को मिला नहीं, इसलिए कहीं दूसरी चीज़ हो जाएगी ? आहाहा!

एकादशपदी प्रतिमायें हैं। उनमें छह प्रतिमा जघन्य; सात-आठ-नौ मध्यम; और दश तथा ग्यारह उत्तम है। आहाहा! **यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! श्रावक तो उसे कहते हैं, प्रतिमाधारी उसे कहते हैं कि अन्दर में शुद्धरत्नत्रय की सेवा करे,

शुद्धरत्नत्रय को प्रगट करके रमे, उसका नाम प्रतिमाधारी श्रावक कहा जाता है। है या नहीं? ब्रह्मचारीजी! आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा की भक्ति करता है या पर्याय की भक्ति करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की। पर्याय की भक्ति का अर्थ लक्ष्य द्रव्य पर है। आहाहा! अन्तर्मुख है न? परिणाम अन्तर्मुख है न? तो परिणाम की भक्ति का अर्थ (यह कि) द्रव्य पर लक्ष्य है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का लक्ष्य द्रव्य पर है। आहाहा! दुनिया ने तो बाहर से मनवा लिया और अज्ञानी ऐसे के ऐसे चल निकले। भगवान की भक्ति करो, सबेरे पूजा करो, जयनारायण। उससे धर्म होगा। ऐसा तो अनन्त बार किया है। महाविदेहक्षेत्र में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। महाविदेह में तो भगवान तीर्थंकर का कभी विरह नहीं होता; तो तीर्थंकर की भक्ति और सेवा समवसरण में अनन्त बार की है। परन्तु वह तो परद्रव्य की सेवा, वह तो शुभभाव-पुण्य है। वह पुण्य तो बन्धन का कारण है, भटकने का कारण है। आहाहा! ऐसी बात! तब नहीं करना? ज्ञानी को अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! वह मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण प्रभु चैतन्य निज परमात्मतत्त्व की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का कारण है।

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति ग्यारह प्रतिमावाले करते हैं। आहाहा! उन्हें प्रतिमाधारी और श्रावक कहा जाता है। बाकी तो थोथा है। आहाहा! शुद्धरत्नत्रय की भक्ति श्रावक करे, तब उसे प्रतिमाधारी कहा जाता है। प्रतिमाधारी को शुद्धरत्नत्रय का सेवन होता है। अन्दर आचरण भी होता है। आनन्द का आचरण भी होता है। आहाहा! अरे रे! कोई बात!

मुमुक्षु : यह ऊँची बात आप करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची वस्तु ही यह है। कहा न? सबेरे आया था न? कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! कलई, कलई में रहती है, कलई। दीवार, दीवार में रहती है। दीवार को कलई स्पर्श नहीं करती। आहाहा! क्योंकि दीवार और कलई का अस्तित्व भिन्न है। एक अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व में जाए तो अपना अस्तित्व नहीं रहता। आहाहा! वस्त्र में रंग लगता है, वहाँ वह रंग वस्त्र को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! बहुत कठिन काम है, बापू!

मुमुक्षु : कपड़ा लाल होता है न? लाल कपड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाल कपड़ा, वह तो लाल रंग है। वह कहीं टोपी लाल नहीं है। टोपी तो भिन्न है। रंग का अस्तित्व भिन्न है, टोपी का अस्तित्व भिन्न है। दीवार में जो कलई सफेद होती है, उस सफेद का अस्तित्व भिन्न है, दीवार का अस्तित्व भिन्न है। एक अस्तित्व दूसरे अस्तित्व को कभी स्पर्श नहीं करता। कलई है, वह दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसी बात कहाँ सुने? भटकने में अनन्त काल चला गया। वीतराग का सत्यमार्ग पड़ा रहा और बाहर से थोथा करके मर गया और चार गतियों में भटक मरा। आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। आहाहा! पहली प्रतिमावाला भी शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करता है—ऐसा आया न? पहली प्रतिमा है न, पहली प्रतिमा? सम्यग्दर्शन (दर्शन) पहली प्रतिमा। भले पंचम गुणस्थान है, तो भी वह शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करता है। आहाहा! तब पहली प्रतिमा कही जाती है। ऐसे ग्यारह ही प्रतिमा (वाले) शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। मुनि तो पूर्ण शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। नग्न हो गये, क्रियाकाण्ड करे, पंच महाव्रत पालन करे, वे मुनि नहीं। जैनदर्शन में उसे मुनि कहते ही नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति ग्यारह प्रतिमावाले श्रावक भी करते हैं और मुनि भी करते हैं। श्रावक और मुनि दोनों अन्तरात्मा से, बहिरात्मपना छोड़कर अन्तरात्मा से परमात्मा की भक्ति करते हैं। परमात्मा के ध्येय में जाते हैं। आहाहा! ऐसा कैसा मार्ग यह! शान्तिभाई! आहाहा! कभी सुना नहीं। यह सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, रात्रिभोजन नहीं करो, तो हो गया धर्म! ऐसा तो अनन्त बार थोथा किया। राग की मन्दता होवे, पुण्य होवे तो मनुष्य-बनुष्य हो या तो धूल का-पैसे का सेठ हो। धूल-धूल। धूल का सेठ हो करोड़पति-अरबपति। उसमें भव घटता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अफ्रीका में जन्मना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : अफ्रीका में क्या, वह तो पुण्य बहुत होवे तो वहाँ अफ्रीका में जन्मे। आहाहा! वहाँ पैसा बहुत है अफ्रीका में। वह तो पुण्य होवे ऐसे तो जन्मे, परन्तु मरकर फिर जाए चौरासी के अवतार में। आहाहा! एक अरबपति मेरे पास आया था। वहाँ अरबपति है। अफ्रीका-नैरोबी में साढ़े चार सौ करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ करोड़पति और

पन्द्रह अरबपति हैं। उनमें एक अरबपति मेरे पास आया था। वह ऐसा कहता था कि यह तुम्हारा दिगम्बर मण्डल, श्वेताम्बर मन्दिर में नहीं जाता, दर्शन नहीं करता। मैंने कहा— तत्त्वज्ञान होने के बाद व्यवहार कैसा होता है, यह समझ में आता है ? उसे दूसरा उत्तर तो क्या दें ? तत्त्वज्ञान-सम्यग्दर्शन होने के बाद व्यवहार कैसा होता है, उसे उसकी खबर पड़ती है। उसे ऐसा कहा जाए कि तेरी बात खोटी है ? छोटी उम्र का था। चालीस वर्ष की उम्र होगी। ३५-४०। अरबपति-अरबपति। सौ करोड़ रुपये-अरब। ऐसे पन्द्रह अरबपति हैं।

अपने मुमुक्षुओं में आठ व्यक्ति तो करोड़पति हैं। करोड़पति। उसमें क्या हुआ ? धूल में क्या है ? आहाहा ! २६ दिन में ४५ लाख रुपये एकत्रित किये। हम २६ दिन रहे थे तो ४५ लाख (एकत्रित किये)। पन्द्रह लाख पहले इकट्ठे किये थे। नया मन्दिर बनाया। अफ्रीका में मन्दिर दो हजार वर्ष में है नहीं। दिगम्बर मन्दिर का नाम नहीं। दिगम्बर मन्दिर बनाया। बाईस लाख का तो मन्दिर बनेगा। बाईस लाख का। इसके अतिरिक्त तो साठ लाख दूसरे हैं। आहाहा ! उसमें क्या ? कहा—जो है, वह शुभभाव है। तुम साठ लाख खर्च करो तो धर्म है, जन्म-मरण मिटेंगे-यह बात है नहीं। सुनते थे, प्रेम से सुनते थे। प्रेम से यहाँ से बुलाया था न ? और सब यहाँ के परिचयवाले थे। महाजन लोग थे। जामनगर के पास 'चेलाचंद' गाँव है और वहाँ के महाजन लोग हैं। छह हजार लोग हैं। छह हजार महाजनों की आबादी। उनमें साठ घर पक्के मुमुक्षुओं के हैं। लोगों को प्रेम बहुत। परन्तु बापू ! पैसे से तुम्हें धर्म हो-यह तीन काल में नहीं। अरबों रुपये खर्च करके मन्दिर बनावे और जन्म-मरण मिटे—ऐसा तीन काल में नहीं है। यदि राग मन्द करे तो पुण्यबन्धन होगा। पैसा दे और बाहर प्रसिद्धि का अभिमान हो, हम खर्च करते हैं और हम सामने रहेंगे, तब तो पाप बाँधे। देवीलालजी ! वस्तु का ऐसा स्वरूप है। चारों ओर से समेटकर आत्मा में जाना है। भगवान के स्मरण और भक्ति का एक विकल्प भी उठे, या अरब रुपयों का मन्दिर बनाने का विकल्प उठे, उससे भी हटकर अन्दर में जाना, वह धर्म है। आहाहा ! कठिन बात है, बापू ! पैंतालीस वर्ष से तो यहाँ चलती है। पैंतालीस वर्ष से यहाँ है। आहाहा ! पैंतालीस वर्ष की उम्र में आये थे। इक्यानवें वर्ष चलता है। ९१, ९१वाँ वर्ष चलता है। नब्बे वर्ष पूरे हुए। बहुत सब देखा है। घर की दुकान थी। व्यापार किया है। सब

माल लाते थे। मुम्बई, सूरत, भरुच सर्वत्र माल लेने जाते थे। छोटी उम्र में, २० वर्ष की उम्र में। २२ वर्ष में छोड़ दिया। आहाहा! अन्दर धूल भी नहीं। दुनिया मानो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। वर्ष में दो-पाँच लाख की आमदनी देखे... ओहोहो! हम सुखी हैं। (वास्तव में तो) दु:खी हैं।

मुमुक्षु : अपने बाप-दादा के पास नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप-दादा के पास नहीं था और इसके पास था तो इसके पास कहाँ रहा है? इसके पास तो ममता आयी है। आहाहा! माणेकचन्दभाई के पास पैसे नहीं थे और रामजीभाई के पास पैसे आये। वे पैसे कहाँ आये? वह तो ममता आयी है। अब वापस मकान बेचकर 'चेतन' को सौंप दिया। किसका मकान और किसका कुछ...? आहाहा! अरे रे! दया, दान, का विकल्प भी उत्पन्न हो, वह आत्मा का नहीं। आत्मा उसे जानता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! आत्मा, आत्म को जानता है—ऐसा भेद डालना, वह भी नहीं।

आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ (है), उसमें दृष्टि लगाकर अनुभव होना, वह धर्म की पहली सीढ़ी है। धर्म का पहला सोपान वह है। बाकी सब शून्य है। आहाहा! ये पुस्तकें तो बाहर बहुत प्रकाशित हुई। बाईस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यहाँ से बाईस लाख पुस्तकें। आठ लाख तो जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। तीस लाख प्रकाशित हुई है। अब सात लाख मुम्बई से प्रकाशित होगी। एक पुस्तक आयी है। दूसरी सात लाख प्रकाशित होगी। प्रचार तो चारों ओर हो गया है, परन्तु अन्दर बैठना... आहाहा!

यहाँ तो कहा न? खड़ी-कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! रंग, टोपी को स्पर्श नहीं करता। रंग, रंग में है; टोपी, टोपी में है। आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी त्रिलोक के नाथ तीर्थंकरदेव, अनन्त परमात्मा तीर्थंकर ऐसी कह गये हैं और ऐसा कहते हैं। महाविदेह में अभी कहते हैं। सीमन्धरस्वामी भगवान साक्षात् विराजमान हैं। सभा में बाघ, सिंह, इन्द्र, देव सब वहाँ आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने को जाना है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जाकर क्या करना है? आत्मा में जाना है। आहाहा! वहाँ भी

अनन्त बार जा आया है। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। महाविदेह में अनन्त पुद्गलपरावर्तन; एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्तवें भाग में अनन्त भव। आहाहा!

मुमुक्षु : उस समय आपका उपदेश सुना नहीं था। अब आपका सुनकर जाएँ तो अन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्म ले, उसमें क्या हुआ? जन्म तो यहाँ लिया। चिदानन्द प्रभु मैं हूँ—ऐसी उत्पत्ति करना, वह जन्म है। मैं तो आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द ज्ञाता जाननहार मैं हूँ। मैं एक कण का भी फेरफार करनेवाला नहीं हूँ। चींटी को बचानेवाला मैं नहीं हूँ, आँख की पलक हिलानेवाला मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है।

वीतरागदेव-जिनेश्वरदेव परमात्मा, गणधर और इन्द्रों के मध्य यह कहते थे, वह बात है। यह बात वहाँ महाविदेहक्षेत्र में चलती है। आहाहा! वहाँ थे। मैं वहाँ था। वहाँ से यहाँ आया हूँ। देह छूटने के समय परिणाम ऐसे आये कि समरूप परिणाम नहीं रहे। वरना तो राजकुमार था, अरबों की आमदनी थी, हाथी-घोड़े थे। महाविदेह में मरते समय परिणाम ऐसे हुए कि उमराला में जन्म हो गया। यहाँ से ग्यारह मील दूर काठियावाड़ में आकर जन्मे। बहिन भी वहाँ थी। आहाहा! उसमें क्षेत्र क्या करे?

अन्तर भावभगवान निज परमात्मतत्त्वस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान किये बिना उसमें रमणता कभी नहीं हो सकती। तो पहले-पहले सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं, वहाँ धर्म कहाँ है? आहाहा! यह कहा न? एकादशपदी **शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। तथा भवभयभीरु,...** भवभयभीरु। आहाहा! अरेरे! यहाँ से कहाँ जाएगा? देह छूट जाएगी, परन्तु आत्मा तो नित्य है। देह छूटकर आत्मा कहाँ अवतरित होगा? आहाहा! ऐसा जिसे भव के भय का डर है। मैं आत्मा हूँ तो अनादि-अनन्त हूँ। देह तो छूट जानेवाली है। इसकी राख हो जानेवाली है, तो यह आत्मा जाएगा कहाँ? आहाहा! इसका तो कुछ नाश होना नहीं है। अविनाशी नित्य है। ये परमाणु कहीं नाश नहीं होते। परमाणुओं की पर्याय पलटती है। आहाहा! शरीर की पर्याय पलटती है। यह पर्याय ऐसी है, वह उस राख की पर्याय होगी। वस्तु कहीं नाश पाती है? आहाहा! यह देह छूटने के पश्चात् कहाँ जाएगा? इसका अस्तित्व कहाँ रहेगा - इसकी खबर नहीं। आत्मा कुछ करता नहीं। मैं कौन हूँ? इसकी कुछ दरकार नहीं और इस दुनिया की दरकार। स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा। पाप का धन्धा। पूरे दिन पाप, अकेला पाप। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सच्चा श्रावक है, वह तो शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करता है। **तथा भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले...** मुनि। आहाहा! परमनैष्कर्म्यवृत्ति। पुण्य की क्रिया रहित। महाव्रत के परिणाम, वह राग है, उससे रहित। आहाहा! परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले भाषा देखो! कैसे है जैनमुनि? क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित हैं। आहाहा! अन्दर है या नहीं? **परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले...** पंच महाव्रतादि के परिणाम की क्रिया, वह तो राग है। उससे रहित नैष्कर्म्यवृत्तिवाले। आहाहा! पाँच समिति और गुप्ति, आहार और पानी लेना-देना, वह तो सब क्रिया है, राग है। नैष्कर्म्य अन्दर चैतन्यमूर्ति में रहना, क्रियाकाण्ड से रहित अन्दर में जाना। ऐसे **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन...** परम तपोधन मुनि। आहाहा! नग्नमुनि जंगल में बसनेवाले, अन्दर आत्मा का ध्यान करनेवाले। आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन करनेवाले। उन्हें यहाँ मुनि कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धन तो है, तपोधन कहा न मुनि को!

पूज्य गुरुदेवश्री : तपोधन—तपरूपी धन। आत्मा के आनन्द और शान्तिरूपी धन। यह धूल नहीं। पैसा तो धूल है। मिट्टी है, धूल है। यह तो तपोधन। अन्दर इच्छा का निरोध करके आनन्द प्रगट करे, वह आनन्द धन है। तपोधन। तप—इच्छा निरोध करके अन्दर आनन्द में उग्रता लाना, चारित्र सहित आनन्द की वृद्धि करना, इसका नाम यहाँ तपोधन कहते हैं। वह तप धन है, बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा!

परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। मुनि भी अन्दर शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प, वह नहीं। उन्हें तो जानते हैं। जानते हैं—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। अन्तर शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करे, उसे सच्चा मुनि कहते हैं। आनन्द को पर्याय में प्रगट करके रमना, वह रत्नत्रय की भक्ति है। आहाहा! बात-बात में अन्तर, शब्द-शब्द में अन्तर। माना हो कुछ और निकले कुछ। अनादि काल से भटकता है, भटक मरता है। आहाहा! नरक और निगोद के अवतार करके। आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में, एक श्वास में अठारह भव निगोद के—यह लहसुन और प्याज। डूंगली को क्या कहते हैं? प्याज। एक श्वास में अठारह भव। उसमें अन्तर्मुहूर्त ६६३३६ भव। ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! विचार कब किया है?

अन्तर्मुहूर्त—दो घड़ी। दो घड़ी में निगोद लीलफूग / काई। पानी में काई होती है

न ? और यह लहसुन और प्याज। आहाहा! इसमें जन्म लेकर एक श्वास में अठारह भव, अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव। आहाहा! गजब बात है! विचार कब किया है ? यह तो वह सब हो-हा... हो-हा... हो-हा... मरकर वहाँ जानेवाले हैं। आहाहा! दो घड़ी में निगोद में—प्याज के भव। ६६३३६ इतने भव किये—ऐसा भगवान का पाठ है। भगवान के श्रीमुख से आया, उसमें इतने भव उन्होंने कहे हैं। ऐसे एक बार नहीं, अनन्त बार वहाँ जन्मा और मरा है। ओहोहो! अनन्त काल व्यतीत हो गया। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आदिरहित काल। कहाँ रहा—इसकी इसे खबर नहीं। खबर नहीं कि मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा ? यह देह छोड़कर कहाँ जाऊँगा ? कुछ खबर नहीं होती, भान नहीं होता। आहाहा! आत्मा तो नित्य है। देह का नाश होगा। आत्मा का नाश होगा ? देह का भी नाश नहीं है। देह के परमाणु की पर्याय दूसरे परमाणुरूप होगी, इसका नाम नाश। परमाणुओं का तो कहाँ नाश होता है ? देहरूप परमाणु हैं, वे राखरूप होंगे, उसे नाश कहा जाता है। परमाणु का नाश नहीं होता। आहाहा! वैसे ही आत्मा का नाश नहीं होता। एक भव में से दूसरे भव में या तीसरे भव में (जाता है)। ऐसे अनन्त भव (किये)। आहाहा! पानी उतर जाए, ऐसा है।

अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव। मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार बार जन्मे और मरे। निगोद में, काई में। काई, लहसुन, प्याज। आहाहा! कांदा मूला। मूला होता है न ? मूला का सफेद कन्द। उसमें भी अनन्तकाय है। उसके पत्ते में असंख्य (शरीर) है। परन्तु कन्द है, उसमें एक टुकड़े में अनन्त जीव है। वहाँ एक श्वास में अठारह भव किये। अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव किये। आहाहा! अभी तक रहा कहाँ ? अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... आहाहा! आत्मा है या नहीं ? है तो कहाँ रहा ? इसने कहाँ विचार किया है ? आहाहा! मूढ़रूप से पाँच-पच्चीस लाख रुपये इकट्ठे हुए, कमाये तो मानो हम जीते। मरकर निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

गत काल अनन्त गया। उस अनन्त की आदि है ?—कि इसके बाद... इसके बाद... इसके बाद... भव... भव... भव... भव... भव... आदिरहित अनन्त-अनन्त भव किये। आहाहा! इसे छूटने के लिये यह एक ही मार्ग है। इस आत्मा का अन्दर अनुभव होना। आहाहा! आहाहा! राग और दया, दान का भाव छोड़कर अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव होना, यह एक ही धर्म है। बाकी दूसरा धर्म नहीं है। लोगों को भ्रमाकर, लोगों

को भ्रम में डाल दिया। आहाहा! अनुभव प्रकाश नाम दिया है न। प्रेमचन्द की लड़की। लड़का.. उसका अनुभवप्रकाश। लड़का छोटा दस महीने का। आहाहा! नाम तो दिया परन्तु... आहाहा!

गतकाल में अनन्त काल कहाँ रहा? प्रभु! तूने कभी विचार किया है? आहाहा! नरक और निगोद में अनन्त भव गये और जब तक मिथ्यात्व है, तब तक अनन्त भव करेगा। आहाहा! मिथ्यात्व से विरुद्ध प्रकृति, आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तपोधन भी करते हैं। श्रावक तो अन्तर का ध्यान करते हैं, परन्तु मुनि भी... है न? **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! वे पंच महाव्रत पालते हैं—ऐसा नहीं। नग्न नहीं। वह कोई मुनिपना नहीं है। अन्तर आनन्दस्वरूप की भक्ति करते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमे, उसका नाम मुनि है। आहाहा!

यह कहा न? **भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले....** क्रियाकाण्ड की वृत्ति से रहित। आहाहा! **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन...** अन्तर में आनन्द में रमनेवाले। आहाहा! वे **भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** वे अन्तर के आनन्द की भक्ति करते हैं। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है। सत्-चिदानन्द, सत्-चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द का प्रभु है। उसका अस्तित्व आत्मा की मौजूदगी, अस्ति, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानादि गुण के स्वभाव की अस्ति है। राग-द्वेष का तो नाश होता है। होते हैं और नाश पाते हैं और भटकते हैं, उसकी मूल अस्ति तो यह है। मुनि उसकी भक्ति करते हैं तो मुनि कहलाते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत और नग्नपना ले लेवे तो मुनि है-ऐसा नहीं। आहाहा!

उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को... आहाहा! वे परम श्रावक। देखा? अन्तर के ध्यान में, अन्तर के आनन्द के ध्यान में आचरण करनेवाले। आहाहा! **उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई...** जिनवर त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने कहीं हुई **निर्वाणभक्ति...** आहाहा! जिनवरों ने कही हुई। जिनवरों ने भी... श्रावक जो अन्तर आनन्द में रहे, अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर दृष्टि करके रमते हैं, उन्हें जिनवरों ने कही हुई भक्ति होती है। है? आहाहा!

जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति—अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा— अपुनर्भव-अब भव ही नहीं। आहाहा! **अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा—वर्तती है।** आहाहा! वह तो अन्तर अपुनर्भव के परिणाम वर्तते हैं। भव करे—ऐसे परिणाम उसमें है ही नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के परिणाम, जिसे भव नहीं, वे अपुनर्भव में ही रमते हैं। भव करने का जो भाव है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा! श्रावकों और मुनियों—दोनों को ऐसी भक्ति होती है। उसका नाम सच्ची भक्ति कही जाती है। आहाहा! यह तो भगवान की भक्ति सबेरे पूजा करे और स्वाहा... स्वाहा... और स्वाहा... हो गयी भक्ति। धूल में भी नहीं। शुभभाव का भी ठिकाना नहीं है तो शुद्ध की भक्ति तो है ही कहाँ? आहाहा!

निर्वाणभक्ति। श्रावक को भी, पहली प्रतिमावाले को भी निर्वाणभक्ति है—ऐसा कहा है। ऐसा कहा न? सम्यग्दृष्टि-अनुभवी आनन्द का अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि प्रथम पाँचवें गुणस्थान में है, वह भी निर्वाणभक्ति करता है, मोक्ष की भक्ति करता है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? यह जिनवर की वाणी है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है। वहाँ से आये हुए। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे, वहाँ से आकर यह बनाया। उसमें यह जो नियमसार है, वह तो मुनिराज (आचार्यदेव) कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।' वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! अन्त में १८७ (गाथा में कहते हैं), आहाहा! मेरी भावना के लिये '**णियभावणाणिमित्तं मए कदंयिमसारणामसुदं**' आहाहा! नियमसार।

मुमुक्षु : उन्होंने तो मूल गाथाएँ की हैं। टीका तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल गाथा है न! और मूल गाथाओं का विस्तार टीकाकार ने किया है। टीका में, भाव है, उसका विस्तार किया है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव एक ही मिले इसकी टीका करनेवाले। वापस दूसरे कोई टीका करनेवाले मिले भी नहीं। आहाहा! दिगम्बर सन्त वन में बसनेवाले, सिद्ध के साथ बातें करनेवाले। यह ऐसी चीज़ है। आहाहा!

श्लोक-२२०

[अब इस १३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रान्ता)

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भव-भयहरे शुद्धबोधे चरित्रे,
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।
काम-क्रोधाद्यखिल-दुरघव्रात-निर्मुक्तचेता:,
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावक: संयमी वा ।।२२०।।

(वीरछन्द)

भवभयहारी सम्यग्दर्शन शुद्धज्ञान अरु चारित्र की।
करें निरन्तर अतुलनीय जो भवछेदक अनुपम भक्ति॥
कामादिक सब दुष्ट पापघन से विमुक्त उसका चित हो।
श्रावक हो अथवा संयमयुत जीव भक्त है भक्त अहो!॥२२०॥

[श्लोकार्थः] जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की भवछेदक अतुल भक्ति निरन्तर करता है, वह कामक्रोधादि समस्त दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव-श्रावक हो अथवा संयमी हो—निरन्तर भक्त है, भक्त है॥२२०॥

श्लोक- २२० पर प्रवचन

[अब इस १३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

श्लोक २२०।

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भव-भयहरे शुद्धबोधे चरित्रे,
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।

काम-क्रोधाद्यखिल-दुरघव्रात-निर्मुक्तचेता:,
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावक: संयमी वा ।।२२०।।

श्लोकार्थ: आहाहा! **जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की भवछेदक...** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसके अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जिसे आया, वह आत्मा की भक्ति करता है। आहाहा! आहाहा! **जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की...** आचरण था न ऊपर? वह **भवछेदक अतुल भक्ति...** भव का नाश करनेवाली अतुल—जिसे उपमा न दी जा सके, ऐसी अतुल भक्ति **निरन्तर करता है,...** आहाहा! **वह कामक्रोधादि समस्त दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव**- आहाहा! पुण्य और पाप से रहित अन्तर आनन्दस्वरूप में लीनता करनेवाले श्रावक और मुनि हैं।

श्रावक हो अथवा संयमी हो—निरन्तर भक्त है, भक्त है। आहाहा! दो बार आवाज की। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप में जो भक्ति करते हैं, वे श्रावक हों या मुनि, सच्चे भक्त हैं-भक्त हैं। बाकी सब नामधारी हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१३५

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं।।१३५।।

मोक्षगत-पुरुषाणां गुण-भेदं ज्ञात्वा तेषा-मपि।
यः करोति परमभक्तिं व्यवहारनयेन परिकथितम्।।१३५।।

व्यवहारनयप्रधानसिद्धभक्तिस्वरूपाख्यानमेतत्। ये पुराणपुरुषाः समस्तकर्मक्षयोपायहेतुभूतं कारणपरमात्मानमभेदानुपचाररत्नत्रयपरिणत्या सम्यगाराध्य सिद्धा जातास्तेषां केवलज्ञानादिशुद्धगुणभेदं ज्ञात्वा निर्वाणपरम्पराहेतुभूतां परमभक्तिमासन्नभव्यः करोति, तस्य मुमुक्षोर्व्यवहारनयेन निर्वृत्तिभक्तिर्भवतीति।

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥१३५॥

अन्वयार्थ : [यः] जो जीव [मोक्षगतपुरुषाणाम्] मोक्षगत पुरुषों का [गुणभेदं] गुणभेद [ज्ञात्वा] जानकर [तेषाम् अपि] उनकी भी [परमभक्तिं] परम भक्ति [करोति] करता है, [व्यवहारनयेन] उस जीव को व्यवहारनय से [परिकथितम्] निर्वाणभक्ति कही है।

टीका : यह, व्यवहारनयप्रधान सिद्धभक्ति के स्वरूप का कथन है।

जो पुराण पुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से सम्यक्‌रूप से आराधना करके सिद्ध हुए, उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर निर्वाण की परम्पराहेतुभूत ऐसी परम भक्ति जो आसन्नभव्य जीव करता है, उस मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है।

प्रवचन-१५३, श्लोक-२२१-२२५, गाथा-१३५,
शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल १, दिनांक १३-०६-१९८०

१३५ गाथा।

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं।।१३५।।

तेसिं पि में जोर है। पहले निश्चय है और इनको भी करते हैं। निश्चय भक्ति तो है, उसके साथ व्यवहार **तेसिं पि** इनकी भी।

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥१३५॥

टीका : जो पुराण पुरुष... हो गये। पुराण पुरुष हो गये। **समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत...** समस्त कर्म के क्षय के उपाय के हेतुभूत! **कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से...** आहाहा! मार्ग यह है। निश्चय यह है। पुराण पुरुष अनन्त हो गये, उन्होंने सर्व कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा को अभेद अनुपचार-उपचार नहीं, निश्चयरत्नत्रय परिणति, उसे **सम्यक्‌रूप से आराधना करके सिद्ध हुए...** इसमें व्यवहार नहीं डाला। अनन्त सिद्ध हुए, वे निश्चय से सिद्ध हुए हैं। आहाहा! कारणपरमात्मा को सेवन कर। अपना जो आत्मा त्रिकाली कारणभगवान, उसे अभेद रीति से सम्यक् प्रकार से-अनुपचार रत्नत्रयपरिणति से आराधकर सिद्ध हुए। अर्थात् अभी तक सिद्ध हुए, उसकी पद्धति भी रखी कि पद्धति तो यह है। पश्चात् व्यवहार आवे, पूर्ण नहीं, उसे **तेसिं पि** अर्थात् उस निश्चयवाले को भी पूर्ण न हो, तब राग होवे तब आता है। अकेले व्यवहाररत्नत्रय की बात यहाँ नहीं है। ऐसे पुरुष सम्यक्‌रूप से आराधकर सिद्ध हुए।

उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर... आहाहा! सिद्धभक्ति है न? भेद की, व्यवहार। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर निर्वाण की परम्पराहेतुभूत...** मोक्ष के परम्परा हेतुभूत व्यवहार। परन्तु जिसे निश्चय है, उसे यह व्यवहार की बात है। **निर्वाण की परम्पराहेतुभूत ऐसी परम भक्ति जो आसन्नभव्य जीव करता है,...** (जिसका) निकट संसार है-मोक्ष प्राप्ति की तैयारी है, ऐसे जीव करते हैं। **उस**

मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है। व्यवहारनय से (निर्वाणभक्ति है)। निश्चय है, परन्तु पूर्ण नहीं है, इसलिए व्यवहार का विकल्प है। इससे पुराण पुरुष जो सिद्ध हो गयें, उनकी भक्ति करते हैं। अकेले व्यवहार की बात नहीं है। व्यवहार से होगा, भगवान की भक्ति से मुक्ति होगी-ऐसा नहीं।

इसीलिए तो ऐसा लिया कि **पुराण पुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से सम्यक्रूप से आराधना करके...** आहाहा! अकेला भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप, उसे आराधकर, उसे पकड़कर, उसकी सेवा-अन्दर एकाग्रता करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! उनकी परम्परा हेतुभूत, ऐसी परमभक्ति जो व्यवहार, वह आसन्न भव्य जीव करता है। वह आसन्न भव्य जीव लिये वापस। उसमें **तेसिं पि** था न? उस समकिती को भी यह व्यवहारभक्ति है। यह अकेले आसन्न भव्य जीव करते हैं। आहाहा! अपने आत्मा का अन्तर कारणपरमात्मा की तो सेवा और आराधना है, परन्तु राग बाकी है, इसलिए जीव, आसन्न भव्य जीव-अल्प काल में जिन्हें मुक्ति है, उस मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है। इसमें वापस व्यवहार में विवाद निकाले कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा।

मुमुक्षु :- व्यवहार का अभाव करके होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार आता है।

यहाँ तो मात्र इतना सिद्ध करना है कि जो मोक्षगत पुरुष हैं, उन्हें जानकर **तेसिं पि** अपनी (भक्ति) तो करता है, परन्तु उनकी भी करता है - ऐसा लिया। निश्चय के साथ व्यवहार की बात है। समझ में आया? आहाहा! यह तो वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। स्व-आश्रय बिना तीन काल में मुक्ति नहीं है। एक ही सिद्धान्त। समकित भी स्व-आश्रय से, सम्यग्ज्ञान भी स्व-आश्रय से, सम्यक्चारित्र स्व-आश्रय से, शुक्लध्यान स्व-आश्रय से, केवलज्ञान स्व-आश्रय से, सिद्ध भी स्व-आश्रय से। आहाहा! अनादि का एक ही नियम। जब तक उसके अन्दर रह नहीं सकता और पूर्ण न हो, उसे भी ऐसी एक भक्ति व्यवहार की-सिद्ध की आती है - ऐसी बात यहाँ बतलानी है। परन्तु वह परम्परा हेतु कहा, उसका अर्थ यह। वह अशुभ से टलता है और फिर शुभ को टालेगा और स्वरूप में रमणता करेगा, तब मुक्ति होगी। परम्परा हेतु कहा न? अकेली परम्परा हेतुभूत नहीं। जिसे निश्चय

की खबर नहीं है, चैतन्य वस्तु की खबर नहीं है, उसे परम्परा हेतुभूत नहीं है। आहाहा! है न?

जिसके **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर...** जानकर ज्ञान करता है। **निर्वाण की परम्पराहेतुभूत ऐसी परम भक्ति...** आहाहा! व्यवहार को भी यहाँ परमभक्ति कहा। आहाहा! परमभक्ति। विषय परम भक्ति का है न? ऊपर नाम ही इसका यह है न? 'परमभक्ति अधिकार' अर्थात् जहाँ निश्चय आत्मा का आनन्द, निर्विकल्प-रागरहित चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव करे; उसे बाकी रहे हुए राग में जो अनन्त सिद्ध, अभेद अनुपचार से जो मुक्ति प्राप्त हुए, उनकी स्वयं शुभराग की भक्ति करे, इतनी यहाँ बात है। आहाहा!

श्लोक-२२१

[अब, इस १३५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज छह श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

उद्धूत-कर्मसन्दोहान् सिद्धान् सिद्धि-वधूधवान्।
सम्प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्।।२२१।।

(वीरछन्द)

कर्म विनाशक सिद्धिवधूपति गुण संपति को प्राप्त अहो!
उन सिद्धों को वन्दन करता मैं कल्याण निकेतन जो॥२२१॥

[श्लोकार्थः] जिन्होंने कर्मसमूह को खिरा दिया है, जो सिद्धिवधू के (मुक्तिरूपी स्त्री के) पति हैं, जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है तथा जो कल्याण के धाम हैं, उन सिद्धों को मैं नित्य वन्दन करता हूँ॥२२१॥

श्लोक- २२१ पर प्रवचन

[अब, इस १३५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज छह श्लोक कहते हैं:]

उद्धूत-कर्मसन्दोहान् सिद्धान् सिद्धि-वधूधवान्।
सम्प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्।।२२१।।

श्लोकार्थ: जिन्होंने कर्मसमूह को खिरा दिया है,... आहाहा! व्यवहार की भाषा है। बाकी स्वरूप में स्थिर होता है, वह वह वस्तु खिर जाती है। कर्म की पर्यायरूप है, वह आत्मा की ओर जहाँ अन्दर स्थिर होता है (तो) वह कर्मरूप पर्याय है, वह अकर्मरूप पर्याय हो जाती है। नाश तो दूसरा कुछ होता नहीं। जो कर्म पर्यायरूप थी, वह पर्याय अकर्मरूप हो गयी। इसका नाम कर्म का नाश किया, ऐसा कहा गया है। आहाहा! **जिन्होंने कर्मसमूह को...** कर्म का समूह। आठ कर्म का ढ़ेर। आहाहा! उसे खिरा डाला है। टाल दिया है - ऐसा नहीं कहा; खिरा डाला है। जैसे पंख को खिरा देता है, वैसे खिरा डाला है। आहाहा!

जो सिद्धिवधू के (मुक्तिरूपी स्त्री के) पति हैं,... आहाहा! सिद्ध भगवान की बात करते हैं। जो सिद्धिरूपी मुक्ति, उसकी जो स्त्री-परिणति, उसके वे पति हैं। आहाहा! **जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है...** जिन्होंने आठ गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है। प्राप्त तो अनन्त गुण किये हैं, परन्तु मुख्य आठ व्यवहार में लिये। **अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है तथा जो कल्याण के धाम हैं,...** आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' परमात्मा सिद्ध कल्याण के स्थान हैं, कल्याण के क्षेत्र-कल्याण का धाम है। आहाहा! **उन सिद्धों को...** इस प्रकार पहिचानकर निश्चयसहित **मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** नित्य वन्दन करता हूँ। तो यह तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार बीच में आता है अर्थात् प्रतिदिन आता है, इसलिए नित्य वन्दन करता हूँ-ऐसा कहा। प्रतिदिन आता है न? निश्चय में रह नहीं सकते, तब सुबह-शाम प्रतिक्रमण में आता है। इसलिए नित्य वन्दन करता हूँ - ऐसा कहा गया है। नित्य का अर्थ कहीं चौबीस घण्टे वन्दन करता हूँ—ऐसा नहीं है, परन्तु हमेशा सुबह-शाम आदि वन्दन करता हूँ। आहाहा! **मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** ऐसे सिद्ध को। व्यवहार की गाथा। छह श्लोक लिये। आहाहा!

श्लोक-२२२

(आर्या)

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता।।२२२।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार निर्वाण भक्ति व्यवहार कथन जिनराज कहें।
निश्चय से निर्वाण भक्ति रत्नत्रय भक्ति को कहते॥२२२॥

[श्लोकार्थः] इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है; निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है॥२२२॥

श्लोक- २२२ पर प्रवचन

(श्लोक) २२२।

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता।।२२२।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है;... आहाहा! सिद्धभगवान की (भक्ति) व्यवहार से निर्वाणभक्ति कही है। **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** परन्तु उसके साथ जो निश्चय है, उसे निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कही है। आहाहा! व्यवहार कहा सही, परन्तु उसके साथ निश्चय है। निश्चय स्व-आश्रय के बिना की बात कहीं एक भी कदम आगे नहीं चलती। थोड़ी ऐसे कषाय को मन्द करे, शास्त्र का जानपना करे, उससे अन्दर जाया जाएगा (-ऐसा नहीं)। यह वस्तु तो निरपेक्ष है। आहाहा! यहाँ तो सिद्धभगवान की व्यवहार की भक्तिवाले को भी निश्चय निर्वाणभक्ति, रत्नत्रयभक्ति को कही है। उसकी भक्ति निश्चय से और उसे जो सिद्ध भगवन्त की (भक्ति) है, वह व्यवहार से कही है। दोनों कही। है? अकेली व्यवहार नहीं। आहाहा!

इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है;... व्यवहार है – ऐसा जिनवरों ने कहा है। **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** उन तीर्थंकरों ने निश्चय जो मोक्ष की भक्ति, वह निर्वाण रत्नत्रय भक्ति स्वयं की है, उसे कहा है। आहाहा! **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** निश्चय रत्नत्रय अन्तर आश्रय, स्वभाव के आश्रय से, अनन्त गुण का सागर प्रभु, उसके आश्रय से जो भक्ति हो, उस भक्ति को निश्चयभक्ति कहा है। सिद्ध भगवान की भक्ति को व्यवहारभक्ति कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह व्यवहार-निश्चय का...

पूज्य गुरुदेवश्री :- निश्चय है, उसे व्यवहार कहा है। राग बाकी है न? शाम-सबेरे भक्ति करे, प्रतिक्रमण करे, – ऐसा आता है न? उसमें वन्दन आता है। आहाहा! परन्तु यह बात लेकर। निश्चय निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है। उसे साथ में रखकर (व्यवहार की बात है)। आहाहा! निश्चय निर्वाणभक्ति अपनी रत्नत्रयभक्ति। सिद्ध की भक्ति नहीं। आहाहा! रत्नत्रय अपना जो निश्चयरत्नत्रय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसकी भक्ति वह निश्चय निर्वाण की भक्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु :- आपने सब ही निकाल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निकाला। ऐसा है, वस्तुस्थिति ऐसी है। स्व के आश्रय बिना एक अंश भी निर्मलता संवर या निर्जरा प्रगट नहीं होती। मोक्ष तो एक ओर रहा, परन्तु संवर और निर्जरा (भी नहीं होती)। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त गुण की राशि, अनन्त शक्ति का संग्रहालय (है), उसका आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। इसके बिना पर के आश्रय से नहीं होते। निश्चय हुआ है, उसे व्यवहार बीच में आता है; इसलिए उसे परम्परा कहा गया है। साक्षात् तो यह है—निश्चय निर्वाणभक्ति-यह साक्षात् है। और व्यवहार परम्परा है अर्थात् कि वह व्यवहार-राग आता है, उसे छोड़कर स्थिर होगा। अब इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि व्यवहार परम्परा हेतु है, वह निश्चय को प्राप्त करायेगा। ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा तो ऐसी है। व्यवहार, निर्वाण परम्परा को प्राप्त करायेगा ही।

मुमुक्षु :- परन्तु परम्परा का अर्थ उसका अभाव करके या उसे रखकर?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसका अभाव करके। निश्चय तो है, परन्तु यहाँ जरा राग की अस्थिरता आती है। पश्चात् उसका त्याग होकर अन्दर स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- प्रचण्ड कर्मकाण्ड के बल से, आता है न प्रवचनसार में?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्मकाण्ड संसार है। कर्मकाण्ड का ज्ञान करे। प्रवचनसार में कहा है। प्रवचनसार में अन्तिम अधिकार। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड प्रगट होता है। यह तो निमित्त से कथन किया है। प्रवचनसार में अन्तिम भाग में है। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से निर्वाणकाण्ड, मोक्ष-ज्ञानकाण्ड। यह भाई ने तो निकाल दिया। धर्मदास क्षुल्लक। सम्यग्ज्ञान दीपिका में यह बात ली है। यह निकाल दिया। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड है, यह बात निकाल दी। प्रचण्ड कर्मकाण्ड को निकाल दिया। व्यवहार है, उसमें जानने में आवे। व्यवहार आता है, परन्तु व्यवहार आत्मा को लाभ करता है - ऐसा बिल्कुल नहीं है। परम्परा कहा, वह तो उस राग का अभाव करके करेगा, इसलिए उसे परम्परा कहा है, परन्तु निश्चय के बिना वह राग अकेला व्यवहार परम्परा हेतु हो—ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! २२२ (श्लोक हुआ)।

श्लोक-२२३

(आर्या)

निःशेष-दोषदूरं केवल-बोधादि-शुद्धगुण-निलयम्।
शुद्धोपयोग-फल-मिति सिद्धत्वं प्राहु-राचार्याः ।।२२३।।

(वीरछन्द)

आचार्यों ने सिद्ध दशा को कहा सभी दोषों से दूर।
फल शुद्धोपयोग का, केवलज्ञान आदि गुण से भरपूर ।।२२३ ।।

[श्लोकार्थः] आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर, केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम और शुद्धोपयोग का फल कहा है ।।२२३ ।।

श्लोक- २२३ पर प्रवचन

२२३ (श्लोक)।

निःशेष-दोषदूरं केवल-बोधादि-शुद्धगुण-निलयम्।
शुद्धोपयोग-फल-मिति सिद्धत्वं प्राहु-राचार्याः ।।२२३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **आचार्यों ने...** आहाहा! भगवान ने कहा है, वैसे **आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर,...** समस्त दोष से दूर **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** आहाहा! सिद्धभगवान निःशेष दोष से दूर हैं। यह नास्ति से लिया। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** यह अस्ति कही। यह अस्ति और नास्ति कही। दोष से दूर, यह नास्ति; गुणों से रहित, यह अस्ति। आहाहा! यह **शुद्ध गुणों का धाम और शुद्धोपयोग का फल कहा है।** आहाहा! यह मोक्ष, उस शुद्धोपयोग का फल कहा है। शुभोपयोग का फल मोक्ष नहीं है। निर्वाण-सिद्ध की व्यवहार भक्ति, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! इतना स्पष्ट कथन, इसका गड़बड़ उठाकर अर्थ करना। आहाहा!

आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर,... निःशेष अर्थात् समस्त दोषों से दूर और **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणों का धाम और उसे शुद्धोपयोग का फल (कहा है)। शुभराग से मुक्ति हो - यह तीन काल में नहीं है। शुभभाव आवे। बीच में बात की थी। निश्चयवाले को **तेसिं पि** उसे भी शुभभाव आवे, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! यह **शुद्धोपयोग का फल कहा है।** केवलज्ञान और परमात्मपद शुद्धोपयोग का फल है; शुभराग का फल नहीं है। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति इत्यादि क्रियाकाण्ड का फल मुक्ति नहीं है। उसका फल बन्ध है। आहाहा! भारी कठिन काम। अभी तो यह चलता है। व्यवहार करो, व्यवहार करो। और वे श्रुतसागर तो यहाँ तक कहते हैं, अभी शुभयोग ही है। उन्होंने बात बाहर प्रसिद्ध की है। अर र! स्वरूप की सन्मुखता होने के भी योग्य नहीं - ऐसा कहा। आहाहा! अभी शुभयोग ही है। यहाँ कहते हैं कि शुभयोग, वह संसार है। आहाहा!

शुद्धोपयोग का फल कहा है। मोक्ष-केवलज्ञान, केवलदर्शनादि परमात्मपद शुद्धोपयोग का फल है। आहाहा! शुद्धोपयोग में शुभ और अशुभ का अभाव है। मात्र चैतन्य के अवलम्बन से, चैतन्य के अवलम्बन से जो उपयोग-व्यापार होता है, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। मात्र चैतन्यस्वरूप के अवलम्बन से जो व्यापार हो, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। वह शुद्धोपयोग एक ही मुक्ति का कारण है। बाकी कोई मुक्ति का कारण व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। आहाहा! है या नहीं इसमें? तो भी विवाद और विसंवाद निकाला करते हैं। अनादि का स्वभाव है।

अन्दर भगवान चैतन्य परमेश्वर प्रभु परमात्मा विराजमान है। उसका आश्रय लेकर ही सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान होता है। बाकी सब व्यवहार के कथन आते हैं, वे जानने के लिये (हैं)। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। (समयसार) १२वीं गाथा । व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। है अवश्य; व्यवहार नहीं है – ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं है – ऐसा नहीं है। निश्चय पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार होता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- व्यवहार तो छठवें गुणस्थान तक ही होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वहाँ तक होता है। कहने में कथन (ऐसा आता है)। वैसे तो व्यवहार ठेठ बारहवें (गुणस्थान) तक आता है। जब तक पूर्ण दशा न हो, तब तक। यहाँ बुद्धिपूर्वक में छठवें तक लिया जाता है। बाकी (तो) व्यवहार बारहवें गुणस्थान तक होता है। जहाँ केवलज्ञान का अभाव है। आहाहा! बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनय कहा है। अशुद्धनय का अर्थ व्यवहारनय कहा है। आहाहा! क्योंकि वहाँ अभी चार कर्मों का अभाव नहीं है। वीतरागता हुई है (परन्तु) अभी केवलज्ञान हुआ नहीं है। आहाहा! किसे? बारहवें गुणस्थान में वीतरागता हुई है; केवलज्ञान हुआ नहीं है, इसलिए उसे वहाँ तक व्यवहार और अशुद्धता कही है। आहाहा!

प्रश्न चला है कि अशुद्धनय है तो अशुद्धनय में मोक्ष का मार्ग कहाँ से आया वापस? वह अशुद्धनय है न? क्या कहा, समझ में आया? जब अशुद्ध उसे कहा, तुमने अशुद्धनय को बारहवें तक (कहा) तो इतने तक में अशुद्धनय में मोक्षमार्ग आया कहाँ? बापू! वह अशुद्धनय है, जितना राग, उस अपेक्षा से कहा, परन्तु स्वभाव के आश्रय से

जितना मोक्षमार्ग हुआ, वह तो मोक्षमार्ग है। अशुद्धनय में भी मोक्षमार्ग है – ऐसा कहना है। आहाहा! यह प्रश्न चला है कि बारहवें तक व्यवहारनय कहो, अशुद्धनय कहो और केवलज्ञान नहीं कहो। आहाहा! और मोक्ष का मार्ग कहो। बारहवें तक अशुद्धता होने पर भी पहले से मोक्षमार्ग कहते हो, अशुद्धता तो बारहवें तक रही है। व्यवहार तो वहाँ तक रहा है। भाई! बात वहाँ तक है, वह जाननेयोग्य है। बाकी आत्मा के आश्रय से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए हैं, उतना मोक्षमार्ग तो चौथे गुणस्थान से शुरु हो गया है। आहाहा!

अशुद्धनय की भूमिका में मोक्षमार्ग है, वह अशुद्धनय से नहीं है। आहाहा! वह बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनय की भूमिका है, व्यवहारनय की; परन्तु अन्तर में स्व का आश्रय है, उतना मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! सब बात ली है। आचार्यों ने तो कोई बात बाकी नहीं रखी है। एक-एक बात को स्पष्ट करके (कहा है)। बारहवें तक तुम व्यवहारनय कहो, अशुद्ध कहो और फिर तुम मोक्षमार्ग राग से न पालो। राग से-व्यवहार से मोक्षमार्ग नहीं, तो उसे मोक्षमार्ग कहाँ से आया? समझ में आया? कि उसे मोक्षमार्ग स्व से आया। जितना पर का आश्रय रहा, उतनी अशुद्धता और व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! परन्तु जितना अन्दर स्व-आश्रय हुआ, चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अवलम्बन हुआ, उतना तो मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। अशुद्धनय और व्यवहारनय की भूमिका में भी, व्यवहारनय से नहीं, परन्तु व्यवहारनय की भूमिका में स्व का आश्रय जो हुआ, वह मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! समझ में आया? यह चर्चा चली है। आहाहा!

मुमुक्षु :- शुद्धनय और अशुद्धनय दोनों साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दोनों साथ में है। पूर्ण नहीं है। कहा न? जब तक पूर्ण नहीं है, तब तक राग है और राग है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है; तो भी मोक्षमार्ग वहाँ नहीं है-ऐसा नहीं है। मोक्षमार्ग, वह कहीं राग है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

स्व का माहात्म्य आना और स्व में अन्दर जाना, बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। जानपना थोड़ा हो, बोलना भी नहीं आवे, दूसरों को कहना भी नहीं आवे, परन्तु अन्दर (अन्तर्मुख होना) आवे। आहाहा! जहाँ सच्चिदानन्द प्रभु त्रिकाल निरावरण वस्तु अखण्ड पड़ी है, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ मोक्षमार्ग शुरु हो गया। आहाहा! भले व्यवहारनय रहा, भले उसे अशुद्धनय कहो। अशुद्धनय से मोक्षमार्ग नहीं है, अशुद्धनय की भूमिका में...

आहाहा! अन्दर में चैतन्य भगवान के आश्रय से मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! अरे! इसमें कहाँ वाद और विवाद का प्रश्न है ? यह सीधी बात है। आहाहा!

अपना भगवान परिपूर्ण विद्यमान है। परिपूर्ण वस्तु, वस्तु ही है, ऐसा कहा नहीं ? सवेरे नहीं आया ? वह जैसा है, वह वही है। वह जैसा है, वह वही है। वह दूसरे प्रकार से नहीं है। आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जो है, वह है। उसे कोई पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहा। यहाँ तो क्या लेना है ? कि **आचार्यों ने...** सिद्ध भगवान ने समस्त दोष से दूर कहा, (यह) नास्ति से बात की। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** कहा। आहाहा! सिद्धभगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द अनन्त गुण व्यक्त / प्रगट हो गये। पर्याय में, अनन्त गुणों की शक्ति थी, वह व्यक्त हो गयी। आहाहा! सिद्ध को क्या बाकी रहा ? अभी चौदहवें (गुणस्थान) में असिद्ध कहलाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में भी असिद्ध हैं, क्योंकि चार कर्म का अभी जरा दोष है। स्वयं के कारण से, हों! कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! कर्म के कारण से नहीं। यह चार कर्म बाकी हैं, उतना स्वयं की हीनता का निमित्त है। उपादान यह और उसका उपादान वह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान ने उसे शुद्धोपयोग का फल कहा है। केवलज्ञान और मोक्ष, यह तो शुद्धोपयोग का फल कहा, प्रभु! और वह शुद्धोपयोग स्व के आश्रय से होता है। आहाहा! बीच में राग का अंश आवे तो प्रवचनसार में भक्ति में आता है। प्रवचनसार में शुरुआत में (आता है)। बीच में राग आवे, परन्तु वह राग मोक्ष का कारण नहीं है। राग को उलंघकर जाता है, तब उसे मोक्षमार्ग होता है। प्रवचनसार शुरुआत की गाथा। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों ने तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। बहुत स्पष्ट कर दिया। केवली परमात्मा के मार्गानुसारी। सर्वज्ञ भगवान ने कहा, उसका पेट (आशय) खोलकर स्वयं ने कहा है। आहाहा! दुनिया की लाज-शर्म नहीं रखी कि दुनिया इसे कैसे बोलेगी और कैसे मानेगी ? दुनिया, दुनिया का जाने। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने दुनिया की दरकार नहीं की। समाज सुगठित रहेगी या नहीं ? ऐसी बहुत सूक्ष्म बात करूँगा तो सम्प्रदायरूप से निभेंगे या नहीं ? (इसकी) दरकार नहीं की। आहाहा!

अन्तर भगवान चिदानन्द से भरपूर परिपूर्ण परमात्मा की अस्ति किसी दिन नहीं है

– ऐसा नहीं है। उसकी अस्ति त्रिकाल है। उसका आश्रय करने से मोक्ष का मार्ग शुरु होता है। आहाहा! भले अशुद्धता रही, परन्तु उसके (स्वभाव के) आश्रय से मोक्षमार्ग शुरु होता है और उसे ही शुद्धोपयोग कहकर सिद्ध फल कहा है। वह चौथे से मोक्ष का जो मार्ग कहा, वह शुद्धोपयोग कहा। आहाहा! वे शुद्धोपयोग का इनकार करते हैं कि श्रावक को शुद्धोपयोग होता नहीं; शुद्धोपयोग मुनि को होता है। अरे! प्रभु! शुद्धोपयोग थोड़ा होता है, परन्तु शुद्धोपयोग चौथे से शुरु होता है। स्व का आश्रय हुआ, वही शुद्धोपयोग है। इसके बिना शुद्धोपयोग नहीं हो सकता। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; संख्या रहे, संख्या न रहे, यह सन्तों को कुछ पड़ी नहीं है। वाड़ा बाँधकर संख्या रहे – ऐसी सन्तों को पड़ी नहीं है। वे तो सत्य की बात प्रसिद्ध करके ढिंढ़ोरा पीटते हैं। आहाहा! वे कोई गुप्त बात नहीं रखते। आहाहा!

ऐसा यह भगवान अन्दर आत्मा, जिसे धर्म और शान्ति प्रगटाने के लिये कोई की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। ऐसा निरपेक्ष तत्त्व प्रभु है न! उसके ही आश्रय से शुरुआत और पूर्णता होती है। शुरुआत और पूर्णता उसके आश्रय से होती है। व्यवहार के आश्रय से कुछ नहीं होता। आहाहा! व्यवहार बन्ध का कारण होता है। परम्परा हेतु कहा, अर्थात् उसे टालकर यह होगा। वह कारण नहीं होगा। आहाहा! यह २२३ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-२२४

(शार्दूलविक्रीडित)

ये लोकाग्र-निवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता,
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।
ये शुद्धात्म-विभावनोद्भव-महा-कैवल्य-सम्पद्गुणाः,
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्।।२२४।।

(वीरछन्द)

जो लोकाग्र वास करते, भव क्लेशोदधि से होकर पार।
मुक्ति वधू-स्तन आलिंगन से जो उत्पन्न सुखामृत खान॥
मुक्ति सम्पदा के गुण मंडित जो शुद्धात्म भावनोत्पन्न।
पाप-वनों को पावक जो सिद्धों को प्रतिदिन करूँ नमन॥२२४॥

[श्लोकार्थः] जो लोकाग्र में वास करते हैं, जो भवभव के क्लेशरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं, जो निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन के आलिंगन से उत्पन्न सौख्य की खान हैं तथा जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न कैवल्यसम्पदा के (-मोक्षसम्पदा के) महा गुणोंवाले हैं, उन पापाटवीपावक (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान) सिद्धों को मैं प्रतिदिन नमन करता हूँ॥२२४॥

श्लोक- २२४ पर प्रवचन

(श्लोक) २२४।

ये लोकाग्र-निवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता,
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।
ये शुद्धात्म-विभावनोद्भव-महा-कैवल्य-सम्पद्गुणाः,
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्।।२२४।।

आहाहा! वीतरागी मुनि हैं। उन्हें कुछ अमुक कहने में संकोच नहीं आता। वे तो वीतरागी सन्त हैं। पूर्ण वीतराग नहीं, परन्तु जितने अंश वीतरागता हुई है, एक संज्वलन की कषाय रही, बाकी छठवें में वीतराग हैं। उन्हें यह दुनिया की भाषा कहने में कोई बाधा नहीं आती। आहाहा! २२४।

श्लोकार्थ : जो लोकाग्र में वास करते हैं,... सिद्धभगवान का स्थान लोकाग्र है। आहाहा! सिद्धभगवान का स्थान लोकाग्र है, वहाँ रहते हैं। भले ही सिद्ध यहाँ होते हैं। मनुष्यक्षेत्र में सिद्ध होते हैं, परन्तु रहने का स्थान वहाँ है। आहाहा! **जो भवभव के क्लेशरूपी...** भव-भव के क्लेशरूपी **समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं,...** आहाहा! जो भव-भव के क्लेशरूपी, भव-भव का क्लेश। आहाहा! स्वर्ग को भी क्लेश में डाला है। भव-भव में सब आये न? आहाहा! स्वर्ग में भी क्लेश और दुःख है। आहाहा!

यह बात जँचना वह कोई भाग्यवान और पात्र हो, तब जँचती है। यह कोई बातें नहीं हैं। यह कोई वाड़ा-पक्ष नहीं है, यह कोई पन्थ नहीं है। यह तो वस्तु की स्थिति है, वैसा वर्णन भगवान ने किया है। जैसा षट्द्रव्य / वस्तु का स्वरूप है, वैसा वर्णन भगवान ने देखकर किया है। आहाहा! यह कोई पक्ष और कोई पन्थ नहीं है। जैनपन्थ हमारा ऐसा है और तेरा पन्थ ऐसा है - ऐसा नहीं है। तीन लोक के नाथ ने तीन काल-तीन लोक जब देखे, तब वाणी अपने आप स्वतः निकली। आहाहा! वाणी में भी स्व-पर कहने की ताकत होने से (वाणी निकली है)। भगवान में स्व-पर जानने की ताकत, उसका निमित्त; वाणी में स्व-पर कहने की ताकत। वह उपादान स्वयं का स्वयं के कारण। आहाहा! सर्वज्ञ के कारण नहीं। उस वाणी की ताकत स्व-पर कहने की ताकत है। आहाहा!

जो भवभव के क्लेशरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं,... आहाहा! **जो निर्वाणवधू के...** आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के पुष्ट स्तन... आहाहा! अर्थात् जो पुष्ट गुण प्रगट हुए... आहाहा! जो शक्तिरूप से थे, वे पर्याय में पुष्टरूप से प्रगट हुए। आहाहा! उसे कहते हैं **निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन के आलिंगन से...** उस प्रगट दशा का आलिंगन। आहाहा! प्रगट अनन्त गुणों की पर्याय सिद्धों को प्रगट हुई, उसका वे आलिंगन करते हैं। आहाहा! उसे वे स्पर्श करते हैं। आहाहा! भाषा रखने में कोई दरकार नहीं की। **निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन...** मोक्षरूपी स्त्री का पुष्ट स्तन अर्थात् उसकी पर्याय पुष्ट हुई है, जो शक्ति में थी। अनन्त शक्ति में तो सबको, अभव्य को भी है। आहाहा! परन्तु जिसकी पर्याय में, जैसा शक्ति का सामर्थ्य था, वैसा पर्याय में प्रगट हुआ, वह पुष्ट हुआ। उस पुष्ट स्तन को जैसे आलम्बे, वैसे इस पुष्ट पर्याय के आलम्बन से अनुभव करते हैं। आहाहा! इस प्रकार का मार्ग। आहाहा! लोक के पार की बात है, भाई! लोगों के पार की बात है, वीतराग का मार्ग। आहाहा!

मुनि ऐसी भाषा कैसे बोले? बापू! वीतरागभाव से यह कथन करके जो वस्तु है, उसे सिद्ध करते हैं। आहाहा! अर्थात् उस पुष्ट स्तन का आलिंगन करते हैं, इसका अर्थ यह कि जिसमें अनन्त शक्तियाँ थी, वे सब पर्याय में प्रगट होकर पुष्ट हो गयी है। आहाहा! जिन्हें उनका आलिंगन है, जिन्हें उनका वेदन और स्पर्श है.. आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान... आहाहा! **उत्पन्न सौख्य की खान हैं...** आलिंगन से उत्पन्न सौख्य की खान है। आहाहा! पर्याय में अनन्त गुणों का सुख प्रगट हुआ है। आनन्द तो प्रगट हुआ है, परन्तु अनन्त गुणों

का सुख (प्रेगट हुआ है)। आहाहा! अस्तित्व का सुख, वस्तुत्व का सुख, सुख का सुख, चारित्र का सुख – ऐसे अनन्त गुणों की शक्ति में से व्यक्त की पर्याय में पुष्ट हुई है। आहाहा! दीपक की भाँति बतलाया है। आहाहा! ऐसी वह खान है।

जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... जो सिद्ध भगवान शुद्धात्मा की भावना। शुभभाव कहीं नहीं लिया। शुद्धात्मा की भावना-शुद्धोपयोग। आहाहा! त्रिकाल भगवान शुद्धात्मा, उसका उपयोग-शुद्धोपयोग; शुभाशुभराग से रहित। आहाहा! **भावना से उत्पन्न कैवल्यसम्पदा के (-मोक्षसम्पदा के) महा गुणोंवाले हैं,...** आहाहा! महागुणोंवाले हैं, कहा। देखो ? उस पर्याय को गुणोंवाला कहा। आहाहा! शक्ति-सत्वरूप से, स्वभावरूप से जैसे अनन्त गुण थे, वे सब पर्याय में प्रगट गुणरूप हो गये। आहाहा! **महा गुणोंवाले हैं,...** सिद्ध भगवान तो पर्याय है, परन्तु उस पर्याय को यहाँ गुण कहा गया है। जितने गुण थे, वे गुण सब पर्याय में प्रगट हुए; इसलिए वे सब गुण ही हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उन पापाटवीपावक (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान)... आहाहा! वे सिद्धभगवान जिन्हें पूर्णानन्द की प्राप्ति अनन्त गुण की हो गयी, वे पापरूपी... आहाहा! अग्नि। पापरूपी अटवी, पापरूपी वन। आहाहा! पापरूपी विशाल वन। आहाहा! उसे जलाने में अग्नि-समान है। संसार के पुण्य-पाप आदि वे सब पाप हैं। आहाहा! ऐसा कहा न इसमें ? **(-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान)...** इसमें ऐसा नहीं कहा कि पाप को जलाने में समर्थ है और पुण्य को रखने में। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आहाहा!

(-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान) सिद्धों को... आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान को **मैं प्रतिदिन...** प्रत्येक दिन, प्रत्येक दिवस **नमन करता हूँ।** प्रतिक्रमण दो बार करते हैं न! आहाहा! **प्रतिदिन नमन करता हूँ।** भले वह व्यवहार है। ऐसा विकल्प आता है, इसलिए उन सिद्धों को, जिन्हें अनन्त गुणों की पुष्टि प्रगट हो गयी है। आहाहा! उसका जिन्हें आनन्द का आलिंगन-वेदन है, ऐसे सिद्धों को मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ। उन्हें हमेशा वन्दन करता हूँ। आहाहा! हमेशा का अर्थ वह कहीं समय-समय (वन्दन करता हूँ)—ऐसा नहीं। आहाहा! प्रत्येक दिन में मैं उन्हें वन्दन करता हूँ। कोई दिन सिद्ध को वन्दन किये बिना खाली नहीं है। आहाहा! अग्नि समान, ऐसे सिद्धों को मैं प्रतिदिन, प्रत्येक दिवस। आहाहा! नमन करता हूँ। यह तो व्यवहारभक्ति कही न ?

श्लोक-२२५

(शार्दूलविक्रीडित)

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारङ्गतान्,
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्,
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्।।२२५।।

(वीरछन्द)

जो लोकाग्र निवासी, गुणगुरु ज्ञेयोदधि-पारंगत हैं।
मुक्ति-वधू मुखकमल सूर्य हैं निजाधीन सुख सागर हैं॥
अष्ट गुणों को प्राप्त, भवान्तक, अष्ट कर्म के नाशक हैं।
पाप-वनों को पावक शाश्वत सिद्धों की हम शरण गहें॥२२५॥

[श्लोकार्थः] जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं, जो ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं, जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं, जो स्वाधीन सुख के सागर हैं, जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध (-प्राप्त) किया है, जो भव का नाश करनेवाले हैं तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है, उन पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान) नित्य (अविनाशी) सिद्धभगवन्तों की मैं निरंतर शरण लेता हूँ॥२२५॥

श्लोक- २२५ पर प्रवचन

(श्लोक) २२५।

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारङ्गतान्,
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्,
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्।।२२५।।

आहाहा! व्यवहार के श्लोक इतने लिये।

श्लोकार्थ : जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं,... सिद्धभगवान तीन लोक के अग्र में बसते हैं। आहाहा! वे सिद्ध नीचे नहीं आते, परन्तु नीचे के जीव वहाँ जाते हैं, सिद्ध होते हैं। आहाहा! यह एक जगह आता है। सिद्ध है, वे नीचे के जीवों को खींचते हैं, ऊपर ले जाते हैं, परन्तु सिद्ध को कोई नीचे नहीं लाता। आहाहा! **जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं,...** सिद्धभगवान गुण में भारी हैं। आहाहा! उनसे भारी कोई अरिहन्त भी नहीं है। अरिहन्त भी अभी असिद्ध हैं। वे तो गुण में भारी हैं।

जो ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं,... आहाहा! तीन काल-तीन लोक में जाननेयोग्य जितनी चीज़ें हैं, उन जाननेयोग्य चीजों को... आहाहा! ज्ञेयरूपी महासागर। महासागर। अनन्त परमाणु और अनन्त गुण एक-एक परमाणु में। आहाहा! अनन्त जीव और उनसे अनन्त गुणे परमाणु और अनन्त गुणे काल (समय) और अनन्त गुणे आकाश के प्रदेश और... आहाहा! ऐसा जो ज्ञेय का महासागर। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हैं। ज्ञेय की परिपूर्णता को प्राप्त हैं। आहाहा!

जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं,... मुक्तिरूपी लक्ष्मी के-स्त्री के मुखकमल के विकास के लिये सूर्य है। उनके-सिद्ध के सब गुण विकसित हो गये हैं। आहाहा! जैसे सूर्य कमल के कारण विकास को प्राप्त हो जाता है, वैसे सिद्ध भगवान के गुण विकास को प्राप्त हो गये हैं। पर्याय में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त सब विकास को प्राप्त हो गये हैं। आहाहा! **जो स्वाधीन सुख के सागर हैं,...** आहाहा! अपने अन्तर आनन्द के, अतीन्द्रिय आनन्द के सुख के तो सागर हैं। आहा! समुद्र भरा है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भरा है। आहाहा! अरे रे! यहाँ जरा मोसम्बी का पानी पीता हो या आम का अच्छा रस खाता हो तो इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! कहते हैं कि यह तो सुख का सागर है। यह स्वाधीन सुख और (वह) तो पराधीन मानी हुई कल्पना है। उस आम के रस को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता और कल्पना करता है कि मुझे सुख होता है। आहाहा!

जो स्वाधीन सुख के सागर हैं, जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध (-प्राप्त) किया है,... सिद्ध भगवान ने आठ गुण प्राप्त किये हैं। आहाहा! **जो भव का नाश करनेवाले हैं...** भव

का नाश करनेवाले हैं अर्थात् भव है नहीं। **तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है,...** आठ कर्म के ढ़ेर का जिन्होंने नाश किया है। कर्म को आत्मा नाश करे! आत्मा अपने में स्थिर हो, वहाँ कर्म पर्याय बदल जाती है, उसे 'नाश करता है' – ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

उन पापाटवीपाक (-पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान)... जो पापरूपी अटवी अर्थात् वन को जलाने में अग्नि समान **नित्य (अविनाशी)...** नित्य प्रभु अविनाशी। आहाहा! भले पर्याय पलटती है, परन्तु वह कायम रहनेवाले हैं, ऐसे सिद्ध भगवन्तों की **(अविनाशी) सिद्धभगवन्तों की मैं निरंतर शरण लेता हूँ।** सिद्ध भगवन्तों की मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ। आहाहा! दूसरा कोई शरण नहीं है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२२६

(वसंततिलका)

ये मर्त्य-दैव-निकुरम्ब-परोक्ष-भक्ति-
योग्या: सदा शिवमया: प्रवरा: प्रसिद्धा:।
सिद्धा: सुसिद्धि-रमणी-रमणीय-वक्त्र-
पङ्केरुहोरु-मकरन्द-मधु-व्रता: स्यु:।।२२६।।

(वीरछन्द)

जो जनगण या सुरगण द्वारा हैं परोक्ष भक्ति के योग्य।
परम श्रेष्ठ हैं अति प्रसिद्ध हैं शिवमय सदा सुसिद्ध मनोज्ञ॥
सिद्धिरूप रमणी का अति रमणीय मुखकमल जो सुन्दर।
सिद्धप्रभू उसका मकरन्द सुधारस पीते हुए भ्रमर॥२२६॥

[श्लोकार्थः] जो मनुष्यों के तथा देवों के समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं, जो सदा शिवमय हैं, जो श्रेष्ठ हैं तथा जो प्रसिद्ध हैं, वे सिद्धभगवन्त सुसिद्धिरूपी रमणी के रमणीय मुखकमल के महा *मकरन्द के भ्रमर हैं (अर्थात्) अनुपम मुक्तिसुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।

प्रवचन-१५४, श्लोक-२२६-२२७, गाथा-१३६,
शनिवार, ज्येष्ठ शुक्ल २, दिनांक १४-०६-१९८०

नियमसार, २२६ कलश है।

ये मर्त्य-दैव-निकुरम्ब-परोक्ष-भक्ति-
योग्याः सदा शिवमयाः प्रवराः प्रसिद्धाः।
सिद्धाः सुसिद्धि-रमणी-रमणीय-वक्त्र-
पङ्केरुहोरु-मकरन्द-मधु-व्रताः स्युः ।।२२६।।

सिद्धों की स्तुति का वर्णन है।

श्लोकार्थ : जो मनुष्यों के तथा देवों के... आहाहा! **समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं,...** तिर्यंच और नारकी नहीं लिये। **मनुष्यों के तथा देवों के समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं,...** परोक्ष है न? पर है, इसलिए। **जो सदा शिवमय हैं,...** सिद्ध भगवान सदा शिवमय है। **जो श्रेष्ठ हैं तथा जो प्रसिद्ध हैं,...** आहा..! सिद्ध-प्रसिद्ध। सिद्ध तो प्रसिद्ध हैं, कहते हैं। आहाहा! **वे सिद्धभगवन्त सुसिद्धिरूपी रमणी के रमणीय मुखकमल के महा मकरन्द के भ्रमर हैं...** फूल का जो रस होता है, मधु, वह रस भँवरे लेते हैं। जैसे फूल का रस भँवरे लेते हैं; वैसे इस आनन्द का रस लेनेवाले हैं। आहाहा! आत्मा की परिणति का आनन्द, उसके भँवरे हैं। उस आनन्द की रमणता की रमणीयता में रमते हैं। आहाहा! **(अर्थात्) अनुपम मुक्तिसुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।** इसका नाम सिद्ध है। आहाहा!

** मकरन्द=फूल का पराग, फूल का रस, फूल का केसर।*

गाथा-१३६

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहाय-गुणं णियप्पाणं।।१३६।।

मोक्षपथे आत्मानं सन्स्थाप्य च करोति निर्वृत्तेर्भक्तिम्।
तेन तु जीवः प्राप्नोत्यसहाय-गुणं निजात्मानम्।।१३६।।

निजपरमात्मभक्तिस्वरूपाख्यानमेतत्। भेदकल्पनानिरपेक्षनिरुपचाररत्नत्रयात्मके निरुपरागमोक्षमार्गे निरञ्जननिजपरमात्मानन्दपीयूषपानाभिमुखो जीवः स्वात्मानं सन्स्थाप्यापि च करोति निर्वृत्तेर्मुक्त्यङ्गनायाः चरणनलिने परमां भक्तिं, तेन कारणेन स भव्यो भक्तिगुणेन निरावरणसहजज्ञानगुणत्वादसहायगुणात्मकं निजात्मानं प्राप्नोति।

रे! जोड़ निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे॥१३६॥

अन्वयार्थ : [मोक्षपथे] मोक्षमार्ग में [आत्मानं] (अपने) आत्मा को [संस्थाप्य च] सम्यक् प्रकार से स्थापित करके [निवृत्तेः] निर्वृत्ति की (निर्वाण की) [भक्तिम्] भक्ति [करोति] करता है, [तेन तु] उससे [जीवः] जीव [असहायगुणं] [१]असहायगुणवाले [निजात्मानम्] निज आत्मा को [प्राप्नोति] प्राप्त करता है।

टीका : यह, निज परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन है।

निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में अभिमुख जीव भेद-कल्पनानिरपेक्ष निरुपचार-रत्नत्रयात्मक [२]निरुपराग मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को सम्यक्

१- असहायगुणवाला=जिसे किसी की सहायता नहीं है, ऐसे गुणवाला। [आत्मा स्वतःसिद्ध सहज स्वतन्त्र गुणवाला होने से असहायगुणवाला है।]

२- निरुपराग=उपरागरहित; निर्विकार; निर्मल; शुद्ध।

प्रकार से स्थापित करके निर्वृत्ति के—मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल की परम भक्ति करता है, उस कारण से वह भव्य जीव भक्तिगुण द्वारा निज आत्मा को—कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से असहायगुणात्मक है उसे—प्राप्त करता है।

गाथा - १३६ पर प्रवचन

अब, १३६ गाथा। वह सिद्धभक्ति परोक्ष है और पुण्य का कारण है, शुभभाव है; धर्म नहीं, मोक्ष का कारण नहीं।

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहाय-गुणं णियप्पाणं।।१३६।।
रे! जोडु निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे॥१३६॥

टीका : यह, निज परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन है। पहले थी, वह सिद्धभगवान की स्तुति का था। यह निज स्वरूप की भक्ति। आहाहा! आत्मा में क्या भरा है ? और आत्मा कितने गुण-सम्पन्न है ?—उसका इसे माहात्म्य-महिमा अनन्त काल में आयी नहीं, उसकी महिमा ही नहीं आयी। दूसरी चीज़ की महिमा के समक्ष इसकी महिमा इसे नहीं सूझती। आहाहा! इस निज परमातमा की भक्ति अब महिमा से आती है। स्वयं महाप्रभु अन्दर है। सच्चिदानन्दस्वरूप है। अनन्त-अनन्त गुण रत्नों से भरपूर भगवान है। उसकी भक्ति के स्वरूप का कथन है। अपने स्वरूप की भक्ति का कथन है। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का... स्वयं निरंजन निज परमात्मा अन्दर है। वह राग और पुण्य-पाप के विकल्प से रहित आत्मा है। जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो निरंजन निज परमात्मा है। उसे तो अंजन-मैल भी नहीं। त्रिकाल निरावरण भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसे **निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में...** यह भक्ति, निज भक्ति। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। वह अतीन्द्रिय आननद को अनुभव करे और पीवे, इसका नाम नाम भक्ति। आहाहा! दु:ख का अनुभव करता है। और पर की भक्ति भी अभी दु:ख है। सिद्ध की भक्ति भी राग है, इसलिए दु:ख है। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का... जिसे कोई अंजन या मैल नहीं है, ऐसा जो निरंजन निज परमात्मा। निज आत्मा नहीं कहा, निज परमात्मा कहा। आहाहा! निज आत्मा–ऐसा भी नहीं। परमात्मा परम स्वरूप है। उसका त्रिकाली परमात्मस्वरूप है, वह शक्ति से, स्वभाव से परमात्मा है। आहाहा! उसका **आनन्दामृत पान करने में अभिमुख...** आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मा स्वयं, उसका आननद का अमृत पीने में अभिमुख–सन्मुख। आहाहा! यह निज भक्ति। आत्मा–आत्मा करे और आत्मा–आत्मा धारे, यह बात नहीं। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में... आहाहा! आनन्दरूपी अमृत पीनेवाले **अभिमुख जीव...** चैतन्य परमात्मा के सन्मुख **भेदकल्पनानिरपेक्ष...** आहाहा! यह आत्मा गुणी है और ज्ञान, गुण है—ऐसी भेदकल्पना भी जहाँ नहीं है। आहाहा! जहाँ राग तो नहीं, दया–दान–व्रत का विकल्प तो नहीं, परन्तु भेद नहीं। यहाँ भेद नहीं, अभी। आहाहा! भेद की कल्पना से निरपेक्ष। आहाहा! भगवान अन्दर परमात्मा, निज परमात्मा निरंजन, भेदकल्पना से निरपेक्ष है।

निरुपचार-रत्नत्रयात्मक... आहाहा! और व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रयस्वरूप। निरुपचार अर्थात् निश्चय। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है। उसकी अन्दर की श्रद्धा में अनुभव का पान, उसके ज्ञान में आनन्द का पान और उसमें रमणता (होना), वह निरुपचार रत्नत्रयस्वरूप है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र, उस निश्चयरत्नत्रयस्वरूप भगवान है। आहाहा! अभी बाहर से निवृत्त होता नहीं और धर्म के नाम से आवे तो व्यवहार के क्रियाकाण्ड में लवलीन। सवेरे पूजा करना, भक्ति करना, शाम को आरती उतारना। आहाहा! परन्तु यह भगवान सदा निरंजन निराकार (विराजमान है), उसका जो निरुपचार–रत्नत्रयात्मक... आहाहा! उपचार अर्थात् व्यवहार का भी जिसमें अभाव है। ऐसा निरुपचार रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमय... आहाहा!

निरुपराग... उपरागरहित, निर्विकार। जिसमें राग नहीं, विकल्प भी नहीं। जिसमें प्रभु की भक्ति का राग भी नहीं। पंच परमेष्ठी की भक्ति और पंच परमेष्ठी का स्मरण, ऐसा जो राग, उस राग से रहित है। आहाहा! यह आत्मा की बात चलती है, भगवान की नहीं। निज परमात्मा अन्दर कौन है? आहाहा! यह निरुपचार अर्थात् उपचाररहित जिसको

रत्नत्रय है। आहाहा! अर्थात् निश्चयरत्नत्रय है। अर्थात् निश्चय आत्मा का आनन्द, उसे अनुभव करते हैं, उसकी श्रद्धा है, उसमें रमणता है, उसका ज्ञान है। आहाहा! उसे निज भक्ति कहा जाता है। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। उन सिद्धभगवान को.. णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... जाओ, पंच परमेष्ठी अनुपूर्वी गिने, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। आहाहा! भाई! धर्म कोई अलग चीज़ है। एक सैकेण्ड भी अनन्त काल के परिभ्रमण के भव में, अनन्त भव में एक सैकेण्डमात्र भी चैतन्य को देखा नहीं। देखनेवाले ने देखा है दूसरा, परन्तु देखनेवाले ने स्वयं को नहीं देखा। आहाहा! देखनेवाला तो भगवान आत्मा चैतन्य ही है। वह देखनेवाला दूसरे को देखने में अटका है, परन्तु स्वयं को देखने में नहीं आया। आहाहा! दूसरे को जानना, वह तो व्यवहार। सवेरे आया था। दूसरे को जानना, वह तो व्यवहार है। अपने को अन्तर में जानना। ज्ञान और आनन्द का अनुभव (होना)। आहाहा!

निरुपराग मोक्षमार्ग में... रागरहित, वह मोक्षमार्ग। जिसमें विकल्प का भी अभाव है। आहाहा! यह निज भक्ति, यह मुक्ति का कारण। आहाहा! **निरुपराग मोक्षमार्ग...** इसके विशेषण इतने दिये हैं। देखा ? निरपेक्ष, निरुपचार, रत्नत्रयात्मक निरुपराग - ऐसा मोक्षमार्ग। आहाहा! मोक्षमार्ग तो उसे कहते हैं कि जिसमें निश्चय स्व आवे। पर का जिसमें अभाव और जिसमें उपचार तथा व्यवहार नहीं। निश्चयरत्नत्रय स्व-आश्रय। चैतन्य की-आत्मा की ऋद्धि है, उस ऋद्धि को अनुभव करना, आनन्द का अनुभव करना, उसकी श्रद्धा करके—ज्ञान करके, रमणता करना, वह निज भक्ति मुक्ति का कारण है। भगवान की भक्ति भी राग और व्यवहार है। आहाहा!

ऐसे **मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को...** आहाहा! अपने आत्मा को; पर आत्मा वीतराग पंच परमेष्ठी नहीं। **अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार से स्थापित करके...** स्वरूप में बराबर दृष्टि में लेकर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता अन्दर स्वरूप में स्थापित करके, **निर्वृत्ति के—मुक्तिरूपी स्त्री के—**आहाहा! अन्दर स्थापित करता है, जब आनन्द में रहता है, तब वह निवृत्ति की अर्थात् मुक्तिरूपी स्त्री के **चरणकमल की परम भक्ति करता है,...** आहाहा! मुक्तिरूपी स्त्री; मुक्ति तो पूर्ण दशा है। उसके चरणकमल की अर्थात् साधक। आहाहा! नीचे साधकरूप से निश्चयरत्नत्रय की भक्ति करता है, वह

परम भक्ति करता है,... आहाहा! इसे मोक्षमार्ग कहते हैं, इसे निज भक्ति कहते हैं। बाकी सब.. साधन, व्यवहार.. व्यवहार... व्यवहार... आहाहा! व्यवहार के कारण निवृत्त नहीं। यह तो व्यवहार-धन्धे में निवृत्त नहीं, परन्तु इस धर्म के नाम से व्यवहार (करे)... आहाहा! उससे भी निवृत्त नहीं होता।

यहाँ तो आत्मा के निजस्वरूप की परम भक्ति। भक्ति अर्थात् उसका अनुभव करे। आहाहा! परमानन्द के नाथ का-आनन्द का अनुभव करे, उसका नाम निजभक्ति कहा जाता है और वह मुक्ति का कारण तथा मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अब यह सब मन्दिर और यह क्या सब? २६-२६ लाख का मकान (मन्दिर)। यह तो होनेवाला हो, उस काल में होता है। करने के भाववाले को शुभभाव हो, पुण्य हो, पुण्य; धर्म नहीं है। आहाहा! यह २६ लाख क्या, २६ करोड़ खर्च करे और मन्दिर बनावे, वह तो उसके समय में होना ही है। उस जड़ की पर्याय का वह काल है। उस प्रकार से मन्दिर और मूर्ति वहाँ होनी ही है। वह दूसरे के करने से नहीं हुई है। आहाहा! उसमें करनेवाले का भाव होवे तो राग की मन्दता का शुभभाव-पुण्य हो। करोड़ों रुपये खर्च करे तो (भी) पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ कहा न, देखो न! अफ्रीका में साठ लाख रुपये एकत्रित किये, परन्तु कहा - साठ लाख क्या, साठ करोड़ इकट्ठे करे और मन्दिर को हीरा-माणेक जड़ावे तो भी वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! वह पोप है, नहीं? ख्रिस्ती का गुरु। उसके पास पाँच करोड़ की एक मोटर है। पाँच करोड़ की मोटर। शान्तिभाई! यह तो पहले-पहले सुना। क्योंकि वह भाई पूनमचन्द का लड़का। अपने चन्दुभाई के... मुम्बई। वह भाई दूसरे देश में रहता है, वहाँ से बीस लाख की मोटर लाया था। बीस लाख की। इसलिए वहाँ गाँव में से ऐसे... तो उसमें बैठे। कहा - कितने की है? तो कहे - बीस लाख की। वहाँ और दूसरे भाई ने कहा - हमारे स्वीट्जरलैण्ड में पचास लाख की मोटर है; तो तीसरे ने कहा - पोप को पाँच करोड़ की मोटर है। आहाहा! वह पाँच करोड़ की मोटर, इसलिए मानो हो गया बड़ा गुरु। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। अरे! आत्मा आनन्द का नाथ, अकेला साक्षी है। करना तो है नहीं, परन्तु पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! क्योंकि पर में मिलता नहीं और भिन्न रहकर अपने ज्ञान में रहकर स्व-पर का ज्ञान अपने से अपने में करता है। आहाहा! ऐसा जो भगवान, ऐसे आत्मा की परम भक्ति। चरणकमल की। देखा न?

मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल... मोक्षरूपी स्त्री का साधन, वह उपाय। मोक्षमार्ग, वह उपाय है, वह चरणकमल की सेवा है। आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के चरणकमल की सेवा। यह साधक स्वभाव, निश्चयरत्नत्रय, वह चरणकमल की सेवा है। आहाहा! यह तो जहाँ हो, वहाँ सर्वत्र बाहर में फूंक में हो बड़ा करके। भाषण-बासण करता हो, इसका ऐसा किया, इसने ऐसा किया। आहाहा! सेवायें की, इसे कुछ दो, पदवी दो। किसकी सेवा? धूल की? पर की सेवा कौन कर सकता है? पर की सेवा करता हूँ—यह मान्यता ही मिथ्या भ्रम है। आहाहा!

यहाँ तो सिद्धभगवान की भक्ति भी राग है। आहाहा! स्वयं ही निर्मलानन्द पूर्ण मोक्ष की पर्याय जो है, उसका यह साधन है। इसलिए वह मुक्तिरूपी स्त्री, उसके चरणकमल, आहाहा! अर्थात् उसके पैर दबाता है। अभी ऊपर जाना है न! मोक्षमार्ग करे और फिर जाना है मोक्ष। आहाहा! परमभक्ति करता है। **उस कारण से वह भव्य जीव...** इस कारण से वह भव्य जीव, **भक्तिगुण द्वारा...** ऐसी निर्मल भक्ति, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादरूपी भक्ति द्वारा। आहाहा! अतीन्द्रिय पूर्णानन्द वह जो मुक्ति, वह मुक्तिरूपी जो स्त्री, उसका जो साधन, वह उसके चरणकमल की सेवा है। आहाहा!

परमानन्द का नाथ प्रभु आनाकुल शान्ति का सागर, उसका वेदन और अनुभवन, वीतरागता का अनुभव; जिसमें राग का अंश नहीं। क्योंकि पूर्ण दशा अभी मुक्ति, वह वीतराग मुक्ति है। इसलिए उसका साधन... आहाहा! उसके चरणकमल की सेवा भी वीतराग है। आहाहा! कितना भरा है! इनको शब्द कम पड़ते हैं। कहते-कहते क्या कहना है इन्हें? ऐसा भगवान अन्दर है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त वीर्य से भरपूर, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त ज्ञान से भरपूर—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियों का सागर। उसकी जो पूर्ण दशा मुक्ति... आहाहा! उसका जो साधन चरणकमल की सेवा, वह परमभक्ति है। आहाहा!

उस कारण से वह भव्य जीव भक्तिगुण द्वारा... ऐसी अपनी भक्ति गुण द्वारा **निज आत्मा को—कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** है। आहाहा! कैसा है आत्मा? कि जो निरावरण है। त्रिकाल निरावरण है। एक समय की पर्याय में आवरण का सम्बन्ध है। वस्तु में आवरण-फावरण है नहीं। आहाहा! **निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला**

होने से... ज्ञान करना, होता है और करे तो हो – ऐसा नहीं। स्वाभाविक सहज गुण है ही। अनादि से सहज गुणस्वभाव से यह भरपूर ही है। आहाहा! यह ज्ञानगुण नया होता है या उत्पन्न होता है, इससे ज्ञात होता है – ऐसा नहीं है। स्वाभाविक त्रिकाल गुण भरपूर ही है। आहाहा!

स्वाभाविक निरावरण ज्ञानगुणवाला होने से.. आहाहा! कितने शब्द? **असहाय-गुणात्मक है...** असहायगुणवाला—जिसे किसी की सहायता नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय साधन; निश्चयरत्नत्रय साध्य – ऐसा नहीं है। आहाहा! शास्त्र में कथन आता है, व्यवहाररत्नत्रय पालन करो। वह तो निमित्तों के कथन का ज्ञान कराते हैं। वरना जिसके स्वरूप को साधने में किसी साधन की, बाहर की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! **निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** स्वाभाविक ज्ञानगुणवाला होने से। स्वाभाविक ज्ञानगुण, ज्ञान... ज्ञान... त्रिकाल ज्ञानस्वभाव ही जिसका है, वह उत्पन्न नहीं होता, उसका अभाव नहीं होता। आहाहा! जिसमें उत्पाद-व्यय है ही नहीं। आहाहा! ऐसा **असहायगुणात्मक है उसे—प्राप्त करता है।** ऐसा जीव ऐसे आत्मा को प्राप्त करता है। उसे निश्चयभक्ति कहा जाता है। आहाहा!

श्लोक-२२७

[अब इस १३६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(स्रग्धरा)

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्,
नित्ये निर्मुक्ति-हेतौ निरुपम-सहज-ज्ञान-दृक्शीलरूपे।
सन्स्थाप्यानन्दभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या,
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः ।।२२७।।

(वीरछन्द)

निश्चल महाशुद्ध रत्नत्रय युक्त नित्य शुद्धातम में।
मुक्ति हेतु दृग-ज्ञान-चरितमय निरुपम सहज निजातम में॥
वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके आतम को।
चेतन चमत्कार भक्ति से प्राप्त निरतिशय निज घर को॥
निजानन्द से शोभित जिसमें से आपद सब दूर हुईं।
यह आतम निज निलय निवासी मुक्ति वधू का हो स्वामी॥२२७॥

[श्लोकार्थः] इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, नित्य आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके, यह आत्मा चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा *निरतिशय घर को—कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है अर्थात् सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है॥२२७॥

श्लोक - २२७ पर प्रवचन

---

२२७ कलश।

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्,
नित्ये निर्मुक्ति-हेतौ निरुपम-सहज-ज्ञान-दृक्शीलरूपे।
सन्स्थाप्यानन्दभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या,
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः।।२२७।।

आहाहा! १३६ गाथा की टीका, उसका श्लोक।

श्लोकार्थ : इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... ध्रुव ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाली स्वाभाविक ही वस्तु है। किसी से हुई नहीं; नयी-सादिपना नहीं; अनादि से उसका स्वाभाव अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाला। ऐसे आत्मा की चलित न हो, ऐसी। निश्चय महाशुद्ध-रत्नत्रयवाला। यह मार्ग। आहाहा! ऐसा कहाँ था ? सम्प्रदाय में सुना ?

** निरतिशय=जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम; श्रेष्ठ; अद्वितीय।*

सामायिक करो, प्रौषध करो,... करो, अमुक करो। ऐसे सब भाषण भी किये वापस। गप्प ही गप्प मारी हो। आहाहा! यह नहीं था। यह सुनने में आया नहीं। वह बेचारा लिखता है, वह है न चोपानिया? उसमें दो-तीन जगह लिखता है, भाई! इस मार्ग को कानजीस्वामी ने प्रगट किया है। यह मार्ग कहीं था नहीं। दो-तीन व्यक्तियों ने भाषण किया है। है इसमें। यह वस्तु थी नहीं। इन्होंने प्रगट किया है कि मार्ग यह है। आहाहा! इनके कारण क्रान्ति हुई है। तीन हजार लोग वहाँ एकत्रित हुए। तीन हजार लोग। हजार लोग तो बाहर से आये थे। कौन-सा गाँव?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... तीन हजार लोग। बड़ी सभा। सब व्याख्यान दे। हुकमचन्दजी, बाबूभाई और ज्ञानचन्दजी। आहाहा!

इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... शुद्ध-महाशुद्ध रत्नत्रय साधक लेना है। न चलित, ऐसे निश्चय से। आहाहा! इस आनन्द में जो ध्रुव है, उसे पकड़ा, उसका अनुभव हुआ, वह अब गिरनेवाला नहीं है। आहाहा! चलित होनेवाला नहीं है। पंचम काल के शिष्य को हम कहते हैं। आहाहा! पंचम काल के साधु, पंचम काल के शिष्य को कहते हैं, प्रभु! तू अविचलित महाशुद्ध रत्नत्रयवाला है। आहाहा! तेरा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चलित नहीं होगा, गिरेगा नहीं, हीनता नहीं आयेगी। आहाहा!

इस... प्रत्यक्ष। 'इस' शब्द है न? **इस...** प्रत्यक्ष **अविचलित...** चलित न हो, ऐसा ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव तो है, परन्तु पर्याय में ऐसी अप्रतिहत ध्रुवता आयी। जैसा ध्रुव है, वैसी अप्रतिहत परिणति आयी। आहाहा! यह पंचम काल की बात करते हैं। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि पंचम काल में यह नहीं होता, अभी तो शुभयोग ही होता है। यह बहुत विपरीत बात करते हैं। मार्ग को बहुत विपरीत करते हैं। आहाहा!

यह प्रत्यक्ष **अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत...** आहाहा! मोक्ष का कारण, मोक्ष का हेतु। **निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,...** जिसे कोई उपमा नहीं। आहाहा! ऐसे स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन और चारित्र। इसमें ज्ञान पहले रखा। निरुपम-जिसे उपमा नहीं। आहाहा! स्वाभाविक-कुदरती चीज जो अनादि है, उसे उपमा क्या? उसे क्या कहना? आहाहा! जगत की चीज़ अनादि सहज है ही। आहाहा! है, उसकी बात

क्या करना ? कहते हैं। आहाहा! वस्तु है, वह अविचलित है। उसकी प्रतीति और ज्ञान अविचलित है। आहाहा! कितने ही कहते हैं न कि गिर जायेंगे तो ? अमुक होगा तो ? यह बात यहाँ रहने दे। आहाहा!

अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... वापस महाशुद्ध रत्नत्रय। आहाहा! अन्तर शुद्ध चैतन्य ध्रुव भगवान की अन्तर में सन्मुख की प्रतीति-ज्ञान और रमणता, इस **महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत...** आहाहा! मुक्ति का यह कारण। **निरुपम-...** जिसकी उपमा नहीं। **सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,...** आहाहा! सहज-स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन और आनन्दरूप। चारित्र-आनन्द। आहाहा! भाषा थोड़ी पड़ती है! क्या कहना इसे ? ऐसा भगवान अन्दर तीन लोक का नाथ, अनन्त-अनन्त गुण का सागर; जिसके एक गुण की कीमत करते इन्द्र का इन्द्रासन धूल जैसा लगे। आहाहा! जिसके एक गुण की कीमत करते इन्द्र के बत्तीस लाख विमान का स्वामी इन्द्र... इन्द्र एकावतारी है। अभी सौधर्म देव का। एक भव में मोक्ष जानेवाला। उसका वैभव भी जहाँ सड़े हुए तिनके जैसा लगता है। ऐसे भगवान चैतन्य का एक गुण, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। आहाहा!

बाह्य चीज़ की अतिशयता, विशेषता, आश्चर्यता, विस्मयता कुछ देखकर वहाँ अटक गया है। यह वस्तु स्वयं पड़ी रही है। आहाहा! बाहर की चीज़ में कहीं न कहीं विस्मयता (लगती है)। ओहो! पैसा-बैसा पाँच करोड़, दस करोड़ होवे तो। ओहो! स्त्री कुछ रूपवान मिली हो तो वहाँ ओहो! पुत्र हुआ, उसे वहाँ ओहो! (हो जाता है)। यह सब होता है। कहीं न कहीं इसे आत्मा को छोड़कर दूसरी चीज़ में आश्चर्यता, विस्मयता, अधिकता... आहाहा! भासित होने से भगवान रह गया। यह अधिकता भासित होने से भगवान अन्दर रह गया। आहाहा! दुकान चलती हो। प्रतिदिन की दस-दस हजार की आमदनी हो और नौकर काम करते हों और धूमधाम चलती हो। ओहोहो! विस्मय-विस्मय आश्चर्य लगे, मानो इसे कुछ अधिकता भासती है। यह धूल की अधिकता भासित होने पर प्रभु की अधिकता भासित नहीं होती। आहाहा! शरीर की सुन्दरता, कोमलता की भी विस्मयता, आश्चर्यता में रुकने से प्रभु रह गया। आहाहा! कितनी भाषा रखी है!

मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-... जिसे उपमा क्या देना ? बापू! आहाहा! उसके मार्ग को, हों! **सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, नित्य आत्मा में आत्मा को...** आहाहा! **नित्य**

आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,... आहाहा! वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। अर्थात् कि आनन्द के धाम में ऐसा धाम-पड़ाव डाला है कि वह पड़ाव नहीं फिरेगा। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें आत्मा ने पड़ाव डाला, पड़ाव। आहाहा! ऐसा जो सहज पड़ाव, आहाहा! **सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,...** आहाहा! सच्ची रीति से स्थापित करके। आहाहा! शास्त्र का वाँचन करके, धारणा करके - यह कुछ वस्तु नहीं है। शास्त्र का वाँचन किया और उसमें धारा कि ऐसा आत्मा। उसमें कुछ दम नहीं है। आहाहा! यह बाहर के शास्त्र के वाँचन और ज्ञान की महिमा का आश्चर्य (और) विस्मय जिसे लगता है, वह परमात्मा को खो बैठता है। आहाहा! वह निज परमात्मा को खो बैठता है। आहाहा!

नित्य आत्मा में आत्मा को वास्तव में... भाषा कितनी प्रयोग की है! वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। वास्तव में और सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का भरपूर सागर है। आहाहा! उसने जिसने वास्तव में सम्यक् प्रकार से आत्मा को स्थापित किया है। आहाहा! उसकी स्वभाव की पर्याय से उसे स्थापित किया। आहाहा! **यह आत्मा चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा...** ऐसा जीव इस प्रकार जब अन्दर सम्यक् प्रकार से स्थापित करे, तब वह आत्मा चैतन्य चमत्कार की भक्ति द्वारा। आहाहा! चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा। आहाहा! जो अनन्त चमत्कारी गुणों से भरपूर चमत्कारी चीज़ वह है। उसके बिना दुनिया में कोई चीज़ चमत्कारी नहीं है। आहाहा! जिसके एक-एक ज्ञान में अनन्त-अनन्त जानना होने पर भी वह ज्ञान पूरा नहीं। आहाहा! तीन काल-तीन लोक जाने, इससे अनन्त गुण काल और लोक होता तो भी वह जान सके, ऐसी ताकतवाला वह तत्त्व है। आहाहा! तीन काल और तीन लोक, इससे भी अनन्तगुना यदि काल और लोक होता तो भी वह जान सके। क्यों? जिसका स्वभाव है, उसको कोई मर्यादा नहीं है। आहाहा! ऐसा जिसका चैतन्य-चमत्कार (स्वभाव)। आहाहा! उसकी भक्ति द्वारा। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं। आहाहा!

बाहर की महिमा के कारण पूरा गोता खा गया। आहाहा! दया, दान, भक्ति और सेवा और मण्डली का नायक हुआ, अमुक मण्डली बनाकर उसका नायक हुआ, सामने हुआ। मर गया है। आहाहा! अरे रे! भगवान बड़ा, जिसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती,

जिसकी शक्ति का कोई पार नहीं, जिसकी शक्ति की गम्भीरता का पार नहीं। अनन्त शक्तियाँ तो है ही, परन्तु एक-एक शक्ति की गम्भीरता का पार नहीं, ऐसा सहज स्वरूप, ऐसा जो भगवान... आहाहा! उसकी भक्ति द्वारा, उसकी—चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा **निरतिशय घर को—** आहाहा! यह निज घर। पाँच-दस लाख का मकान बनाया हो और वहाँ वास्तु करे... आहाहा! किसी बड़े कार्यवाहक को बुलावे, अमलदार को बुलावे-अधिकारी को बुलावे। आहाहा! मानो क्या करते हैं! यह तो निरतिशय घर। अपना घर। जिससे उत्कृष्ट कोई नहीं। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन भी जिसके चमत्कार के समक्ष सड़ी हुई बिल्ली और सड़े हुए श्वान जैसे लगते हैं। आहाहा! ऐसा प्रभु का चैतन्य-चमत्कार अन्दर है। आहाहा!

यह बात ऐसी होगी? ऐसा लगे लोगों को कि... आहाहा! यह कुछ अधिक कहा जाता है? अधिक नहीं कहते। इसमें-कलश में है। एक शब्द पड़ा है। हम यह अधिक नहीं कहते। आहाहा! जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन करते हैं। आहाहा! और उस वर्णन में वह चीज़ तो छूती नहीं—आती नहीं। उसका वर्णन किसप्रकार करना? आहाहा! जिसके अक्षरों के वर्णन में वह चीज़ आती नहीं। जिसके अक्षर के वर्णन में वह चीज़ स्पर्शती नहीं। आहाहा! ऐसे चैतन्य-चमत्कार को वाणी द्वारा कितना कहना? कहते हैं। आहाहा!

ऐसा निजघर... आहाहा! देखा! कैसा? निरतिशय घर। आहाहा! निरतिशय अर्थात् उससे कोई ऊँचा नहीं, ऐसा अनुत्तम, अजोड़ घर। आहाहा! 'अब हम कबहुं न निज घर आये, परघर भ्रमत नाम अनेक धराये, अब हम कबहुं न निज घर आये।' आहाहा! अपना निज घर अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से ठसाठस भरा हुआ, ऐसे अनन्त गुणों का सागर, वह निजघर। आहाहा! यहाँ तो जहाँ बाहर में दो-पाँच-दस लाख का बँगला बनावे, वहाँ मानो ओहोहो! दो-पाँच लाख की गिनती नहीं। उसके सामने अफ्रीका में जिस मकान में उतरे थे, वह पन्द्रह लाख का था और पचास-पचास लाख के मकान, करोड़-करोड़ के मकान। आहाहा! वे तो पत्थर-पत्थर है अकेले।

भगवान चैतन्य चमत्कार से भरपूर ऐसे निज घर को **कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा! क्या कहते हैं? कैसा है निजघर अन्दर? जिसमें इतनी सम्पदा पड़ी है कि विपदा तो नाश हो गयी है। आहाहा! जहाँ विपदा की गन्ध नहीं है, ऐसा भगवान अन्दर

विराजमान है। आहाहा! यह बाहर के चमत्कार देखे। आहाहा! उसमें और दो-पाँच हजार की आमदनी प्रतिदिन हो। आहाहा! पहले तो रोकड़ा रुपये थे। भर जाता था न वह? क्या कहलाता है वह? बडखुं। लकड़ी का भर जाता था पूरा। ओहोहो! आज तो बहुत आय हुई। चार सौ-पाँच सौ-पाँच सौ, हजार, दो हजार नगद आये हैं अन्दर। आहाहा! प्रभु! यह सब बातें... आहाहा! ये विष्ठा की बातों जैसी बातें हैं। आहाहा!

निज घर निरतिशय **कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा! जिसमें विपदा की गन्ध नहीं। सम्पदा का सागर है और विपदा का अभाव है। आहाहा! अनन्त-अनन्त सम्पदा से भरपूर और विपदा की जिसमें गन्ध नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा सुना न हो कभी। आहाहा! वह शब्द में तो कितना आवे? पीछे जो मस्तिष्क में भाव है, वह भाव कहीं शब्द में पूरा आवे नहीं। आहाहा! ऐसा जो निज घर **जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा!

तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है... आहाहा! सम्पदा ऐसी। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान है। आहाहा! उसका भण्डार.. भण्डार। पैसे से भरा हुआ होवे न, तो वह गिनती का होता है। नोट होवे तो पाँच-दस लाख, पच्चीस लाख कदाचित् हो। आहाहा! यह तो अनन्त शक्ति और आपदा से रहित, सम्पदा से शोभित। आहाहा! निज सम्पदा से शोभित ऐसा भगवान अन्दर (विराजता है)। आहाहा! यह है या नहीं वहाँ मनसुख? यह पुस्तक है या नहीं वहाँ? ठीक! आहाहा!

जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है... आनन्द से शोभित है। भगवान अन्दर तो अतीन्द्रिय आनन्द से शोभित है। इन्द्रिय का सुख, वह जहर का प्याला है। आहाहा! विषय की वासनायें तो जहर का प्याला है। वे भगवान में तो है नहीं। आपदा से तो रहित है। ऐसी जो आपदायें, उनसे तो प्रभु अन्दर रहित है। आहाहा! ऐसा कैसा धर्म! कुछ करने को कहते नहीं। परन्तु यह करने को नहीं कहते? ऐसा है, ऐसा मान, यह करने का नहीं है? करने का कुछ कूदने का है कहीं? सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, दान दिया, धूल की। आहाहा!

निजघर तो जिसे आनन्द से शोभित है। आहाहा! मुनिराज को चैतन्य चमत्कार का वर्णन करते हुए शब्द कम पड़ते हैं। आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा **उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है...** वह अन्तर की भक्ति करनेवाला। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी

भक्ति श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करनेवाला, ऐसे आत्मा को वह अत्यन्त प्राप्त करता है। प्राप्त करता है - ऐसा भी नहीं लिया। अत्यन्त प्राप्त करता है। वह प्राप्त करता है, यह किया, यह किया, अब फिरने का नहीं है, कहते हैं। आहाहा! मुनिराज के हृदय की शैली-धारा तो देखो! कहते हैं कि वह प्राप्त हुआ, वह अत्यन्त प्राप्त करता है। आहाहा! अत्यन्त प्राप्त हुआ है। उसका अब अन्त ही नहीं, छोर ही नहीं। ऐसा भगवान चैतन्य चमत्कार से अपने गुण से भरपूर, उसके श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति की वीतरागता से प्राप्त होता है। व्यवहार से प्राप्त होता है - ऐसा नहीं कहा। यह व्यवहार दया, दान, व्रत करें और भक्ति करें, पूजा करें तो उससे प्राप्त होता है - ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है अर्थात् सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है। मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्द की दशा। आत्मा का पूर्ण आनन्द का लाभ, उसका नाम मुक्ति। आत्मा में आनन्दस्वरूप जो भरा है, उसका पर्याय में पूर्ण आनन्द का लाभ, उसका नाम मुक्ति। आहाहा! भरा हुआ तो है ही। पूर्ण आनन्द से भरपूर है। आहाहा! उस **सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।** आहाहा! मुक्ति परिणति अर्थात् पर्याय, मुक्तिरूपी जो पर्याय, उसका वह स्वामी होता है। आहाहा! वह संसार और राग का स्वामी (पना) छोड़ देता है। सब विपदाओं का नाश हो गया है और अकेली सम्पदा प्रगट हुई है, उसका वह स्वामी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१३७

रायादी-परिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३७।।

रागादि-परिहारे आत्मानं यस्तु युनक्ति साधुः।
स योगभक्तियुक्तः इतरस्य च कथं भवेद्योगः।।१३७।।

निश्चययोगभक्तिस्वरूपाख्यानमेतत्। निरवशेषेणान्तर्मुखाकारपरमसमाधिना निखिल-मोहरागद्वेषादिपरभावानां परिहारे सति यस्तु साधुरासन्नभव्यजीवः निजेनाखण्डाद्वैतपरमानन्द-स्वरूपेण निजकारणपरमात्मानं युनक्ति, स परमतपोधन एव शुद्धनिश्चयोपयोगभक्तियुक्तः। इतरस्य बाह्यप्रपञ्चसुखस्य कथं योगभक्तिर्भवति।

तथा चोक्तं ह्न

(अनुष्टुप्)

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।

तथाहि

रागादि के परिहार में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३७॥

अन्वयार्थ : [यः साधु तु] जो साधु [रागादिपरिहारे आत्मानं युनक्ति] रागादि के परिहार में आत्मा को लगाता है (अर्थात् आत्मा में आत्मा को लगाकर रागादि का त्याग करता है), [सः] वह [योगभक्तियुक्तः] योगभक्तियुक्त (योग की भक्तिवाला) है; [इतरस्य च] दूसरे को [योगः] योग [कथम्] किस प्रकार [भवेत्] हो सकता है ?

टीका : यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है।

निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार (-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसी)

परम समाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर, जो साधु—आसन्नभव्य जीव—निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है, वह परम तपोधन ही शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है; दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है?

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(दोहा)

आत्म यत्न सापेक्ष जो है विशिष्ट मन-योग।
युक्त होय जब ब्रह्म में उसे कहें हम योग॥

[श्लोकार्थः] आत्मप्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति उसका ब्रह्म में संयोग होना (-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की चित्तपरिणति का आत्मा में लगना), उसे योग कहा जाता है।

प्रवचन-१५५, गाथा-१३७, रविवार, ज्येष्ठ शुक्ल ३, दिनांक १५-०६-१९८०

नियमसार, गाथा १३७।

रायादी-परिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३७।।

रागादि के परिहार में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३७॥

टीका : आहाहा! **यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है।** भगवान की भक्ति आदि, वह तो शुभराग है। निश्चयभक्ति अपनी। अपने शुद्ध स्वरूप में एकाग्र होना; शुद्ध में शुद्ध उपयोगरूप से एकाकार होना, इसका नाम निश्चयभक्ति है। आहाहा! और वह शुद्ध भक्ति निर्वाण का कारण है। व्यवहार जो भगवान की भक्ति, वह तो बन्ध का कारण है। व्यवहार अभूतार्थ कहा है। वह बन्ध का कारण है। यहाँ कहा कि **निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है।** निश्चययोगभक्ति किसे कहना?

निरवशेषरूप से... आहाहा! देखो! कुछ भी बाह्य से विकल्पादि कुछ भी बाकी

रखे बिना, सबको छोड़कर निरवशेषरूप से–कुछ भी बाकी रखे बिना। गुण–गुणी का भेद, ऐसा विकल्प भी छोड़कर। आहाहा! **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार...** अन्तर्मुखस्वरूप परमपारिणामिक स्वभावभाव, ज्ञायकभाव, वह अन्तर्मुखाकार। आहाहा! **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार...** कुछ भी बाहर का रखे बिना अन्तर्मुखाकार। व्यवहार के विकल्प से तो नहीं, परन्तु गुण–गुणी के भेद के विकल्प से भी नहीं। आहाहा!

ऐसे **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार (-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसी)...** अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। सहजानन्द प्रभु, सहजस्वरूप, सहज सत्ता की ओर का अन्तर्मुख झुकाव है। वह अन्तर्मुख आकार है अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र। व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प–राग है। आहाहा! अन्तर्मुख परमपारिणामिक स्वभावभाव ज्ञायकभाव। अन्तर्मुखाकार अर्थात् अन्तर्मुखस्वरूप। अन्तर्मुखस्वरूप। विकल्पादि हैं, वे तो बहिर्‌स्वरूप हैं। अरे! पर्याय भी बहिर्‌स्वरूप है। समझ में आया? अन्तर्मुख आकार तो अकेला द्रव्यस्वभाव, चैतन्य आनन्दस्वरूप जो, उसके अन्तर्मुख स्वरूप।

(-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसी) परम समाधि द्वारा... आहाहा! परम शान्ति द्वारा परम समाधि। यह बाबा की समाधि नहीं। यह तो अन्तर आनन्द और ज्ञान अन्तर्मुख प्रभुता आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, आहाहा! उसकी एकाग्रता, वह परम समाधि। निर्विकल्प आनन्द का अनुभव, वह परम समाधि। यह है, लो! विरुद्ध करते हैं, इसे विरुद्ध करते हैं ऐसा कहते हैं कि अनर्थ किया है। अर्थ का अनर्थ किया है। कहे उसका नाम लिखा। परन्तु... आहाहा! अरे! प्रभु! व्यवहार है, वह पराश्रय है। निश्चय है, वह स्वाश्रय है। दो महासिद्धान्त है। और जो स्वाश्रय है निश्चय, उतना ही मोक्षमार्ग है। जितना पराश्रय राग है, वह बन्ध का कारण है। उसे मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! कठिन काम। अब इसमें लोहे से कब निवृत्त होना? बाहर से तो सब निवृत्त हुआ ही है, कहते हैं। निवृत्त है। बाहर का ग्रहण–त्याग उसमें है नहीं। मात्र अन्तर में विकल्प और बहिर्मुखी पर्याय जो है, उसे अन्तर्मुखाकार करना। आहाहा! जो पर्याय है... वस्तु दोरूप : द्रव्य और पर्याय। अब वह पर्याय बहिर्मुख है, उसे अन्तर्मुखाकार अर्थात् चैतन्यस्वरूप के स्वरूप उसका परिणमन करना। आहाहा! इसका नाम समाधि, योग, धर्म, मोक्ष का मार्ग जो कहो, वह है। आहाहा!

ऐसी **परम समाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर,...** लो ! समस्त मोह-राग-द्वेष। व्यवहार का विकल्प तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी नहीं। आहाहा ! **समस्त...** पूरी रीति से **मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार...** व्यवहाररत्नत्रय का परिहार आया या नहीं ? व्यवहाररत्नत्रय राग है। आहाहा ! शुभराग है, शुभोयोग है। **समस्त...** परसन्मुख की एकताबुद्धि और परसन्मुख के झुकाववाला भाव—मोह, राग-द्वेष से, ऐसे जो परभाव मोह और राग-द्वेष, मिथ्यात्व और पुण्य-पाप—ऐसे जो भाव, उनका परिहार होने पर, उन परभावों का परिहार होने पर। आहाहा ! उन परभावों में अधर्म है। आहाहा ! व्यवहाररत्नत्रय भी अधर्म है। उसे साधन मनवाना है। अरे रे ! क्या हो ? एक ओर वापस ऐसा कहे कि भव्य हूँ या नहीं, भगवान जाने। अर र ! अभी तो सम्यग्दर्शन क्या, वह तो नहीं, परन्तु भव्य हूँ—यह अभी निर्णय नहीं। अखबार में आया है। आहाहा ! यह ऐसे अर्थ करे। दुनिया पागल ऐसे की ऐसे चली। आहाहा !

भगवान ! यहाँ तो नियम, निश्चय जो नियम योग, उसे परम समाधि कहो, परभाव का परिहार कहो... आहाहा ! ऐसा **परिहार होने पर, जो साधु—आसन्नभव्य जीव—** जिसे अब मुक्ति निकट है। आहाहा ! मुक्ति जिसकी राह देखती है। आहाहा ! अल्प काल में उसे मुक्त होना है—ऐसे आसन्न भव्य द्वारा, ऐसे आसन्न भव्य जीव... आहाहा ! **निज अखण्ड अद्वैत...** आहाहा ! निज अर्थात् अपना स्वरूप भगवान, वह कैसा ? कि अखण्ड। आहाहा ! जिसमें गुण-गुणी का खण्ड नहीं और द्रव्य-पर्याय का द्वैत नहीं (-ऐसा) अद्वैत। आहाहा ! ऐसी स्थिति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा !

आसन्नभव्य जीव—निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ... आहाहा ! अतीन्द्रिय परमानन्द का प्रगट रस आवे। जो शक्ति और स्वभावरूप परमानन्द है, उस परमानन्द की शक्ति में से व्यक्तरूप प्रगट अवस्था (हो), **परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को...** आहाहा ! परमानन्द को निज कारणपरमात्मा के साथ जोड़ दे। निज परमानन्ददशा को निज कारणस्वभाव के साथ जोड़े। आहाहा ! ऐसी भाषा भी कहीं सुनी नहीं होगी। शान्तिभाई ! सर्वत्र दिये रखा है आड़ा-टेढ़ा। जो मिला हो, वह कहे। बैठा हो। दूसरा क्या हो ?

मुमुक्षु :- ......

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! यह मार्ग कोई अलग है, बापू!

अद्वैत, अखण्ड प्रभु, कुछ गुण-गुणी का भेद तो नहीं, परन्तु द्रव्य और पर्याय जिसके दो भेद भी लक्ष्य में नहीं। आहाहा! ऐसा जो **अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ...** आहाहा! अखण्ड, निज अखण्ड, हों! अद्वैत **परमानन्दस्वरूप के साथ...** परमानन्दस्वरूप तो पर्याय है। निज कारणपरमात्मा द्रव्य है। आहाहा! निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप, वह पर्याय है। उस पर्याय को निज कारणपरमात्मा को **जोड़ता है...** वह पर्याय निज कारणपरमात्मा त्रिकाल भगवान, वर्तमान निर्मल आनन्द की पर्याय त्रिकाल के साथ जोड़ता है। आहाहा! उसका नाम योगभक्ति, उसका नाम भक्ति अर्थात् समाधि। आहाहा! भाषा ही कठिन पड़ती है। भाषा कभी सुनी न हो। ऐसा मार्ग है। आहाहा!

निज अखण्ड अद्वैत... आहाहा! एकरूप परमानन्दस्वरूपदशा। विकल्प की-व्यवहार की तो कहीं गन्ध भी नहीं। ऐसे परमानन्दस्वरूप को अर्थात् वर्तमानदशा को त्रिकाल के साथ जोड़ दे। आहाहा! निज अखण्ड एक अद्वैत परमानन्दस्वरूप ऐसी जो वर्तमान दशा, उसे त्रिकाल कारणपरमात्मा ध्रुवस्वरूप, कारणपरमात्मा—निज कारणपरमात्मा... आहाहा! उसके साथ जोड़ता है। आहाहा! गजब बात है। ऐसा मार्ग लोगों ने कुछ का कुछ कर डाला है। सत्य को एक ओर रख दिया और असत्य को सत्य सिद्ध कर दिया। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें ली हैं। तू परमानन्दस्वरूप है, कारणसमयसार त्रिकाल। उसमें से परमानन्दस्वरूप प्रगट करके कारणसमयसार जो त्रिकाल, उसके साथ जोड़ दे। आहाहा! **वह परम तपोधन ही...** वह परमतपोधन ही **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! उसमें शुभयोग नहीं, व्यवहाररत्नत्रय नहीं। आहाहा! अब ऐसा कब करने जाए? निवृत्त कहाँ से हो? आहा! अभी यह सुनने को मिले नहीं। इसके ज्ञान में बात आवे नहीं। लोग नहीं कहते?—कि मेरी बात ध्यान में तो ले। ऐसा नहीं कहते? मेरी बात तेरे ध्यान में तो ले। ऐसा कहते हैं। इसी तरह यहाँ परमात्मा कहते हैं कि हम कहते हैं, उसे ध्यान में तो ले। आहाहा! देवीलालजी! कहते हैं या नहीं? हम कहते हैं, उसे ध्यान में तो ले। फिर तुझे जँचे, न जँचे, वह अलग, परन्तु यह क्या कहना चाहते हैं, उसे तू ध्यान में तो ले। आहाहा! इसी तरह यह परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसे परमानन्द की परिणति के साथ जोड़

दे। आहाहा! यह कारणसमयसार कहो या परमानन्द की मूर्ति ध्रुव नित्य कहो। अतीन्द्रिय परमानन्द का दल, अतीन्द्रिय परमानन्द का स्वभाव का सागर, उसे–वर्तमान पर्याय परमानन्द की, परम परमानन्द की पर्याय को वहाँ जोड़ दे। आहाहा!

मुमुक्षु :– उसमें पर्याय के साथ जोड़ना...

पूज्य गुरुदेवश्री :– काम पर्याय करती है न! ध्रुव में कहाँ (करना है) ? ध्रुव में तो लक्ष्य है। कार्य तो यहाँ पर्याय में होता है। आहाहा!

मुमुक्षु :– पर्याय को द्रव्य में जोड़ना या द्रव्य को पर्याय में जोड़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :– पर्याय का द्रव्य में जुड़ान।

मुमुक्षु :– इसमें तो ऐसा लिखा है कि परमात्मा के साथ जोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा। कारणपरमात्मा द्रव्य को।

मुमुक्षु :– परमात्मा के साथ पर्याय पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री :– अर्थात् कारणपरमात्मा में जोड़ – ऐसा कहा न! त्रिकाल को पर्याय जोड़ दे। यह तो कहा पहले से। परमानन्दस्वरूप के साथ यह पर्याय है। निज कारणपरमात्मा द्रव्य, वह द्रव्य है। आहाहा! दोनों अर्थ पहले से किये हैं।

निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,... आहाहा! बात तो यह है कि निर्विकल्प हो, ऐसा। किसी भी प्रकार का विकल्प छोड़ दे। यह भगवान स्वयं निर्विकल्पस्वरूप है, परमानन्दस्वरूप है, निर्विकल्पस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है। ऐसे कारणपरमात्मा को... आहाहा! वर्तमान निर्मलदशा को परमानन्दस्वरूप के साथ निजकारण को जोड़ दे। साथ जोड़ दे अर्थात् कहीं ध्रुव जोड़ता नहीं। जोड़ती है तो पर्याय। आहाहा! ध्रुव तो ध्रुव है, कारणसमयसार एकरूप त्रिकाल। आहाहा! वर्तमान आर्तध्यान और रौद्रध्यान और विकल्प है, उसकी दशा, उसकी दशा पर दिशा के ऊपर है। उसकी दशा पर दिशा के ऊपर है। अब यह परमानन्द की दशा, उसे स्व दिशा के ऊपर कर।

परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,... अर्थात् कहीं ध्रुव को पर्याय के साथ जोड़ना है ? इसका अर्थ यह... आहाहा! वर्तमान पर्याय को परमानन्द कारणसमयसार के साथ जोड़ दे। आहाहा! ध्रुव है, वह तो ध्रुव ही है। ध्रुव में

कुछ पलटना, बदलना, अनेकरूपता उसमें है नहीं। वह ध्रुव तो एकरूप ही है। उसमें यह अनेकरूप निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप है, उसके साथ जोड़ दे। आहा!

मुमुक्षु :- साथ और द्वारा तीसरी विभक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह आत्मा की भक्ति है। आहाहा! सिद्ध की भक्ति तो व्यवहार है, विकल्प है। आहाहा!

शब्द कैसा है? **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,...** ध्रुव को जोड़ दे। भाषा क्या हो? ध्रुव को जोड़ दे तू। ध्रुव तो ध्रुव त्रिकाल आनन्द का नाथ सागर पड़ा है। एकरूप त्रिकाल पड़ा है। चाहे जितनी पर्याय में विकृति हो (तो भी) वस्तु तो एकरूप त्रिकाल निरावरण एकरूप रही है। आहाहा! उसे वर्तमान पर्याय के साथ जोड़ दे। जो पर्याय का जुड़ान राग और द्वेष तथा विकार और भेद पर है, खण्ड और भेद तथा विकल्प पर है, उसे अखण्ड ऐसा चैतन्य जो परमानन्दस्वरूप है, उसे कारणपरमात्मा के साथ जोड़ दे। आहाहा! यह तो मानो पर्याय के साथ द्रव्य को जोड़ दे।—इसका अर्थ यह हुआ न? आहाहा! पर्याय के साथ द्रव्य को जोड़ दे, इसका यह अर्थ हुआ। पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ दे। आहाहा! द्रव्य को कहाँ जोड़ना है? द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! वह तो कारणसमयसार है।

अरे रे! सत्य बाहर आवे, उसका विरोध करे। बापू! यह तो सत्य है। महँगा लगे, कठिन लगे, समझने में कठिन पड़े.. परन्तु वस्तु तो यह है। यह रास्ता लिये बिना जन्म-मरण का अन्त आवे - ऐसा नहीं है, भाई! चौरासी के अवतार... आहाहा! यहाँ बनिया अरबोंपति होवे, (और मरकर) शूकरी के गर्भ में जाए! अर र! ऐसे अवतार किये! वह शूकर पूरी जिन्दगी विष्ठा खाये। यहाँ विष्ठा को स्पर्श भी नहीं करता था। वह शूकर विष्ठा ही खाये। आहाहा! ऐसे अवतार अनन्तबार किये हैं। आहाहा! दरकार नहीं की। मैं कौन और क्या होता है? और क्या होता है, इसका फल क्या आयेगा? आहाहा! जो मैं कर रहा हूँ, उसका फल क्या आयेगा? और कर रहा हूँ, वह चीज़ क्या है? उसे जानने की भी दरकार नहीं करता। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं। इसलिए परमानन्द के साथ जीव को जोड़ दे। आहाहा! द्रव्य को परमानन्द के साथ जोड़ दे। आहाहा!

अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता

है, वह परम तपोधन ही... वह परम तपोधन ही। वह ही। वह एक ही। **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! उसे ही, तपोधन ही। एकान्त किया है। वह मुनि स्वयं अकेला... आहाहा! **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** शुद्धनिश्चय उपयोगभक्ति है पर्याय। इस शुद्धनिश्चयभक्तिवाला वह है। आहाहा! अब उसमें व्यवहार की टीका की। ऐसा कि व्यवहार का अर्थ अनर्थ किया है। व्यवहार का अर्थ तो मिथ्यात्व ही है। निश्चय से विरुद्ध व्यवहार, मिथ्यात्व ही है। परन्तु निश्चय से विरुद्ध व्यवहार विरुद्ध नहीं? व्यवहार अभूतार्थ है और निश्चय भूतार्थ है। दोनों विरुद्ध हैं। आहाहा! उसे लोग मिले रहते हैं। बनिये को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं होती। घण्टा भर मिले तो उसमें ऊपर जो कहे - जय नारायण। आहाहा!

वह **ही शुद्धनिश्चय-उपयोग...** निश्चय शुद्ध उपयोग। देखा? और शुद्ध उपयोग न कहकर शुद्ध निश्चय उपयोग (कहा है)। आहाहा! शुभयोग तो नहीं, परन्तु अकेला शुद्ध भी नहीं। आहाहा! **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! इन्हें शब्द मिलते नहीं। इन्हें कहना, भगवान अन्दर वह हीरा की खान है। वह चैतन्य रत्न की खान भरी है। आहाहा! जिसमें अकेले आत्मा के रत्न भरे हैं। वह तो चैतन्यरत्नाकर समुद्र है। उसे वर्तमान परमानन्ददशा प्रगट करके उसके साथ जोड़ दे। आहाहा!

उसे—उस तपोधन को ही। **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! अनजाने व्यक्ति को तो और यह शुद्ध निश्चय उपयोग क्या? आहाहा! अरे रे! ऐसी जिन्दगी निकाली। बाहर में कमाने में होशियार। मानता है होशियार। वह तो पूर्व का पुण्य होवे तो आवे। और आवे-जावे, उसे तो यह (आत्मा) स्पर्श भी नहीं करता। यह मानता है कि मैं इसे लाया और लिया। यह व्यवस्था मैंने की। आहाहा! उस चीज़ को तो यह स्पर्श ही नहीं करता, स्पर्श ही नहीं किया; तो भी पूरे दिन मानता है कि मानो यह सब काम मैं करता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु :- आप कहते हो स्पर्श नहीं करता। वह कहता है हम सँभालकर रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्पर्श नहीं करता, उसे सँभालकर रखा, यह किस प्रकार होगा? बापू!

एक तत्त्व और दूसरे तत्त्व के बीच अत्यन्त-अभाव है। अत्यन्त अभाव की दीवार

बीच में पड़ी है। वज्र की दीवार। आहाहा! एक तत्त्व और दूसरे तत्त्व के बीच अत्यन्त (अभावरूप) वज्र की दीवार पड़ी है। स्पर्श नहीं करता। कैसे जँचे ? समयसार की तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। आहाहा! यह समयसार पुकार करके (कहता है)। कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। एक द्रव्य अपने गुणस्वभाव को स्पर्श करता है, परन्तु वह द्रव्य दूसरे को छूता या स्पर्शता नहीं है। और तू स्पर्श मानता है, वह तुझे अज्ञान और भ्रम है। आहाहा! ऐसी बात है।

इसकी तो लगन लगनी चाहिए। इसके पीछे पड़ना चाहिए, तब इसका पता लगता है। आहाहा! ऐसे ऊपर-ऊपर से आकर सुनकर किया और यह और यह और यह। उसमें इसका पता मिले - ऐसा नहीं है। बापू! आहाहा! ऐसे तो अनन्त बार ग्यारह अंग को धारण की, नव पूर्व की लब्धि प्रगट की। नव पूर्व पढ़ने से नहीं पढ़े जाते। क्या कहा यह ? ग्यारह अंग तो अभी पढ़ने से पढ़े जाते हैं, नव पूर्व पढ़ने से नहीं पढ़े जाते, वह तो लब्धि प्रगट होती है। आहाहा! वह नव पूर्व की लब्धि अनन्त बार प्रगट हुई। आहाहा! परन्तु मिथ्यादृष्टि कोरा का कोरा रहा। आहाहा!

यह चीज़ जो है, वह परम आनन्द का धाम... आहाहा! वह क्षेत्र ही ऐसा है, प्रभु का क्षेत्र ही ऐसा है कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का पाक होता है। दुःख का पाक हो — ऐसा आत्मा नहीं है। वह आत्मा नहीं है। आहाहा! परमानन्द की उत्पत्ति क्षेत्र वह स्वयं भगवान आत्मा है। आहाहा! उसके अन्दर जा न, कहते हैं। ऐसा कहा है। परमानन्द के साथ जोड़ - इसका अर्थ यह। जहाँ भगवान पूर्णानन्द पड़ा है, (वहाँ जा)। आहाहा! यह कभी सुना नहीं, नजर भी नहीं की। और जिसकी नजर है, उसे नजर में नहीं किया। जिसकी नजर है, वह दूसरी चीज़ को नजर में किया। जो इसकी नजर में चीज़ नहीं, उसकी नजर की, परन्तु जिसकी नजर है, उसकी नजर नहीं की। आहाहा! नये (लोगों) को तो कठिन लगता है। शान्तिभाई! यह ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! एकदम जन्म-मरण रहित (होने की बात है)।

चौरासी के अवतार अनन्त काल, अनन्त-अनन्त भव कर-करके कचूमर निकल गया है। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि.. आहाहा! मैं भूतकाल के दुःखों को स्मरण करता हूँ, वहाँ चोट पड़ती है। आता है न ? आहाहा! भूतकाल के भवों के अनन्त भवों को स्मरण

करता हूँ... आचार्य कहते हैं कि, वहाँ अन्दर चोट पड़ती है। है आनन्द का नाथ, अन्दर आनन्द प्रगट हुआ है... आहाहा! आनन्द का अनुभव है, परन्तु कहते हैं कि मैं भूतकाल को जहाँ याद करता हूँ, अनन्त-अनन्त भवों में क्या हुआ?—यह जहाँ याद करता हूँ, वहाँ अन्दर चोट पड़ती है। आहाहा! इसे अभी भूतकाल क्या था, यह इसे विचार करने का समय नहीं मिलता। आहाहा! आत्मा कौन है और कैसे है?—यह तो एक ओर रहा। आहाहा! परन्तु अनन्त काल में अभी तक कहाँ रहा? भाई! भव.. भव.. भव.. भव... भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. कहीं भव का अन्त नहीं। ऐसे अनन्त-अनन्त भवों में अनन्त दुःख सहन करके मर गया है, भाई! आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! आचार्य कहते हैं। आहाहा! अरे रे! मैं दुःख को याद करता हूँ, भूतकाल के दुःख के भव को... आहाहा! याद करते हैं, वहाँ, चोट लगती है। अरे रे! ऐसी स्थिति व्यतीत हो गयी? अब वह बीती न आवे, वह स्थिति; इसलिए याद करते हैं। आहाहा! परन्तु इस भव पहले कौन और उस भव पहले कौन और ये अनन्त-अनन्त हुए।

एक निगोद के अन्तर्मुहूर्त में लहसुन और प्याज में अन्तर्मुहूर्त दो घड़ी में—अड़तालीस मिनिट में ६६,३३६ भव किये। अरे रे! यह क्या दशा थी? भाई! आहाहा! एक सैकेण्ड में कितनी बार मरे और उपजे, जन्मे और मरे। ऐसे अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार... आहाहा! निगोद के भव में रहा। ऐसा एक बार नहीं, ऐसा अनन्त बार। आहाहा! आदि कहीं है? आहाहा! वीतराग मार्ग में तो जो है, वह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की बात है। आहाहा! भूतकाल में अन्तर्मुहूर्त में ऐसे भव किये ६६ हजार। ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! प्रभु! अब तुझे तेरा अवसर आया न! आहाहा! यह भव तो भवरहित होने के लिये भव है। यह भव, भव होने के लिये भव नहीं है। आहाहा! वाह!

शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;... वही तपोधन, वही तपोधन, वह मुनि। आहाहा! वह पंच महाव्रत पालन करे, समिति, गुप्ति और देखकर चले; उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले। अभी तो उसके लिये बनाया हुआ आहार भी लिया जाता है। आहाहा! उसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाए तो भी न ले। हमारे गुरु थे, वे उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी नहीं लेते थे। भले थे स्थानकवासी। परन्तु बिल्कुल (लेते) नहीं। छह-छह कोस विहार किया हो, आहार लेने जाएँ, वहाँ पानी मिले नहीं। फिर काठी में और

वहाँ जाकर छाछ ले आवे। छाछ और रोटी खावे। परन्तु यह सब क्रियाकाण्ड है। यह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा! और मानते थे ऐसा। स्वयं तो नरम सज्जन थे। मूलचन्दजी थे, थोड़े अभिमानी। वे ऐसा कहते थे कि अपन साधु नहीं हों और दूसरे साधू होंगे कौन अभी इस दुनिया में? अपन ऐसा पालन करते हैं, ऐसा रात्रि में बोले। अरे रे! भगवान! हम साधु नहीं तो फिर जगत में साधु है कौन? आहाहा! अरे रे! साधु किसे कहना, समकिती किसे कहना... आहाहा! मिथ्यात्वी किसे कहना? अनन्त भव में भ्रमता जीव, भटकना छोड़ेगा नहीं, उसे किसे कहना? और भटकना छोड़े, वह किसे कहना? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

वह **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है; दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—** देखो! दूसरा कोई जीव नहीं। व्यवहार में सुखी हो और व्यवहार करता हो, उसमें प्रसन्न हो, आहाहा! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच...** बाह्य की क्रिया के प्रपंच में भले पड़ा हो। महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। आहाहा! अपवास के पारणे में भी रस न ले, रूखा आहार-रोटियाँ ले। वह तो सब बाहर का प्रपंच है। आहाहा! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है?** बाहय में सुखी होवे अर्थात्? आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी ठीक है—ऐसा माननेवाला सब में। व्यवहार में, निमित्त में, संयोग में कुछ भी विस्मयरूप से, आश्रयरूप से, अधिकतारूप से (मानता हो)। आहाहा! भगवान **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** (समयसार) ३१ गाथा में (कहा है)। उस ज्ञानस्वभाव को अधिक, सब चीजों से भिन्न, अधिक और पूरा। अधिक, भिन्न और पूरा। भिन्न का अर्थ उसमें-टीका में किया है। अधिक का अर्थ भिन्न किया है, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी प्रभु, अन्य रागादि से और अन्य भाव से अत्यन्त भिन्न तथा पूर्ण और अधिक है। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरे प्रपंच में पड़े, उन्हें हम मानते नहीं - ऐसा कहते हैं। कहा न?

दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो... वह माने व्यवहार करके अपने को ठीक पड़ता है, हम दूसरे से कुछ अच्छा करते हैं। आहाहा! स्त्री-पुत्र छोड़े, परिवार छोड़ा, धन्धा छोड़ा, व्यापार छोड़ा। क्या छोड़ा? यह तो तुझमें था नहीं, और छोड़ा कहाँ से आया? आहाहा! मिथ्यात्व और राग है, उसे छोड़ना कहना, यह व्यवहार है। आहाहा! क्योंकि वह

वस्तु में नहीं है। वस्तु की दृष्टि होने पर वह नहीं होता। आहाहा! ऐसे **बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है ?** आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त विकल्प से लेकर किसी भी चीज़ में ठीक है – ऐसा माननेवाले सुख मानते हैं। उसमें सुख मानते हैं। कुछ ठीक है, मजा है, अभी अनुकूलता है—ऐसा माननेवाले बाहर में सुखी है, ऐसा मानते हैं। मूढ़ हैं। उन्हें ये भक्ति नहीं होती। आहाहा!

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:— आधार देते हैं।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **आत्मप्रयत्नसापेक्ष...** आत्मप्रयत्नसापेक्ष। पर प्रयत्न के प्रति सापेक्ष नहीं। जिसका प्रयत्न आत्मा के प्रति सापेक्ष है। आहाहा! ऐसा **विशिष्ट...** खास। आत्मप्रयत्नसापेक्ष, ऐसा खास **जो मनोगति...** मन का उसका झुकाव.. आहाहा! **उसका ब्रह्म में संयोग...** उसका ब्रह्म, ब्रह्म। उस आनन्द में संयोग। आहाहा! ऐसा उपदेश अब कभी सुना भी न हो। यह तो जैन में होगा? जैन में तो छह काय की दया पालना, व्रत पालना, छह परबी रात्रिभोजन न करना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, छह परबी कन्दमूल न खाना। अरे! बापू! ऐसी क्रियाएँ तो अनन्त बार की, भाई! वह कोई तेरी चीज़ नहीं है। पर का त्याग और ग्रहण वस्तु में नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं, मनोगति को आत्मप्रयत्नसापेक्ष खास मनोगति को। आहाहा! खास अर्थात् शुभ-अशुभ नहीं। आत्मप्रयत्नसापेक्ष खास मनोगति उसका, उस मनोगति को, उसका ब्रह्म में संयोग। आहाहा! यहाँ आया। ब्रह्म में संयोग। ध्रुव में संयोग करना है न? ध्रुव को कहाँ पर्याय का संयोग करना है? आहाहा! समझ में आया इसमें? ध्रुव को पर्याय का संयोग नहीं करना। पर्याय को ध्रुव का संयोग करना है। पर्याय ने विरह किया है। धर्म का पर्याय ने विरह किया है। उस पर्याय को यहाँ जोड़ना। आहाहा! अनजान व्यक्ति को ऐसा लगे कि यह तो क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- समयसार में आता है कि आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थाप।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसका अर्थ उस पर्याय में स्थाप। पर्याय राग में है, उसे छोड़कर पर्याय में स्थाप-निर्मल पर्याय में स्थाप। इसका अर्थ निर्मल पर्याय द्रव्य के ऊपर

कर। राग पर्याय छोड़ दे। वह तो ध्रुव चीज़ है। ध्रुव में स्थापन होता है, परन्तु ध्रुव को स्थापन किया जाता है ? आहाहा! ऐसा है।

ऐसा जैनमार्ग वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा अनन्त केवली ऐसा कह गये हैं, भाई! संसार का अभाव कर गये है। आहाहा! अनन्त भव में जैसे भटका है.. आहाहा! ऐसे.. आहाहा! अनन्त सिद्ध भी हो गये हैं। आत्मा का जुड़ान करके अनन्त सिद्ध हो गये। आहाहा! अनन्त काल से भी सिद्ध भगवान ज्यादा हैं। भूतकाल जो अनन्त काल है, उससे सिद्धभगवान अधिक हैं, क्योंकि छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति होते है। भूतकाल के समय जितने गये.. आहाहा! उस भूतकाल के दु:ख को याद करता है, परन्तु भूतकाल में सिद्ध हुए, उन्हें याद कर तो सही, कहते हैं। आहाहा! छह महीने आठ समय में ६०८। अनन्त काल में कितने हुए ? आहाहा! अधिक हुए। आहाहा! छह महीने आठ समय और ६०८, आहाहा! ६०८, आहाहा! ऐसा करनेवाले गये हैं, हुए हैं। हो सकें, ऐसा नहीं—ऐसा नहीं। आहाहा! अशक्य हैं-ऐसा नहीं। कठिन है, परन्तु शक्य है और किया जा सकता है। करके अनन्त (जीव) सिद्ध हो गये हैं। आहाहा! चाहे जैसी दुष्कर बात करें, चाहे जैसे अनन्त भव किये। भले एक अन्तर्मुहूर्त में छियासठ हजार भव, ऐसे अनन्त बार किये, परन्तु वे सिद्ध हो गये। आहाहा! परमात्मा हुए हैं। जैसे तेरा आत्मा अस्तिरूप है; वैसे वे अनन्त अस्तिरूप विराजमान हैं। निगोद के सब भव का अभाव करके... आहाहा! यह कहा न यहाँ ?

तपोधन ही निश्चय शुभोपयोग भक्तिवाला है। वे जीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं। बाकी बाह्य प्रपंचवाले सुख और मुक्ति को प्राप्त नहीं करते। आहाहा! आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त बाह्य कहीं भी किसी चीज़ में ठीक लगे, मजा लगे, कुछ विस्मय लगे, प्रेम लगे, उसमें तूने प्रभु का हनन कर दिया। आहाहा! दूसरे की अपेक्षा अधिक है, अत्यन्त भिन्न है, उसकी अपेक्षा इसे अधिक माना। आहाहा! जो नीच चीज़ है शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति, इस नीच को तूने अधिक माना। यह ठीक है - ऐसा सुख माना और जिसमें सुख है, उसे छोड़ दिया। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बात है। ऐसा तो कहीं सुना भी नहीं होगा।

मुमुक्षु :- मुम्बई में इसकी दुकान नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं। आहाहा! अरे रे! कितने ही मश्करी करते हैं। निश्चय... निश्चय... निश्चय... प्रभु! निश्चय अर्थात् सत्य है। आहाहा! यह पर्याय भी वास्तव में असत्य है, नाशवान है। केवलज्ञान (पर्याय) को भी नाशवान कहा है। आहाहा! तीन लोक का नाथ अन्दर ध्रुवरूप से विराजता है, उसकी अपेक्षा से केवलज्ञान एकसमय मात्र (रहता है)। वह दूसरे समय नहीं रहता और यह तो त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल। संसार में भटका तो भी है, वह है। छूट जाए तो भी है, वह है - ध्रुव। आहाहा! अरे! उसमें कभी नजर की नहीं, विचार किया नहीं। आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं) **आत्मप्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति उसका ब्रह्म में संयोग होना...** आहाहा! **(-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की चित्तपरिणति..)** देखा! परिणति को जोड़नी है। परिणति को आत्मा में जोड़ना। ध्रुव को जोड़ना नहीं। आहाहा! ध्रुव तो प्रभु सदा ध्रुव है। चाहे जो स्थिति हो, परन्तु वह तो चीज़ ध्रुव पड़ी ही है। सिद्ध होवे तो भी सिद्ध ध्रुव है। निगोद होवे तो भी ध्रुव है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ऐसी **(-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की चित्तपरिणति..)** ज्ञान की दशा, वर्तमान ज्ञान की, आनन्द की, शान्ति की दशा **(आत्मा में लगना)...** आहाहा! वर्तमान परिणति को आत्मा में जोड़ दे। वर्तमान परिणति को, अनादि से जो तुझमें नहीं, ऐसे राग और द्वेष, पुण्य-पाप में जोड़ी है। अब है, उसमें जोड़ दे। आहाहा! उसमें नहीं, उनमें जोड़ी है। अब उसमें है, उसमें जोड़ दे। आहाहा! आचार्यों की करुणा भी कितनी है। कैसी भाषा! सादी भाषा! आहाहा! कहीं कोई व्याकरण और संस्कृत न पढ़ा हो परन्तु चार पुस्तक पढ़ा हो... हमारे धरमचन्द कहते हैं कि चार पुस्तक पढ़ा हुआ भी समझे। आहाहा! इसमें पुस्तक का कहाँ काम है ? मातषु-मारुष आता नहीं था। आहाहा! तो भी आत्मा आता था। 'शिवभूति'। आहाहा!

..... **(चित्तपरिणति का आत्मा में लगना) उसे योग कहा जाता है।** ये योग, वह मोक्ष का कारण है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२२८

और (इस १३७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(अनुष्टुप्)

आत्मानमात्मनात्मायं युनक्त्येव निरन्तरम्।
स योगभक्तियुक्तः स्यान्निश्चयेन मुनीश्वरः ।।२२८।।

(दोहा)

आतम को निज आत्म से जो जोड़े यह आत्म।
योग भक्तिवाला वही निश्चय मुनिवर आत्म॥२२८॥

[श्लोकार्थः] जो यह आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है, वह मुनीश्वर निश्चय से योगभक्तिवाला है॥२२८॥

प्रवचन-१५६, श्लोक-२२८-२२९, गाथा-१३८,
सोमवार, ज्येष्ठ शुक्ल ४, दिनांक १६-०६-१९८०

---

२२८ कलश है न? नियमसार, २२८ कलश।

आत्मानमात्मनात्मायं युनक्त्येव निरन्तरम्।
स योगभक्तियुक्तः स्यान्निश्चयेन मुनीश्वरः ।।२२८।।

श्लोकार्थः जो यह आत्मा... आत्मा किसे कहते हैं?—कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र, वह आत्मा। उसे **यह आत्मा आत्मा को...** आहाहा! **आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है,...** आत्मा को, आत्मा के साथ। आत्मा को अर्थात् निर्मल परिणति से आत्मा, निर्मल परिणति से आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! (समयसार की) तीसरी गाथा में आया न? '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे**' प्रत्येक पदार्थ एकत्व निश्चय को प्राप्त, वह सुन्दरता को पाता है। अर्थात् कि आत्मा, बन्ध के सामने भी नहीं देखता। दूसरी चीज़ है स्व से अनन्त, उसके सामने भी नहीं देखता और स्वयं आत्मा निश्चय

एकत्वनिश्चयगतः स्वयं आत्मा में **एकत्वनिश्चयगतः** समय सुन्दर है। अन्दर शुद्धपरिणति में रहे, वह सुन्दर है। बाकी शुद्धपरिणति से बाह्य बन्धकथा। एक आत्मा को राग और शरीर की कथावाला कहना, वह विसंवाद-झगड़ा है, विपरीत बात है। आहाहा!

एकत्वनिश्चयगतः आहाहा! स्वयं अपना एकत्वस्वरूप, वह शुद्ध आत्मा। उस आत्मा को अर्थात् शुद्धपरिणति द्वारा आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! **एकत्वनिश्चयगतः** हुआ। उसमें बन्ध का सम्बन्ध नहीं, पर का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! तथा उस समय में वह पर्याय होने का क्रम है। आहाहा! वह आत्मा.. यह निमित्त का झगड़ा बड़ा। आज बहुत सब आये थे। श्वेताम्बर में... परन्तु बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक समय में अपनी पर्याय से परिणमित होता है, उसे अब दूसरे का काम क्या है? दूसरे की अस्ति हो या न हो, उससे काम क्या है? स्वयं ही आत्मा **एकत्वनिश्चयगतः** पर के सम्बन्ध बिना एकत्व आत्मा में समय, उस एकत्वपने को प्राप्त हो, वह लोक में सुन्दर है। वह शान्ति और आनन्द का कारण है। आहाहा! यहाँ तक जाना। अभी तो निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है, क्रमबद्ध नहीं होता - ऐसे विवाद! आहाहा!

एक ही बोल में पाँचों ही बोल उड़ जाते हैं। एक आत्मा अपने समय में परिणमन करके आत्मा के साथ जोड़ता है। बस, इसमें क्रमबद्ध आ गया; इसमें निश्चयगत स्वभाव अपनी परिणति आ गयी; वह पर का कर्ता नहीं - यह आ गया। आहाहा! समस्त तीनों सम्प्रदायों में मूल बात में अन्तर है। निमित्त से होता है... निमित्त से होता है। निमित्त से होता है तो जो चीज़ है, उस चीज़ ने क्या किया? वह चीज़ पर्यायरहित रही? आहाहा! सर्वत्र यह विवाद। यह श्वेताम्बर का 'कल्याण' आया है न? उसमें भी निमित्त का विवाद। एक आर्यिका है, वह भी (कहती है) निमित्त से होता है, उससे होता है। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य परिणमन रहित कोई काल है कि उसके परिणमन को दूसरा परिणमन करे? आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **जो यह आत्मा...** कहा न? यह आत्मा (अर्थात्) प्रत्यक्ष। आहाहा! **जो यह आत्मा...** शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द। उस **आत्मा को...** निर्मलपर्याय द्वारा **आत्मा के साथ...** आहाहा! यह वस्तु, यह जैनदर्शन, यह जैनधर्म। **आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ जोड़ता है,...** यह जैनधर्म। आहाहा! इसकी बात तो पड़ी रही और बाहर की बातें (चल दी), इसका यह करो, इसका यह करे और इसका यह करे। यह तो इसमें आ गया - शिल्पी में। कारीगर-कारीगर किसी पदार्थ की क्रिया नहीं करता। कारीगर भले

हो, परन्तु वह किसी परपदार्थ को स्पर्श नहीं करता अर्थात् करता नहीं। आहाहा! कारीगर भी अपनी पर्याय में ही रहता है। वह पर्याय जो कुछ... काम होवे लोहा या (चाहे जो हो), उसे स्पर्श नहीं करता, तो उसका कार्य किस प्रकार करे? आहाहा!

मुमुक्षु :- कारीगर सुवर्ण को घड़ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- घड़ता नहीं। घड़ता नहीं और स्पर्श भी नहीं करता।

मुमुक्षु :- तो कौन घड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वयं जो पदार्थ है, उसकी पर्याय उस काल में होनेवाली हो, वह होती है। जो वह पदार्थ है, उसकी पर्याय का काल है, उस समय। उस समय में क्रमबद्ध में उसकी पर्याय होती है। कारीगर कुछ नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है। जैनदर्शन ही यह है। जैनदर्शन वस्तुस्वरूप है। वह कोई पक्ष-पन्थ नहीं है। वस्तु जो है आत्मा, वह स्वयं अपना निर्मलपना, निर्मलपने की परिणति से उस आत्मा के साथ जोड़े, ऐसा ही उसका समय का काल है। क्रमबद्ध में वही स्थिति खड़ी होती है और पर का कर्ता नहीं होता। बन्ध का जुड़ान कहना, वह झगड़ा है। आहाहा! बात तो एकदम सादी और सीधी है, परन्तु कर रखी है ऐसी कि इसके बिना यह नहीं होगा... इसके बिना यह नहीं होगा... इसके बिना यह होगा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि किसी के बिना किसी का (न) हो - ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! निकट में शरीर और कर्म है एकक्षेत्रावगाह में, तथापि उनकी पर्याय आत्मा नहीं करता। आहाहा! स्वयं पर्यायरहित नहीं है, इसलिए वह आत्मा अपनी निर्मल पर्याय को करता... आहाहा! वह निर्मल पर्याय हुई, वह ही आत्मा को जोड़ती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जो परिणति आत्मा को, वह आत्मा के साथ जोड़ती है। अब यह मार्ग है। इससे कम, अधिक, विपरीत कुछ भी करे तो सब अत्यन्त विपरीत है। आहाहा! यह प्रत्यक्ष प्रसिद्ध और सिद्ध है।

वह अपनी परिणति द्वारा **आत्मा को आत्मा के साथ...** आहाहा! **निरन्तर जोड़ता है,...** जैसे आत्मा निरन्तर ध्रुव है, वैसे ध्रुव सन्मुख का झुकाव भी नित्य है। आहाहा! आत्मा ध्रुव नित्य है, वैसे उसकी ओर की सन्मुखता की परिणति भी नित्य है। उसे धर्म और योग कहा जाता है। आहाहा! ऐसे शब्द सुने भी न हों, (उसे) धर्म हो जाए! अरे! भाई! वीतराग

सर्वज्ञ परमात्मा का कथन भी ऐसा है। ज्ञान में तो ज्ञात होता है, परन्तु वाणी में ऐसा आता है। आहाहा! यह आत्मा राग के कारण आत्मा में जुड़े-ऐसा नहीं कहा है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प करे, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति (करे), देव-गुरु-शास्त्र को माने। यह माने, वह इसे अनुकूल पड़े तो उससे अन्दर जाया जाए – यह बात यहाँ नहीं की है और किसी गाथा में नहीं की है। आहाहा!

यह आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ... त्रिकाल आत्मा के साथ अपनी शुद्ध परिणति को झुकाता है। जो परिणति परसन्मुख झुकी हुई है, वह परिणति कहीं पर के कारण परसन्मुख झुकी हुई नहीं है। झुकी हुई है स्वयं से। आहाहा! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। जो परिणति पर के साथ अनादि से झुकी हुई है, वह परिणति वहाँ रहो। बाद की परिणति को उसके आत्मा के साथ जोड़ दो। आहाहा! उसे योग कहा जाता है। उसे आत्मा का व्यापार कहा जाता है। इसका नाम आत्मव्यापार है। आहाहा! बाकी सब पाप व्यापार है। पुण्य का व्यापार भी पाप व्यवहार है। आहाहा!

निरन्तर जोड़ता है, वह मुनीश्वर निश्चय से योगभक्तिवाला है। उसने स्वभाव का जुड़ान किया। जो परसन्मुख का जुड़ान था, वह जुड़ान स्व-सन्मुख किया, वह योगभक्तिवाला है। आहाहा! कहो, ऐसा है। शान्तिभाई! कुछ सुना नहीं और कहीं ठिकाना नहीं। वाड़ा में भी कहीं नहीं।

मुमुक्षु :- दिल्ली में मिलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं दिल्ली में नहीं मिलता और कोलकाता में भी नहीं मिलता। यहाँ का अब चला है, वह है। यहाँ का चला, अब उसकी चर्चा चलती है। बाकी यह बात थी ही नहीं। आहाहा!

आत्मा क्रमबद्ध अपनी पर्याय को, वह भी निर्मल को करे, तब वह कर्ता कहलाता है। आहाहा! इसके अतिरिक्त सब बातें व्यर्थ है। आत्मा पवित्र है, शुद्ध है; इसलिए वह शुद्धपरिणति करे, तब उस परिणति का जुड़ान स्व से ही होता है। अशुद्ध परिणति का जुड़ान पर के साथ होता है, तो भी अशुद्ध परिणति पर से नहीं हुई। पर में नहीं हुई, पर से नहीं हुई; पर को स्पर्श किये बिना हुई है। आहाहा! अब यहाँ तो योगभक्ति कहनी है। शुद्धपरिणति, शुद्ध आत्मा है-पवित्र है; उसकी पवित्र की परिणति पवित्र के साथ जोड़ दे, उसे यहाँ धर्म का योग अर्थात् व्यापार कहा जाता है। आहाहा!

गाथा-१३८

सव्ववियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३८।।

सर्वविकल्पाभावे आत्मानं यस्तु युनक्ति साधुः।
स योग-भक्ति-युक्तः इतरस्य च कथं भवेद्योगः।।१३८।।

अत्रापि पूर्वसूत्रवन्निश्चययोगभक्तिस्वरूपमुक्तम्। अत्यपूर्वनिरुपरागरत्नत्रयात्मकनिज-चिद्विलासलक्षणनिर्विकल्पपरमसमाधिना निखिलमोहरागद्वेषादिविविधविकल्पाभावे परम-समरसीभावेन निःशेषतोऽतर्मुखनिजकारणसमयसारस्वरूपमत्यासन्नभव्यजीवः सदा युनक्त्येव, तस्य खलु निश्चययोगभक्तिर्नान्येषां इति।

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३८॥

अन्वयार्थ : [यः साधु तु] जो साधु [सर्वविकल्पाभावे आत्मानं युनक्ति] सर्व विकल्पों के अभाव में आत्मा को लगाता है (अर्थात् आत्मा में आत्मा को जोड़कर सर्व विकल्पों का अभाव करता है), [सः] वह [योगभक्तियुक्तः] योगभक्तिवाला है; [इतरम्य च] दूसरे को [योगः] योग [कथम्] किस प्रकार [भवेत्] हो सकता है ?

टीका : यह भी पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है।

अति-अपूर्व [1]निरुपराग रत्नत्रयात्मक, [2]निजचिद्विलासलक्षण निर्विकल्प परमसमाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,

---

१. निरुपराग=निर्विकार; शुद्ध। [परम समाधि अति-अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है।]
२. परम समाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है।

परमसमरसीभाव के साथ [1]निरवशेषरूप से अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है, उसे वास्तव में निश्चययोगभक्ति है; दूसरों को नहीं।

गाथा - १३८ पर प्रवचन

---

१३८ गाथा।

सव्ववियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो ।।१३८।।

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३८॥

आहाहा! **टीका : यह भी पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है।** आहाहा! **अति-अपूर्व निरुपराग रत्नत्रयात्मक,...** आहाहा! पूर्व में एक समय भी नहीं हुआ – ऐसा जो अपूर्व रत्नत्रयभाव। स्वसन्मुखता का-शुद्ध भगवान चिदानन्द का धाम, निज धाम-सन्मुख का... आहाहा! अपूर्व अति। पूर्व में कभी किया नहीं। **अति-अपूर्व निरुपराग... निर्विकार; शुद्ध। [परम समाधि अति-अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है।]** आहाहा! अभी तो स्थानकवासी के साधु योग के शिविर लगाते हैं। योग के। ऐसा करना, ऐसा करना और ऐसा करना, ऐसा करना। सब गप्प ही गप्प है। अरे रे! प्रभु!

मुमुक्षु :- देखें तो सही कैसी निकालते हैं ये, क्या सीखते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सीखते हैं, वह योग ऐसा करो और वैसा करो। ऐसे एकाग्र होओ। मूल तो विकल्प कम करो। विकल्प कम करो, इसका नाम योग, इसका नाम धर्म।

यहाँ कहते हैं कि **सव्ववियप्पाभावे** आहाहा! है मूल में ? आहाहा! **अति-अपूर्व निरुपराग...** अनन्त काल में नहीं किया, ऐसा रागरहित भाव (अर्थात्) रत्नत्रयस्वरूप— सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्रस्वरूप **निजचिद्विलासलक्षण...** आहाहा! **परम समाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है।** शुद्ध चैतन्य का विलास। आहाहा! शुद्ध चैतन्य की

---

१. निरवशेष=परिपूर्ण। [कारणसमयसारस्वरूप परिपूर्ण अन्तर्मुख है।]

क्रीड़ा, जिसने शुद्ध चैतन्य में क्रीड़ा की है... आहाहा! उसे चैतन्य विलास कहते हैं। जगत के विलास अज्ञानी मूढ़ पत्थर में और पैसे में मानता है। आहाहा! यह तो **अति-अपूर्व निरुपराग रत्नत्रयात्मक, निजचिद्विलासलक्षण...** अपने ज्ञान का विलास लक्षण। अपना आनन्द और ज्ञान वीतरागस्वरूप, ऐसा जो चिद्विलासलक्षण। आहाहा! क्या लक्षण?

निर्विकल्प परमसमाधि द्वारा... विकल्प का अभाव, राग का अंश नहीं। आहाहा! जैसा वीतरागी स्वभाव है, वैसी ही वीतरागी परिणति द्वारा... आहाहा! **परमसमाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का...** यह सब कहे, देखा! **समस्त मोहरागद्वेषादि...** राग का, एक विकल्प का अंश नहीं। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर, परमसमरसीभाव के साथ...** आहाहा! परमसमरसीभाव। परमसमरसी। समतारूप परम समता, परम वीतराग, परम शान्त, ऐसा जो भगवान स्वभाव। **परमसमरसीभाव के साथ निरवशेषरूप से...** पूरा-पूरा। कारणसमयसारस्वरूप पूरा-पूरा अन्तर्मुख है। आहाहा! भगवान जो ध्रुव है, वह पूरा-पूरा अन्तर्मुख है। जरा भी बहिर्मुख नहीं। इसलिए अन्तर्मुख में अन्तर्मुख होना जिसे, उसे उसके जैसा जो अन्तर्मुख है, उसके जैसा होना चाहिए। वह विकल्परहित, रागरहित, वह नित्य है, तो उसके साथ जुड़ान करनेवाला सर्वविकल्परहित। आहाहा!

अब इसमें व्यवहार से हो और निमित्त से हो... श्वेताम्बर में और स्थानकवासी में बड़ा झगड़ा। आहाहा! अभी ध्यान में, लक्ष्य में भी बात न ले, वह अन्तर में किस प्रकार जा सकेगा? आहाहा! जिसे नहीं कहते कि ऐ! यह बात ध्यान में तो ले, लक्ष्य में तो ले। ऐसे जो लक्ष्य में भी बात नहीं कि वर्तमान निर्मल परिणति, वह अन्दर में जा सकती है, तब उसे धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा! बाकी लाख व्रत करे और अपवास करे और मन्दिर में अरब रुपये खर्च करे, दस-दस लाख के बड़े गजरथ निकाले, बीस-बीस लाख के, रथयात्रा निकाले। धूल में भी कुछ नहीं होता। आहाहा! उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं मिलता। जरा भी लाभ नहीं और नुकसान पूरा है। आहाहा! ऐसी बात! प्रौषध करे, आठ-आठ अपवास करे, चारों आहार (छोड़कर) पर्यूषण के। आठ-आठ निर्जल उपवास (करे)। ओहोहो! इन भाईसाहब ने तो बहुत किया। ओहोहो! और उसमें छोटी उम्र का हो, १५-२० वर्ष की उम्र का। ओहोहो! भारी धर्म किया इसने। धूल में भी

धर्म नहीं है। ऐसे आठ उपवास क्या, २५-१०० करे नहीं। आहाहा! यह तो आठ तो (श्वेताम्बर में) पर्यूषण के दिन होते हैं। दिगम्बर में दस करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, परमात्मा स्वयं अन्दर विराजता है, उसके साथ जुड़ान करे, उसकी जाति की परिणति द्वारा उसके साथ जुड़ान करे। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,...** देखो! जैसा स्वरूप मोह और राग-द्वेषरहित है, वैसा ही परिणति में मोह, राग-द्वेषरहित भाव करके। आहाहा! अरे! ऐसा धर्म। लोग न कहे कि यह तो नया धर्म निकाला। एकान्त है रे एकान्त है। सर्वत्र यह पुकार करते हैं। अखबार (जैन समाचारपत्र) में आता है, बहुत। एकान्त है... एकान्त है। विरोध करो। अरे! भगवान! प्रभु! तूने सुना नहीं, प्रभु! आहाहा! और उल्टी मान्यता में दु:ख होगा, प्रभु! आहाहा! वह दु:ख हो, यह कोई ठीक है? किसी भी प्राणी को दु:ख हो, वह... आहाहा!

सब भगवान है। भगवान होओ। सब कर्मरहित होओ। कोई दु:खी न होओ भाई! आहाहा! ऐसा द्रव्यसंग्रह में है। कोई दु:खी न होओ। सब सुखी (होओ)। सब कर्मरहित होओ, प्रभु! आहाहा! ऐसा धर्मी विचार करता है। आहाहा! किसी की विपरीत मान्यता और उंघाई के कारण तुम दु:खी होओ-ऐसा नहीं चाहता। आहाहा! क्योंकि द्रव्य प्रभु तो परमात्मा है, प्रभु! उस द्रव्य से तो तुम साधर्मी हो। आहाहा! पर्यायदृष्टि छोड़कर, प्रभु! द्रव्यदृष्टि करके मुक्त होओ। आहाहा! भगवानस्वरूप है, वह भगवान होओ। प्राप्त की प्राप्ति है। भगवान होता है, वह भगवान था, वह होता है। भगवानस्वरूप परमात्मा आत्मा है। आहाहा! यह कहा न?

समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,... पर्याय की बात की। वह तो पर्याय की बात है, यह तो। वस्तु तो त्रिकाल एकरूप (रहती है)। चाहे तो अनन्त बार छियासठ हजार भव निगोद के लिये, परन्तु आत्मा तो जैसा है, वैसा का वैसा ही त्रिकाल निरावरण है। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का सागर है। आहाहा! उसे **मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों...** विविध प्रकार के विकल्प। एक प्रकार के नहीं। आहाहा! कोई आर्तध्यान के, कोई रौद्रध्यान के, कोई मान-सम्मान के और कोई विषय सम्बन्धी तथा कोई महात्ता सम्बन्धी और कोई... आहाहा! ये सब विकल्प मोह और राग-द्वेष है। उनका **अभाव होने पर, परमसमरसीभाव के साथ...** आहाहा! भगवान परमरसी

स्वभाव है। शान्त वीतराग शान्त... शान्त... शान्त... परम समरसीभाव, परम समताभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वरूप प्रत्येक भगवान है। प्रत्येक भगवान निर्विकल्प समरसीभावस्वरूप है। आहाहा!

उसके **साथ निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** आहाहा! पूरा-पूरा अन्तर्मुख होकर, **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** अर्थात् कुछ बाकी रखे (बिना) अन्तर्मुख होकर। आहाहा! कोई भी एक सूक्ष्म विकल्प गुण-गुणी के भेद का, द्रव्य-पर्याय के भेद का भी नहीं। आहाहा! निरवशेषरूप से—कुछ बाकी रखे बिना। **अन्तर्मुख...** पूर्णतः अन्तर्मुख। आहाहा! **निज कारणसमयसारस्वरूप को...** निज कारणसमयसारस्वरूप को **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** समयसारस्वरूप को—ध्रुव को जोड़ता है। आहाहा!

कारणसमयसारस्वरूप को जो... निर्मल पर्याय से जोड़ता है। **अति-आसन्नभव्य जीव...** आहाहा! अति आसन्न भव्य जीव। एक-दो भव में मोक्ष जाने की तैयारी है। आहाहा! परन्तु इसका कुछ साधन होगा या नहीं? यह साधन कहा जाता है न! कहा जाता है तो यह साधन; दूसरा साधन नहीं है, दूसरा बाधक है। व्यवहार के क्रियाकाण्ड के जितने राग—दया, दान, व्रत, भक्ति हैं, वे सब बाधक हैं, जहर हैं। यह तो अमृतस्वरूप है तो अमृतस्वरूप की परिणति द्वारा इसे जोड़ दे। आहाहा! विकल्परहित का अर्थ यह। आहाहा! ऐसा निवृत्ति लेकर पढ़ा भी नहीं होगा। शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है न! आहाहा! आहाहा!!

निरवशेषरूप से अन्तर्मुख... होकर। क्योंकि प्रभु स्वयं अन्तर्मुख वस्तु है। बाह्य में कहीं नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय में भी वह नहीं है। आहाहा! वह तो ध्रुवस्वरूप भगवान... निरुपराग। आहाहा! **अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को...** निज कारणसमयसार स्वयं भगवान। परमात्मा वीतराग पंच परमेष्ठी नहीं। आहाहा! पंच परमेष्ठी ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखना रहने दे। आहाहा! पंच परमेष्ठी का पुकार है। अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं कि हमारे सामने देखना रहने दे; वहाँ जा। आहाहा! तू महानिधान है न, नाथ! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति भरी है न, प्रभु! परमसमरसीभाव से भरपूर है न! आहाहा!

परमसमरसी—समता के रस से भरपूर भगवान आत्मा। आहाहा! पूरी दुनिया हिल जाए परन्तु वहाँ कुछ हिले नहीं। प्रतिकूलता के ढ़ेर पूरी दुनिया के आवे तो भी वह

परमसमरसीभाव कुछ फिरता नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान परमसरमरसीभाव है। आहाहा! उसके साथ कुछ बाकी रखे बिना **अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को...** आहाहा! **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** आहा! इसका अर्थ ऐसा भी होता है कि जो वर्तमान मोक्ष का मार्ग है, वह कारणसमयसार है। निज कारणसमयसारस्वरूप को जो जोड़ता है, ऐसा कहना होवे तो। वर्तमान जो निर्मल परिणति है, वह निज कारणसमयसार। त्रिकाल है, वह तो है, परन्तु मोक्ष का मार्ग है, वह निज कारणसमयसार है। आहाहा!

निज कारणसमयसारस्वरूप को.... अपना जो कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग... आहाहा! **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** ऐसे स्वरूप को पूर्णानन्द के साथ, समरसीभाव के साथ निज कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग, उसे अति आसन्न भव्य जीव (जोड़ता है)। आहाहा! अति आसन्न भव्य जीव—मोक्ष का जिसे अब किनारा (निकटता) आ गया है। अब संसार का तो किनारा आ गया है। मोक्ष में ऐसे एक कदम रखे इतनी देर है। नौका से उतरे और वहाँ जाए। आहाहा! ऐसे **अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** अपनी निर्मल कारणसमयसार दशा को अन्दर त्रिकाली कारणसमयसार के साथ जोड़ता है। आहाहा! समझ में आया? कारणसमयसार दो प्रकार के हैं—एक त्रिकाली कारणसमयसार और एक वर्तमान पर्याय, वह कारणसमयसार। आहाहा! वह वर्तमान पर्याय वीतरागी कारणसमयसार जो है, उसे त्रिकाली कारणसमयसार के साथ जोड़ता है। आहाहा!

उसे वास्तव में निश्चयोगभक्ति है;... वही वास्तव में निश्चययोग अर्थात् स्वरूप में जुड़ान—ऐसी भक्ति है। स्वरूप में जुड़ान के बिना की बातें सब विकल्प की जितनी हैं, वह सब पर के साथ जुड़ान है। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! और मिला, तब कहता है, एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। निश्चयगत... आहाहा! एक द्रव्य दूसरे का स्पर्श नहीं करता। ऐई..! निश्चय हो गया। निश्चय अर्थात् सत्य है। स्पर्श नहीं करता, परन्तु क्रमसर होता है। आहाहा! क्रमसर होता है और पर का कर्ता होता नहीं। आहाहा! ऐसी परिणति को कारणसमयसार कहते हैं। उस निज कारणसमयसार परिणति को द्रव्य के साथ जोड़े। आहाहा! समझ में आया? इसमें? सूक्ष्म तो है, भाई!

पूरे दिन पाप का व्यापार और धन्धा कर-करके पोटला बाँधा हो, आहाहा! और लड़कों तथा स्त्री को संभालना और महत्ता करना। आहाहा! लड़की का विवाह करे तो

बड़ी मानो मण्डप और ससुर को बड़ी बारात को लेने आवे और लेने जाए। आहाहा! हम क्या करते हैं! अरे प्रभु! कुछ कर नहीं सकता, प्रभु! उसका तू अभिमान करता है। आहाहा! आत्मा के राग-द्वेष और अभिमान के अतिरिक्त उस अज्ञान में कुछ भी नहीं कर सकता। अज्ञान में भी मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। ज्ञान में सम्यग्दर्शन और रागरहित दशा कर सकता है। आहाहा! अब इसमें पर को सुखी करो और पर को मदद करो, इससे तुम्हे धर्म होगा। आहाहा! वह व्यवहारधर्म है। व्यवहारधर्म है, इसका अर्थ ही यह है कि धर्म नहीं है। आहाहा! निश्चय... निश्चय... निश्चय... बापू! निश्चय अर्थात् प्रभु! सत्य। परम सत्य कसौटी में चढ़ा हुआ। आहाहा! परम सत्य कसौटी में चढ़ी हुई चीज़ निर्मत परिणति से अन्दर में जा। सर्व से अन्तर्मुख हो, तब तुझे धर्म होगा। कुछ भी बहिर्मुख रहे, तब तक धर्म नहीं है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत, समिति और गुप्ति तथा महीने-महीने के चार प्रकार के आहार का त्याग करके अपवास करके मरकर सूख जाए। आहाहा! वह धर्म नहीं है। आहाहा! अब जिसे आग्रह होवे, उसे तो विरुद्ध लगे न? यह सब करते हैं। पूरे दिन बेचारे कितनों की सेवा करते हैं, कितनों को सहायता करते हैं, भूखों के लिये अनाज की व्यवस्था कर देते हैं, पानी की प्याऊ बाँधते हैं, ऐसी गर्मी की लू चले...

मुमुक्षु :- ग्राम गोद लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- लू चले, उसमें मील-मील पर पानी की प्याऊ हो। बहुत लू होवे न! मील-मील में। क्योंकि बेचारा एक मील चलकर जाते हों, तो ऐसी तृषा लगे न! प्याऊ बाँधी हो वहाँ। अपने प्याऊ बाँधी है न, धर्म होगा। आहाहा!

यहाँ तो सब विकल्परहित अकेले आत्मा के साथ जुड़ान कर दे, इसका नाम यहाँ समाधि, योग और धर्म कहा जाता है। आहाहा! देखो! यहाँ तो ऐसा कहा कि ऐसे जो मुनि हैं, वे तो सदा जोड़ते हैं ही। जोड़ न, जोड़ न—ऐसा भी नहीं लिया। आहाहा! ऐसे तू जोड़-ऐसा भी नहीं कहा। जोड़ते हैं ही, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! है? जोड़ते हैं ही। ऐसा कहा न? या जोड़ेगा? आहाहा! **जोड़ता ही है,...** सच्चे सन्त तो उन्हें कहते हैं.. आहाहा! जो निर्मल परिणति को आत्मा के साथ जोड़ते हैं। जोड़ते हैं ही। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं, उन्हें चारित्रवन्त कहते हैं। उन्हें पंच परमेष्ठी में शामिल कर दिये। आहाहा!

मुमुक्षु :- जोड़ने का अर्थ, पर्याय और द्रव्य का भेद न दिखायी दे, ऐसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- भेद दिखायी न दे। उस ओर ढला, इसलिए फिर हो गया। अन्दर ऐसे झुका, तो फिर यह द्रव्य है और पर्याय यह चीज़ है। है ही कहाँ वह ? आहाहा! कथन में तो इतना आता है कि तू कारणसमयसार को कारणसमयसार के साथ जोड़ दे। इस निर्मल वीतराग कारणसमयसार को त्रिकाली परम समरसी समयसार (के साथ) जोड़ दे। आहाहा! इसका नाम योग कहा जाता है। इसका नाम योग कहा जाता है, इसका नाम धर्म कहा जाता है, इसका नाम समाधि कहा जाता है। आहाहा! इसका नाम भक्ति कहा जाता है। भक्ति का अधिकार है न ? इसका नाम भक्ति कहा जाता है। भगवान की भक्ति धम.. धम.. धम.. करे, वह तो विकल्प और व्यवहारभक्ति पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! नाचे-नाचे, फिर ऐसा हो जाए भगवान के पास। वह आता है, नहीं ऊपर ? नाचनेवाला। ऊपर घड़ा ऊँचा रखकर नाचे। यहाँ आया था। मुम्बई आया था कितना घड़ा (हण्डा) रखकर नाचे ऐसे। दूसरों को तो आश्चर्य हो जाए कि ओहो! आदमी, हों सिर पर चार-पाँच-छह घड़े (रखे) और ऐसे से ऐसे नाचे। लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा! अब वहाँ कर्ताबुद्धि है। आहाहा! और दिखलाने की बुद्धि है। अरे! प्रभु! मार्ग अलग, बापू! आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा न ?—कि निरवशेषरूप से अन्तर्मुख। कुछ बाकी रखे बिना पूर्णतः अन्तर्मुख। नीचे अर्थ किया है न ? **कारणसमयसारस्वरूप परिपूर्ण अन्तर्मुख है।** आहाहा!

मुमुक्षु :- यहाँ पर्याय लेना या द्रव्य ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय। कारणसमयसार पर्याय को जोड़ना है तो पर्याय को लिया जाता है। ध्रुव को कहाँ (जोड़ना है ?) वह तो स्थित है अकेला। जोड़ना है तो पर्याय को। पर्याय पृथक् है और पर्याय को जोड़ना है। ध्रुव तो है, वह है, त्रिकाल निरावरण है। वह कभी अशुद्ध भी नहीं, अपूर्ण भी नहीं, विकार नहीं, आवरण नहीं। आहाहा!

वह **निश्चययोगभक्ति है; दूसरों को नहीं।** दूसरों को नहीं, लो! निषेध किया। दूसरे का निषेध नहीं करना, अपनी बात स्थापित करनी। यहाँ तो कहते हैं **दूसरों को नहीं।** दूसरे सर्वथा निर्विकल्प होकर अन्दर न जोड़े, उसे नहीं। उसे धर्म नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, वह धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है। सुनने को मिलना मुश्किल

पड़ती है। आहाहा ! स्पष्ट बात करते हैं न ? पाठ में है न ? दूसरे को योग किस प्रकार होगा ? है ? दूसरे को योग किस प्रकार होगा ? आहाहा ! पाठ में है। **इदरस्स य किह हवे जोगो। सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।** इसके बिना-अन्तर्मुख हुए बिना दूसरे को योग धर्म-भक्ति कहाँ से होगा ? आहाहा ! सर्वथा अन्तर्मुख हुए बिना बाहर में भक्ति करे, उसे योगभक्ति कहाँ से होगी ? आहाहा ! ऐसी बात है।

श्लोक-२२९

[अब इस १३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

भेदाभावे सतीयं स्याद्योग-भक्ति-रनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम् ।।२२९।।

(वीरछन्द)

योगभक्ति हो श्रेष्ठ जब होवे भेद विलीन।
आत्मलब्धिमय मुक्ति को योगी लहें प्रवीण॥२२९॥

[श्लोकार्थः] भेद का अभाव होने पर यह *अनुत्तम योगभक्ति होती है; उसके द्वारा योगियों को आत्मलब्धिरूप ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है॥२२९॥

श्लोक- २२९ पर प्रवचन

[अब इस १३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

* अनुत्तम=जिससे दूसरा कुछ उत्तम नहीं है ऐसी; सर्वश्रेष्ठ।

भेदाभावे सतीयं स्याद्योग–भक्ति–रनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम् ।।२२९।।

आहाहा! अरे! प्रभु! पंचम काल की बात तो आयी। पंचम काल में मुक्ति नहीं होती न! सुन न अब! तीनों काल मुक्तस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! वस्तु जो है, वह तो तीनों काल मुक्त ही है। आहाहा! उसकी मुक्ति, उस पर नजर करने से मुक्ति तुरन्त होती है। आहाहा! श्लोक में, पीछे के श्लोक में है न? भव को स्पर्श करता है, वैसे मुक्ति को स्पर्श करता है। आहाहा! आगे अन्तिम श्लोक हैं। आहाहा! साधक जीव... आहाहा! जरा-सा पूर्ण नहीं है; इसलिए राग को भी देखता है और अन्दर में मुक्ति को भी स्पर्श करता है। भव को भी स्पर्श करता है और मुक्ति को भी स्पर्श करता है, ऐसा पाठ है। समयसार के पीछे के कलश में (है)। आहाहा!

श्लोकार्थ - भेद का अभाव होने पर... आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ में भेद ही करना नहीं। यह द्रव्य है और यह पर्याय है और इस पर्याय को मैं द्रव्य में जोड़ता हूँ—ऐसा भेद ही जहाँ करना नहीं। आहाहा! **भेद का अभाव होने पर यह अनुत्तम योगभक्ति होती है;...** आहाहा! उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति भी इस भक्ति से उत्तम नहीं है। आहाहा! पंच परमेष्ठी की भक्ति भी इस भक्ति के समक्ष वह भक्ति ऊँची नहीं है। आहाहा! वह तो पुण्य का कारण है। आहाहा! एक तो संसार के धन्धे के कारण-पाप के कारण निवृत्त नहीं होता। उसमें पुण्य की भक्ति करे, उसमें भी धर्म नहीं, कहते हैं। मन्दिर में जाकर भगवान की भक्ति करे तो भी धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- पालीताणा जाकर करे तो धर्म होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं धूल में भी नहीं। पालीताणा क्या, सम्मेदशिखर जाए न; लोग कहते हैं कि सम्मेदशिखर में जो जन्मता है, उस वनस्पति को भी मोक्ष है। धूल भी नहीं। ऐसा कहते हैं कि वहाँ जो जन्मे हैं, जो सम्मेदशिखर में... आहाहा! और उसकी जो भक्ति करे, उसे अड़तालीस भव में मुक्ति हो जाती है। आहाहा! साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजमान हैं, उनकी भी भक्ति अनन्त बार की है। आहाहा! सोने की थाली और अन्दर चाँदी के फूल डालकर ऐसे भगवान की भक्ति की है। आहाहा!

मुमुक्षु :- आपने भक्ति बतायी, वह दूसरे प्रकार की भक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह भक्ति है। भजन, भजन, भगवान का भजन। आहाहा! राग का भजन नहीं। आहाहा!

भेद का अभाव होने पर यह अनुत्तम योगभक्ति... आहाहा! **जिससे दूसरा कुछ उत्तम नहीं है ऐसी;...** भक्ति **होती है; उसके द्वारा योगियों को...** आहाहा! ऐसी योगभक्ति द्वारा, उसके द्वारा उन सन्तों को **आत्मलब्धिरूप ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है।** आहाहा! व्यवहार से होती है-ऐसा नहीं। व्यवहार से निश्चय होता है और निश्चय से मुक्ति (होती है)-ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- यहाँ न लिखा हो, परन्तु अन्यत्र लिखा हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं नहीं लिखा। सर्वत्र क्रमसर अपनी पर्याय अपने से होती है, आड़ी-टेढ़ी नहीं होती, पर का नहीं, यह सर्वत्र बारह अंग और नवपूर्व में भरा है।

मुमुक्षु :- जयसेनाचार्य में व्यवहारभक्ति आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं नहीं आती। वह निमित्त का कथन है। आती कहीं नहीं। टीका में आता है साधन। व्यवहार साधन है। वह तो साधन को बतलाया है। साध्य किया, तब साधन कौन था? उसका ज्ञान बतलाया है। जयसेनाचार्य की टीका में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसी मुक्ति... आहाहा! भेद का अभाव होने पर। जहाँ भेद ही नहीं न! कहते हैं। राग तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी का भेद नहीं। ऐसी **अनुत्तम योगभक्ति होती है; उसके द्वारा योगियों को आत्मलब्धिरूप...** उस आत्मा की प्राप्तिरूप मुक्ति। है? **ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है।** आहाहा! उसे यथार्थ मुक्ति होती है। उसे मोक्ष होता है। बाकी दूसरों को मोक्ष नहीं होता। (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३९

विवरीयाभिणिवेसं परिचत्ता जोण्हकहियतच्चेसु।
जो जुजंदि अप्पाणं णिय-भावो सो हवे जोगो।।१३९।।

विपरीताभिनिवेशं परित्यक्त्वा जैनकथिततत्त्वेषु।
यो युनक्ति आत्मानं निज-भावः स भवेद्योगः।।१३९।।

इह हि निखिलगुणधरगणधरदेवप्रभृतिजिनमुनिनाथकथिततत्त्वेषु विपरीताभिनिवेश-विवर्जितात्मभाव एव निश्चयपरमयोग इत्युक्तः। अपरसमयतीर्थनाथाभिहिते विपरीते पदार्थे ह्यभिनिवेशो दुराग्रह एव विपरीताभिनिवेशः। अमुं परित्यज्य जैनकथिततत्त्वानि निश्चय-व्यवहारनयाभ्यां बोद्धव्यानि। सकलजिनस्य भगवतस्तीर्थाधिनाथस्य पादपद्मोपजीविनो जैनाः, परमार्थतो गणधरदेवादय इत्यर्थः। तैरभिहितानि निखिलजीवादितत्त्वानि तेषु यः परमजिनयोगीश्वरः स्वात्मानं युनक्ति, तस्य च निजभाव एव परमयोग इति।

विपरीत आग्रह छोड़कर श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं-
जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है॥१३९॥

अन्वयार्थ : [विपरीताभिनिवेशं परित्यक्त्वा] विपरीत अभिनिवेश का परित्याग करके [यः] जो [जैनकथिततत्त्वेषु] जैनकथित तत्त्वों में [आत्मानं] आत्मा को [युनक्ति] लगाता है, [निजभावः] उसका निज भाव [सः योगः भवेत्] वह योग है।

टीका : यहाँ, समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश रहित आत्मभाव ही निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है।

अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए (-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए) विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह ही विपरीत अभिनिवेश है। उसका परित्याग करके जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व निश्चयव्यवहार से

जाननेयोग्य हैं, [१]सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के [२]उपजीवक वे जैन हैं; परमार्थ से गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है। उन्होंने (-गणधरदेव आदि जैनों ने) कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व, उनमें जो परम जिनयोगीश्वर निज आत्मा को लगाता है, उसका निजभाव ही परम योग है।

प्रवचन-१५७, गाथा-१३९, मंगलवार, ज्येष्ठ शुक्ल ५, दिनांक १७-०६-१९८०

१३९-गाथा।

विवरीयाभिणिवेसं परिचत्ता जोण्हकहियतच्चेसु।
जो जुजंदि अप्पाणं णिय-भावो सो हवे जोगो।।१३९।।

विपरीत आग्रह छोड़कर श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं-
जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है॥१३९॥

टीका : यहाँ, समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि... आचार्यों। उन्होंने **जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में...** भगवान ने कहे हुए तत्त्व, ऐसा नहीं कहा, क्योंकि भगवान की परम्परा से आया है, इसलिए **समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश रहित...** भगवान ने जो तत्त्व कहे, उनका विपरीत आग्रह छोड़कर। आहाहा! जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय होनेवाली है, जो स्वतन्त्र है; निमित्त भले हो, परन्तु निमित्त से यहाँ होता नहीं। ऐसा तत्त्व गणधरों ने, मुनिराजों ने जगत को कहा है। उस तत्त्व को जानकर उस तत्त्व में, आत्मा में जोड़ दे। आहाहा! **विपरीत अभिनिवेश रहित आत्मभाव...** मुनिनाथों ने कहे हुए तत्त्व। इसका अर्थ इतना है कि दिगम्बर मुनियों ने कहे हुए तत्त्व। गणधरों से लेकर, जिनमुनिनाथ कहा न?

मुमुक्षु :- गणधर को तो दोनों मानते हैं, श्वेताम्बर भी मानते हैं।

१- देह सहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।

२- उपजीवक=सेवा करनेवाले; सेवक; आश्रित; दास।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ श्वेताम्बर की बात है ही नहीं। जिनवर ने कहे हुए तत्त्व, वह दिगम्बर में ही है। दिगम्बर ही परम्परा से चला आया है। आहाहा! जगत को कठिन (लगे)। इसलिए कहा कि गणधरदेव और जिनमुनियों। जिनमुनियों कौन ? वस्त्रवाले ? एक ओर वस्त्रवाले को निगोदगामी कहते हैं और एक ओर वस्त्रवाले का कहा मानना, ऐसा आवे ? कठिन बात है, भाई! आहाहा! क्षण में चला जाना है। कोई है ? कल देखो न! सवेरे इनके दामाद मिलने आये, ऐसा कहते हैं। उन्हें मिलते थे, यहाँ बैठते थे। वहाँ ऐसा हो गया। मूल तो हार्टअटेक। आहाहा! महिलायें यहाँ नहीं आयी होंगी। तब निकाला होगा। नौ से पहले गुजर गये। आहाहा! छह घण्टे तक। उसमें असंख्य सम्मूर्च्छन होते हैं। पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन मनुष्य कलेवर में असंख्य होते हैं। वीतराग ने ऐसा कहा है - ऐसा कहा न ? **गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों...** आहाहा!

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादि आना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब शामिल ही हैं इसमें। सब इकट्ठे कहे न।

जिनमुनिनाथों... शब्द कहा। जिनमुनिनाथ कौन ? दिगम्बर मुनि। गणधर से पश्चात चले आये दिगम्बर सन्त। आहाहा! उनके कहे हुए तत्त्व, उनकी परीक्षा करनी पड़ेगी न ? कि ये तत्त्व, उन जिनमुनि के कहे हुए हैं ? या ये तत्त्व कल्पित किये गये हैं ? आहाहा! देह छोड़कर क्षण में चला जाना है। उसमें आग्रह करेगा, वह अवतार सब बिगड़ जायेगा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं जिनमुनिनाथ, गणधरदेवों ने कहे हुए तत्त्व। तब उसमें क्या आया ? जिनमुनिनाथ ने ऐसा कहा है पात्र रखने का, वस्त्र रखने का ? आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!... अभिग्रह अर्थात् आग्रह। यहाँ कहा न ? आग्रह, विपरीत अभिनिवेष। आहाहा! जिनमुनिनाथों, गणधरों आदि ने जो तत्त्व कहे—देव-गुरु-शास्त्र, नवतत्त्व, इनके अतिरिक्त दूसरे चाहे जितने कहनेवाले हों। आहाहा! उनके तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेषरहित। उससे उल्टा जो अभिनिवेष-अभिग्रह-आग्रह-उससे रहित। आहाहा! उनकी परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं ? या परीक्षा किये बिना वीतराग की यह वाणी है या किसी की कल्पित की हुई है ? आहाहा!

मुमुक्षु :- परीक्षा करने के लिये अभ्यास करना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभ्यास करने के लिये तो बात करते हैं।

समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव... देखा न? इतनी तो बात की है। **समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव...** आहाहा! **आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित आत्मभाव...** आहाहा! भेद और विकल्परहित आत्मा का तत्त्व कहा है। और उस तत्त्व की जिस समय में पर्याय होनी है, वह होती है, ऐसा जिननाथ ने कहा है; उसकी दृष्टि पर्याय पर न जाकर द्रव्य पर जाती है। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसे किसी की सहायता या दूसरे की आवश्यकता नहीं है। ऐसा जो आग्रह छोड़ता है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। आहाहा! ज्ञायकभाव पर जाती है, तब उसे आत्मभाव होता है। और आत्मभाव? तब आत्मभाव होता है। पर्याय में बात है न यह? आत्मा है तो है। आहाहा! पर्याय में आत्मभाव होता है। वह कब होता है? कि सत्य तत्त्व दृष्टि में हो और असत्य का आग्रह छूट जाए, उसे आत्मा का जो स्वभाव है, उस पर्याय में उसका भाव आता है। आहाहा!

यह आत्मभाव ही निश्चय-परमयोग है... वही परम निश्चययोग है। आहाहा! वीतराग-सर्वज्ञ, मुनिवरों, गणधरों आदि ने कहे हुए तत्त्वों का आग्रहरहित, जैसा है, वैसा जाननेवाला, उसे आत्मभाव होता है और वह आत्मभाव निश्चय परमयोग है। वही आत्मा के साथ जुड़ान है। आहाहा! वाद-विवाद बढ़ गये, झगड़े बढ़ गये। आहाहा! वास्तविक पंथ... प्रभु जो आत्मा है, उसकी जो दृष्टि होने पर, उसकी पर्याय में जो भाव होता है, वह निश्चययोग है। वह निश्चयधर्म और निश्चयधर्म, मोक्ष का कारण है। है न?

वही... ऐसा। **आत्मभाव ही...** दूसरा नहीं। जो भगवान गणधरों ने, मुनिनाथों ने तत्त्व कहे; उन तत्त्वों में से आत्मभाव को निकालकर, वही आत्मभाव वीतरागस्वरूप विकल्परहित, वह निश्चययोग है। आहाहा! वह निश्चय परमयोग है। सच्चा और परमयोग वह है। आहाहा! बाकी जागत की कल्पनायें हैं। आहाहा! **ऐसा कहा है।** देखा! **निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है।** आहाहा! पाठ है न? **णियभावो सो हवे जोगो।** है न चौथा पद? **णियभावो सो हवे जोगो,** ऐसा कहा है। आत्मा का निर्विकल्प योग और राग के संयोगरहित (आत्मभाव)। क्योंकि योग है, वह तो आस्रव और पुण्य-पाप के विकल्प में वह सब जाता है। वह कोई आत्मतत्त्व नहीं है। इसलिए उस तत्त्व का लक्ष्य और आग्रह छोड़कर आत्मतत्त्व के अन्दर जाए, तब उसे पर्याय में आत्मपर्याय प्रगट हो, वही सच्चा

परमयोग है। निश्चय अर्थात् सच्चा परमव्यापार है। आहाहा! यह निश्चय सच्चा परमधर्म है। अब ऐसी बात! आहाहा!

मुमुक्षु :- सभी अपनी बात को परम सत्य ही कहे न!

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहे, ऐसा कहे परन्तु क्या हो? भाई!

यहाँ तो पंच महाव्रतधारी सन्त ऐसा पुकारते हैं और वह भी कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! उसमें यह बात आयी है। मैंने तो मेरे लिये बनाया है, तो उन्होंने तीर्थंकर परम्परा का जो मार्ग है, वह मार्ग बताया है। आहाहा! सम्प्रदाय में आकर भी अन्दर-अन्दर आग्रह छोड़े नहीं। आहाहा! अरे! देह तो चली जाएगी। नजरों से दिखायी दिया न, व्याख्यान में... आहाहा! व्याख्यान होने से पहले उनके दामाद आये थे। लड़की और दामाद दोनों। उन्हें यहाँ मिलने गये थे। वापिस आकर बैठे, वहाँ तक कुछ नहीं मिलता। आहाहा! एकदम असाध्य। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! यह देह, उसके परमाणु, भिन्न-भिन्न प्रकार का परिणमन। आहाहा! वे आत्मा के रखने से नहीं रहते। आत्मा के फेरने से, बदलने से, परिणमाने से नहीं परिणमते। उनके समय की जो परिणमन की अवस्था... आहाहा! अरे! इसे अभिमान किसका?

जो यह देह है, धर्मी-मुनि को भी... आहाहा! सनतकुमार चक्रवर्ती मुनिराज मोक्ष जाने की तैयारी। उन्हें सात सौ वर्ष कोढ़ रोग। आहाहा! गलतकोढ़। अँगुलियाँ गले, अँगुलियाँ गले। आहाहा! यह जड़ की अवस्था। किसकी कैसे होगी, इसकी खबर बिना उसका आग्रह रखना नहीं। जैसे होने की उसकी पर्याय होगी। मैं तो उसका जानने-देखनेवाला हूँ। जो पर्याय होती है, उसे मैं दवा करके रोक सकूँगा और इसके इंजेक्शन देकर... आहाहा! छह इंजेक्शन दिये थे। छह इंजेक्शन! लाख दे तो भी क्या? आहाहा!

शरीर, यह मिट्टी की पर्याय जहाँ बदली, उसे कौन रोके? उसके समय की पर्याय वस्तु की वस्तु। वस्तु, उसे कहते हैं कि जो द्रव्य-गुण और पर्यायसहित हो। आहाहा! उस पर्याय को दूसरी पर्याय की मदद और सहायता है नहीं। आहाहा! एक क्षण में पलटकर चला जाए। आहाहा! ऐसा तत्त्व का वास्तविक स्वरूप जिसने जाना, उसे आत्मा पर दृष्टि जाती है। आहाहा! और उसे भव का भय लगता है। भव का डर लगता है। आहाहा! भवभयभीरु। अरे रे! कौन सा भव होगा? कहाँ होगा? आहाहा!

पहले आ गया है। इसमें भी पीछे है। आहाहा! २३३ कलश है। **संसार की घोर भीति से जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** संसार की घोर भींति से। है? २३३ कलश। आहाहा! **संसार की घोर भीति...** कौन सी पर्याय कैसे होगी कब? आहाहा! उसका तू अधिकारी नहीं। आहाहा! है? **संसार की घोर भीति...** आहाहा! कब शरीर कैसा होगा? कब वाणी बन्द होगी? आहाहा! कब पक्षघात होगा? आहाहा! वह जड़ की अवस्था। भव भय से डरकर उन सब अवस्थाओं से उदास हो जा। आहाहा! मेरा प्रभु कहीं अटके, ऐसा नहीं है। आहाहा! कोई जड़ की चाहे जो पर्याय हो, परन्तु वह आत्मा को अटकने का कारण नहीं है। आहाहा! यह तो यहाँ बताया जरा इतना, हों!

यह निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है। भगवान ने। आहाहा! तत्त्वों में तत्त्व आत्मा के अतिरिक्त उसकी अवस्था जिस समय में होनेवाली है, उस समय में होओ। मैं चैतन्यस्वरूपी परमानन्द परमस्वभावी वस्तु हूँ—ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा मैं मानता हूँ। उसे यहाँ अन्तर में निश्चयपरमयोग है। आहाहा! यहाँ परमयोग है, वह निर्विकल्प आनन्द का झरना है। आहाहा! वह परमयोग जो कहा, वह अतीन्द्रिय आनन्द का झरना है, प्रभु! आहाहा! चाहे जो शरीर के संयोग बनो, परन्तु आत्मा की भावनावाले को अतीन्द्रिय आनन्द के झरने का वेदन होता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। किसके साथ वाद करे? यह कोई विद्वता की वस्तु नहीं कि हम बहुत पढ़े, इसलिए ऐसा है। बापू! यह तो वस्तु की मर्यादा भगवान ने ऐसी मर्यादा ही बतायी है। जैसी वस्तु की मर्यादा है, वैसी वस्तु की मर्यादा परमात्मा ने बतायी है। जड़ की पर्याय का काल जो है, उस वक्त, उस समय में उसकी पर्याय होगी ही। तेरे रोकने से नहीं रुकेगी। तेरी दृष्टि वहाँ से फिरा दे। आहाहा! तब वह तत्त्व की श्रद्धा यथार्थ कहलाये कि जो तत्त्व तुझमें नहीं, उसमें से दृष्टि फिरा दे। आहाहा! और जो आत्मतत्त्व है, उसमें दृष्टि लगा। आहाहा! वह ज्ञायकभाव है, परमपारिणामिक तत्त्व स्वभावभाव है, उस पर दृष्टि लगा और वह भाव हो, वह भाव निश्चयपरमयोग और आनन्द का झरना वहाँ है। वहाँ दु:ख का अभाव-विश्राम है। वहाँ दु:ख का अभाव है और आनन्द के झरने का सद्भाव है। आहाहा! ऐसा आत्मा कैसे जँचे? बाहर की दृष्टि में, बाहर के संयोगों की विचित्रता में जहाँ रुका है। बाहर के संयोगों में विस्मयता और आश्रय करके रुका है, उसे प्रभु की विस्मयता और आश्रयता कैसे आवे? आहाहा! उसे यहाँ परमयोग कहा। आहाहा!

अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए... देखा? जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा! **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए (-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए)...** आहाहा! बहुत कठिन लगे। बापू! तेरे हित की बात है, भाई! विपरीत अभिप्राय छोड़ना, वह सुख का कारण है। विपरीत अभिप्राय; हम सम्प्रदाय में जन्में, इसलिए हमने माना हुआ भाव ठीक है—ऐसा आग्रह नहीं होता। आहाहा! वह आग्रह छोड़कर वीतराग कथित तत्त्वों, तीर्थनाथ ने कहे हुए - ऐसा आया न? अन्य तीर्थनाथ ने कहे हुए का आग्रह छोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो यह भी आया, प्रभु! क्या करें? आहाहा! श्वेताम्बर ने भी कल्पित किये हैं, तो उनके भी तत्त्व की दृष्टि छोड़ दे। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे रे! दुःख लगे। सम्प्रदाय में जन्मे हों और वही पोसाया हो, उसे कल्पितमार्ग कहना, वह यह अन्य समस्त तीर्थनाथ ने (कहा हुआ मार्ग है)। आहाहा! वे वीतराग और गणधर तथा मुनियों ने कहे हुए तत्त्व नहीं हैं। आहाहा! श्वेताम्बर के और स्थानकवासी के जो तत्त्व हैं, वे भगवान के—जिननाथ के, तीर्थंकर के और सन्तों के नहीं हैं। आहाहा! वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए तत्त्व हैं।

कठिन बात, प्रभु! वह सुखी होओ। वह दृष्टि छोड़कर सुखी होओ। इसके लिये तो कहा जाता है। वह दृष्टि रखोगे, प्रभु! तो दुःखी होओगे। आहाहा! विपरीत आग्रह रखोगे तो दुःखी होओगे और दुःखी का जीवन व्यतीत करना, बापू! आहाहा! जीव का एक क्षण का दुःख... आहाहा! कठिन पड़ता है। वह ३३-३३ सागर तक, एक बार नहीं, परन्तु अनन्त बार। उस भव का भय... आहाहा! उस सम्प्रदाय की दृष्टि अपनी रखकर, वीतराग ने नहीं कहे हुए, अन्य समय (मत) के तीर्थनाथ ने, **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए...** बड़े पुरुष ने **(-जैनदर्शन के अतिरिक्त)...** आहाहा! दिगम्बर जैनदर्शन के अतिरिक्त दर्शन, जैनदर्शन है ही नहीं। आहाहा! कठिन पड़े।

(-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए) विपरीत पदार्थ में... आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने—मुनियों ने कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त दूसरे कोई भी मुनियों ने नाम धराकर कहे हुए तत्त्व, उनका **विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह...** आहाहा! ऐसा खुल्ला कहने पर दुःख होता है। बापू! तुझे सुख के पंथ में जोड़ने के लिये बात है, भाई! वहाँ किसी का भी पक्ष भी नहीं चलता। यहाँ देखो न! देह छूटने पर कैसा

हो जाता है। आहाहा! डाक्टर महिला ने आकर छह तो इंजेक्शन दिये। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! अब यहाँ तो सुनने आवे बेचारा।

मुमुक्षु :- इंजेक्शन देने में भूल हुई हो तो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- इंजेक्शन दे कौन? स्पर्श करे नहीं और इंजेक्शन दे! आहाहा! इंजेक्शन शरीर को स्पर्श नहीं करता। शरीर की पर्याय जिस समय में है, उसे इंजेक्शन बदल नहीं सकता। आहाहा! इंजेक्शन की पर्याय है, वह पर्याय शरीर को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसा वीतराग तत्त्व सूक्ष्म और ऊँचा, सत्य। आहाहा! परम सत्य है, यह परम सत्य है। आहाहा!

कहते हैं कि **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए (-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए) विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह ही विपरीत अभिनिवेश है।** आहाहा! द्रौपदी को पाँच पति। मूल तो एक ही पति है। पाँच तो फिर कल्पित किये हैं। वह इसने.. कर रखे हैं श्वेताम्बरों ने तो। आहाहा! यह पूरी बात में अन्तर है। बहुत बातें, सैकड़ों-हजारों बातें। इन कहे हुए विपरीत पदार्थों में अभिनिवेश-दुराग्रह, वही विपरीत अभिनिवेश है। आहाहा! अब यह अभ्यास बिना विपरीत अभिनिवेश है, यह खबर किसे पड़े?

जिसे अभ्यास ही नहीं करना, वीतराग ने कहे हुए शास्त्र, दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए तत्त्व का अभ्यास ही करना नहीं, उसे दुराग्रहपना कैसे उसे समझ में आवे? और दुराग्रह कहाँ से जाये? आहाहा! और यह उसके लाभ के लिये है, प्रभु! आहाहा! कोई प्राणी दुःखी हो, ऐसी भावना धर्मी को नहीं होती। आहाहा! सब तीर्थंकर... आहाहा! तीर्थ के नाथ के मार्ग को प्राप्त कर सब कर्मरहित होओ, सब भगवान होओ। आहाहा! किसी जीव को दुःख हो - ऐसी भावना धर्मी की नहीं होती। आहाहा! मात्र विपरीत अभिनिवेश के कारण, प्रभु! तुझे दुःख होगा। आहाहा!

मुमुक्षु :- इसके हित की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हित की बात है।

मुमुक्षु :- खोजकर देख, बराबर है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- खोज करे, अभ्यास करे, कुछ मिलान-तुलना करे। यह तो माल लेने जाए, वहाँ तुलना करते हैं कि यह ज्वार सफेद है, परन्तु जरा सड़ी हुई है और यह ज्वार छोटी, परन्तु अच्छी है। ज्वार-ज्वार के रजकण का मिलान करते हैं। ज्वार समझते हो न? आहाहा! ज्वार। वह भी मिलान करते हैं, तब लेते हैं। आहाहा! अब वह तो एक अमुक दिन के आहार की चीज़ है। उसकी भी परीक्षा करके लेते हैं, तो यह तो अनन्त काल के भटकने की चीज़ छोड़नी है, भटकने की छोड़नी है। आहाहा!

किसी भगवान आत्मा को दुःख हो-ऐसी विचारणा समकिती को नहीं होती। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में कहा है न? अवाय के विचार में। आहाहा! क्या मुनियों की विशालता! सत्य बताया, तो भी विशालता! सब मुनि, सब आत्मायें आठ कर्म से रहित होओ। कोई आत्मा कर्मसहित न रहो। आहाहा! प्रभु! तू कर्म-परद्रव्य सहित होगा, तो दुःखी होगा और वह दुःख का वेदन तुझे कठोर पड़ेगा, प्रभु! जीवते यह वेदन आवे। आहाहा! शरीर में दाह आवे, दाह। वह है न बहिन यहाँ? 'ललिता भावसार'। पूरे शरीर में दाह आती है। ललिता, जामनगरवाली भावसार। आहाहा! भावसार न? भाई वहाँ गये थे। चन्दुभाई गये लगते हैं। वह तो वैराग्य का समय था। आहाहा! एक-एक समय अमूल्य है। इस समय में दुराग्रह पकड़ा, उसे छोड़ देना चाहिए। सत्य बात कान में पड़ने पर तुलना करके असत्य के आग्रह को छोड़ देना चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो न!

वही विपरीत अभिनिवेश है। उसका परित्याग करके... आहाहा! है न? आहाहा! ऐसा जो विपरीत अभिनिवेश। आहाहा! **उसका परित्याग करके...** वापस त्याग करके - ऐसा नहीं। परित्याग अर्थात् समस्त प्रकार से। अब उसकी बात नहीं। आहाहा! दुनिया चाहे जो माने, चाहे जो माने। वस्तुस्वरूप तो भगवान जिनेन्द्र ने जो कहा है, उस बात की परम्परा दिगम्बर में रही है। महाविदेह में भी यह मार्ग चलता है। आहाहा! दूसरा मार्ग कहीं नहीं है। तीन लोक के नाथ विराजते हैं। सीमन्धर भगवान, लाखों केवली, गणधर (विराजते हैं), वहाँ यह मार्ग चलता है। आहाहा! इससे विपरीत मार्ग का आग्रह, प्रभु! बहुत काल से पकड़ा हो, पचास वर्ष से, साठ वर्ष से। जिस कुल में जन्मा, उसमें पकड़ा हो और जिसका सहवास रहा हो, उसकी गन्ध रहे। आहाहा!

एक बात करते थे कि सन्दूक में वह कस्तूरी पड़ी थी, कस्तूरी। उस दूसरी चीज़

में गन्ध आ गयी। वीरजीभाई कहते थे। वीरजी वकील। सन्दूक में कस्तूरी का डिब्बा पड़ा था और दूसरी चीज़ें पड़ी थीं। उस कस्तूरी की गन्ध दूसरी चीज़ों में घुस गयी। सन्दूक में कस्तूरी पड़ी थी। वीरजीभाई कहते थे। उसकी गन्ध दूसरी चीज़ को लागू पड़ गयी। आहाहा! इसी प्रकार जिसे जिसका सहवास, जिसे जिसका परिचय, उसकी गन्ध उसे चढ़ जाती है। आहाहा! कठिन पड़े, प्रभु!

यह कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं मेरे लिये यह कहता हूँ। मैंने मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! यह अभिनिवेश **उसका परित्याग करके जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व...** परन्तु जैन किसे कहना? बापू! इसे पहिचानना चाहिए न? जैन नाम तो सब धराते हैं। आहाहा! राग को जीते, वह जैन। राग से लाभ मनावे, वह जैन नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग... आहाहा! उससे लाभ मनावे। यह प्ररूपणा करते हैं न अभी? आहाहा! व्यवहार से लाभ होता है। अभी ज्ञानमति आर्यिका है न? वह पुण्यवन्त लगती है, बड़ा पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप दिल्ली में किया और यहाँ बड़ा मेरुपर्वत किया। अस्सी फीट का लम्बा। इतना पैसा। परन्तु उससे क्या? बापू! आहाहा! बाहर की चीज़ें हो जाए, उससे आत्मा को क्या? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की परम्परा में जो आये हुए तत्त्व.. आहाहा! **निश्चयव्यवहारनय से...** वे तत्त्व भी निश्चय-व्यवहारनय से। निश्चय से स्व से है; व्यवहार में निमित्त साथ में होता है। निमित्त नहीं है, ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्त से होता नहीं। आहाहा! इसलिए निश्चय और व्यवहार, दोनों मानने योग्य है, परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है - यह माननेयोग्य नहीं है। व्यवहार और निश्चय दोनों है - ऐसा माननेयोग्य है। है - ऐसा। आहाहा!

निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,... यहाँ तो कहा न? व्यवहारनय से भी जाननेयोग्य है। व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। (समयसार की) १२वीं गाथा में कहा है, लो! आहाहा! व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। व्यवहार है, होता है। ज्ञानी को भी राग-व्यवहार आता है। आहाहा! परन्तु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं है। अर्थात् जाना हुआ है - ऐसा भी निर्णय हो गया और एक आदरनेयोग्य निश्चयनय है। दो नय है। एक नय नहीं है। वीतरागमार्ग में दो नय है। पंचास्तिकाय में,

नियमसार में पहले बहुत लिया है। दो नय है; एक ही नय नहीं है। व्यवहारनय नहीं है – ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु व्यवहारनय है, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। नय नहीं है – ऐसा नहीं है। वीतरागमार्ग में निश्चय और व्यवहार दोनों नय है। आहाहा!

मुमुक्षु :- .....

पूज्य गुरुदेवश्री :- नय है न? और वह सम्यक् नय है। व्यवहार भी जैसा व्यवहार है, वैसे जानना, वह सम्यक् नय है। आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा! आदरनेयोग्य होवे तो दो (भेद) पड़े क्यों? निश्चय आदरनेयोग्य, व्यवहार आदरनेयोग्य होवे तो एक ही हो जाए। आहाहा! एक आदरनेयोग्य है और एक जाननेयोग्य है। दो नय है।

निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,... व्यवहार से जाननेयोग्य है। योगीन्द्रदेव दोहों में तो यहाँ तक (कहते हैं), प्रयत्न से छह द्रव्यों को जानना। प्रयत्न आता है। व्यवहार जाननेयोग्य है न? जाननेयोग्य नहीं तो वस्तु-पर्याय नहीं, राग भी नहीं, दूसरी चीज़ ही नहीं (-ऐसा हो जाए, परन्तु) ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु इतना अधिक विचार करने का में रुके कौन? निवृत्ति कहाँ है? आहाहा! एक क्षण में चला जाना है। ऐसे फू होकर। देखा न? अब बैठते हैं यहाँ। फिर मेरी नजर ऐसे गयी कि यह ऐसे कैसे हो गया? तब दूसरों ने देखा। ऐसे कैसे हो गया? कारण कि अन्दर हार्ट वह (फेल) हो गया। असाध्य शुरु हो गयी। आहाहा! कुर्सी पर बैठे थे। आहाहा! ऐसे तो अनन्त बार अनन्त मरण हो गये। आहाहा! लाख इन्द्र उतरे तो भी इसकी एक पर्याय बदले (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! इन्द्र मित्र हों। आहाहा! तो भी कुछ बदले, ऐसा कुछ है? आहाहा!

ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे। भरतजी गये, इन्द्र आये। आहाहा! अष्टापद पर्वत के ऊपर। भरत ऐसा देखकर रोते हैं। इन्द्र कहता है कि अरे भरत! यह क्या? तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है। हमें तो अभी एकाध भव मनुष्य का करना पड़ेगा – इन्द्र कहता है। तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है और यह क्या? इन्द्र! जानता हूँ मैं सब। खबर है, परन्तु राग आया है। वह जाननेयोग्य है। आहाहा! भगवान ऐसे मोक्ष पधारे। शरीर (नख-केश) ऐसे पड़ा है। इन्द्र और भरत दोनों ऐसे देखते हैं। भरत को ऐसे आँख में से अश्रु बहते हैं। अरे रे! आज भरत के सूर्य अस्त हो गया। भरत का सूर्य अस्त हो गया – ऐसा करके राग-विकल्प है। आहाहा! तथापि इन्द्र कहता है कि परन्तु तू इस भव में मोक्ष जाएगा। सब खबर है, बापू!

मेरा मोक्ष इस भव में है, यह मेरे अन्तिम देह है। खबर है। परन्तु राग आया है, उसका यह खेल है। यह राग मेरा नहीं है। मैं जानता हूँ। आहाहा!

निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,... आहाहा! **सकलजिन...** सकल अर्थात् देहसहित। देहसहित जिन **देह सहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।** सम्पूर्ण रीति से जीते हैं। इस प्रकार से गिना। वरना सकल अर्थात् शरीरसहित भी होता है और सकल अर्थात् सब जीता है। आहाहा! राग-द्वेष को सबको सबको जीता है। इसलिए ऐसे **सकलजिन ऐसे भगवान...** आहाहा! यह विश्वास में, अन्तर में आना.. यह बातें कान में पड़े, सुने, जाने परन्तु अन्दर में विश्वास, परिणमन में विश्वास पर आना... आहाहा! यह अलौकिक चीज़ है और यह परिणमन में आये बिना जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा!

भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के... आहाहा! सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरण कमल में **उपजीवक...** अर्थात् **सेवा करनेवाले; दास।** आहाहा! **वे जैन हैं;...** देखा? वाड़ा में जन्मे, इसलिए जैन हैं - ऐसा नहीं है। आहाहा! **सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के...** बिल्कुल राग जीता है। भगवान को आहार लेना, दवा लेना, यह राग भगवान को नहीं है। आहाहा! भगवान, मुनि को कहते हैं कि जा! मेरे लिये आहार लेकर आ। आहाहा! रोग है, उसे मिटा—यह सब बातें मिथ्या कल्पना है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **सकलजिन...** सकल का अर्थ शरीरसहित भी कहा जाता है, परन्तु यहाँ सकलजिन अर्थात् पूर्ण रीति से राग-द्वेष जीते हैं। आहाहा! है? **देह सहित होने पर भी...** सकल कहा न? **तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।** आहाहा! ऐसे सकलजिन भगवान को, उनके **उपजीवक...** उन्हें माननेवाले, उनके सेवक, उन्हें स्वीकार करनेवाले... आहाहा! उनके मार्ग में जानेवाले। आहाहा! ऐसे **उपजीवक, वे जैन हैं;...** वाड़ा में जन्मे, इसलिए जैन हैं - ऐसा नहीं है। आहाहा! जैन नाम धराया और हम जैन श्रावक हैं, हम जैन साधु हैं, वह नहीं। आहाहा! है?

सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीवक... उन्होंने कहा, उनके चरण कमल की सेवा करनेवाले, माननेवाले, दासानुदास होकर माननेवाले। आहाहा! भगवान ने जो कहा, उसे दासानुदास होकर माननेवाले ऐसे जैन हैं। उन्हें जैन

कहते हैं। नामधारी जैन, हम (जैन में) जन्में, हम जैन हैं – ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! गजब व्याख्या!

सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीवक... उनके चरण के दास के दास, चरण के दास। चरण अर्थात् पैर। उनके दास के दास। आहाहा! चरणरूपी कमल, उनके दास के दास। आहाहा! उन्हें यहाँ जैन कहा जाता है। **परमार्थ से गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है।** जैन उन्हें कहा जाता है। परमार्थ से गणधरदेव, सच्चे मुनि—तीन कषाय का अभाव, समकिती, श्रावक सच्चा समकिती, उन्हें यहाँ परमार्थ से जैन कहा जाता है। बाकी वाड़ा में रहे, उन्हें जैन नहीं कहा जाता। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

परमार्थ से गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है। उन्होंने (-गणधरदेव आदि...) मुनि, समकिती। दूसरे सब समकिती इत्यादि जैन हैं। आहाहा! **उन्होंने (-गणधरदेव आदि जैनों ने) कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व...** समस्त जीवादि नव तत्त्व। **उनमें जो परम जिनयोगीश्वर...** आहाहा! **निज आत्मा को लगाता है,...** आहाहा! उन नव तत्त्वों का ज्ञान करके आत्मा के साथ जोड़ता है। ज्ञान की पर्याय को आत्मा के साथ जोड़ता है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय को राग के साथ और बाहर समझाने के लिये नहीं करता। आहाहा!

(-गणधरदेव आदि जैनों ने) कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व उनमें जो परम जिनयोगीश्वर... आहाहा! परम जिनयोगीश्वर – ऐसी भाषा ली है। मुनि की विशेष बात है। **निज आत्मा को लगाता है,...** आहाहा! अपने आत्मा को जोड़ता है। **उसका निजभाव ही परम योग है।** आहाहा! वीतरागी आत्मा, उसे वीतरागी पर्याय से जोड़ना... आहाहा! वह परमयोग है। जुड़ान करना, वीतरागीस्वरूप आत्मा है, उसका वीतरागी पर्याय से जुड़ान करना, इसका नाम योग और जैन कहा जाता है।

विशेष कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-२३०

[अब, इस १३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(वसंततिलका)

तत्त्वेषु जैन–मुनि–नाथ–मुखारविन्द–
व्यक्तेषु भव्य–जनता–भव–घातकेषु।
त्यक्त्वा दुराग्रह–ममुं जिनयोगि–नाथः,
साक्षाद्युनक्ति निजभावमयं स योगः।।२३०।।

(हरिगीतिका)

मुनिनाथ के मुखकमल से जग में प्रगट है जो अहो।
वह नाश करता भव्य जन के भव भ्रमण के पुंज को॥
निज दुराग्रह को छोड़कर उस तत्त्व में निजभाव को।
जो जोड़ते साक्षात् जिनयोगी उन्हें ही योग है॥२३०॥

[श्लोकार्थः] इस दुराग्रह को (-उपरोक्त विपरीत अभिनिवेश को) छोड़कर, जैनमुनिनाथों के (-गणधरदेवादिक जैन मुनिनाथों के) मुखारविन्द से प्रगट हुए, भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले तत्त्वों में जो जिनयोगीनाथ (जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है, उसका वह निजभाव, सो योग है॥२३०॥

प्रवचन-१५८, श्लोक-२३०, गाथा-१४०
बुधवार, ज्येष्ठ शुक्ल ६, दिनांक १८-०६-१९८०

नियमसार, २३०-कलश।

तत्त्वेषु जैन–मुनि–नाथ–मुखारविन्द–
व्यक्तेषु भव्य–जनता–भव–घातकेषु।
त्यक्त्वा दुराग्रह–ममुं जिनयोगि–नाथः,
साक्षाद्युनक्ति निजभावमयं स योगः।।२३०।।

श्लोकार्थः इस दुराग्रह को (-उपरोक्त विपरीत अभिनिवेश को) छोड़कर,... वीतराग मुनियों ने जो भाव कहे, उनके अतिरिक्त कहनेवाले का आग्रह छोड़कर। जैन मुनिनाथ दिगम्बर सन्त, केवली के मार्गानुसारी, उन्होंने जा कहा, उससे विरुद्ध कहनेवाले का आग्रह छोड़कर देना। जरा सूक्ष्म पड़ता है। इसमें तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वे कोई जैन नहीं; अजैन हैं, क्योंकि जैन की जो शैली देव-गुरु-धर्म की सब बदल डाली। इसलिए उन्हें मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने अन्यमत में डाला है और अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने '**नग्गे मोखो भणियो सेसा उमग्गा**' नग्न मुनियों को आत्मज्ञानसहित हैं, उन्हें मुक्ति है; इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में '**नग्गे मोखो भणियो**' नग्न को मुक्ति है, बाकी सब उन्मार्ग है। शान्तिभाई! कहीं सुना नहीं था वहाँ? बिहार में भाषण करते वहाँ... आहाहा! यहाँ शब्द क्या है?

जैन मुनिनाथों के। आहाहा! जैन मुनिनाथ कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि। उनके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी। आहाहा! अन्य को छोड़कर, जैन मुनियों के नाथ, गणधरदेव आदि जैन मुनियों के नाथ। आहाहा! उनके मुखारविन्द से प्रगट हुई। मुखरूपी कमल। आहाहा! दिगम्बर सन्त, परम्परा के केवली के मार्गानुसारी। सनातन सत् के आराधक, सनातन सत् के सेवक, उनके कहे हुए। आहाहा! उनके मुखारविन्द से प्रगट हुए। इसके अतिरिक्त दूसरों के कहे हुए नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सब ऐसा कहते हैं कि हमारा सत्य है। भाई! तू विचार कर। यह तो अनादि सनातन...

भगवान महाविदेह में विचरते हैं, वहाँ यह मार्ग चलता है। वह मार्ग यह है। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में से जाकर आये, फिर उन्होंने यह सब शास्त्र बनाये। उसमें यह शास्त्र तो स्वयं के लिये बनाया। उसमें यह डाला है। जिननाथों के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी, उनके तत्त्वों की श्रद्धा कर। देवीलालजी!

मुमुक्षु :- १३९ गाथा रह गयी। कल ये नहीं थे। कल चल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- चल गयी है। चल गयी है। आया था। परम जिनयोगीश्वर... आ गयी गाथा। यहाँ तो उसका कलश कहा अब।

मुनि दिगम्बर सन्त भावलिंगी और द्रव्य से नग्न, उनके मुखारविन्द से निकली

हुई वाणी, इसके अतिरिक्त किसी की वाणी, वीतराग की वाणी नहीं है। आहाहा! **जैनमुनिनाथों के (-गणधरदेवादिक जैन मुनिनाथों के) मुखारविन्द से प्रगट हुए,...** आहाहा! गणधरों के मुख से निकली हुई। आहाहा! यह टीका करनेवाले भी ऐसा कहते हैं। टीका करनेवाले तो मुनि हैं, तथापि कहते हैं कि यह टीका... पहले कलश आ गया है। यह टीका करनेवाले हम मन्दबुद्धि तो कौन ? यह टीका तो गणधरदेव से चली आयी है। पहले कलशों में लेख हैं। आहाहा! गणधरदेव, तीर्थंकरदेव... तब से इसकी यह टीका चली आयी है। स्वयं मुनिराज कहते हैं, हम मन्दबुद्धि तो कौन ? है ?

पाँचवाँ (कलश) **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से...** आहाहा! कैसी सन्धि करते हैं! है ? पहले शुरुआत का पाँचवाँ बोल (श्लोक) **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की...** आहाहा! और श्रुतज्ञानी जो बाद में हुए, उनकी **परम्परा से अच्छी तरह...** उनकी परम्परा... आहाहा! उसे भी भलीभाँति **व्यक्त किये गये...** यह नियमसार के अर्थ, **इस परमागम के अर्थसमूह का कथन...** यह परमागम है। इसके अर्थ का **कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। **हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** गणधरों से चली आयी यह टीका है। मेरे घर का इसमें कुछ नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात!

जैनमुनिनाथों के (-गणधरदेवादिक जैन मुनिनाथों के) मुखारविन्द से प्रगट हुए, भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले... वापस बात ऐसी है कि इस वाणी में ऐसा है कि भव का नाश हो जाए। भव रहे नहीं, ऐसी यह वाणी है। चैतन्यतत्त्व को बतलानेवाली और भव का अभाव बतानेवाली। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसे तत्त्व को बतलानेवाली। मुखारविन्द से निकली हुई, भव्य के भव का घात करनेवाली। आहाहा! भव्यजनों के, भव्यजनों के, योग्य जीव। आहाहा! अभव्य तो कहीं...

भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले... आहाहा! यह तत्त्व... वह भव्य जीवों के भव का नाश करनेवाला तत्त्व है। इन **तत्त्वों में जो जिनयोगीनाथ...** आहाहा! **(जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** आहाहा! निजभाव-वीतरागी परिणति को वीतरागी त्रिकाली स्वभाव के साथ जोड़ता है। आहाहा! उन गणधरों के मुख में से यह निकला और श्रुत के धारक परम्परा से सन्तों यह कहते आये हैं। कम, अधिक, विपरीत

सब निकाल डालकर। आहाहा! ऐसी यह वाणी है। कहते हैं कि **निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** भव्यजनों के भव का नाश करनेवाले तत्त्व हैं। आहाहा!

योग्य जीव जो है, उन्हें यह वीतराग वाणी ऐसी मिले, उसे उन तत्त्वों में भव्यों के भव का नाश करनेवाले तत्त्व हैं। आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे, गणधर के मुख से निकाली हुई, टीका भी उनसे की हुई चली आती है। आहाहा! यह तत्त्वों का स्वरूप, यह जो बात भव्य जीव को जँचे, उसके भव का नाश हो जाता है। आहाहा! है? **भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले...** पाठ में है न? **भव्यजनताभवघातकेषु।** आहाहा! भव्यजन... है? **भव्यजनताभवघातकेषु।** भव्यजन के भव का घात करनेवाली यह वाणी है। आहाहा! भव उत्पन्न करे, वह यह वाणी नहीं है। आहाहा!

जो जिनयोगीनाथ... मुनि को उद्देश कर बात की है। **(जैन मुनिवर) निज भाव को...** अपने वीतरागी भाव को, पर्याय को, प्रगट पर्याय जो वीतरागी है, उसे **साक्षात् लगाता है,...** द्रव्य के साथ जोड़ते हैं। आहाहा! अलौकिक! यह दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, यह करना, वह बात कहीं नहीं आयी इसमें। आहाहा! भव्य जीव के भव का घात करनेवाली और वह मुखारविन्द-गणधर के मुख से निकली हुई यह वाणी भव्य जीव के (भव का) घात करनेवाली है। आहाहा! जिसमें से भव का घात हो जाए। भव रहे नहीं। आहाहा! उसे माननेवाले को शंका पड़े नहीं। वीतराग के कहे हुए तत्त्व को माननेवाले को सन्देह रहे नहीं। भवभ्रमण का सन्देह रहे नहीं। आहाहा!

अब यह महिला ऐसा कहती है कि भाई! अपन अभव्य है या काललब्धि पकी है, यह अपन तो जानते नहीं। अर र! ऐसा चलता है, बड़ा २५-२५ लाख का मकान किया। जम्बूद्वीप किया, वहाँ हस्तिनापुर में मेरुपर्वत (बनाया)। लोग तो बहुत इकट्ठे होते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहती हैं कि अपन अभव्य हैं, या काललब्धि पकी, यह भगवान जाने। अरे! प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो वीतराग की वाणी ने तत्त्व कहे, वे जिसे अन्दर में जँचे, उसके भव का घात करनेवाले हैं। आहाहा! उसे भव रहता ही नहीं। आहाहा! और जिसे भव की शंका रहती है, उसे तत्त्व बैठा नहीं। आहाहा! जीवतत्त्व आदि राग से भिन्न भगवान... आहाहा! अपनी पर्याय से सहित; अपनी पर्याय पर से नहीं और अपनी पर्याय से रहित नहीं। आहाहा! ऐसा

जो तत्त्व भगवान ने कहा, वह बात जिसे अन्दर में बैठी, वह भव्य जीवों को भव का घात करनेवाली है। आहाहा! अभव्य हूँ या नहीं, यह तो प्रश्न ही यहाँ नहीं। मैं अभव्य हूँ या अनन्त संसारी हूँ – यह प्रश्न ही यहाँ नहीं। आहाहा!

यह तत्त्व, भगवान तीन लोक के नाथ के श्रीमुख से निकली हुई वाणी, गणधरों की, श्रुतधरों की परम्परा से चली आयी है। वे तत्त्व जिसे जँचे, उस भव्य जीव के भव का तो घात ही होता है। उसे अनन्त भव नहीं रहते। वह अभव्य है, यह नहीं रहता, परन्तु उसे अनन्त भव नहीं रहते। आहाहा! कितनी मीठी वाणी! और टीका करनेवाले कहते हैं कि यह तो गणधरों से चली आयी है। गौतमस्वामी उनके (महावीरप्रभु के) गणधरों से यह टीका चली आयी है। आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे... तीन लोक के नाथ जो गणधर, उनसे रचित वाणी... आहाहा! उनके कहे हुए तत्त्व जिसके अन्तर में जँचे, उसके भव का घात हो जाता है। उसे अल्प काल में मुक्ति हो जाती है। आहाहा! है या नहीं ? आहाहा!

भगवान ने देखा होगा, तब होगा। भगवान ने देखा होगा, वह होगा और क्रमबद्ध में जब जायेगा, तब भव नहीं रहेंगे। – यह बात ही नहीं की। यह जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध भी आ गया और भगवान ने देखा, यह भी आ गया। समझ में आया ? आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे, भगवान के कहे हुए तत्त्व, दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए तत्त्व, यह जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध में यही आया होता है और भगवान ने यही देखा होता है। उसे अब भव नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहा यह ?

मुमुक्षु :– उसे भव ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :– यह तत्त्व जँचे, उसे (भव नहीं)। तुम क्रमबद्ध कहो कि एक द्रव्य–दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहो, और ऐसा है। परन्तु यह वह तत्त्व जिसे जँचे... आहाहा! और भगवान ने देखा, तब उसके भव का अभाव होगा, यह व्यवहार से। यह भी तब उसे जँचे कि यह तत्त्व जँचे, तब सब बात उसे जँच गयी। भगवान ने देखा है, वह क्रमबद्ध में हुआ। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह भी हुआ। मेरी पर्याय मुझे स्पर्श करती है, तब भव का घात हुआ। आहाहा! मेरी पर्याय मेरे द्रव्य को स्पर्श करे, तब भव का घात हुआ। आहाहा! बहुत बातें...

गणधरों ने–मुनिनाथ ने कहे हुए तत्त्व... आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे। आहाहा!

और इसके अतिरिक्त दूसरे आग्रह छोड़ दिये, उसे भव का नाश करनेवाले तत्त्वों में **जो जिनयोगीनाथ (जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** धारणा में नहीं, कल्पना में नहीं। अपनी निर्मल पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ता है, **उसका वह निजभाव सो योग है।** उसका वह निज भाव, वह योग अर्थात् धर्म है। आहाहा! एक कलश में कितना कहा! आहाहा! तीर्थंकरों और गणधरों के मुख से निकले हुए तत्त्व, वे जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध आ गया। भगवान ने भी ऐसा देखा था – ऐसा आ गया और उसके भव का घात हो गया। अब उसे भव नहीं होते। आहाहा!

वे कहें कि अपने को खबर नहीं पड़ती। मुनि को शुभयोग ही होता है, ऐसा और वे एक है। कैसे ? श्रुतसागर। शान्तिसागर के मार्गानुसारी। उनके पद में आये हैं धर्मसागर और ये पढ़े हुए हैं। इन्हें पदवी नहीं आयी। वे ऐसा कहते हैं कि अभी शुभयोग ही होता है। अरे रे! तब इन तत्त्वों में भव के घातवाला भाव तो अभी नहीं—इसका अर्थ यह हुआ। यहाँ तो आचार्य पुकार करते हैं। आहाहा! देवीलालजी! है ऐसा ?

पंचम काल में भी निर्ग्रन्थ मुनि, गणधर, उनकी परम्परा से, सूत्र की परम्परा से आये हुए तत्त्व; वे तत्त्व जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध में भव का घात होने का काल भी आ गया; भगवान ने देखा, यह भी आ गया और उसे भव होते नहीं, अल्प काल में मुक्ति होती है। आहाहा! ऐसी बात है। वादविवाद से पार नहीं पड़ता। वस्तु-तत्त्व जो भगवान के मुख से निकली हुई वाणी और गणधरों... उन्होंने कहे हुए तत्त्व जिस स्वरूप से हैं, उस स्वरूप से अन्तर में जँचे। उसके भव का घात कर डालते हैं। आहाहा! बहुत सरस बात आयी। आहाहा! उसे शंका नहीं रहती कि यह तत्त्व मुझे जँचे। मेरे भव होंगे ? यह शंका उसे नहीं रहती। यह शंका जिसे रहे, उसे यह तत्त्व जँचे नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जो निजभाव, वह योग है। आहाहा!

गाथा - १४०

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।।१४०।।

वृषभादि-जिनवरेन्द्रा एवं कृत्वा योगवर-भक्तिम्।
निर्वृतिसुख-मापन्नास्तस्माद्धारय योगवरभक्तिम्।।१४०।।

भक्त्यधिकारोपसंहारोपन्यासोऽयम्। अस्मिन् भारते वर्षे पुरा किल श्रीनाभेयादिश्रीवर्धमानचरमाः चतुर्विन्शतितीर्थंकरपरमदेवाः सर्वज्ञवीतरागाः त्रिभुवनवर्तिकीर्तयो महादेवाधिदेवाः परमेश्वराः सर्वे एवमुक्तप्रकारस्वात्मसम्बन्धिनीं शुद्धनिश्चययोगवरभक्तिं कृत्वा परमनिर्वाणवधूटिकापीवरस्तनभरगाढोपगूढनिर्भरानन्दपरमसुधारसपूरपरितृप्तसर्वात्मप्रदेशा जाताः, ततो यूयं महाजनाः स्फुटितभव्यत्वगुणास्तां स्वात्मार्थपरमवीतरागसुखप्रदां योगभक्तिं कुरुतेति।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥

अन्वयार्थ : [वृषभादिजिनवरेन्द्राः] वृषभादि जिनवरेन्द्र [एवम्] इस प्रकार [योगवरभक्तिम्] योग की उत्तम भक्ति [कृत्वा] करके [निर्वृतिसुखम्] निर्वृति सुख को [आपन्नाः] प्राप्त हुए; [तस्मातः] इसलिए [योगवरभक्तिम्] योग की उत्तम भक्ति को [धारय] तू धारण कर।

टीका : यह भक्ति अधिकार के उपसंहार का कथन है।

इस भारतवर्ष में पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग, त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले महादेवाधिदेव परमेश्वर— सब, यथोक्त प्रकार से निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके, परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से सर्व आत्मप्रदेश में अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर से परितृप्त हुए; इसलिए

***स्फुटित-भव्यत्वगुणवाले हे महाजनों! तुम निज आत्मा को परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो।**

गाथा - १४० पर प्रवचन

१४०, आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं कि यह बात तो ऋषभदेव भगवान से अभी तक सब यह आराधकर मुक्ति प्राप्त हुए हैं। **उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।** ऐसे योग अर्थात् आत्मा का जुड़ान करके। व्यवहाररत्नत्रय से होता है – ऐसा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय तो पर में जुड़ान है। आहाहा!

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।।१४०।।

नीचे हरिगीत।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
(निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥)

यह भक्ति, हों! श्रेष्ठ भक्ति आत्मा की। भगवान की भक्ति नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! तथा व्यवहाररत्नत्रय से भव का घात होता है, इससे इनकार किया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी वीतराग की वाणी! परमात्मा का विरह पड़ा, तो भी उनकी वाणी भव का घात करनेवाली; यह वाणी जिसे जँचे, उसे। यह भाव रह गये हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! केवली और तीर्थंकर और गणधर। केवलज्ञानियों की उत्पत्ति का भी इस काल में विरह पड़ा, कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी रहे नहीं। देव आकर कोई वाद करते नहीं कि तुम ऐसे हो। आहाहा! ऐसे काल में जिसे गणधरों से कथित और सूत्र परम्परा से आचार्य से आये हुए, वह तो यहाँ दिगम्बर में आये हैं। दूसरे जगह ऐसी परम्परा कहीं नहीं है। आहाहा! एक बार कुछ बात आयी थी। अमरचन्द मुनि नहीं? अमरचन्द। उसने कहा था कि यह सूत्र हैं, वे आचार्य के किये हुए हैं। मिथ्या है – ऐसा नहीं कह सके। वह तो उसकी मान्यता। आचार्यों ने किये हुए हें – ऐसा कहे। भाई चन्दुभाई कहते थे। नहीं? आहाहा!

---

* **स्फुटित=प्रकटित; प्रगट हुए; प्रगट।**

मुमुक्षु :- अमरभारती अखबार में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आया था।

मुमुक्षु :- पूरा-पूरा लिखा था कि इसमें... बहुत हुआ है। कितनी ही... गाथायें इसमें डाली हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आचार्यों के किये हुए, वे कौन से आचार्यों के? जैन परम्परा के जो आचार्य, वे आचार्य नहीं। आहाहा! क्योंकि उन परम्परा के आचार्य-प्रमाण तो वह बात मिलती नहीं। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं... आहाहा! गजब किया है न!

अब, यह १४०।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥

पंचम काल के शिष्य को, ऋषभ आदि भगवान ने जो किया हुआ, वह पंचम काल के शिष्य को कहते हैं कि तू भी कर। आहाहा! यह पंचम काल है, हल्का काल है; इसलिए भगवान ने किया हुआ और कहा हुआ, यह बात तुझे नहीं बैठेगी - ऐसा नहीं कहा, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहा, प्रभु! तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान से लेकर चौबीस तीर्थंकरों और उनके गणधरों और उनके सन्तों, उन्होंने जो परम्परा वाणी आयी और उन्होंने सुनकर भव का घात किया, हे शिष्य! उसे तू जान। पंचम काल के श्रोता हैं। आहाहा! अप्रतिबुद्ध है। समयसार में आता है। उसे ऐसा कहते हैं कि हे भाई! यदि तू भगवान के कहे हुए तत्त्वों को बैठाये (स्वीकार करे) तो भव का घात तुझे इस भव में यहाँ होगा। पंचम काल में जीव है और भगवान का विरह है; इसलिए भव का घात नहीं होगा - ऐसा मानना नहीं, बापू! आहाहा! गजब काम किया है न! ऋषभदेव भगवान ने किया, वह शिष्य को कहते हैं कि तू कर। आहाहा! क्योंकि मार्ग तीनों काल में (एक ही है)। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' जो ऋषभदेव भगवान ने असंख्य अरब वर्षों पहले किया था, वह शिष्य को कहते हैं कि उन्होंने किया, वैसा तू कर। उन्होंने किया, वैसा तू कर। आहाहा! है?

टीका : यह भक्ति अधिकार के उपसंहार का कथन है। इस भारतवर्ष में... इस भारतवर्ष में **पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव**- आहाहा! इनके विशेषण तो देखो, अब! उनकी परम्परा से आयी हुई वाणी, ऐसा

कहते हैं। विशेषण तो देखो इनके! वे **चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग, त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** आहाहा! **महादेवाधिदेव परमेश्वर—** आहाहा! इतने तो विशेषण दिये। पंचम काल के शिष्य को (कहते हैं), ऐसे परमात्मा हो गये, उन्होंने किया, वैसा तू कर, प्रभु! आहाहा! पंचम काल में नहीं हो सकता – ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

इस भारतवर्ष में पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर.... 'ऋषभदेव' भगवान से लेकर **श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग,...** आहाहा! परमदेव तो कहा, परन्तु सर्वज्ञ-वीतराग। **त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** तीन लोक में जिनकी कीर्ति व्याप्त है। आहाहा! महादेवाधिदेव हैं वे। वे महादेवाधिदेव हैं। वे परमेश्वर हैं। आहाहा! वे **सब, यथोक्त प्रकार से निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली...** यथोक्त अर्थात् इसमें कहा गया है, उस **प्रकार से निज आत्मा के साथ...** आहाहा! परमात्मा और वीतराग की भक्ति आवे, परन्तु वह तो शुभभाव है। वह कोई मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! इसलिए नहीं आवे, ऐसा भी नहीं है। मुक्ति का कारण नहीं; बन्ध का कारण है; इसलिए न आवे (-ऐसा नहीं है)। गणधरों को भी शुभभाव आता है। आहाहा! तो भी उसकी कोई कीमत नहीं।

यहाँ तो उन परमेश्वरों ने सबने यथायुक्त। यथा अर्थात् जैसे आत्मा की बात कही है, उस **प्रकार से निज आत्मा के साथ...** आहाहा! भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु, परमपारिणामिक ज्ञायकभाव सर्वांग आनन्द और वीर्य से भरपूर। उसके वीर्य के लिये पर की आवश्यकता नहीं। ऐसे वीर से भरपूर वीर है। आहाहा! ऐसे **आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली...** ऐसे आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** आहाहा!

मूल बात तो यह है कि जिसे आत्मा की कीमत नहीं। आत्मा परमेश्वर है। आहाहा! भगवान है, देवाधिदेव है, ईश्वर है, सम्पूर्ण ज्ञान और वीतरागता से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों का सागर प्रभु है। ऐसा जो आत्मा... अहाहा! उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** शुद्धनिश्चययोग की अन्तर की उत्तम भक्ति करके... आहाहा! **परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से...** अर्थात् जैसे कि स्तन पुष्ट होता है, वैसे पर्याय में अनन्त गुण व्यक्त होकर पुष्टि को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! वे शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सत्तारूप से थे, इस पर्याय में उनकी प्रगट दशा आयी। जितने गुण हैं, उतनी अनन्त पर्यायें बाहर आयी है। आहाहा!

अनन्त पर्यायें भी पुष्ट होकर आयी है। आहाहा! कोई प्राणी अनन्त पर्याय की व्यक्तता रहित किसी काल में नहीं हो सकता। अनन्त पर्यायों की प्रगटता रहित कोई प्राणी—आत्मा तीन काल में नहीं हो सकता। ऐसा यह भगवान आत्मा... अनन्त पर्यायें तो अमुक अंश में निगोद को भी प्रगट है। आहाहा!

यह तो **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,....** अन्तर में एकाग्र होकर आनन्द के सागर को स्पर्श कर, छूकर... आहाहा! उसका वेदन करके **परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से...** अर्थात् कि आत्मा की पूर्ण पर्याय की पुष्टि के आलिंगन से, अपनी अनन्त व्यक्त पर्यायें, शुद्ध-पुष्ट होकर निकली... आहाहा! जैसा शुद्ध शक्तिरूप है, वैसी ही पर्याय भी शुद्ध पूर्णरूप प्रगट हुई है। आहाहा! वह अनन्त शक्ति बाहर आयी। अनन्त पर्यायों रहित द्रव्य कभी होता नहीं। एक पर्याय नहीं, परन्तु अनन्त पर्यायें। यहाँ कहते हैं कि अनन्त पर्यायें पुष्ट हुई हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- 'सर्वगुणांश वह सम्यक्त्व'—यह आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो पुष्ट हो गयी। जो है, वह प्राप्त की प्राप्ति हो गयी है। जुड़ान किया, वहाँ उसमें - पर्याय में आ गयी सब। आहाहा! ऐसा उपदेश है। साधारण सम्प्रदाय के आग्रहियों को तो यह बात बैठती नहीं, सुनने को मिलती नहीं। यह तो एकान्त... यह की यह बात... यह बात (करते हैं, ऐसा कहते हैं)।

यहाँ तो स्वयं मुनिराज कहते हैं कि ऋषभदेव भगवान, तीर्थंकरों और गणधरों ने तथा सन्तों ने जो बात की है, उस योग को तू तेरे आत्मा के साथ अभी पंचम काल में भी जोड़। ऐसा निषेध न कर कि पंचम काल है, हल्का काल है, केवली का विरह है, तीर्थंकर का विरह है, ऐसा रहने दे। तेरा विरह तुझे नहीं है, प्रभु! आहाहा! पर्याय का विरह नहीं तुझे, प्रभु! पर्याय बिना का द्रव्य कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! उस पर्याय की यह बात चलती है। वस्तु तो वस्तु है। परन्तु परम निर्वाण वधू-स्त्री के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से। पूर्ण पर्याय का पूर्ण अनुभव, पूर्ण पर्याय का पूर्ण अनुभव, पूर्ण पर्याय का पूर्ण आलिंगन। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। क्या कहना? वचनातीत बात, विकल्पातीत बात... आहाहा! उसे किस प्रकार कहना? उसकी मर्यादा गणधरों और सन्तों ने की, उस प्रकार से कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्तर की वस्तु अखण्डानन्द से भरपूर पूर्ण आनन्द और शान्ति से भरपूर तत्त्व, उसे स्पर्श। उसकी स्पर्शता तुझे तेरी पर्याय में पुष्ट, वह सब पर्यायें पुष्ट अर्थात् पूरी निकलेगी। आहाहा! **गाढ़ आलिंगन से सर्व आत्मप्रदेश में अत्यन्त-आनन्दरूपी...** आहाहा! अब क्षेत्र लिया। पहले पर्याय ली। पर्याय भी वह असंख्य प्रदेश में सब प्रगट हुई। कोई प्रदेश खाली नहीं। आहाहा! जैन के अतिरिक्त, वीतराग के अतिरिक्त असंख्य प्रदेश कहीं नहीं है। आत्मा के असंख्य प्रदेश, इसका वे विवाद उठाते हैं विद्यानन्द। **अपदेशसंतमज्झो** (समयसार, गाथा १५) वे इसका अर्थ अखण्ड करते हैं, अखण्ड है। प्रदेश-प्रदेश नहीं। अरे! प्रभु! परन्तु उन्हें माननेवाले निकलते हैं। प्रभु! क्या हो ? कोई देव नहीं आता, कोई अवधिज्ञान नहीं होता। आहाहा! परोक्ष ज्ञान से काम लेना। स्व की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है परन्तु यह परोक्ष है न! असंख्य प्रदेश कहीं प्रत्यक्ष नहीं दिखते। आहाहा!

अत्यन्त-आनन्दरूपी... जिसने यह भगवान आत्मा परमेश्वर ने, तीर्थंकरों ने, मुनियों ने कहा, वैसा आत्मा दृष्टि में लेकर जो उसमें एकाग्र होता है, उसे सब पर्यायें पूर्ण-पुष्ट-पूर्ण प्रगट होती हैं। आहाहा! पूर्ण प्रगट होकर अत्यन्त आनन्दरूपी... आहाहा! वहाँ अत्यन्त आनन्द आता है। अनन्त गुणों की पर्यायें प्रगट होती हैं। अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं, उन सब पर्यायों में अनन्त आनन्द आता है। आहाहा! **अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर से...** आहाहा! परम-सुधारस अमृत का पूर बहता है। आत्मा तो अमृत का पूर बहता है। पर्याय में पूर बहता है, कहते हैं। द्रव्य में तो पूर भरा है... आहाहा! परन्तु जिसने उसमें एकाग्रता की, उसकी पर्याय में आनन्द का पूर बहता है। आहाहा!

परमसुधारस के पूर से... परमसुधारस, यह अमृत। आहाहा! जीव का जीवन अमृत है। जीव का जीवन जहर, राग, पुण्य-पाप, यह उसका जीवन नहीं। आहाहा! जीव का जीवन शुभ और अशुभ, यह उसका जीवन नहीं। आहाहा! उसका जीवन तो अमृत जीवन है, क्योंकि वह अमृत से भरपूर है। आहाहा! किसी से मरे नहीं, किसी को मारे नहीं, पूरे में अधूरा हो नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी पर्यायें अनन्त प्रगटी हैं। आहाहा! परमसुधारस। इसका अर्थ ऐसा हुआ (कि) परम अमृतरस। उसका पूर। आहाहा! पर्याय में, हों! बात करते हैं। पर्याय में परमानन्द का पूर बहता है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख देखने से पर्याय में अनन्त आनन्द का पूर बहता है, कहते हैं। आहाहा!

यह नदी का बड़ा पूर आवे, बहुत जोरदार। हमारे उमराला में बड़ी नदी, बहुत जोरदार, समुद्र जैसी। वह जब दोनों किनारे नदी आवे... समुद्र (लगे)। इस किनारे से उस किनारे जाया नहीं जाए। चाहे जितना होशियार हो। क्या कहलाता है वह ? तैराक। सामने शंकर के देवालय जाना हो तो बहुत आगे से जाए, तब वह खिंचाव हो, तब मुश्किल से वहाँ जा सके। इस ओर ऊपर से पड़े। आहाहा! यह सब खबर है। वहाँ हम थे न! सामने जाए। शंकर का मन्दिर सामने है। कोई पूजा करने जाना हो। बहुत दिन हो गये तो वे लोग जिस जगह है, उसके सामने नहीं पड़े। उससे बहुत दूर पड़े। तो दूर पड़े तो खिंचाव करते-करते तो मुश्किल से वहाँ जाए। आहाहा! ऐसा देखा है, हों! वहाँ। यह तो सब ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। आहाहा!

आहाहा! **परमसुधारस के पूर से परितृप्त हुए;...** आहाहा! उसके कारण परितृप्त (हुए)। पर्याय में परितृप्त। अकेला तृप्त नहीं। पूर्ण रीति से, पूर्ण रीति से, सर्व प्रकार से, सर्व प्रकार से तृप्त-तृप्त हुआ। आहाहा! पंचम काल के मुनिराज ऐसी बातें कर गये। आहाहा! उन्हें ऐसा नहीं कि नहीं हो सकेगा। ऐसा नहीं कह गये, प्रभु! आहाहा! कठिन है, ऐसा कह गये, परन्तु नहीं हो सकता - ऐसा नहीं है। आहाहा! इसने बात सुनी नहीं। अन्दर तीन लोक का नाथ देवाधिदेव विराजता है। आहाहा! परमेश्वर। देखो न! कितनी उपमा दी नहीं ? परमेश्वर है। सुधारस के पूर से परितृप्त हुए। वे जीव अन्दर में जुड़े। आहाहा! पूरे, जो मुनि हुए, उनकी पर्याय में पूरी तृप्ति आ गयी। आहाहा! तृप्ति आयी। तृप्ति और नहीं तथा तृप्ति बाकी है - ऐसा नहीं। अतृप्ति थोड़ी बाकी है - ऐसा नहीं। तृप्ति पूर्ण हो गयी। आहाहा! परितृप्त हुए, पूर्ण परितृप्त हुए। आहाहा!

इसलिए स्फुटित-भव्यत्वगुणवाले... प्रकटित; प्रगट हुए; प्रगट। ऐसे भव्यत्व गुणवाले **हे महाजनों!** आहाहा! मुनिराज की वाणी तो देखो! **इसलिए स्फुटित...** प्रगट हुए भव्यत्वगुण की शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुए जीवों **हे महाजनों!** एक वचन नहीं लिया। आहाहा! महाजनों लिया न ? महाजनों! महाजनों। आहाहा! भव्यत्वगुणवाले हे महाजनों! आहाहा! प्रगट भव्यत्वजीववाले। भव्यत्व तो है। वह नहीं। भव्यत्व तो इसकी शक्ति और त्रिकाल गुण है, परन्तु प्रगट स्फुटित। आहाहा! भव्यता सब स्फुटित-बाहर प्रगट हो गयी। पर्याय में भव्यता, जितने गुण हैं, उनकी सब प्रगट हो गयी। आहाहा! अरे! ऐसा सुना भी नहीं होगा, अभी। आहाहा!

मुमुक्षु :- सुनानेवाला नहीं, फिर कहाँ से सुने ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा ! ऐसी बात है । आहाहा !

सिद्धपना उतारा है । तू सिद्ध है, प्रभु ! सर्व जीव सिद्धसम है । आहाहा ! 'सर्व जीव हैं सिद्धसम जो समझें वे होय ।' आहाहा ! श्रीमद् ने ऐसा कहा है । आहाहा ! सर्व जीव सिद्ध-समान हैं । परमात्मा के पुष्ट गुणों से भरपूर हैं । उसकी दृष्टि करने से पर्याय में पुष्टि कर पूर बहता है । आनन्द के अमृत का पूर बहता है । आहाहा ! इसलिए... आहाहा ! हे प्रगट भव्यत्व गुणवाले महाजनों ! आहाहा ! भव्यत्वशक्तिरूप से है, उसके प्रगटरूप से हुए हे भव्यजीवों ! आहाहा ! मुनिराज की करुणा तो देखो ! विशालता तो देखो ! नहीं हो सकता, अभी पंचम काल है, यह है न अभी ऐसा वापस... साधु, दिगम्बर मुनि कहकर ऐसा कहे - अभी शुभयोग है, दूसरा नहीं । अर र ! प्रभु... प्रभु !.. प्रभु !

हे प्रगट भव्यत्वगुणवाले ! भव्यशक्ति पर्याय में प्रगट हो गयी । भव्यपना तो है, परन्तु पर्याय में प्रगट हो गया है । ऐसे हे महाजनों ! आहाहा ! हे महाजनों ! आहाहा ! गजब टीका ! एक-एक गाथा की टीका... ओहो ! समयसार से भी चढ़ जाता है । आहाहा ! **तुम निज आत्मा को...** हे महाजनों ! **तुम निज आत्मा को...** अपने आत्मा को **परम वीतराग सुख की देनेवाली...** आहाहा ! **निज आत्मा को परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो ।** आहाहा ! इसका नाम भक्ति । आहाहा ! वीतराग **परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो ।** आहाहा ! ऐसे शब्द सुनने को मिलना मुश्किल है । आहाहा !

हे महाजनों ! आहाहा ! **तुम निज आत्मा को...** आहाहा ! **परम वीतराग सुख की...** अकेला नहीं । परम वीतराग सुख । आहा.. ! पर्याय में, हों ! **परम वीतराग सुख की देनेवाली...** कौन ? **ऐसी वह योगभक्ति...** स्वरूप में जुड़ान । आहाहा ! आनन्द के नाथ में जुड़ान करना, इसका नाम भक्ति । आहाहा ! ऐसी भक्ति करो कि जिससे परमानन्द की धारा बहे और पर्याय में परमानन्द का पूर बहे । आहाहा ! है न ? **ऐसी वह योगभक्ति करो ।** अब इस गाथा के श्लोक कहेंगे । (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-२३१

[अब इस परमभक्ति अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव सात श्लोक कहते हैं:]

(शार्दूलविक्रीडित)

नाभेयादिजिनेश्वरान् गुणगुरून् त्रैलोक्यपुण्योत्करान्,
श्रीदेवेन्द्रकिरीटकोटिविलसन्माणिक्यमालार्चितान् ।
पौलोमीप्रभृति-प्रसिद्धदिविजाधीशाङ्गना-संहते:
शक्रेणोद्भवभोगहासविमलान् श्रीकीर्तिनाथान् स्तुवे ।।२३१।।

(वीरछन्द)

जो त्रिलोक की पुण्य राशि हैं और गुणों से हैं भूषित।
देवेन्द्रों की मुकुट प्रभा से भासित मणियों से पूजित॥
जिनके सन्मुख सुरपति और शची करते हैं नर्तन जान।
कीर्ति तथा श्रीपति ऋषभादिक जिन का स्तवन करूँ महान॥२३१॥

[श्लोकार्थ:] गुण में जो बड़े हैं, जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं (अर्थात् जिनमें मानों कि तीन लोक के पुण्य एकत्रित हुए हैं), देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं (अर्थात् जिनके चरणारविन्द में देवेन्द्रों के मुकुट झुकते हैं), (जिनके आगे) शची आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों के साथ में शकेन्द्र द्वारा किये जानेवाले नृत्य, गान तथा आनन्द से जो सुशोभित हैं, और *श्री तथा कीर्ति के जो स्वामी हैं, उन श्री नाभिपुत्रादि जिनेश्वरों का मैं स्तवन करता हूँ॥२३१॥

प्रवचन-१५९, श्लोक-२३१-२३४, गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ल ७, दिनांक १९-०६-१९८०

भक्ति का अन्तिम अधिकार। श्लोक है न, श्लोक?

[अब इस परमभक्ति अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए

---

* श्री=शोभा; सौन्दर्य; भव्यता।

टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव सात श्लोक कहते हैं:] भक्ति है न, भक्ति ?

नाभेयादिजिनेश्वरान् गुणगुरून् त्रैलोक्यपुण्योत्करान्,
श्रीदेवेन्द्रकिरीटकोटिविलसन्माणिक्यमालार्चितान् ।
पौलोमीप्रभृति–प्रसिद्धदिविजाधीशाङ्गना–संहतेः
शक्रेणोद्भवभोगहासविमलान् श्रीकीर्तिनाथान् स्तुवे ।।२३१।।

श्लोकार्थ : आहाहा ! **गुण में जो बड़े हैं,...** ऋषभदेव से लेकर सब तीर्थंकर, गुण में जो बड़े हैं। उनसे बड़ा कोई नहीं है। **जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं...** आहाहा ! जिनमें मानो तीन लोक का पुण्य एकत्रित हुआ हो। गुण में पूरे हैं, पुण्य में पूरे हैं – ऐसा कहना है। आहाहा ! गुण में भी बड़े हैं, पुण्य में भी बड़े हैं। यह वीतराग। आहाहा ! उन्हें रोग सिद्ध करना, दवा करना, वे उत्कृष्ट पुण्यवाले नहीं रहे। आहाहा ! भगवान को रोग हो, दवा का कहे, दवा लाने को वे स्वयं कहे। आहाहा !

मुमुक्षु :– स्वरूप में लीन न हो तो बीमार किसके हों ?

पूज्य गुरुदेवश्री :– अरे ! बीमार स्वरूप में... यह तो मुनि बीमार हों और होते हैं, परन्तु ये तो तीर्थंकर हैं। सर्वोत्कृष्ट गुण और सर्वोत्कृष्ट पुण्य। उनके पुण्य की कुछ भी कमी नहीं है। आहाहा !

गुण में जो बड़े हैं, जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं... तीन लोक के पुण्य जो ऊँचे हैं, उनमें वे ऊँचे पुण्य है – ऐसा कहना है। **(अर्थात् जिनमें मानों कि तीन लोक के पुण्य एकत्रित हुए हैं),...** आहाहा ! तीर्थंकर अर्थात् क्या ? लोगों को माहात्म्य नहीं आता। तीर्थंकर गुण में पूरे और पुण्य में पूरे। आहाहा ! गुण में भी पूरे, पुण्य में भी पूरे। उनके जैसा पुण्य भी कहीं नहीं होता और उनके जैसे गुण भी अन्यत्र कहीं नहीं होते। केवली में पुण्य नहीं है। बड़े गुण होते हैं। सामान्य केवली हो, परन्तु पुण्य में बड़े न हो। यह तो तीर्थंकर हैं, इसलिए गुण और पुण्य दोनों में पूरे हैं। दूसरे सामान्य केवली को गुण में पूरे होते हैं, परन्तु पुण्य में पूरे नहीं होते। आहाहा !

देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी... इन्द्र उन्हें नमन करते हैं, तब **देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** आहाहा ! देखो ? पूजित में भी

ऐसा लिया। **देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी...** देवेन्द्रों, और उनके मुकुट, उनकी जो किनारी, उसके **पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** कहो, कोई चावल से पूजित है – ऐसा नहीं लिया। आहाहा! तीनों ही पूरे हुए। गुण से भी बड़े, पुण्य से भी बड़े और पूजनेवाले भी बड़े में बड़े। उनको पूजनेवाले भी बड़े में बड़े। आहाहा! **(अर्थात् जिनके चरणारविन्द में देवेन्द्रों के मुकुट झुकते हैं),....**

(जिनके आगे) शची आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों... यह प्रसिद्ध। 'पौलो' 'पौलो'। कहा। 'पौलो' का अर्थ क्या? इन्द्र की इन्द्राणी। **शची आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों...** प्रसिद्ध इन्द्राणियाँ। आहाहा! उनके **साथ में शकेन्द्र द्वारा किये जानेवाले...** आहाहा! भगवान के समक्ष इन्द्र, इन्द्राणियों के साथ नृत्य करता है। आहाहा! इन्द्र भगवान के समक्ष भक्ति में नृत्य करता है, तथापि जानता है कि देह की क्रिया जड़ की है, स्वतन्त्र है और मुझे विकल्प उठता है, वह पुण्य है। उससे मेरी चीज़ भिन्न है – ऐसा शकेन्द्र को भान है, तो भी वह नाचता है। आठवाँ द्वीप नहीं? वहाँ इन्द्र जाते हैं न? मनुष्य नहीं जा सकते; इन्द्र जाकर वहाँ नृत्य करते हैं। पैर में घूँघरु बाँधकर नृत्य करते हैं। परन्तु हेतु यह कि अन्दर शुभभाव। घूँघरु आदि की क्रिया जड़ की है, वह मेरी नहीं। अन्दर शुभभाव, वह पुण्य है। मेरा स्वरूप पुण्य से भिन्न है – ऐसा अनुभव, भान, समकित है। आहाहा! वह इन्द्र और इन्द्राणियों के साथ भगवान के निकट नृत्य करता है। आहाहा! कोई ऐसा कहे कि वह नाचता है, इसलिए उसे कुछ धर्म होता होगा? ऐसा नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप (बतलाते हैं)। आहाहा!

गुण में बड़े, पुण्य में बड़े। बड़े पुरुष, उनके **मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** और इन्द्राणी के साथ इन्द्र नृत्य करते हैं। आहाहा! ऐसे तीर्थंकर! उन्हें रोग और उन्हें दवा और वे दवा खावे और रोग मिट जाए। अरे! प्रभु! क्या हो? अरे! ऐसा वीतराग का विरह पड़ गया। पंचम काल में वीतराग रहे नहीं और वीतराग के नाम से साधारण प्राणी को बेचारे को चढ़ा दिया। आहाहा! क्षण में मृत्यु (के समय में) देह चली जाती है। आहाहा! वह बीजुबेन मर गयी। आज सुना, भाई! राजकोट... बसन्ती बहिन बीजुबहिन। वे गुजर गयी। बसन्ती बहिन, अपने पहले यहाँ थी न? यहाँ रहती थी न? फिर विरुद्ध हुई और चली गयी। बसन्ती बहिन, बीजुबहिन पहले बहुत बार यहाँ आती थी। फिर विरुद्ध हो गयी न! फिर यहाँ आने का विरुद्ध हो गया। वहाँ आवे, यहाँ

न आवे। गुजर गयी। ऐसा सुना। आहाहा! देह की ऐसी स्थिति।

मुमुक्षु :- आयुष्य पूर्ण हो, फिर कोई सामने न देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! आयुष्य पूरा हो, तो कोई सामने देखता नहीं।

मुमुक्षु :- स्वयं ही....

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वयं भी... स्वयं कहाँ था आयुष्य में? स्वयं तो अपनी योग्यता पर्याय में वहाँ रहने की थी, इतनी रही, आयुष्य के कारण नहीं। आयुष्य तो निमित्त है, पर तो निमित्त है। अपनी योग्यता उस समय में उतना काल देह में रहने का निश्चित है, उतने काल रहे और... आहाहा! अभी आगे कहेंगे। आहाहा!

इन्द्राणियों के साथ में... इन्द्राणियों के। एक इन्द्राणी नहीं, बहुत इन्द्राणियों के साथ। आहाहा! इन्द्र **द्वारा किये जानेवाले नृत्य, गान तथा आनन्द से जो सुशोभित हैं,...** भगवान। आहाहा! इन्द्र नाचे, गान करे, उससे भगवान आनन्द से शोभते हैं। आहाहा! ऐसे... ऐसे इन्द्र, तीन लोक के इन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी, वह नाचे-गाये, उसकी आनन्द से शोभा है। उस आनन्द से जो शोभते हैं। आहाहा! **और श्री तथा कीर्ति के जो...** शोभा। श्री अर्थात् **शोभा; सौन्दर्य; भव्यता। कीर्ति के जो स्वामी हैं,...** शोभा और कीर्ति के जो स्वामी हैं। आहाहा!

उन श्री नाभिपुत्रादि... पिताजी का नाम लिया है। 'ऋषभ' आदि नाम नहीं लिया। पाठ में ऋषभ आदि है। है न? पाठ में **'उसहादिजिणवरिंदा'** ऋषभ आदि नाम है। **'उसहादिजिणवरिंदा'** पहले यह है। **'उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं। णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।** १४४। नाभि नाम वहाँ नहीं है। यहाँ 'नाभि' है, यह मुझे कहना है। आहाहा! **नाभिपुत्रादि...** आहाहा! **जिनेश्वरों का...** नाभिपुत्र ऋषभदेव और इनके अतिरिक्त दूसरे तीर्थंकर सब, उन **जिनेश्वरों का मैं स्तवन करता हूँ।** आहाहा! ऐसे पुण्य का पार नहीं होता, गुण की तो बात क्या करनी? दुनिया में उनके जैसा पुण्य में कोई दूसरा नहीं है। आहाहा! पुण्य और पवित्रता दोनों में पूरे। उसे खोट लगाना, पुण्य में कमी लगाकर रोग, दवा (कहना), यह शोभा नहीं देता, प्रभु! यह शोभा नहीं है। यह भगवान की स्तुति नहीं है। आहाहा! ऐसा वर्णन करते हैं। २३१ (पूरा हुआ)।

श्लोक-२३२

(आर्या)

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोऽप्येवमुक्तमार्गेण ।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति ।।२३२।।

(वीरछन्द)

आदिनाथ से महावीर तक तीर्थंकर जिनराज हुए।
योगभक्ति कर इसी विधि से मुक्ति-वधू सुख प्राप्त हुए॥२३२॥

[श्लोकार्थः] श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके निर्वाणवधू के सुख को प्राप्त हुए हैं॥२३२॥

श्लोक- २३२ पर प्रवचन

२३२ (श्लोक)

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोऽप्येवमुक्तमार्गेण ।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति ।।२३२।।

आहाहा! पहली टीका में 'नाभि' नाम दिया। उनके पुत्र रूप से पहिचान करायी। इसमें अब **श्री वृषभ से लेकर...** मूल पाठ में जो है। आहाहा! इससे ऐसा भी बतलाया कि तीर्थंकर हों तो भी वह तो उन्हें पिताजी होते हैं न, जन्म है तो। जन्म लेते हैं न? तो उन्हें माता-पिता होते हैं या नहीं? भले पुण्य में बड़े, गुण में बड़े हुए बाद में हुए, परन्तु उन्हें माता-पिता तो होते हैं। आहाहा! माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहते हैं। आहाहा! माता को स्वप्न आते हैं। उनका स्पष्टीकरण पिताजी करते हैं। आहाहा! यह सब पुण्य प्रकृति का विशाल फल है। विशाल फल फला है। आहाहा!

श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके... देखा! तीर्थंकरों ने भी यह भक्ति की है। आहाहा! इसमें

व्यवहार नहीं रखा। आहाहा! ज्ञानमति कहे कि नहीं, विरुद्ध (में) मिथ्यात्व लेना, योगभक्ति विरुद्ध नहीं, व्यवहार विरुद्ध नहीं। निश्चय से विरुद्ध व्यवहार विरुद्ध नहीं। व्यवहार का तो पूरा अध्याय बनाया है। परन्तु जानने के लिये सब करे। आहाहा! **श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके...** आहाहा! ऐसे पुण्यवन्त और ऐसे गुणवन्त—ऐसों ने भी योगभक्ति की है। अपने आत्मा के साथ जुड़ान किया है। आहाहा! व्यवहार किया है – ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वह तो तत्त्व विरुद्ध है। यह तो आता है न! प्रतिक्रमण के पहले अधिकार में आता है। प्रतिक्रमण शुरु करते हुए। परमार्थ प्रतिक्रमण नहीं ? आहा! परमार्थ प्रतिक्रमण। परमार्थ प्रतिक्रमण वहाँ से। यह आया। कितनी गाथा आयी ? देखो, यहाँ आया।

सकल व्यवहारिक चारित्र और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष... आहाहा! प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हुए (कहते हैं कि) **सकल व्यवहारिक चारित्र से...** आहाहा! सकल व्यवहारचारित्र बन्ध का कारण है। आहाहा! और उसका फल। व्यवहारचारित्र का फल राग, स्वर्गादि। आहाहा! उसकी प्राप्ति से प्रतिपक्ष। आहाहा! १४९ पृष्ठ पर है। १४९ पृष्ठ। प्रतिक्रमण की शुरुआत करते हुए। आहाहा! **सकल व्यवहारिक चारित्र से...** है ? भाई! दूसरा श्लोक। पहला श्लोक नहीं, दूसरा, उसमें से **व्यवहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति के प्रतिपक्ष ऐसा जो शुद्धनिश्चयात्मक परम चारित्र, उसका प्रतिपादन करनेवाला...** आहाहा! यह बहुत जगह है। एक २९७, ३१६ है। चार जगह है। लिखा है। चार जगह है।

व्यवहार प्रतिपक्ष। निश्चय से व्यवहार प्रतिपक्ष है। आहाहा! और व्यवहार से निश्चय प्रतिपक्ष है। व्यवहार का फल राग है; निश्चय का फल मुक्ति है। आहाहा! लोगों को आग्रह (हो जाता है)। प्रभु! ये दिन चले जाते हैं। आहाहा! क्षण में चले गये, देखो न! भाई! यहाँ बैठे थे। वहाँ तो समाप्त। आहाहा! देह की स्थिति तो पूर्ण होनेवाली है। उसमें कोई रोक नहीं सकता। वह समय और वह क्षेत्र और वह काल, और वह वहाँ संयोग। जिस प्रकार जहाँ देह छूटनी है, वह छूटेगी। आहाहा! मद्रास से आये। आहाहा! परन्तु देह की जहाँ स्थिति छूटनी है, उस काल में वह छूटेगी। इससे पहले यह काम कर ले। अभी कहेंगे। आहाहा! आया न ?

जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके निर्वाणवधू के... आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के **सुख को प्राप्त हुए हैं।** आहाहा! योगभक्ति मैंने कही, परन्तु अनन्त तीर्थंकर भी कर गये हैं। इस योगभक्ति से मुक्ति हुई है। उनकी मुक्ति व्यवहार से हुई है और पुण्य में बड़े थे, पूजनीय बड़े थे—इन्द्रों से पूजनीय थे, इसलिए मुक्ति हुई है - (ऐसा नहीं है)। आहाहा! उन्होंने भी अन्दर स्वरूप चिदानन्द-सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त आनन्द का सर्वांग भरपूर प्रभु, अनन्त प्रभुता से, एक-एक गुण में अनन्त प्रभुता से भरपूर प्रभु... आहाहा! उसके साथ योग जोड़ा है। आहाहा! पर्याय के साथ योग जोड़ा है - ऐसा भी नहीं। पर्याय स्वयं योग जोड़नेवाली उसके साथ है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं परमात्मा परमेश्वर है। उसने अपनी पर्याय को परमेश्वर के साथ जोड़ दिया। परमेश्वर ने भी यह किया है और तब मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। तब फिर दूसरे प्राणी के लिये दूसरा मार्ग है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है परन्तु अब वाद-विवाद और आग्रह में चढ़ गये हों, उन्हें मुश्किल पड़ती है। आहाहा! २३२ (पूरा हुआ)।

श्लोक-२३३

(आर्या)

अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
सन्सारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्।।२३३।।

(वीरछन्द)

अपुनर्भव सुख सिद्धि हेतु मैं शुद्धयोग की भक्ति करूँ।
भवभय से हे जीव सभी यह उत्तम भक्ति नित्य करो॥२३३॥

[श्लोकार्थः] अपुनर्भवसुख की (मुक्ति सुख की) सिद्धि के हेतु मैं शुद्ध योग की उत्तम भक्ति करता हूँ; संसार की घोर भीति से जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो॥२३३॥

श्लोक- २३३ पर प्रवचन

२३३ (श्लोक)।

अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
सन्सारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्।।२३३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **अपुनर्भवसुख की (मुक्ति सुख की) सिद्धि...** अपुनर्भव। जिसे फिर से भव नहीं, उसे मुक्ति कहते हैं। आहाहा! जिसे फिर भव नहीं, उसे मुक्ति कहते हैं। अपुनर्भव—मुक्ति-सुख की सिद्धि के लिये। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। आहाहा! तथापि टीका के काल में विकल्प है, परन्तु तो भी मैं तो योगभक्ति करता हूँ, कहते हैं। भले ही विकल्प है, वह कोई आदरणीय नहीं। आहाहा!

मैं शुद्ध योग की उत्तम भक्ति करता हूँ;... है? टीका करते हैं, तब विकल्प है, तथापि **मैं शुद्ध योग...** स्वरूप आनन्द का नाथ। आहाहा! पूर्ण आनन्द और पूर्ण पुरुषार्थ—वीर्य से भरपूर भगवान की उत्तम भक्ति करता हूँ। उसकी उत्तम भक्ति करता हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! अब मुनिराज कहते हैं, यदि तुझे घोर संसार से डर लगा हो... आहाहा! घोर संसार। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार। कहाँ अवतरित होगा? कहाँ जाएगा? कब यह मिले? आहाहा! निगोद के भव में से एक लट होवे तो चिन्तामणि जैसा कहा है। चौरासी लाख के अवतार। आहाहा! यदि चूक गया तो चौरासी के अवतार में। उसके अनन्त-अनन्त अवतार में भटक मरेगा। यह संसार की घोर भीती, अन्दर डर लगे, कहते हैं। आहाहा! इस संसार की घोर भीती-भय... आहाहा! अरे रे! मैं यहाँ हूँ तो कहाँ जाऊँगा? मैं तो नित्य हूँ। देह तो छूटेगी। देह का समय आयेगा, छूटेगी ही। प्रभु आत्मा कहाँ जाएगा? (ऐसे) घोर संसार का भय (लगे) आहाहा!

संसार की घोर भीति से... आहाहा! संसार का किसी भी प्रकार का उत्साह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! संसार में तो भय-डरने जैसा है। जैसे मनुष्य, सर्प से डरता है। काला नाग ऐसे निकले तो दूर से भागता है। हम एक बार रास्ते में चलते थे, उसमें बड़ा जब्बर सर्प निकला। ठीक मेरे चलने-चलने के साथ एक हाथ दूर। उसे रास्ते में जाना और

उसे रास्ता लाँघना। ऐसे से आता था और रास्ता लाँघता था। बड़ा जब्बर। एक हाथ दूर हम थे। परन्तु वह बेचारा डरा। एकदम उछलकर चला गया। बड़ा सर्प था। आहाहा! उसे-सर्प का डर (लगे)। जिससे जहर से लोग मर जाते हैं। आहाहा! उस सर्प को भी डर है। आहाहा! और वापस मरकर सर्प को जाना कहाँ? आहाहा! वह चूहे खाये, माँस खाये। वापस मरकर नरक में जाए। आहाहा!

कहते हैं कि यह तो पूरा संसार। अकेला नरक-ऐसा नहीं। संसार की घोर भीती। चोरों गतियाँ। आहाहा! कहीं भी उपजना। अरे! प्रभु! कलंक है न तुझे! आहाहा! किसी भव में अवतार धारण करना, परमात्मा त्रिलोकनाथ का पुकार है (कि) भाई! तुझे भव का डर नहीं लगता? कि कहाँ जाऊँगा और क्या होगा? आहाहा! मरते समय देह की पीड़ा इतनी हो... आहाहा! (कि) असाध्य हो जाए। दुःख की पराकाष्ठा सहन कर सके नहीं, तब असाध्य हो जाता है। आहाहा! ऐसे संसार के ये मनुष्य के (ही) नहीं, परन्तु देव के भी दुःख हैं। आहाहा! संसार की घोर भीती। चार गति में भटकने का डर। आहाहा! उसे ला, प्रभु! आहाहा! ऐसा कहते हैं।

सर्व जीव, **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** आहाहा! सर्व जीव। प्रभु! आपको खबर नहीं? एकेन्द्रिय निगोद में से तो अनन्तवें भाग निकले हैं और अनन्तवें भाग निकले नहीं हों, वे सब भगवान हैं। आहाहा! और संसार का कोई भी भव भयवाला-डरवाला है। आहाहा! उसके डर से सर्व जीव.. आहाहा! मुनिराज की विशालता देखो! कोई जीव दुश्मन है या शत्रु है या किसी ने धर्म का विरोध किया है, इसलिए दुर्गति होओ (-ऐसा नहीं कहते)। प्रभु! तुम सब जीव संसार से भय पाकर... आहाहा! और **सर्व जीव नित्य...** क्षणिक (भय) करके किसी समय और फिर छोड़ दिया, ऐसा नहीं। आहाहा! नित्य। गजब किया है न! संसार पूरा चौरासी के अवतार। सर्वार्थसिद्धि का भी भव नहीं। कलंक है। आहाहा!

पाण्डवों को एक विकल्प आया, जहाँ पाण्डवों को कि कैसे होगा धर्मराज को? वहाँ तैंतीस सागर का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि में चले गये। वहाँ कहाँ सुख है? तीन कषाय का दुःख है। एक कषाय टली, उतना सुख है। तीन कषाय का वहाँ भी दुःख है। भव है न? आहाहा! भव में कषायरहित का कोई भव नहीं हो सकता। आहाहा! अन्तिम

में अन्तिम सर्वार्थसिद्धि का भव, वह भी तीन कषाय से दु:खी है। एक अनन्तानुबन्धी टली है। तीन कषाय की अस्ति है। उतना कषाय से कलुषित है। है समकिती। अरे! कितने ही तो बारह अंग के ज्ञाता देव, हों! बारह अंग के जाननेवाले। यहाँ बारह अंग जाने हुए, और देह छूटकर वहाँ गये। देव में बारह अंग का ज्ञान। परन्तु वह भव, वह दु:ख है। आहाहा!

संसार की घोर भीति से... ऐसे भव (से) भी डर पा। आहाहा! ऐसा कि इसे इतना तो एकावतारीपना हुआ; वहाँ बारह अंग का ज्ञान है—ऐसा रहने दे, बापू! भव का–भव का डर रख। भव है, वह दु:खरूप है; भव है, वह कलंक है। भगवान आनन्द अमृत का सागर, उसकी बेल में अमृत पकता है। आहाहा! उसके बदले यह भव पके, डर पा, प्रभु! तू भय पा। आहाहा! भय पाकर। संसार से अकेला (भय) नहीं, घोर भीति से। यह सर्वार्थसिद्धि में जाने का भी घोर भय। आहाहा! प्रभु! अन्तर में जाने के अतिरिक्त कहीं रहना नहीं। आहाहा!

संसार की घोर भीति से सर्व जीव... आहाहा! यह आया था अपने। भव का घात करके। आहाहा! **सर्व जीव...** इतने शब्द हैं। संसार अर्थात् इसमें कोई भव बाकी नहीं। उसमें घोर भीती। यह भी घोर डर। आहाहा! संसार में किसी भी भव से घोर डर और वे सर्व जीव। भव्य या अभव्य यह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा! एक शरीर के अनन्तवें भाग मोक्ष गये और जायेंगे। यह प्रश्न नहीं है। मैं जानेवाला हूँ तो सब आत्मायें जाओ, प्रभु! अन्दर की भक्ति करके। अन्दर की—आत्मा की भक्ति करके। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ का साक्षात्कार करके, योग का जुड़ान करके अन्दर की भक्ति कर। आहाहा!

नित्य वह उत्तम भक्ति करो। वापस देखा? '**नित्य**' शब्द प्रयोग किया है। कायम। कुछ समय करे और फिर दूसरे में लहर करे (–ऐसा नहीं)। आहाहा! **नित्य वह...** कौन सी वह? **उत्तम भक्ति...** आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसका–आनन्द का भजन कर, उसमें एकाग्र हो। यह उत्तम भक्ति है। भगवान की भक्ति भी उत्तम भक्ति नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! लोग्गस में आता है। '**विहुयरयमला... समाहिवरमुत्तमं दिंतु... सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु**' हे सिद्ध भगवन्तों! मुझे सिद्धपना दिखलाओ। अर्थात् इसका अर्थ कि मैं सिद्ध होऊँ। आहाहा! आता है न, भाई! लोगस्स, लोगस्स। '**सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु**' हे सिद्ध भगवन्तों! मुझे सिद्ध दिखाओ। इसका अर्थ यह कि मैं सिद्ध होऊँ, तब सिद्ध को देखूँ। आहाहा! ऐसा अर्थ व्याख्यान में किया था। बोटाद में। वह तिथि आती है न? क्या कहलाती है वह? चौदश और.. तब शास्त्र नहीं बोला जाता, शास्त्र नहीं पढ़ा

जाता। तब फिर ऐसे सामायिक के पाँचवें ... उसका अर्थ करते थे और इसका अर्थ करते थे। चौदश और पारवी की असज्झाय होती है न? असज्झाय। तब सज्झाय का काल नहीं होता। सिद्धान्त के हिसाब से। अभी भी सवा बारह से एक तक असज्झाय का काल है। अभी। क्योंकि छह को दिन उगता है और सवा सात को अस्त होता है। सवा तेरह घण्टे हैं। उसमें से पौन घण्टा बीच में निकालना चाहिए। आहाहा! सवा सवा घण्टे बाद साढ़े बारह और पौने एक। इसलिए वास्तव में सवा बारह से एक तक शास्त्र पढ़ने की असज्झाय अभी है। आहाहा! सवा बारह से एक। क्योंकि सवा छह घण्टे पहले रहे, सवा छह घण्टे बाद में जाए। बीच को पौन घण्टा। आहाहा! ऐसा शास्त्र में लेख है। बीच का काल बिताना। आहाहा! परन्तु किसे? जिसे कुछ स्वाध्याय करना हो, उसे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नित्य उत्तम भक्ति (करनी है), उसे कोई काल बाधक ही नहीं है। उसे यह असज्झाय-बज्झाय लागू पड़ते ही नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसा आया न? नित्य, वह उत्तम भक्ति नित्य करो। उसमें स्वाध्याय करने में तो अभी... आहाहा! असज्झाय का काल आवे, परन्तु इसमें नहीं आता। सर्व जीव... आहाहा! प्रभु की कितनी विशालता! मुनिराज की। है मुनि। संसार के भय से.. आहाहा! घोर डर से सर्व जीव, प्रभु! परन्तु तुमने सुना न शास्त्र में! एक शरीर के अनन्तवें भाग वे भले जाएँ। यह सुना है। आहाहा! परन्तु सर्व जीव पूर्ण भक्ति को करो, प्रभु! दुःख से मुक्त होने के लिये। आहाहा! करुणा तो देखो! वीतरागी मुनि हैं। आहाहा! जिन्हें राग का बिल्कुल आदर नहीं। वे पुकार करते हैं, हे संसारी जीवों! घोर भीती करके तुम नित्य प्रभु की भक्ति करो। प्रभु अर्थात् तू, हों! बाहर का प्रभु नहीं। आहाहा! क्योंकि बाहर के प्रभु की भक्ति में तो शुभराग है।

परदव्वादों दुग्गई आहाहा! परद्रव्य से तो अन्दर चैतन्य की गति फिरने से दुर्गति होगी। आहाहा! ऐसा पाहुड़ में कहा है। **परदव्वादों दुग्गई।** प्रभु कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखकर मुझे भजे तो भी तेरी दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं। क्योंकि राग होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं है, प्रभु! उसमें चैतन्य की प्राप्ति नहीं है। राग में तो संयोग की... भले अनुकूल संयोग, परन्तु संयोग की प्राप्ति है और संयोग पर लक्ष्य जाए, वह दुःख है। आहाहा! पुण्य के कारण से संयोग मिले, परन्तु संयोग पर लक्ष्य जाए, वह दुःख है। ऐसी चीज़ है। संयोग का दुःख नहीं। संयोग पर लक्ष्य करता है; अपना लक्ष्य छोड़कर ऐसे लक्ष्य करता है, वह आपदा उत्पन्न होती है। सम्पदा का योग छोड़कर... आहाहा! बाहर

की सम्पदा पर लक्ष्य करता है, उसे दु:ख होता है। भले उसे पुण्य का फल कहलाये, परन्तु उस पर लक्ष्य जाने से तो दु:ख है। आहाहा! संयोग का दु:ख नहीं। संयोग स्पर्श भी नहीं करते। जीव को संयोग स्पर्श भी नहीं करते, परन्तु संयोग पर लक्ष्य जाने से, आत्मा का आश्रय छूटने पर उसे राग की–दु:ख की वेदना होती है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

सर्व जीव... आहाहा! **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** वह अर्थात. योगभक्ति। अनन्त तीर्थंकरों ने की। आहाहा! इसमें दुनिया की किसी चीज़ पर उत्साह या हर्ष रहेगा? आहाहा! संसार से घोर भय पा, कहते हैं। गजब बात है! कोई भी चीज़ आत्मा के अतिरिक्त के संयोग में लक्ष्य जाने से दु:ख है। उससे घोर भय पा और भगवान ने अन्दर की नित्य भक्ति की है, वह तू कर। आहाहा! यह २३३ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२३४

(शार्दूलविक्रीडित)

राग–द्वेष–परम्परा–परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थित:।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरो: सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि।।२३४।।

(वीरछन्द)

श्री गुरु की सन्निधि में निर्मल सुखकर धर्म प्राप्त करके।
ज्ञानभाव से मोहभाव की महिमा को विनष्ट करके॥
राग-द्वेष परिणति को तजकर शुद्ध ध्यान से शान्त हुआ।
मन थिर है आनन्द तत्त्व में परमब्रह्म में लीन हुआ॥२३४॥

[श्लोकार्थः] गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके, ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं, अब राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर, शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित (-एकाग्र, शान्त) किये हुए मन से आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ, परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ॥२३४॥

श्लोक- २३४ पर प्रवचन

२३४ (श्लोक)।

राग-द्वेष-परम्परा-परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि।।२३४।।

श्लोकार्थ : आहाहा! यहाँ इतना सिद्ध किया कि **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** आहाहा! ऐसा निर्मल धर्म बतलानेवाले बिना तुझे खबर नहीं पड़ेगी, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! तू कुछ न कुछ दया, दान और बाहर की व्यवहार सामायिक और प्रतिक्रमण, प्रौषध में अटक जाएगा, प्रभु! तू कहाँ का कहाँ वापस भटकने में निगोद में जाएगा। आहाहा! इसलिए **गुरु के सान्निध्य में...** क्या करेंगे गुरु? कहते हैं, **निर्मल सुखकारी धर्म...** आहाहा! गुरु यह कहेंगे। आहाहा! गुरु का यह उपदेश होता है। निर्मल सुखकारी धर्म, वीतरागी आनन्ददायक धर्म। आहाहा! जैनों में गुरु की यह बात होती है, कहते हैं। जो कोई राग में धर्म मनावे, वह जैन नहीं है। आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहते हैं **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** आहाहा! वे गुरु तो वीतरागता बतायेंगे। निर्मल सुखकारी धर्म का अर्थ वीतरागता। आहाहा! वीतरागता बतायेंगे। तू वीतराग है, प्रभु! तू वहाँ जा। उसके सन्मुख देख। हमारे सन्मुख देखना रहने दे। आहाहा! गुरु कहेंगे, तब यह कहेंगे। आहाहा! **गुरु के सान्निध्य में...** निकट में। **निर्मल सुखकारी धर्म को...** परन्तु नजदीक स्वयं होता है न? आहाहा! गुरु कौन है? उन्हें पहिचानकर उनके निकट होता है। आहाहा! तब उसे निर्मल सुखकारी धर्म सुनाते हैं। आहाहा! निर्मल सुखकारी धर्म। यहाँ इसमें व्यवहार-फ्यवहार लिया नहीं। आहाहा!

राग के विकल्प से रहित भगवान निर्विकल्पस्वरूप है। उसकी निर्विकल्प भक्ति कर। आहाहा! उस निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त कर। आहाहा! कितना लिखा है! गुरु के निकट में अर्थात् गुरु तेरे पास आवे और उन गुरु को तू देख तथा वह भी उनके निकट में सुनने को क्या मिलेगा? निर्मल सुखकारी धर्म। वहाँ वीतरागी परिणति का धर्म मिलेगा।

आहाहा! जैनधर्म के गुरु के पास से आत्मा के वीतरागी आनन्द की परिणति का धर्म बतायेंगे। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। वाड़ाबन्धी ऐसी हो गयी है कि वह तो दिगम्बर है। हम श्वेताम्बर हैं, हम स्थानकवासी हैं। अर र! प्रभु! वह वाड़ा रहने दे।

मुमुक्षु :- सब आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! दिगम्बर वस्तु आत्मा है, वह है अन्दर। वह दिगम्बर है। आत्मा दिगम्बर ही है। बाह्य से नग्न और अन्दर से नग्न। विकल्प रहित चीज़ है। उसकी भक्ति, उसमें एकाग्र होना। ऐसा गुरु उसे कहेंगे। आहाहा! यदि गुरु दूसरा व्यवहार कहेंगे, तो वे गुरु नहीं हैं, कहते हैं। वे जैन गुरु नहीं हैं। आहाहा! मुनिराज ने बहुत अन्तिम भक्ति का वर्णन (किया है)। आहाहा!

गुरु उन्हें कहते हैं कि जिनके समीप में वीतराग धर्म की प्राप्ति हो। वीतरागी पर्याय की प्राप्ति बतावे। राग से लाभ होता है, व्यवहार से लाभ होता है, मेरी भक्ति कर तू तुझे लाभ होगा – ऐसा वे नहीं कहते। आहाहा! इसमें है या नहीं अन्दर? आहाहा! वीतरागी और वह भी आनन्दकारी। आहाहा! निर्मल सुखकारी। दुनिया जो दुःख (समझती है), वह नहीं। जिससे स्वर्ग मिले, वह भी नहीं। आहाहा! निर्मल सुखकारी अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो, वह धर्म तुझे बतायेंगे। आहाहा!

अब यहाँ निवृत्ति नहीं मिलती। स्त्री-पुत्र-व्यापार-धन्धे के कारण (निवृत्ति नहीं मिलती)। मरने का समय हो गया। आहाहा! देह की स्थिति ५०-६०-७० (वर्ष) हुई, उसे तो मरने की तैयारी हो गयी। परन्तु कहते हैं कि यदि यह न समझा... आहाहा! गुरु के पास से तो यह समझना है। वहाँ से कोई चमत्कार हो, लड़का नहीं, इसलिए लड़का हो, णमोकार सुनाओ, मांगलिक सुनाओ तो हमारी दुकान अच्छी चले, हमें बढ़िया-सी नौकरी मिले। आहाहा! यह सब अज्ञानभाव है, कहते हैं। आहाहा!

निर्मल आनन्दकारी धर्म। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो, वह बताते हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। उसमें जुड़ान करने से, योगभक्ति करने से निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! यह बारह अंग का सार है। बारह ही अंगों में यह कहा है। भले ही चरणानुयोग में व्यवहार से जानने की बात की। समझ में आया? आहाहा! चरणानुयोग में ऐसा कहा है और करणानुयोग में ऐसा कहा है। यह क्या है परन्तु, बापू!

पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में तो ऐसा कहा है कि चारों ही अनुयोगों में वीतरागता का वर्णन है। चारों ही अनुयोग वीतरागता बताते हैं। आहाहा! वे यह जिसमें से वीतरागी आनन्द प्रगट हो, वह धर्म बताते हैं। आहाहा! व्यवहार की बातें आवें, परन्तु वे तो सब जानने के लिये है। आदरने के लिये तो यह एक ही बात। आहाहा! 'लाख बात की बात'—छहढाला में आता है। 'निश्चय उर लाओ, छोडी (सकल) जग द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' आहाहा! वह यह (है)। नये लोगों को भी (यह)? बापू! नया व्यक्ति कहाँ? अनादि का प्रभु है न! स्त्री का जन्म हुआ और पन्द्रह वर्ष हुए, इसलिए इतनी उम्र मेरी है – ऐसा है? लड़का पाँच वर्ष की उम्र का हुआ तो यह मेरी उम्र, ऐसा है? देह की उम्र है। आत्मा की उम्र है? आहाहा! ऐसे जीवों को गुरु यह बताते हैं और उसे वह प्राप्त करता है। आहाहा! धर्म आनन्दकारी है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहे, इसका नाम धर्म है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत प्रभु है। जैसे पर्वत में से पानी झरे; वैसे उसके (आत्मा के) सन्मुख देखने से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरता है। वह बाद में आयेगा, बाद के अर्थ में (आयेगा)। **सुन्दर आनन्द झरता उत्तम तत्त्व...** २३५। २३५ में। है? **सुन्दर आनन्द झरता उत्तम तत्त्व...** आहाहा! २३५ (श्लोक) यह अन्तिम शब्द है। आहाहा!

गुरु के सान्निध्य में... समीप में। पत्र द्वारा धर्म सुनाना और समझाना – ऐसा भी नहीं आया। गुरु के निकट में... आहाहा! आकर सुनने का अभिलाषी (होवे), उसे निर्मल आनन्दकारी धर्म प्राप्त करावे। उनकी प्ररूपणा यह होती है। आहाहा! लाख बात की बातें करे, परन्तु निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, वह धर्म है। यह बात करे। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। यह बात समझे बिना उल्टा-पुल्टा दिये रखा हो। आहाहा! और सभा हा.. हो.. हा.. हो... प्रभु! प्रभु! वह वीतराग की सभा नहीं? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतरागी, अनन्त सिद्धों का वर्ग स्थित है। आहाहा! सिद्धगति में। आहाहा! उस गति को प्राप्त करने का उपाय निर्मल आनन्द का अनुभव करना – ऐसा गुरु बताते हैं। आहाहा! है?

पश्चात् **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** सुना यह। फिर स्वयं ज्ञान द्वारा, हों! वापस राग द्वारा या व्यवहार द्वारा नहीं। **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं,...** आहाहा! विशेष है, आयेगा....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६०, श्लोक- २३४-२३५, शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल ८, दिनांक २०-०६-१९८०

नियमसार, २३४ कलश है। कलश २३४।

गुरु के सान्निध्य में... बहुत संक्षिप्त में बहुत भरा है। गुरु कैसे होते हैं ? और उनके निकट में जाकर वे धर्म क्या कहते हैं, वह इसे प्राप्त करना चाहिए। **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** यह धर्म की व्याख्या। निर्मल सुखकारी-अतीन्द्रिय आनन्द का-सुख का देनेवाला, ऐसा जो धर्म, गुरु ने ऐसा उसे कहा हुआ और गुरु होते हैं, वे ऐसा सबको कहते हैं। दूसरी बात नहीं। धर्म के लिये गुरु निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त करने की बात करते हैं।

अतीन्द्रिय आनन्द का मूल स्वरूप है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का सहजात्मस्वरूप, उस अतीन्द्रिय आनन्द को पर्याय में पर से विमुख होकर, स्व से सन्मुख होकर, निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त करे—ऐसा गुरु का उपदेश है। जैन गुरु का यह उपदेश। निर्मल आनन्द की प्राप्ति कर। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरी बातें हों, वह जानने की (है)। वस्तु यह है।

निर्मलानन्द प्रभु, निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु! आहाहा! सबसे समेटकर निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त कर। इसका नाम धर्म। गुरु भी यही बताते हैं और वह भी प्राप्त यही करता ही है। राग से धर्म होता है—ऐसा गुरु कभी कहते नहीं। आहाहा! व्यवहार से, दया, दान से धर्म होता है - ऐसा कभी नहीं कहते। आहाहा! निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द, विकल्परहित चीज़ जो निर्विकल्प है, उसकी निर्विकल्प आनन्द की पर्याय में प्राप्ति (होवे, ऐसा) यह गुरु का उपदेश और यह पूरे सिद्धान्त का सार है। आहाहा!

इतने शब्दों में बहुत भर दिया है। एक तो गुरु, उनके निकट में सुनने-समझने जाए और वह भी सुनते हुए यह सुनता है (कि) निर्मल आनन्दकारी धर्म है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसके सन्मुख देख। तुझे अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होगा, वह धर्म है। ऐसे जैन गुरु का यह उपदेश है। आहाहा!

एक तो गुरु की व्याख्या की। सुननेवाला निकट आकर-सान्निध्य में आकर सुनता है। वे यह सुनाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति कर, प्रभु! आहाहा! तू अतीन्द्रिय

आनन्दस्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में आनन्दकारी ऐसा जो धर्म, उसमें दु:ख का द्वेष नहीं, कष्ट नहीं, सहन नहीं (करना), जिसमें परीषह–उपसर्ग सहन नहीं करना पड़ता। आहाहा! ऐसे निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त कर। आहाहा! गाथा बहुत ऊँची है। आहाहा! पूरे जैनदर्शन का मक्खन कहा है। आहाहा!

बारह अंग में गुरु ने अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति स्वसन्मुख होकर करना, ऐसा बाहर अंग में है और गुरु यह कहते हैं और उन गुरु को गुरु कहा जाता है। किसी भी राग से और व्यवहार से धर्म मनावे, वे गुरु, जैन–गुरु नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है। यह दया पाले, व्रत करे, भक्ति करे, पूजा करो, यात्रा करो - ऐसा कुछ कहा नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तेरा स्वरूप नहीं है। यह विकल्प है, वह तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप है, वह समझाया और उनके उपदेश में उस आनन्द की प्राप्ति कर। जो शक्ति और स्वभावरूप अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे व्यक्तरूप से पर्याय में आनन्द की प्राप्ति कर। अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति कर, इसका नाम धर्म है। आहाहा! दूसरा यह करना–फरना कहाँ? मन्दिर बनाना और पूजा और...

मुमुक्षु :- यह तो अपने हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हो गया नहीं। यह हो भले, परन्तु यह कोई धर्म नहीं। यह व्यवहार बीच में आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आता है, तो भी यह कोई वस्तु नहीं है। आहाहा!

जैन परमेश्वर अनन्त तीर्थंकर, अनन्त जिनेश्वर, केवली, मुनि, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन अनन्त मुनियों का यह उपदेश है। आहाहा! इससे विरुद्ध कुछ भी करे तो वह जैनधर्म नहीं है। वह जैनधर्म का गुरु भी नहीं है। आहाहा!

गुरु के सान्निध्य में... आहाहा! **निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** वापस बात ऐसी की है कि शिष्य यह सुनकर प्राप्त करता है। वहाँ का वहीं नहीं रखता - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो इसे सुनने को मिला, गुरु ने कहा, वह प्राप्त करता है। ऐसा नहीं कि सुनकर निकाल डाला। इसलिए **धर्म को प्राप्त करके,...** ऐसी भाषा है। आहाहा! गजब बात है। एक लाईन में कितना भरा है! आहाहा! अब वे छह आवश्यक और... आवश्यक में आयेगा। पहले से ही आता है। व्यवहार छह आवश्यक के विरुद्ध—

यह आवश्यक में तीन बार आता है। आहाहा! व्यवहार आवश्यक जो हैं, वह तो राग है। आहाहा! और निश्चय आवश्यक से व्यवहार आवश्यक की क्रिया, वह प्रतिपक्ष है, विरुद्ध है। आहाहा! जो विरुद्ध है, वह साधन नहीं हो सकता। व्यवहार और निश्चय दोनों प्रतिपक्ष हैं। जो प्रतिपक्ष है, उस विरुद्ध से साधन नहीं हो सकता। ऐसा इतने शब्दों में कहा है। आहाहा!

धर्म को प्राप्त करके,... अब क्या किया फिर इसने ? **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है। मुनि स्वयं भी अब शामिल होते हैं। आहाहा! अन्तर जो ज्ञानस्वरूपी भगवान, उस ज्ञान को पकड़कर, ज्ञान में एकाग्र होकर मोह की महिमा, समस्त मोह की महिमा, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग का भी मोह छोड़ दिया। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि अपनी बात भी करते हैं। हमने भी गुरु के निकट ऐसा सुना और **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा...** परसन्मुख के झुकाव की महिमा। चाहे तो पंच परमेष्ठी हो, उनके ओर के झुकाव की महिमा नष्ट की है। आहाहा! स्वद्रव्य आश्रय की लीनता के समक्ष परद्रव्य के आश्रय को छोड़ दिया है। आहाहा! ऐसा यह लोगों को एकान्त लगता है। बापू! व्यवहार होता है। व्यवहार, नय है। नय है तो उसका विषय होता है, परन्तु आदरणीय नहीं। आहाहा! निश्चय और व्यवहार दोनों नय हैं। नय का विषय है। नहीं है - ऐसा नहीं है। परन्तु दो हैं, तब एक आदरणीय और एक आदरणीय नहीं है। वरना तो दो पड़े कैसे ? दोनों आदरणीय होवें तो दो पड़े कैसे ? आहाहा! आचार्य ने कितना समाहित किया है! यह तो मुनि हैं - टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। आहाहा!

ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा... आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भव की भी महिमा छोड़ दी है। आहाहा! जिस भाव से बन्ध पड़े, उस भव की महिमा छोड़ दी है। आहाहा! और अबन्धस्वरूप भगवान आनन्द की मूर्ति की प्राप्ति के प्रयत्न में हूँ। आहाहा! उसकी **महिमा को नष्ट किया है, ऐसा मैं...** आहाहा! ऐसा समस्त मोह। किसी भी अंश में पर-सन्मुख के झुकाववाला राग, शास्त्र का वाँचन या पठन या यह सब पर-सन्मुख की महिमावाला मोह, परसन्मुख का मोह छोड़ दिया है। स्वसन्मुख के अन्दर सावधानीरूप से आया है। आहाहा! मोह का अर्थ सावधान होता है। परसन्मुखता की सावधानी पूर्ण छोड़ दी है और स्वसन्मुख की सावधानी पूर्ण लाया हूँ। आहाहा! भाषा समझ में आती है ? आहाहा!

मुमुक्षु :- यह बात तो यहाँ ही सुनने को मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यही बात है। मार्ग तो यह है। वाद और विवाद करनेयोग्य नहीं है। वस्तुस्थिति यह है।

भगवान चैतन्यरत्न, जिसकी कीमत करने से जगत की कीमत उड़ जाती है, ऐसा कहते हैं। जिसकी कीमत करने से, अन्दर अनुभव करने से पर की महिमा अर्थात् पर की ओर की किसी चीज़ की कीमत, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसकी महिमा भी छूट जाती है। आहाहा! भाषा सादी है परन्तु प्रभु! वस्तु बहुत ऊँची है। वस्तु तो यह है प्रभु! आहा! तेरी प्रभुता का पार नहीं, नाथ! कहते हैं तेरी प्रभुता तूने गुरु से सुनी। सुनकर ज्ञान द्वारा स्वसन्मुख होकर, परसन्मुखता के समस्त मोह का नाश किया है। आहाहा! स्व का आश्रय लेने को गुरु ने कहा था। क्योंकि निर्मल आनन्द की पर्याय स्वाश्रय बिना प्रगट नहीं होती और निर्मल आनन्द की पर्याय प्रगट हुए बिना धर्म नहीं है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता की सन्मुखता हो, ऐसा गुरु ने कहा, तब इसने भी पर की ओर की सब सन्मुखता नष्ट कर दी है। आहाहा!

ऐसा मैं,... ऐसा मैं। स्वयं अपने को डालते हैं। आहाहा! सब ऐसा कहते हैं कि यह कहीं निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। आहाहा! प्रभु! प्रभु! दिगम्बर में ऐसा चलता है। निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। अर र! यहाँ कहते हैं कि मैं ऐसा हूँ—यह मुझे खबर पड़ी है। **समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं,...** आहाहा! वह ज्ञानमति, वह महिला यहाँ तक चढ़ गयी थी कि अभव्य और काललब्धि अपनी है या नहीं, यह भगवान जाने, अपने को खबर नहीं पड़ती। अर र! अभव्य और कालब्धि, यह भगवान जाने कि यह अभव्य है या भव्य है। अखबार में आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मैंने मेरे स्वभाव की सावधानी द्वारा मोह को नष्ट किया है—ऐसा मैं जानता हूँ, मुझे खबर है। भगवान को पूछने जाना पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा सुना नहीं कभी वहाँ। भटका भटक (करता है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भाग्यवान को कान में पड़े, ऐसी बात है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की ध्वनि है। आहाहा! वीतरागी मुनि दिगम्बर सन्त वीतरागी केवली के मार्गानुसारी केवली की बातें स्वयं करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- उनका माल बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उनका माल, परन्तु मैं हूँ – ऐसा जानकर बताते हैं। (मैंने) इस मोह को नष्ट कियाहै – ऐसा मैं हूँ। होगा और होऊँगा ऐसा नहीं। आहाहा! देखो न! यह वीतराग की वाणी! रोकड़ी–नगद। आहाहा! धर्म करो, भविष्य में फलेगा, कहीं देवलोक में जाएगा। धर्म तो यहाँ यह वस्तु धर्मी है। उसके सन्मुख होकर मोह को नष्ट करने से धर्म होगा, वह यहाँ होता है। ये पंचम काल के मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिन्हें केवली का विरह पड़ा है। अभी तीर्थंकरों का विरह पड़ा है। वे ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम ऐसा कहते हैं कि हमने गुरु के निकट सुनकर ज्ञान द्वारा समस्त मोह का नाश किया है, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! एक लाईन... आहाहा!

अब राग–द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर,... चित्त को अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उनकी परम्परा होती है, उसे छोड़ देता हूँ। आहाहा! किसी को ऐसा लगता है कि अन्दर शुभ चित्त आवे, राग (से) तो परम्परा से कल्याण होगा। शास्त्र में ऐसा आवे, शुभ की परम्परा। वह तो आवे, उसका अभाव करके होगा – ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, राग–द्वेष की, चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का राग, देव–गुरु–धर्म की श्रद्धा का राग... आहाहा! उसकी जो परम्परा; ऐसा परिणत चित्त। राग–द्वेष की परम्परा से परिणमता था, ऐसा चित्त, उसे छोड़कर। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं। अरे रे! मनुष्यपना कब आयेगा? मनुष्यपना चला जाएगा। आत्मा तो अनादि सत्ता है तो उसका सत्तापना तो रहेगा। कहाँ रहेगा? आहाहा! कुछ भी भान नहीं, वह रहेगा कहाँ? भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हमें खबर है कि हम आत्मा हैं। हम आत्मा में रहेंगे। आहाहा! हम चित्त की परिणति में, राग–द्वेष की परम्परा जो होती है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा! शास्त्र में ऐसा आवे कि इससे परम्परा से होता है, यह बात हम छोड़ देते हैं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! निश्चयवाले को व्यवहार परम्परा से आता है। व्यवहार से ऐसी बात आती है। निश्चयवाले को व्यवहार है, वह परम्परा से मुक्ति देता है – इसका अर्थ कि उसका अभाव करके। यहाँ तो कहते हैं कि उस परम्परा की बात को मैं छोड़ देता हूँ। आहाहा! यह राग और शुभराग परम्परा से लाभ होगा, निश्चयवाले को, हों! निश्चय नहीं, उसे

व्यवहार बिल्कुल नहीं। आहाहा! अमृत भरा है। आहाहा! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! यह तो भगवान की भागवत कथा है।

अन्दर महिमावाला नाथ पड़ा है। उसके सन्मुख देख न, प्रभु! वीतराग का उपदेश यह है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों, सन्तों, मुनियों,... यह आ गया है। ऋषभदेव से लेकर महावीर तक अन्तर की भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! योगभक्ति अर्थात् स्वरूप में जुड़ान। आनन्द का नाथ प्रभु, उसके स्वरूप में जुड़ान से अनन्त तीर्थंकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं और ऐसा कह गये हैं... आहाहा! कि स्वरूप में जुड़ान कर, योग कर। जिस चित्त का जुड़ान राग के साथ ऐसे है, पर्यायबुद्धि में अनादि से ऐसे है, उसे ऐसे गुलांट मार। जहाँ भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ उस पर्याय को झुका ले। आहाहा! अरे! ऐसी बात! आहाहा!

सभी भगवान होओ! ऐसा आया नहीं था? आहाहा! ऊपर आया, देखो! **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** ऊपर एक लाईन। **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** आहाहा! यह ३४, ऊपर ३३। ३३ में है वह। **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! कोइ बाकी न रहो, प्रभु! सब प्रभु हो जाओ। आहाहा! सब भगवान हो जाओ। आहाहा! तुझे हीन दशा से देखना हमें ठीक नहीं पड़ता। आहाहा! तू प्रभु है, पूर्ण है। इसलिए सर्व जीव भव्य और अभव्य सभी डाले हैं। आहाहा! ऐसे न रहो संसार में। परसन्मुख की किसी भी वृत्ति में न रहो, प्रभु! अन्दर भगवान विराजता है न! पूर्णानन्द का नाथ अनन्त चैतन्य रत्नाकर, चैतन्य के रत्न का आकर—समुद्र है। आहाहा! प्रभु! वहाँ जा न! यह अनन्त तीर्थंकरों का उपदेश है न! भले पंचम काल में भगवान का विरह पड़ा, परन्तु उनकी वाणी का विरह नहीं है। आहाहा! पुकार करते हैं। आहाहा!

राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर, शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित... आहाहा! आनन्दस्वरूप जो भगवान, आनन्दस्वरूप परमात्मा तू है, भाई! उसमें एकाग्र होकर समाहित हो। आहाहा! **शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित (-एकाग्र, शान्त) किये हुए मन से...** आहाहा! **आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप आत्मा, आनन्दस्वरूप तत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, ऐसा तत्त्व भगवान, वह अपूर्ण नहीं है, विरुद्ध नहीं है, अशुद्धता नहीं है। उस चीज़ को किसी की अपेक्षा नहीं है। ऐसी चीज़ प्रभु! अन्दर पड़ी है न! आहाहा! ऐसा आनन्दात्मक, आनन्दस्वरूप प्रभु है न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले यह कह गये थे कि **निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके...** आहाहा!

ऐसा मार्ग कठिन लगे। ऐसा होगा, परन्तु कुछ साधन होगा या नहीं? यह साधन है, बापू! प्रभु! इसमें साधन नाम का गुण है। करण नाम का एक अनादि गुण प्रभु में है। ज्ञान और आनन्द गुण है, ऐसा करण नाम का गुण-साधनगुण है। उसकी दृष्टि करने से वह करण नाम का गुण ही तुझे साधन होगा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय साधन-फाधन कुछ है नहीं। आहाहा! और इस बात का पुकार करते हैं। आहाहा! अभी आवश्यक में आयेगा। उन ज्ञानमति ने कहा है न? नियमसार-सार का अर्थ मिथ्यात्वरहित लेना। इन लोगों ने अर्थ किया है कि नियमसार से विरुद्ध जो व्यवहार आचरण, व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका अभाव करके सार कहा है। नियमसार। और नियमसार इसके लिये कहा है कि मिथ्यात्व का त्याग करके मात्र दर्शन-ज्ञान-चारित्र रहे। यहाँ ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके... आहाहा! इनसे विरुद्ध व्यवहार का परिहार कर। आहाहा! अभी आयेगा। आवश्यक में आयेगा। पहले ही आयेगा। आवश्यक (अधिकार में) पहली लाईन है, पहले पृष्ठ की। वह लाईन देखो!

व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय का अधिकार कहा जाता है। है न? **व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष...** व्यवहार से निश्चय होता है, प्रतिपक्ष होता है। शत्रु से होगा? व्यवहार से निश्चय होगा? बापू! व्यवहार और निश्चय प्रतिपक्ष है। **व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय...** है। आहाहा! अरे रे! लोगों को कुछ... वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा कहीं रह गये और उनके नाम से कुछ चढ़ा दिया। लोगों को विचारों को जोड़ दिया। अरे रे! ऐसा समय... यह मनुष्यपना कब मिले, भाई! और उसमें वीतराग का मूल तत्त्व आत्मा आनन्दस्वरूप (वह कहाँ मिले)? यह कहा न?

आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ,... आहाहा! करनेयोग्य यह है। आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप। ऊपर के शरीर और वाणी, मन को न देख, नाथ! तू अन्दर भगवान है न! आहाहा! पर्याय की दृष्टि छोड़ दे। पर की तो छोड़ दे, परन्तु पर्याय की है, उसे छोड़ दे। पर्याय को अन्दर में झुका ले। आहाहा! जहाँ घर भरा है। आहाहा! ऐसा **आनन्दात्मक तत्त्व...** देखा? ऐसा आनन्दस्वरूप आत्मा। आहाहा! **स्थित रहता हुआ,...** उस आनन्दस्वरूप आत्मा में स्थित रहता हुआ। प्रभु! बात कठिन लगे, अनजानी लगे, सूक्ष्म लगे, परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जन्म-मरण से छूटने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। आहाहा! व्यवहार-फ्यवहार सब बन्ध का

कारण है। वह मुक्ति का कारण नहीं होता, नाथ! आहाहा! आनन्दस्वरूप तत्त्व, ऐसा कहा न? राग, पुण्य, दया, दान वह तो दुःखरूप है, राग है। राग तो दुःखरूप है। भले व्यवहाररत्नत्रय हो। परन्तु व्यवहाररत्नत्रय राग है और राग दुःखरूप है, आकुलता है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! आया। बहुत पहले आया। सरस आ गया। पहले-पहले आया उसमें। आहाहा!

ऐसा मार्ग है, उसे तेरे ज्ञान पर तो ले। लोग नहीं कहते कि भाई! हम कहते हैं, उसे ध्यान पर तू सुन, ध्यान में तो ले, लक्ष्य में तो ले। आहाहा! इसी तरह तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर की वाणी, वह सन्त स्वयं अनुभव करके, स्वयं अनुभव करके कहते हैं। इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! कठिन लगे, भाई! आहाहा! पूर्व के सम्प्रदाय में पड़े हों, उसका आग्रह हो, उसमें दूसरी बात सुनी न हो, इससे उस सम्प्रदाय को खोटा कहना, करना कठिन पड़ता है, प्रभु! आहाहा! दिगम्बर सम्प्रदाय के अलावा कोई जैनधर्म कहीं है ही नहीं। आहाहा! शान्ति से सुने, जरा-सा आग्रह छोड़कर, प्रभु! सुन! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त, दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

आनन्दात्मक तत्त्व... आनन्द-आत्मक, आनन्दस्वरूप तत्त्व। आहाहा! भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तत्त्व है। उसमें **स्थित रहता हुआ,...** उसमें स्थित रहता हुआ। आहाहा! **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** पूर्ण दशा में लीन हो जाऊँ। उस आनन्दात्मक तत्त्व में रहता हुआ पूर्णानन्द की प्राप्ति कर लूँ। दूसरा कोई उपाय नहीं है। पूर्णानन्द परमात्मा सिद्ध होने का यह उपाय है। आहाहा! आनन्दस्वरूप तत्त्व। आनन्दस्वरूप कहा। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, प्रभु! तेरे आनन्द के लिये बाहर में देखना नहीं है। मृग की नाभि में कस्तूरी, उस मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं। इसी तरह इसके अन्दर में भगवान आत्मा में (आनन्द) भरा है। आहाहा! उसकी इसे कीमत नहीं और उसके ऊपर के यह सब दिखाव की महिमा, विस्मय और आश्रयता महिमा इसे दिखायी दे, वहाँ इस महिमा का अनादर करता है। अपनी महिमा का आदर नहीं करता और यहाँ आदर करने जाए, वहाँ यहाँ (स्वभाव का) अनादर हो जाता है। आहाहा!

आनन्दस्वरूप तत्त्व में... आहाहा! **स्थित रहता हुआ,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में स्थित-स्थिर रहता हुआ **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** परमब्रह्म

सिद्धपने को प्राप्त करता हूँ। आहाहा! परमब्रह्म परमात्मा की इस प्रकार प्राप्ति होती है। एक लाईन में तो कितना समाहित कर दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु :- वह तो आप निकाल सकते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्दर है। आहाहा!

परमानन्दस्वरूप प्रभु में स्थित रहता हुआ मैं पूर्णता को प्राप्त करूँगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लक्ष्य में तो ले, प्रभु! बात को ध्यान में तो ले। आहाहा! वस्तु का ऐसा स्वरूप है और उस स्वरूप का साधन किये बिना मुक्ति कभी नहीं होती; संसार का नाश नहीं होता। आहाहा! और संसार में तो चौरासी के अवतार (किया करता है)। आहाहा!

आचार्य कहते हैं, मैं भूतकाल के चौरासी लाख के अवतारों को जहाँ याद करता हूँ तो चोट लगती है। आहाहा! ऐसा मुनिराज कहते हैं। आहाहा! गत भव में भव किये... आहाहा! सड़ी हुई बिल्ली, सड़ा हुआ चूहा, सड़े हुए हाथी-घोड़ा और कहाँ का कहाँ अकेला, कोई सामने देखनेवाला नहीं। अकेला पड़ा। धूप सिर पर पड़ी। धकधकती धूप, अग्नि लगी। आसपास घास में अग्नि लगी, उसमें स्वयं सुलग गया। आहाहा! प्रभु! ऐसे अवतार अनन्त किये हैं। आहाहा! ऐसे अवतार से अब बस होओ। ऐसे भव अब न हों। आहाहा! सभी जीवों के लिये ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऊपर आ गया न? सर्व जीव-सभी जीव। आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में यह कहा है। अपायविचय की व्याख्या है। द्रव्यसंग्रह, अपायविचय। वहाँ कहा है, मैं तो आठ कर्म से रहित परमात्मा होनेवाला हूँ; सभी आत्मायें आठ कर्मों से रहित होओ, भगवान हो जाओ, सब परमात्मा होओ—ऐसा धर्मी विचार करता है। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में है। द्रव्यसंग्रह में पाठ है। जहाँ अपायविचय, संस्थानविंचय, विपाकविचय (का अधिकार चला है), उसमें अपायविचय में यह अर्थ है। आहाहा! प्रभु! सभी भगवान होओ! आहाहा! कोई अपूर्ण न रहो, कोई गति में न रहो। आहाहा! ऐसा धर्मी विचार करते हुए, स्वयं के लिये तो ठीक, परन्तु पर के लिये भी ऐसा (भाता है)। सभी भगवान होओ, भाई! आहा! प्रभु के सामने विरोध न करो। आहाहा! अन्दर आनन्द का स्वरूप विराजता है। उससे विरुद्ध न कर, प्रभु! पर में सुख मानकर उल्लास न कर, नाथ! तुझमें आनन्द भरा है न! किस चीज़ में देखकर तुझे उल्लास आ जाता है? आहाहा! यह पर में उल्लास

आने पर, प्रभु! तेरे स्वरूप का अनादर हो जाता है। आनन्द का सागर... आनन्दात्मक कहा न? यह आनन्दस्वरूप ही तत्त्व है। आहाहा! सर्वांग आत्मा आनन्द से भरपूर भगवान असंख्य प्रदेश में पूर्णानन्द से भरपूर भगवान में स्थित रहता हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु :- स्थित रहता हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्थित-अन्दर एकाग्रता।

मुमुक्षु :- स्थित रहता हुआ, यह श्रेणी और लीन होना, यह केवलज्ञान?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो यहाँ स्थित रहता हुआ। श्रेणी-फ्रेणी यहाँ कुछ नहीं। अन्दर में स्थिर हो तो पूर्ण केवलज्ञान। यह सब शास्त्र की भाषा। यह तो संक्षिप्त सार। आहाहा!

आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ, परब्रह्म... को प्राप्त कर लूँगा, ऐसा कहते हैं, देखो! **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** मैं तो परमब्रह्म आत्मा में लीन होता हूँ। परब्रह्म हो जाऊँगा। आहाहा! श्रेणी माँडना, अमुक माँडना, यह तो सब शास्त्र की भाषा है। श्रेणी माँडू, यह भी वहाँ कहाँ है? यह तो वीतराग बात करे कि यहाँ ऐसी श्रेणी होती है। उसे कहाँ श्रेणी-फेणी? वह तो अन्दर स्थित है, बस! वस्तु है, आनन्दस्वरूप है, उसमें स्थिर है। फिर उसे अमुक धारा को श्रेणी कही, अमुक धारा को उपशम और अमुक को क्षपक (कही)। आहाहा! अनुभव में यह कुछ है नहीं। यह श्रेणी है और यह वह है और यह है। आहाहा! इसलिए यहाँ कहा (कि) स्थित रहता हुआ, बस! आहाहा! कठिन लगे। कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। कहीं यह बात है ही नहीं। सर्वत्र गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़... ओहोहो! कुछ न कुछ सहारा व्यवहार का, निमित्त का (लेना चाहते हैं)। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यहाँ आत्मा में व्यवहार और निमित्त का तो अभाव है। आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःखस्वरूप है ही नहीं। आहाहा! उसमें स्थित होता हुआ। ओहोहो! एक लाईन में पौण घण्टा हुआ! जितना निकालें, उतना कम। आहाहा!

लीन होता हूँ। आहाहा! स्वयं को खबर पड़ती है कि मैं इसमें लीन होता हूँ। भगवान को पूछे कि महाराज! ऐसे मैं अब परमात्मा होने के योग्य हूँ या नहीं? यह पूछने की आवश्यकता नहीं है, कहते हैं। आहाहा! स्वयं ही भगवान जागृत हुआ है। आहाहा! उसमें स्थित होता हुआ मैं परमब्रह्म हो जाऊँगा। आहाहा! कल भी यह बात चली थी। इतनी आज चली। पोण घण्टे। आहाहा!

श्लोक-२३५

(अनुष्टुप्)

निर्वृत्तेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम् ।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम् ।।२३५।।

(वीरछन्द)

नष्ट हुई इन्द्रिय लोलुपता, तत्त्व लोलुपी जिनका चित्त।
सुन्दर आनन्द झरता-उत्तम तत्त्व उन्हें होता है व्यक्त॥२३५॥

[श्लोकार्थः] इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है, उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता उत्तम तत्त्व प्रगट होता है॥२३५॥

श्लोक- २३५ पर प्रवचन

---

२३५ (श्लोक)।

निर्वृत्तेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम् ।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम् ।।२३५।।

श्लोकार्थ : इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है... यह भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय सब चीज़ पर है। आहाहा! उसकी जिसे लोलुपता, उनकी ओर के झुकाव का उत्साह जिसे निवृत्त हुआ है। आहाहा! **इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है...** आहाहा! जिसे सुनने का भी अब रहा नहीं। अतीन्द्रिय भगवान अन्दर स्थित है, वहाँ जाता है। आहाहा! समयसार की ३१वीं गाथा में 'इन्द्रिय को जीतकर'—ऐसा आया है न? उसका अर्थ ऐसा किया कि भगवान के सन्मुख देखना, वह इन्द्रिय है। भगवान की वाणी सुनना, वह इन्द्रिय है। उस इन्द्रिय को जीतकर अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! ३१वीं गाथा है। **'जो इंदिये जिणिता'** इस **'इंदिये जिणिता'** के तीन अर्थ किये हैं—द्रव्येन्द्रिय जड़; भावेन्द्रिय क्षयोपशम और दूसरी चीज़ के सामने भगवान और भगवान की वाणी, वह भी इन्द्रिय। यह सब इन्द्रिय में तथा एक ओर भगवान अनीन्द्रिय आत्मा। आहाहा!

इन्द्रियलोलुपता... अर्थात् इन्द्रियों की ओर का झुकाव। पाँचों इन्द्रियों की ओर का झुकाव। आहाहा! **जिनको निवृत्त हुई है...** आहाहा! **और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है,...** तत्त्व अर्थात् चैतन्य भगवान आनन्द में जिसे उत्सुकता है। उसमें उत्साह बढ़ गया है। अतीन्द्रिय आनन्द में उत्साह-वीर्य बढ़ गया। उत्साह और वीर्य अतीन्द्रिय आनन्द में आ गया। उत्साह और वीर्य परसन्मुख था, वह छूट गया। आहाहा!

ऐसा मार्ग! यह तो कोई वीतराग का मार्ग होगा? कोई ऐसा कहता है कि यह नया निकाला है। सोनगढ़वालों ने नया निकाला है। अरे! भगवान! नया (नहीं है)। यह तो अनादि का है। सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वे कह रहे हैं। वहाँ से यह सब आया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। वे भी स्वयं ऐसा कहते हैं कि यह शास्त्र मैंने मेरे लिये बनाया है। समयसार, प्रवचनसार में ऐसा नहीं कहा, परन्तु इसमें तो ऐसा कहा है कि यह शास्त्र मैंने मेरे लिये बनाया है। अन्तिम गाथा है - १८७। आहाहा! दुनिया जाने, न जाने, यह बात प्रसिद्ध हो परन्तु मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! १८७ गाथा। अन्तिम (गाथा)।

'**णियभावणाणिमित्तं**' १८७। अन्तिम गाथा। '**णियभावणाणिमित्तं**' मेरी भावना के लिये '**मए कदं**' मैंने बनाया। '**णियमसारणामसुदं।**' नियमसार नाम का सूत्र मैंने मेरे लिये बनाया है। '**णच्चा जिणोवदेसं**' 'जिन' का उपदेश जानकर, अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है, वह इसमें कहा है। ऐसा कहते हैं। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा, वह इसमें है। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्वापर दोष इसमें है नहीं। आहाहा! १८७ (गाथा) आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़। इसमें तो ऐसा कहा कि मैंने मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! तुम सुनो, समझो और अन्दर उतरो। आहाहा! मैंने तो मेरे लिये अनुभव में आगे बढ़ने के लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है... पाँचों ही इन्द्रिय की ओर का झुकाव जिसे छूट गया है। आहाहा! जीते जी मर जाना है। इन्द्रियों की ओर के झुकाव से मर जाना है। पाँचों इन्द्रियों की ओर के झुकाव से मर जाना है और अनीन्द्रिय की ओर जीना है। आहाहा! ऐसा है। **इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है,...** आहाहा! अनीन्द्रिय भगवान में लोलुपता उसकी हुई है। यहाँ (इन्द्रियों में) लोलुपता टूट गयी है और यहाँ (आत्मा में) लोलुपता हुई है। यहाँ

तत्परता छूट गयी है और यहाँ तत्परता हुई है। यहाँ सावधानी छूट गयी है और यहाँ सावधानी हुई है। आहाहा! ऐसा है। इसमें पंचम काल और पंचम काल के श्रोता अप्रतिबुद्ध है और साधारण है, यह बात यहाँ देखने की नहीं है। आहाहा! सब भगवान है और भगवान होने के योग्य है। आहाहा! प्रभु! मैं होनेवाला हूँ, तू भी होओ न! तुम भी आत्मा हो न!— ऐसा कहते हैं। आप तो मेरी नात के, जाति के, कुल के हो। आहाहा!

इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप... दो बातें की हैं। इस ओर का आश्रय छूट गया है और इस ओर का आश्रय उत्पन्न हुआ है। आहाहा! चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर (है), उसकी लोलुपता बढ़ गयी है। आहाहा! उसकी तत्परता, उसके लिये उत्सुक जिसका चित्त है। आहाहा! परसन्मुख की उत्सुकता छोड़ दी है तथा भगवान आत्मा की ओर की उत्सुकता तत्पर हुई है। आहाहा!

उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता... अब उसे क्या प्राप्त होता है ? पर-सन्मुख का झुकाव पूर्ण छोड़कर अन्तर के झुकाव में आया है, उसे क्या प्राप्त होता है ? **सुन्दर-आनन्दझरता उत्तम तत्त्व...** सुन्दर अतीन्द्रिय आनन्द झरता। आहाहा! जैसे पर्वत में से पानी झरे... आहाहा! कोई तो ऐसा कहता था कि इस मुर्दे में से पानी झरे। शान्तिभाई कहते थे। उन्हें जलाया न! उसमें से छूटता है। ओहो! रक्त का पानी होता होगा ? मरते एकदम पानी-पानी-पानी पैर में से, पूरे शरीर में से पानी (निकले)। हम तो कभी गये नहीं। ९१ वर्ष में श्मशान में गये नहीं। श्मशान में कैसे जलाते हैं और कैसे हैं (देखा नहीं)। आहाहा! यह शान्तिभाई बात करते थे। आहाहा! रक्त है, उसका पानी होता है। आहाहा! पानी होकर छूट जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिनका चित्त अन्दर ऐसे **उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता...** आहाहा! वर्तमान पर्याय में सुन्दर आनन्द का अनुभव प्रगट झरता... आहाहा! शक्ति और सत्वरूप से अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसकी पर्याय में उसका झरता आनन्द। आहाहा! **उत्तम तत्त्व प्रगट होता है।** आनन्द झरता तत्त्व प्रगट होता है। अकेला ऐसे तत्त्व आत्मा... आत्मा—ऐसा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट झरता आत्मा प्रगट होता है। आहाहा! पर की लोलुपता की तत्परता छोड़कर... भाषा (सादी) है, परन्तु इसका भाव कठिन है, भाई! और स्व में अन्दर की तत्परता होना, उसे सुन्दर आनन्द झरता, सुन्दर आनन्द की पर्याय का अनुभव उत्तम तत्त्व प्रगट होता है। उसे उत्तम तत्त्व होता है।

विशेष कहेंगे....	(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)